Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN: 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-5

वैदिक वाग् ज्योतिः

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed Research Journal on Vedic Studies

Vol. 1 July-December 2013 No.1
जुलाई–दिसम्बर 2013

अथर्ववेद विशेषांक

सम्पादक
दिनेशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya
Haridwar-249 404(Uttarakhand), India
http://www.gkv.ac.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN: 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
Vol. 1, July-December 2013, No.1

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Half Yearly Refereed Research Journal on Vedic Studies

Chief Patron
Dr. Ram Prakash
Chancellor

Patron
Dr. Surendra Kumar
Vice Chancellor

Advisory Board

Prof. B.L. Bharteeya, Rajasthan
Acharya Rajvir Shastri, Modinagar, U.P.
Prof. Mahavir Agrawal, Haridwar
Dr. Vinod Chandra Vidyalankar, Jwalapur
Prof. Bhagwandev Pandeya, GKV, Haridwar
Prof. Maan Singh, Roorkee
Prof. Nicholas Kazanas, Athens (Greece)
Prof. Bheem Singh, Kurukshetra
Prof. Rajendra Vidyalankar, Kurukshetra
Prof. Dharmveer (Ajmer)
Prof. Vedpal (Meerut)
Sh. Girish Khosala, USA
Prof. Shashi Tiwari, Delhi
Prof. Kamlesh Chaukashi, Ahamedabad, Gujrat
Acharya Balvir, Rohtak, Haryana
Prof. Vikram Kumar Viveki, Chandigarh
Prof. Kishnaram Bishnoi, Hissar
Prof. Lekhram Sharma, Amritsar
Prof. K.K. Budkar, GKV, Haridwar
Prof. Shrawan K. Sharma, GKV, Haridwar
Prof. Devendra Kumar Gupta, GKV, Haridwar
Prof. L.P. Purohit, GKV, Haridwar
Prof. Sohanpal Singh Arya, GKV, Haridwar

Departmental Advisory Board

Prof. Manudev Bandhu
Prof. Roopkishor Shastri

Chief Editor

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Head, Dept. of Veda, GKV, Haridwar-249 404 (U.K.) India
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91- 9410192541

Reviewers

Prof. Gyan Prakash Shastri, GKV, Haridwar
Prof. Veerendra Alankar, Chandigarh

Finance Advisor

Sh. R.K. Mishra, F.O.
Sh. Shashi Kant Sharma, ACMA

Business Manager

Librarian
GKV, Haridwar - 249 404 (Uttarakhand) India

Subscription

Rs. 150.00 Annual, US $ 9, Single Copy: Rs. 75.00
Rs. 750.00 Five Year's
Payment Mode :
D.D. in favour of Registrar G.K.V. Haridwar (U.K.)

Published by

Prof. V.K. Sharma
Registrar, GKV, Haridwar - 249 404 (Uttarakhand) India

Printed at

Kiran Offset Printing Press, Kankhal, Haridwar - 249 404
(U.K.) India, Tel: +91- 9837007222, 01334 -245975

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN: 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882

DP-5

वैदिक वाग् ज्योतिः

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed Research Journal on Vedic Studies

Vol. 1 July-December 2013 No.1
जुलाई–दिसम्बर 2013

अथर्ववेद विशेषांक

सम्पादक
दिनेशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya
Haridwar-249 404(Uttarakhand), India
http://www.gkv.ac.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसूची

	श्रुति-सुधा		
	वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवनं ज्ञानप्रदं वैदिकम्		
	सम्पादकीय (Editorial)	प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री	5-10
1	अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या	प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक)	11-85
2	अथर्ववेद का विहंगम परिचय	आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा	86-108
3	अथर्ववेदीय भ्रान्तिनिवारण	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	109-129
4	अथर्ववेद के कौशिककृत विनियोगों पर एक दृष्टि	पं. रामनाथ वेदालङ्कार	130-140
5	अथर्व-आलोचन	पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसातीर्थ	141-161
6	अथर्ववेद का राहु केतु आख्यान और उसका निहितार्थ	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	162-167
7	अथर्ववेद और मांस	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	168-184
8	अथर्ववेद में सती प्रथा, पिण्डदान आदि का वर्णन है?	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	185-187
9	त्रयी में अथर्ववेद भी है	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	188-200
10	अथर्ववेद में पुनरुक्ति	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	201-209
11	दयानन्दीय विचारधारा के आलोक में अथर्ववेद के मणिसूक्तों का स्वारस्य	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	210-227

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12	अथर्ववेद की ह्विटने एवं ब्लूमफील्ड द्वारा व्याख्या- एक अनुशीलन	डॉ. कृष्णलाल	228-242
13	अथर्ववेद में पशु-विज्ञान	डॉ. शशि तिवारी	243-251
14	अथर्ववेद की सामाजिक मान्यताएँ- आज के सन्दर्भ में	हर्षा कुमारी	252-263
15	आथर्वणिक चिन्तन के आलोक में जन्द-अवेस्ता का अध्ययन	डॉ. अमित कुमार चौहान	264-272
16	मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य की समीक्षा	डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री	273-287
17	अथर्ववेदीय वहिष्ठ एवं इस्लामिक बहिश्त	डॉ. वेदपाल	288-295
18	अथर्ववेद में न्याय एवं दण्ड विधान	डॉ. विनय कुमार विद्यालङ्कार	296-299
19	अथर्ववेदीय समाज-प्रतिष्ठा	डॉ. विजय कुमार त्यागी	300-307
20	अथर्ववेद में राज व्यवहार	डॉ. वेदव्रत	308-312
21	अथर्ववेद में जल-चिकित्सा विषयक चिन्तन	डॉ. गोपाल लाल मीणा	313-316
22	अथर्ववेद का संक्षिप्त परिचय	श्रीऋषिरामजी रेग्मी, अथर्ववेदाचार्य	317-322
23	अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण : एक परिचय	श्रीऋषिरामजी रेग्मी, अथर्ववेदाचार्य	323-326
24	श्रौतकर्मकाण्डेऽथर्ववेदस्य स्थानम्	डॉ. विजयपालो विद्यावारिधिः	327-331

–०–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति-सुधा

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं
स्कम्भं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।

अथर्व. कां. 10, प्रपा0 23, अनु0 4, मं020 (अथर्व.10/7/20)

भाष्यम्– **(यस्मादृचो)** यस्मात् सर्वशक्तिमतः ऋचः ऋग्वेदः **(अपातक्षन्)** अपतक्षत् उत्पन्नोऽस्ति। यस्मात् परब्रह्मणः **(यजुः)** यजुर्वेदः **(अपाकषन्)** प्रादुर्भूतोऽस्ति। तथैव यस्मात् **(सामानि)** सामवेदः **(अथर्वाङ्गिरसः)** अथर्ववेदश्चोत्पन्नौ स्तः। एवमेव यस्येश्वरस्याङ्गिरसोऽथर्ववेदो मुखं मुखवन्मुख्योऽस्ति, सामानि लोमानीव सन्ति, यजुर्यस्य हृदयम् ऋचः प्राणश्चेति। रूपकालङ्कारः। यस्माच्चत्वारो वेदा उत्पन्नाः स कतमः स्विद्देवोऽस्ति? तं त्वं ब्रूहीति प्रश्नः। अस्योत्तरम्– **(स्कम्भं तं0)** तं स्कम्भं सर्वजगद्धारकं परमेश्वरं त्वं जानीहीति। तस्मात् स्कम्भात् सर्वाधारात् परमेश्वरात् पृथक् कश्चिदप्यन्यो देवो वेदकर्त्ता नैवास्तीति मन्तव्यम्।।

*भाषार्थ– **(यस्मादृचो अपा.)** जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, उसी से **(ऋचः)** ऋग्वेद **(यजुः)** यजुर्वेद **(सामानि)** सामवेद **(अथर्वाङ्गिरसः)** अथर्ववेद, ये चारों उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार रूपकालंकार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य, सामवेद लोमों के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण की नाई है। **(ब्रूहि कतमः स्विदेव सः)** कि चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं, सो कौन सा देव है? उसको तुम मुझसे कहो। इस प्रश्न का उत्तर है कि **(स्कम्भं तं0)** जो सब जगत् का धारणकर्त्ता परमेश्वर है, उसी का नाम 'स्कम्भ' है, उसी को तुम वेदों का कर्त्ता जानो। और यह भी जानो कि उसको छोड़ के मनुष्यों को उपासना करने के योग्य दूसरा कोई इष्टदेव नहीं है। क्योंकि ऐसा अभागा कौन मनुष्य है, जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को छोड़के दूसरे को परमेश्वर मानके उपासना करे।*

(महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्

नाना-तर्कैर्वितर्कैर्विबुध-जनमतैर्भूषयल्लेखमालाः,
शास्त्राणां दर्शनानां निगमपथजुषां ब्राह्मणानां बहूनाम्।
वाक्यैः सिद्धान्तनिष्ठैः समम् उपनिषदां तत्त्वमाधातुकामम्,
वाग्ज्योतिर्वैदिकं तत् प्रसरतु भुवने ज्ञानविज्ञानदं नः॥१॥ (स्रग्धरा)

विद्वद्व्यूहविचारसारसहितं यत् प्राच्यविद्याऽऽश्रितम्,
अज्ञानाऽन्धतमोनिवारणपरं सद्-बुद्धिशुद्धि-प्रदम्।
शोधोद्योगपरायणा बुधजना जानन्तु तद् दीपकम्,
वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं **वैदिकम्**॥२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

-प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

 Vol.1, No.1 (5-10) July-Dec. 2013

ISSN 2277-4351

सम्पादकीय (Editorial)

यत्र ब्र॒ह्मा पवमान छन्द॒स्या॒ं३ वाचं॒ वद॑न्

वेद परमपिता परमात्मा का अमर काव्य है। वेद में कहा है– **दे॒वस्य॑ पश्य॒ काव्यं॒ न म॑मार॒ न जीर्यति** (अथर्व0 10/8/32) अर्थात्, परमात्मदेव के काव्य को देखो, जो न जीर्ण (Out of date) होता है, न मरता है। परमात्मा स्वयं अमर है, अतः उसका काव्य भी अमर है। वेद चार हैं ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है। यजुर्वेद कर्मकाण्ड है, सामवेद उपासना काण्ड है, और अथर्ववेद विज्ञान काण्ड है। ऋग्वेद मस्तिष्क का वेद है, यजुर्वेद हाथों का वेद है, सामवेद हृदय का वेद है और अथर्ववेद उदर अर्थात् पेट का वेद है। जो कुछ तीनों वेदों में नहीं है, वह अथर्ववेद में है। अथर्ववेद युद्ध और शान्ति का वेद है। यदि कोई राष्ट्र हमारे राष्ट्र पर आक्रमण करे तो अपने राष्ट्र की रक्षा और शत्रु के विनाश के लिए भयंकर अस्त्र और शस्त्रों का वर्णन इस वेद में है। यदि मनुष्य रोगी हो जाय तो स्वास्थ्य लाभ के लिए नाना प्रकार की दिव्य औषधियों का वर्णन है। यदि राष्ट्ररूपी शरीर में कमी आ जाये तो नाना प्रकार के दण्डादि उपायरूपी ओषधियों से उसकी यथोचित चिकित्सा का विधान अथर्ववेद में है। एक प्रकार से शारीरिक और राष्ट्रिय स्थिरता का वर्णन अथर्ववेद में है। आचार्य यास्क और गोपथकार के अनुसार जिस वेद में सभी प्रकार की स्थिरता का उपदेश है, वह अथर्ववेद कहाता है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, वैश्विक एवं प्राकृतिक सब प्रकार की स्थिरता का सदुपदेश जिस वेद संहिता में प्राप्त होता है उसे अथर्ववेद कहते हैं। इन सब विशेषताओं के कारण ही इसके आंगिरस वेद, अथर्वांगिरस वेद, ब्रह्म वेद, भृग्वंगिरोवेद, क्षत्रवेद, भैषज्यवेद, छन्दोवेद और महीवेद आदि अनेक नाम हैं। जयन्त भट्ट ने **''न्यायमंजरी''** में अथर्ववेद को प्रथम स्थान देते हुए कहा है कि – '**तत्र वेदाश्चत्वारः, प्रथमोऽथर्ववेदः**', अर्थात् चारों वेदों में यही सर्वोत्कृष्ट वेद है। यह सर्वकार्य साधक, सार्वकालिक और सार्वजनीन होने से सर्वप्रथम है। राष्ट्र में शान्ति और पुष्टि कैसे हो– इन दोनों प्रकार के कर्मों का सम्पादन केवल अथर्ववेद से ही होता है। यदि ऋग्वेद आग्नेय (अग्नि तत्त्व प्रधान) वेद है तो अथर्ववेद सोमीय (सोम तत्त्व प्रधान) वेद है। यदि ऋग्वेद ऊष्मा, प्रगति और स्फूर्ति देता है तो अथर्ववेद शान्ति, सामंजस्य, सद्भावना और सोमीय गुणों का आधान करता है। जिससे मानव के उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतएव अथर्ववेद का विशेषज्ञ यज्ञ का ब्रह्मा होता है। वही अध्यात्म की व्याख्या करता है। मुख्य रूपेण अथर्ववेद में दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, आयुर्वेदिक, वैज्ञानिक आदि विषयों का सूक्ष्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से विवेचन किया गया है। पंडित दामोदर सातवलेकर द्वारा सम्पादित अथर्ववेद संहिता में अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव प्रकरणों को जहां पृथक् पृथक् दिखाया गया है वहीं ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थ सन्यास प्रकरण, आयुर्वेद प्रकरण, राज्य शासन, युद्ध, शत्रुमर्दन, मणि धारण, पापादि नाशन, अन्नादि, सुखसम्पत्प्राप्ति, यज्ञ, काल, पशु एवं कृषि तथा व्यवसाय आदि विषयों को भी चिन्हित किया गया हैं। अथर्ववेद में नाना प्रकार की चिकित्साओं, यथा –जलचिकित्सा, औषधचिकित्सा, शल्यचिकित्सा (चीर–फाड़), यज्ञचिकित्सा, मूत्रचिकित्सा, मणिचिकित्सा, धातुओं के धारण द्वारा रोग निवृत्ति, पुत्रेष्टि यज्ञ आदि का यहां विशद वर्णन है। अथर्ववेद में आत्मप्रेरणा, हिप्नोटिज्म, मैस्मरेज्म (विचारों द्वारा दूसरों को प्रेरित करना) आदि का भी वर्णन है। इन प्रेरणाओं के एक दो नमूने देखिए – **कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्युजित्।।** अथर्व0 7/50/8

अर्थात् मेरे सीधे हाथ में कर्म है और बायें हाथ में विजय रखी हुई हैं। मैं अपने कर्मों के द्वारा गौवों, ज्ञानेन्द्रियों और भूमि का विजेता बनूं। मैं घोड़ों, कर्मेंद्रियों और राष्ट्रों का विजेता बनूं। मैं नाना प्रकार के धनों और स्वर्ण आदि धातुओं का विजेता बनूं। एक अन्य मन्त्र देखिये– **अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।।**

अथर्व. 4/13/6

अर्थात् मेरा दाहिना हाथ ऐश्वर्यशाली है और बायां हाथ उससे भी अधिक ऐश्वर्यशाली है। मेरे सीधे हाथ में सारी औषधियां रक्खी हैं, और बायां हाथ तो छूने मात्र से कल्याण करने वाला है। यह मन्त्र रेकी रेकी का मूल मन्त्र है। इस वेद के चौथे काण्ड में **'यस्तिष्ठति यश्चरति'** आदि मंत्रों में ईश्वर की सर्वव्यापकता का हृदयहारी वर्णन है। इसका 6ठा और 7वां काण्ड तो इसका हृदय है। इन काण्डों में अनेक विषयों पर बहुमूल्य उपदेश और रत्न भरे पड़े हैं। नवें काण्ड में एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थन है। वहां दो से दस तक ईश्वरों का निषेध करने के बाद कहा है **'एकवृत एक एव'** अर्थात् वह एक है और केवल एक ही है।

इस वेद में 11 वें काण्ड में प्राण विद्या और ब्रह्मचर्य के महत्त्व का विशद प्रतिपादन है। ब्रह्मचर्य की महिमा में कहा गया है कि– **'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'** अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप से विद्वान् लोग मौत को भी मार भगाते हैं। इस वेद के 12वें काण्ड का प्रथम सूक्त विश्व का प्रथम राष्ट्रगीत है। पहले ही मंत्र में राष्ट्र के धारक गुणों का उल्लेख और मध्य के मंत्रों में भूमि को माता और स्वयं को पुत्र बताकर अन्त में राष्ट्र के लिए मर मिटने की इच्छा है – **'वयं तुभ्यं बलिहृतः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याम'। हे राष्ट्रभूमे! हम तेरे लिए अपने तन मन धन को न्यौछावर करने वाले हों।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने अथर्ववेद को पश्चवर्ती बताकर एवं इस वेद का गौरव गिराने के लिए इसे जादू टोने का वेद बताकर अनर्गल प्रलाप किया है। इस वेद में जादू टोने वाला एक भी मंत्र नहीं है। अन्य वेदों की भांति इस वेद में भी परमात्मा के आदेश, उपदेश और संदेश हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि करने के लिए ही और **'सर्वज्ञानमयो हि सः', 'वेदाभ्यासात् भवेद्धर्मः सम्प्रदानात्तथैव च'** एवं **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सभी आर्यों का परमधर्म है'** – इन क्रमशः मनु, कात्यायन और दयानन्द प्रोक्त सिद्धान्तों के प्रचार प्रसारार्थ ही **"वैदिक वाग् ज्योतिः"** का यह अथर्ववेद विशेषांक पाठकों के हाथों में देते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आपने वेद समुद्र की कितनी गहराई को नापा है। इसके तल पर आप पहुंचे हैं या नहीं ? महत्त्वपूर्ण यह है कि आपने वेदोदधि का मन्थन कर मानवसमाज को उसके नवनीत से कितना तृप्त किया है ? अथर्ववेद को आधार बनाकर इस पर नानाप्रकार का विरोधाभासी लेखन करना वेद मंत्रों के मूल आशय /निहितार्थ से विपरीत है। जैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद अंतःस्फुरित ज्ञान (Intuitive Knowledge) के भण्डार हैं वैसे ही अथर्ववेद भी है। अथर्ववेद से सम्बन्धित बहुत सी महत्त्वपूर्ण शंकाओं का समाधान इस अंक में प्रकाशित बहुमूल्य लेखों से अवश्य होगा। न्यूटन के शब्दों में हम तो यही लिख सकते हैं कि ज्ञान का अथाह सागर मेरे सामने हिलोरे ले रहा है और मैं इसके किनारे बैठा घोंघे बीन रहा हूं। यही स्थिति इस अंक के रूप में वेद सागर के किनारे बैठे हमारी भी है। आशा है विद्वज्जगत् न्यूटनोक्ति को आधार बनाकर इस अंक का स्वागत अवश्य करेगा।

• **वैदिक ज्योति का संवाहक : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का नवनियुक्त शीर्ष नेतृत्व** – आज जब यह **'वैदिक वाग् ज्योतिः'** का अथर्ववेद विशेषांक पाठकों के हाथों में जा रहा है तब मुझे अत्यधिक प्रसन्नता इसलिए हो रही है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नवनियुक्त कुलाधिपति राज्यसभा सांसद माननीय प्रो0 (डॉ0) रामप्रकाश जी एवं कुलपति माननीय प्रो0 सुरेन्द्र कुमार जी दोनों ही प्राच्यविद्याविशारद हैं। इन दोनों ने ही **'अधीतमध्यापितमर्जितं यशः, न शोचनीयं किमपीह विद्यते'** इस उक्ति को चरितार्थ किया है। प्रखर वक्ता कुलाधिपति प्रो0 रामप्रकाश रसायनशास्त्र के ख्यातिप्राप्त विद्वान् होने के साथ–साथ नवजागरण काल के आर्यसमाजी साहित्य के खोजी एवं जिज्ञासु साहित्यकार भी हैं। एतत्सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण कृतियां आपने विद्वज्जगत् को दी हैं। ये कृतियां आपकी साहित्य साधना और स्थिरधी की परिचायक हैं। निष्कलंक राजनैतिक जीवन को यापन करते हुए साहित्यिक जीवन को भी जिया जा सकता है, ये कृतियां इस बात की भी द्योतक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो0 रामप्रकाश अध्यवसायी प्रवृत्ति के धनी, प्रदर्शन अर्थात् दिखावे से बहुत दूर रहने वाले, पुरुषार्थप्रेमी और ईश्वर विश्वासी हैं। आपने अपने सत्प्रयासों से अपने मानसगुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ में **"महर्षि दयानन्द अनुसंधान पीठ"** की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इस अनुसंधान पीठ से उच्चकोटि का शोधकार्य हुआ है। इसके पहले चेयरमैन स्व0 प्रो0 रामनाथ वेदालंकार जी रहे और इनके बाद विश्वविख्यात लेखक प्रो0 भवानीलाल भारतीय जी इसके अध्यक्ष बने। जहां इन दोनों विद्वानों ने स्वयं उत्कृष्ट कोटि का अनुसंधान कर कई ग्रन्थ लिखे वहीं अनेकों शोधार्थियों को भी शोधनिर्देशन दिया। कुलपति प्रो0 सुरेन्द्र कुमार और मुझे स्वयं इसी अनुसंधान पीठ से प्रो0 भारतीय जी के निर्देशन में ही पी–एच0 डी0 शोधकार्य करने का सौभाग्य मिला है। एक प्रकार से मैं यह कह सकता हूं कि प्रो0 रामप्रकाश के द्वारा लगाये पौधे ने न जाने कितने ज्ञानपिपासुओं की ज्ञानपिपासा शान्त की है। ऐसे ज्ञानपिपासु भारत में ही नहीं अपितु भारतेतर कई देशों में भी वैदिक ज्योति की ध्वजा को जहां फहराए हुए हैं वहीं वेदानुसंधान के क्षेत्र में भी मानक स्थापित करते हुए देखे जा सकते हैं। **'प्रभाव एवैषः रामस्यामोघः '**।

गुरुकुल भूमि वर्षों से ऐसे कुलपुत्र की प्रतीक्षा में थी जो भारतीय विद्याओं (Indology) में निपुण हो। प्रो0 सुरेन्द्र कुमार के रूप में ऐसे मनीषी विद्वान् को कुलपति के रूप में पाकर यह कुलभूमि आज वास्तव में धन्य हो गयी है। स्मितपूर्वाभिभाषी प्रो0 सुरेन्द्र कुमार प्राच्यविद्याओं के और उनमें भी विशेषकर धर्मशास्त्रों के गम्भीर विद्वान् हैं। वेदों पर जहां आपने वैदिक आख्यानों को आधार बनाकर सर्वथा नवीन शैली में व्यापक अनुसंधान कर एक नयी दृष्टि दी है वहीं युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और शास्त्रीय–शोधन कार्यों में से शास्त्र शोधन के कार्य को अपने से पूर्ववर्ती स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पं0 गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं0 तुलसीराम स्वामी एवं आचार्य राजवीर शास्त्री आदि मूर्धन्य मनीषी विद्वानों की परम्परा को गति देते हुए सर्वमान्य तार्किक परिणति तक पहुंचाया है। यह कटु सत्य है कि 180 ई.पू. में पुष्यमित्र शुंग मगध के कब्जाधारी ब्राह्मण राजा के समय में शास्त्रों में रूढ़िवादी प्रक्षेपों का प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर और आठवीं शताब्दी में राजा सुधन्वा के सहयोग से जब आचार्य शंकर ने हिन्दुधर्म को पुनर्जीवित किया, तब से बड़े बड़े शास्त्र वाक्यों, व्यास, वाल्मीकि, मनु, भीष्म और श्रीकृष्ण आदि के नाम पर संस्कृत ग्रन्थों में ऐसी घुसपैठ (प्रक्षेप–Interpolation) हुई कि आनेवाली पीढ़ियां उसके अभिशाप से सैकड़ों वर्षों की दासता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झेलने के बाद आज भी छुटकारा नहीं पा सकी हैं। ऐसी घुसपैठ धूर्त लोगों ने अपने स्वार्थ के कारण की है। **"धूर्तैः प्रवर्तितमेतद् नैतद् शास्त्रेषु (वेदेषु) विद्यते"** इस महाभारतोक्ति के अनुसार डॉ0 सुरेन्द्र कुमार ने धूर्तप्रवर्तित षड्यन्त्र का खुलासा तर्क ऋषि की अदालत (न्यायालय) में किया और **"यस्तर्केणानुसन्धते स धर्म वेद नेतरः"** की मान्यता को सत्य सिद्ध किया। डॉ0 सुरेन्द्र कुमार ने धर्मशास्त्रों में महत्त्वपूर्ण **मनुस्मृति** के शोधन का गुरुतर भार अपने कन्धों पर लिया और वर्षों की कठिन साधना के बाद **"मनुर्वै यत् किञ्चावदत् तद् भैषजम्"** (तै0 सं0 2/1/10/2) इस उक्ति को सार्थक सिद्ध किया। आपने लगभग 1500 से अधिक क्षेपक (मिलावटी) अंशों का सतर्क विवेचन विशिष्ट तार्किक एवं तटस्थ प्रक्रिया को अपनाकर साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर किया है। दूसरे विद्वानों की तुलना में आपका कार्य इसीलिए विद्वज्जगत् में स्वीकार किया गया है कि आपने भाषा, शैली, प्रतिपाद्य विषय और पूर्वापर प्रसंग आदि साहित्यिक तटस्थ मानदण्डों को अपनाकर विभिन्न विरोधी बातों का परिहार कर **मनुस्मृति** का शोधन किया है। विद्वज्जगत् में सर्वत्र आपके इस कार्य की प्रशंसा की गई है। इस कार्य के आधार पर ही आप **मनुस्मृति के भाष्यकार** के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। यह बड़ा गुरुतर कार्य था, जिसको आपने बड़ी तल्लीनता से, मूक भाव से, लोकैषणा से रहित होकर अपने गुरुजनों के आशीर्वाद से पूरा किया। प्रायः आज यह देखा जाता है कि मनु के नाम पर धूर्तों के द्वारा किये गये प्रक्षेपों के आधार पर जो सामाजिक वैमनस्यता कतिपय स्वार्थी लोग बढ़ा रहे थे वे भी अब सोचने पर मजबूर हो गये हैं। यह सब आपकी साधना के कारण ही सम्भव हो पाया है। क्योंकि आपने वेद के वचन **"पाहि धूर्तेः"** को आत्मसात् किया हुआ है। इसको अपने जीवन में अपनाकर मनु के ऊपर लगे धूर्तप्रवर्तित कलंक को आपने धोया है। आशा है कि आगामी पीढ़ी इस कार्य से प्रेरणा लेकर अन्य अवशिष्ट महत्त्वपूर्ण **महाभारत** और **वाल्मीकि रामायण** आदि आर्ष काव्यों के शोधन योग्य कार्यों को साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर करने में संलग्न होगी। वैसे तो आपने **वाल्मीकि रामायण** के बालकाण्ड पर भी इसी तरह का कार्य किया है। यह कार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय के ऐसे विद्वान् की प्रतीक्षा कर रहा है जो कि इस कार्य को अपने हाथ में लेकर इसे पूरा कर आपकी पंक्ति में खड़ा हो सके– **"उत्पत्स्यते मम. कोऽपि समानधर्मा।"**

निश्चय ही गुरुकुल विश्वविद्यालय के नवनियुक्त दोनों शीर्षाधिकारी प्रदर्शन अर्थात् दिखावे से बहुत दूर, कर्म में विश्वास रखने वाले, पुरुषार्थ और सत्यप्रेमी, विद्याव्यसनी, नीतिज्ञ और धार्मिक हैं। विश्वास है आप दोनों के आशीर्वाद से जहां विश्वविद्यालय में एक नवीन कार्य संस्कृति (Work Culture) का नवोन्मेष होगा वहीं दयानन्दानुगामी आपकी वैदिक शोध दृष्टि से **'वैदिक वाग् ज्योतिः'** षाण्मासिक रिसर्च जर्नल भी अवश्य ही अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति में वृद्धि कर वास्तविक आर्ष ज्योतिः का संवाहक बनेगा। **'वैदिक वाग् ज्योतिः'** की ओर से दोनों शीर्षस्थ अधिकारियों को हार्दिक शुभकामनाएं हैं।

इस अथर्ववेद विशेषांक को प्रकाशित करने में गुरुकुल विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक प्रो0 राजेन्द्र विद्यालंकार(कुरुक्षेत्र वि0वि0) का विशेष योगदान रहा है। आज से लगभग एक वर्ष पूर्व आपने मुझे स्व0 स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक द्वारा दशकों पूर्व लिखे गये कालजयी वैदिक ग्रन्थ **अथर्ववेदीय मंत्र विद्या** ' को पुनःप्रकाशित करने के लिए इस आशय के साथ दिया कि इसका सम्पादन आप ऐसा करें कि इसमें अथर्ववेद सम्बन्धी अन्य बातें भी आ जायें जो कि इस ग्रन्थ में नहीं हैं। प्रो0 राजेन्द्र विद्यालंकार के इस महत्त्वपूर्ण परामर्श को दृष्टि में रखते हुए ही विद्वानों के द्वारा समय– समय पर लिखे गये अथर्ववेद सम्बन्धी प्रामाणिक शोध निबन्धों को स्व0 स्वामी ब्रह्म मुनि जी के प्रबन्ध के साथ ही इस अथर्ववेद विशेषांक में स्थान दिया गया है। जिन विद्वानों के शोध निबन्धों ने इस अंक की शोभावृद्धि की है उनका हम आभार व्यक्त करते हैं। अन्त में परमात्मा (ब्रह्म) से प्रार्थना करता हूं कि यह आथर्वणिक अर्थात् **'छन्दस्या वाक्'** हमें अथर्वा अर्थात् स्थिर बुद्धि वाला और पवित्र बनाये – **यत्रं ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन्** (ऋ0 9/113/6)। छन्दस्या वाक्= आथर्वणिक वाक् द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर ही हम भारतवासी अपनी प्रकृति अर्थात् भा= सौन्दर्य– आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सौन्दर्य में रत= मग्न रह सकते हैं। सर्वतोमुखी उन्नति कर सकते हैं। अस्थिर मति और अपवित्र आचरण से हम वासना के बाजार में ही खोये रहेंगे। जो बाजार हमें और हमारी संस्कृति को भी अन्य वस्तुओं की भांति ही विक्रय योग्य मानेगा। जैसा कि आज कल हो रहा है। नैतिक पतन की पराकाष्ठा का यह दुष्परिणाम होगा भाई–बहन, माता–पिता आदि के रिश्ते भी तार तार हो जायेंगे। **अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः** (अथर्ववेद 3/30/2) की उक्ति तो मात्र कहने के लिए ही होगी।

-प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (11-85) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या

प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि)

मनोविज्ञान, आयुर्वेद एवं विज्ञान से अनुमोदित एवं प्रमाणित उक्त निबन्ध 1/11/1940 ई. को पं0 प्रियरत्न आर्ष ने गुरुकुल स्वाध्याय मंजरी के 13वें पुष्प के रूप में गुरुकुल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में लगभग 2 वर्षो तक बैठकर पूरा किया था। वेद प्रेम और ब्राह्मणत्व पं0 जी में कूट–कूटकर भरा था। यह निबन्ध आज भी उतना ही उपयोगी है, जितना पहले था। यह वेद पर अनुसन्धान करने वालों के लिए परमोपयोगी है, क्योंकि इसमें मन्त्रविद्या सम्बन्धी अथर्ववेद के सब स्थलों का विचार किया गया है, कुछ भी छूटा नहीं है (सम्पादक)।

मन्त्र तथा मन्त्रविद्या का स्वरूप

मन्त्रविद्या को लोग जादू कहते हैं। जादू शब्द फारसी भाषा का है।[1] वहां इसका अर्थ किन्हीं ऐसे गुप्त प्रयोगों का नाम है जिनसे बाजीगरी के खेल तमाशे आश्चर्यजनक अद्भुत अमानुषी कौतुहल करिश्मे वशीकरण और हिंसा–परघात किया जाता है। हमारी धारणा है कि इसका मुख्यार्थ हिंसा अर्थात् परघात है। जादू शब्द वेद के *''यातु''* शब्द का रूपान्तर या अपभ्रंश है। वेद के '' यातु'' शब्द का अर्थ हिंसा है। ''यातयति वधकर्मा'' (निघ0 2/19) से बना है। तान्त्रिक परिभाषा में जादू के प्रयोगों को इन्द्रजाल या ऐन्द्रजालिक प्रयोग कहते हैं। *''इन्द्रजाल''* तथा *''बृहदइन्द्रजाल''* आदि तन्त्रग्रन्थों में उक्त गुप्त बातों और हिंसापरक प्रयोगों का विस्तार से वर्णन किया है, इनका मूल भी वेद में है। अथर्ववेद में शत्रुसेना के वधार्थ इन्द्रजाल रचने का वर्णन आता है। वहां विद्युत् आदि पदार्थो द्वारा ऐन्द्रजालिक विधियों से शत्रु–सेना को क्षुब्ध भयभीत, पीड़ित और हिंसित करने का विधान है।[2]। तन्त्र ग्रन्थों में रोग दूर करने, सर्प आदि के विष उतारने के भी वर्णन हैं। ऐसे गुप्त प्रयोगों को मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र नाम से कहा जाता है। वेद के गुप्त प्रयोग वैज्ञानिक हैं, परन्तु तन्त्रग्रन्थों में कहे बहुधा कल्पित और अवैज्ञानिक हैं, इस विषय में श्री राजदास गौड़ की सम्मति पढ़ने योग्य है।वे अपने लिखे ''हिन्दुत्व'' नामक एक ग्रन्थ में तन्त्र प्रकरण में लिखते हैं कि *''तन्त्रोक्त मारणोच्चाटन वशीकरणादि आभिचारिक क्रिया का प्रसंग अथर्व संहिता में पाया जाता है सही, किन्तु तन्त्र के अन्यान्य प्रधान लक्षण नहीं मिले। ऐसी दशा में तन्त्र को हम अथर्व–संहितामूलक नहीं कह सकते।''*(हिन्दुत्व)।

मन्त्र का मनोविज्ञान के साथ तन्त्र का सूक्ष्म भौतिक विज्ञान के साथ और यन्त्र का सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक विज्ञन के साथ सम्बन्ध है। कला मशीन आदि को यन्त्र कहते हैं, यन्त्र में अमानुषी गुप्त शक्ति होती है, सैंकड़ों और सहस्रों मनुष्यों का काम अल्पकाल में ही यन्त्र द्वारा हो जाता है। रेलगाड़ी प्रथम–प्रथम जब चलने को थी तो कहा जाता था कि एक गाड़ी ऐसे चलेगी जो बिना बैलों के या घोड़ों के हजारों मनुष्यों को अपने में बिठाकर ले जायेगी, लोग इसे जादू की बात समझते थे। एवं सिनेमा के चित्र दिखाने वाली लालटेन को अभी भी मैजिक लालटेन या जादू की लालटेन कहते हैं। कलाएं, मशीनें स्थूल भौतिक विज्ञान है और अदृष्ट रूप शक्ति सूक्ष्म भौतिक विज्ञान है। पृथिवी जैसे भारी गोले का नियन्त्रण भी यन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा ही हुआ है। *"सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने"* *(ऋ0 10/149/1)* अर्थात् सूर्य ने यन्त्रों—अदृष्ट शक्तियों द्वारा पृथिवी को निरालम्ब आकाश में सम्भाला हुआ है। तन्त्र शब्द से फैलने वाले प्रयोग अभीष्ट हैं जो पृथिवी, जल और वायु में बिछाये,फैलाये जा सकते है। जो कि विषैली औषधियों विद्युत् की लहरों द्वारा रचे जाते है। वे दृष्ट हों – अस्त्रों (बम) के रूप में या अदृष्ट हों – वायव्य रूप (गैस के रूप) में। मन्त्र कहते हैं गुप्त भाषण और मनन करने योग्य सिद्धान्त को, क्योंकि *"मत्रि गुप्तभाषणे" (चुरादि0)* से मन्त्र शब्द बना है। तथा *"मन्त्रा मननात्" (निरुक्त 7/12)* इससे गुप्त भाषण और रहस्य का नाम मन्त्र हो सकता है। उसका क्षेत्र अधिकारी तक परिमित रहने से वह मन्त्र कहलाया या अधिकारी वा जनसाधारण तक न पहुंचने और उसे न समझ सकने के कारण वह मन्त्र या जादू के नाम से कहा ज़ाता है। उस ऐसे आदेश का नाम भी मन्त्र है जिसके उच्चारण मात्र से किसी पात्र पर प्रभाव पड़ जाये। वह उसके कहने के अनुसार काम करने लगे क्योंकि वाणी का नाम भी मन्त्र है *"वाग्वै मन्त्रः" (श0 6/4/1/7)* इससे वाग्विद्या और विचार—विद्या का नाम मन्त्र है। वाणी ऐसी परिमित उचित और गम्भीर बोली जावे कि जिससे दूसरे पर तुरन्त प्रभाव पड़े। इस प्रकार विचार करे या दूसरे को विचार दे कि जिससे अपने तथा दूसरे की काया पलट जावे। इस प्रकार के सहसा प्रभावकारी अनुष्ठान या प्रयोग को मन्त्र विद्या कहते हैं। इसके विभाग हम पांच कर सकते हैं। जिनका कि अथर्ववेद के साथ सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है जो कि संकल्प या आवेश (Self Hypnotism or Magnatism), अभिमर्श[3] और मार्जन (Mesmerism), आदेश (Hypnotism Suggestion), मणिबन्धन[4], कृत्या और अभिचार[5]। इन पांच बातों के द्वारा शारीरिक रोगों को हटाना, उन्माद —भूतोन्माद आदि मानसिक दोषों को दूर करना, दारिद्र्य (दुर्गति अकर्मण्यता), अलक्ष्मी (अशोभा) को भगाना, निराशा को हटाना, ईर्ष्या आदि मानस पाप का शमन करना, अशान्ति को दूर करना, दुष्ट स्वप्न के प्रभाव को मिटाना, वीरता आदि गुणों का आवेश करना, यातुधान—नाशन अर्थात् हिंसाकारक प्रयोगों और वस्तुओं एवं प्राणियों को नष्ट करना, शत्रु का घात करना, अपने अन्दर से रोगों और दोषों को हटाकर स्वास्थ्य तथा अच्छे गुणों को लाना आदि विषयों का वर्णन अथर्ववेद में है। इन प्रकरणों को यथावत् न समझकर लोगों ने अथर्ववेद में तान्त्रिक मन्त्र जादू को सिद्ध किया।

उपर्युक्त मन्त्रविद्या की पांचों बातों का स्वरूप तथा अथर्ववेद के प्रकरणों को हम क्रमशः अर्थ और व्याख्या एवं विवरणों के सहित विभाजित करके पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। इनमें संकल्प और आवेश की विद्या सर्वश्रेष्ठ है तथा इसका अपने साथ सम्बन्ध है। इसके द्वारा अपना सुधार और अपनी शक्तियों का विकास करना सर्वोत्तम है। पुनः दूसरों के प्रति अन्य विद्याओं या प्रयोगों का होना सम्भव तथा उचित है। अतः प्रथम संकल्प ओर आवेश की विद्या का वर्णन करते है।

द्वितीय पटल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प और आवेश

प्रबल तथा साधिकार इच्छा का नाम संकल्प है और उसका पुनः पुनः आवर्तन आवेश कहलाता है। मनोविज्ञान का सर्व–प्रथम आधार क्षेत्र संकल्प और आवेश है। मन की सर्वप्रथम गति संकल्प है अपितु संकल्प ही मन का सार और उसके विकास का कारण है। वेद में संकल्प अर्थात् इच्छा या कामना को मनुष्य के आन्तरिक जीवन की मूर्ति और बाह्य जीवन की पूर्ति बतलाया है।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। स कामं कामेन बृहता .
सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि।।

(अथर्व0 19/52/1)

अर्थ– **(कामः)** इच्छा–संकल्प **(अग्रे)** प्रथम **(समवर्तत)** वर्तमान होता है **(तत्–यत्)** वह जो कि **(मनसः)** मन का **(प्रथमं रेतः)** प्रथम सार **(आसीत्)** है। **(स काम)** वह तू संकल्प ! **(बृहता कामेन)** पुनः उद्यत हुए उठे हुए संकल्प के साथ"बृहू उद्यमने बृहू इत्येके" (तुदादि0) **(सयोनिः)** समानस्थानी–समानक्षेत्र– एक हुवा हुआ – मिला हुआ **(यजमानाय)** शरीर–यज्ञ के याजक आत्मा या जीव के लिए *"इन्द्रो वै यजमानः" (श0 2/1/2/11, 4/5/4/8,)* **(रायस्पोषम्)** ऐश्वर्य पुष्टि को अभ्युदय को **(धेहि)** धारण करा।।

मन्त्र में बतलाया है कि संकल्प मन का सार है संकल्प ही मनोविकास का क़ारण और आधार है, मन में प्रथम संकल्प होता है पुनः वह उद्यमरूप संकल्प अर्थात् साधिकार संकल्प बन अभीष्ट भाव को मन में आवर्तित कर के संगृहीत करता है, इस प्रकार पुनः पुनः आवर्तन के अभ्यास से मन आन्दोलित हो विद्युत् की भांति अपनी पूर्ण शक्ति को अभीष्ट भाव की ओर प्रेरित करके उसे आकर्षित कर लेता है। जिस प्रकार विद्युत् की दो तरंगे होती हैं, उसकी शक्ति को व्यक्तरूप में लाती हैं और पुनः विविध कार्य में उपयुक्त करती हैं एवं मन की भी दो तरंगे हैं। वेद में उन्हें बोध और प्रतीबोध नाम से कहा है।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्।। (अथर्व0 5/30/10)

इस मन्त्र का पूरा अर्थ हम आगे करने वाले हैं, यहां केवल यही बतलाना ध्येय है कि मन की दो तरंगे बोध और प्रतीबोध हैं, इनको लौकिक भाषा में संकल्प और विकल्प कहते हैं। बोध या संकल्प में स्वप्न अर्थात् विस्मृति या तिरोभाव नहीं होता। वह अभीष्ट भाव में लगा रहता है और प्रतीबोध अर्थात् विकल्प जागृत होता रहता है। वह अनभीष्ट को (जो अभीष्ट नहीं उसे) हटाता रहता है, उसे अभीष्ट से मिलने नहीं देता। इस प्रकार संकल्प (अभीष्ट प्राप्ति की इच्छा) विकल्प (अनभीष्ट निवारण की इच्छा) परस्पर मिलकर संकल्प से विकल्प और विकल्प से संकल्प बल पाकर मानसिक विद्युत् को उत्पन्न कर देते हैं, पुनः विशुद्ध अभीष्ट का आकर्षण और अनभीष्ट का निवारण करके कृतकार्य हो जाते हैं। जैसे विद्युत् की दो तरंगें प्रकाश और दाह को देने वाली हैं, एवं मन की ये संकल्प और विकल्प तरंगे मनुष्य के जीवन क्षेत्र में अभीष्ट गुणों को प्रकाशित और अनभीष्ट को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दग्ध कर देती है। इराके द्वारा मनुष्य अपने अन्दर रो पाप निर्बलता और त्रुटि को दूर कर सकता है तथा राद्‌गुणों बल और उत्साह का अपने में आवेश कर सकता है। अथर्ववेद में इस प्रकार दुर्गुणों के बहिष्करण और राद्‌गुणों के आवेश का प्रतिपादन बहुत स्थलों पर किया है। उनमें से कुछ हम इस ग्रन्थ में देते हैं।

पाप को हटाने का रांकल्प –

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।। (अथर्व 0 6/45/1)

अर्थ– (मनस्पाप) ओ मन के पाप ! तू (परः **अपेहि**) परे चला जा (**किम्**) क्योंकि तू (**अशस्तानि**) निदिन्त बातों को (**शंससि**) पसन्द करता है (**परेहि**) दूर चला जा (त्वा) तुझे (न) नहीं (**कामये**) चाहता हूं। (**वृक्षान्**) वृक्षों को (**वनानि**) वनों को (**संचर**) प्राप्त हो (मे) मेरा (मनः) मन (**गृहेषु**) स्त्री पुत्रादियों में (**गोषु**) गौओं में रहे।।

मन में पापभाव आने पर उसे हटाने के लिए यहां वेद ने दो उपाय या प्रयोग बतलाए हैं। एक तो प्रतीबोध या विकल्प अर्थात् अनभीष्ट पापभाव में दोषदृष्टि या घृणा को उत्पन्न करना उसके लिए नगर से बाहर किसी ऐकान्त शान्त जंगल और वन में जाकर घृणा उत्पन्न कर उस पाप भाव को वहां ऐसे त्याग देना जैसे हानिकारक किसी जन्तु को छोड़ आते हैं। उसके सम्बन्ध में पुनः पुनः दोषदृष्टि या घृणा का आवर्तन कर–कर के पूर्ण रूपेण सदा के लिए त्याग देना। दूसरे मन में उरा पापभाव के स्थान में घर के स्त्री पुत्रादि बन्धुओं के प्रति अपने कर्तव्य का विचार करके मन को उधर लगाएं रखना यही मन की दूसरी शक्ति बोध या संकल्प है। इस प्रकार दोनों के परस्पर आवर्तन,अभ्यास और अनुष्ठान से हटाने योग्य दोष अवश्य दूर हो जायेगा। इराके लिए मानसिक पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए कि मैं इरा दोष को हटा दूंगा, हटा कर रहूंगा, उरो हटाना कोई कठिन नही, हटाना तो मन का खेल है अवश्य हटा दूंगा।।

आशा, उत्साह और सफलता प्राप्ति का संकल्प–

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्।।

अथर्व0 7/50/8

अर्थ– (कृतम्) कर्म(मे) मेरे(दक्षिणे) दक्षिण (**हस्ते**) हाथ में (**जयः**) विजय या राफलता (मे) मेरे (**सव्ये**) वाम हाथ में (**आहितः**) प्राप्त है। (**गोजित्**) मैं गौओं, इन्द्रियों और भूमि का विजेता (**धनञ्जयः**) धन ऐश्वर्य और अभ्युदय का विजेता इन्द्रिय– वृत्तियों और राष्ट्र का विजेता (**हिरण्यजित्**) सम्पत्ति यश शोभा का विजेता (**भूयासम्**) होऊं –बनूं।

प्रत्येक कार्य करते हुए मन में इस प्रकार आशा और उत्साह को बनाए रखना चाहिए कि कर्म करना और उसमें राफलता प्राप्त करना मेरे दाएं–बाएं हाथों का खेल है। न मैं कर्महीन हो सकता हूं और न उरा कर्म मे कभी विफल, किन्तु सदैव सफलता प्राप्त करना मेरा अधिकार है। मुझे धैर्य के साथ काम में लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना है शीघ्र नहीं तो देर से कभी न कभी अन्त में सफलता अवश्य ही प्राप्त करना है।

यदि बारम्बार यत्न करने पर भी मनुष्य अपने मानसिक बल के दोषों को दूर न कर सके तथा उत्तम गुणों का आवेश करने में अपने को असमर्थ पावे तो फिर उसे अपने इष्ट देव की शरण लेनी चाहिए। जगदीश्वर अन्तर्यामी परमात्मा आत्मा का भी आत्मा है उसके प्रति अपने को समर्पित करके दोषों को दूर करने और गुणों को अन्दर प्रविष्ट करने की आत्मभाव से विश्वास के साथ प्रार्थना करनी चाहिए, सफलता अनिवार्य है जैसा कि वेद में दिया है।

त्रुटि, दोष, न्यूनता दूर करने के लिए संकल्प–

अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण।

(यजु० 3/17)

अर्थ – **(अग्ने)** हे सर्वज्ञ परमात्मन्! **(मे तन्वा यद् ऊनम्)** मेरे तनु अर्थात् शरीर, इन्द्रियों और मन में जो न्यूनता त्रुटि निर्बलता असमर्थता या कमी हो **(तत्)** उसे मेरे अन्दर **(आपृण)** पूरा कर।।

शक्ति प्राप्ति के लिए संकल्प –

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्य मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्यु मयि धेहि।
सहो ऽसि सहो मयि धेहि।।

(यजु० 19/9)

अर्थ – **(तेजोऽसि तेजो मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू तेजस्वरूप है मुझमें तेज धारण करा–भर **(वीर्यमसि वीर्य मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू पराक्रमरूप है मुझमें पराक्रम डाल **(बलमसि बलं मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू बलस्वरूप है मुझमें भी बल दे **(ओजोऽसिओजो मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू ओजमय है मुझमें ओज धारण करा **(मन्युरसि मन्युं मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू प्रभावस्वरूप है मुझमें भी प्रभाव धारण करा **(सहोऽसि सहो मयि धेहि)** हे परमात्मन्! तू साहस स्वरूप है मुझमें भी साहस भर।।

जैसे विद्यावान् के संग से विद्या और तेजस्वी अग्नि के संग से तेज का लाभ होता है एवं पूर्ण तेजस्वी पूर्ण वीर्यवान् पूर्ण बलवान् पूर्ण ओजस्वी पूर्ण प्रभाववान् और पूर्ण साहसी परमात्मा के संग से तेज, वीर्य–बल, ओज, प्रभाव और साहस का प्राप्त होना अत्यन्त सम्भव तथा अनिवार्य है।

जब तेज को प्राप्त करना हो तो परमात्मा को अपने बाहर भीतर सर्वत्र पूर्ण अनन्तरूप से व्याप्त तेजस्वी समझ तन्मय तल्लीन हो अपने अन्दर तेज का आवेश करना चाहिए अपने को उसके संग से तेजस्वी होने का आन्तरिक प्रयत्न करना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि मैं अनन्त तेज स्वरूप तेज के भण्डार में हूं तेजस्वी बन रहा हूं। इसी प्रकार वीर्य–प्राप्ति के लिए अनन्त वीर्यवान् बल प्राप्ति के लिए अनन्त बलवान् ओज प्राप्ति के लिए अनन्त ओजस्वी और साहस प्राप्ति के लिए अनन्त साहसी परमात्मा में निमग्न हो वीर्य, बल, ओज, प्रभाव और साहस का आवेश अपने अन्दर करना चाहिए। इस प्रकार शान्तस्थान और शान्त समय में प्रातः सायं आवेश का अभ्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए इससे अत्यन्त सफलता प्राप्त होती है।

अवगुणों को दूर करने, सद्गुणों के आवेश करने की भांति रोगों को दूर करने स्वास्थ्य –बल का आवेश करने के लिए भी वेद का विधान है।

रोग दूर करने का संकल्प –

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।

(अथर्व0 20/96/24)

अर्थ– **(मनसस्पते)** ओ मन को पत्ति करने वाले दुख देने वाले यक्ष्म अर्थात् रोग! तू **(अपेहि)** हट जा **(अपक्राम)** दूर हो जा **(परश्चर)** परे चला जा **(जीवतः)** जीवनधारण करते हुए –जीते हुए के **(मनः)** मन को **(निर्ऋत्यै–निर्ऋत्याः)** आपदा से – दुःख से **(बहुधा)** अनेक प्रकारों से अनेक उपायों उपचारों के सेवन द्वारा **(परः– आचक्ष्व)** दृष्टि से परे हो –तिरोहित हो जा –विलुप्त हो जा।।

मन में संकल्प विकल्प के द्वारा दुर्भावों को दूर करने और सद्भावों को अन्दर आवेश करने की शक्ति है एवं रोगों को दूर करने और स्वास्थ्य तथा बल का आवेश करने की भी शक्ति है। क्योंकि मन का स्थान हृदय है *"हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" (यजु0 34/6)* हृदय ही जीवनशक्ति का स्थान है वही प्राणशक्ति का केन्द्र है। मानसिक भावनाओं से परिपुष्ट प्राणों की गति होने से रोगों का बहिष्कार और स्वास्थ्य तथा बल का संचार शरीर में हो जाना अनिवार्य है। मन के संकल्प और विकल्प प्राण के रक्षक हैं। वेद में स्पष्ट कहा भी है *"ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः। तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम।" (अथर्व0 5/30/10)* इन संकल्प विकल्पों के द्वारा रोग दूर करने के प्रकार का संकेत ऊपर *"अपेहि मनसस्पते"* में किया है।

हाथी के बल को अपने अन्दर आवेश करने का संकल्प –

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः सम्बभूव।। (अथर्व0 3/22/1)

अर्थ – **(हस्तिवर्चसम्)** हाथी का बल **(प्रथताम्)** मेरे शरीर में फैले–विस्तार पावे – प्रविष्ट हो **(यत्)** जो **(अदित्याः–तन्वः)** अखण्ड ईश्वरीय शक्ति के मानो शरीर से **(बृहद** यशः) महान् यश या बड़ी शोभा बड़े सत्व के रूप में **(सम्बभूव)** प्रकट हुआ है।

हाथी के बल को अपने अन्दर आवेश करने के सम्बन्ध में मन्त्र का संकेत है। योगदर्शन में संयम प्रकरण में लिखा है *"बलेषु हस्तिबलादीनि"* (योग। विभूतिपाद। 24) हाथी के बल में संयम अर्थात् धारण ध्यान समाधि करने से हाथी का बल प्राप्त होता है। हाथी को देखते हुए या उसकी अनुपस्थिति में हाथी की आकृति को मन में चित्रित करके उसके बल को अपने अन्दर लाने का आन्तरिक प्रयत्न करना चाहिए। हाथी अपनी सूंड से वृक्षों की डालों शाखाओं और टहनों को तोड़ देता है, बहुतेरे वृक्षों को भी समूल उखाड़ फेंकता है। एक स्थान पर खड़ा हुआ भी अपने बल की मस्ती में झूमता रहता है इत्यादि बल की चेष्टाओं को अपने अन्दर आकर्षण करना और समझाना कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथी के उक्तबल को अपने शरीर में प्रविष्ट कर रहा हूं– मेरे शरीर में वह बल आ रहा है इस प्रकार मन से प्रतिदिन कुछ काल तक निरन्तर अभ्यास करने से अपूर्व लाभ प्राप्त होता है। इस विधि का अभ्यास शान्त बैठकर ध्यान द्वारा तथा व्यायाम करते हुए भी करना चाहिए। व्यायाम करते हुए वैसी ही हाथी जैसी चेष्टाएं करना और अपने अंगों को बीच बीच में देखते जाना मानसिक प्रभाव डालकर हाथी –जैसी पुष्टि तथा बल लाने का अनुभव करना कि वे पुष्ट हो रहे हैं, उनमें बल आ रहा है।

जिस महानुभाव के मन में दोष नहीं और पूर्वोक्त प्रकार से मानसिक एवं आध्यात्मिक बल भी प्राप्त कर लिया हो वह किसी दूरस्थ दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में शुभ संकल्प करे तो उस के आत्मा में प्रभाव पड़ सकता है। बहुत बार देखा गया है कि शुद्ध मन से किए विचारों की सूचना या स्फुरण के अनुसार अन्य व्यक्ति अनुकूल आचरण करने लगता है। किसी को मिलने या बुलाने की इच्छा होती है तो वह व्यक्ति तुरन्त मिल जाता है या आ जाता है। मन की निर्मलता, एकाग्रता और परस्पर गहरे प्रेम के कारण एक के विचारों का संदेश (तार) तक दूसरे को पहुंच जाता है। अतएव महात्मा साधुजनों के अन्दर हार्दिक हितचिन्तनभाव और आशीर्वाद हमारे कल्याण करने वाले हो जाते हैं एवं सद्वैद्यों के स्वास्थ्यलाभ पहुंचाने के संकल्प और आश्वासन रोगी के रोगों को हटाने में सहायक बन जाते हैं, यह संकल्पशक्ति का विषय मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध रखता है इसे जादू नहीं कहा जा सकता है।

तृतीय पटल

अभिमर्श और मार्जन

अभिमर्श शरीर में सनसनाहट उत्पन्न कर देने वाले स्पर्श का नाम है। जिस अंग में सनसनाहट उत्पन्न हो जाती है वहां के आन्तरिक तन्तुओं में विचित्र विद्युत् की लहरों जैसी गति उत्पन्न हो जाती है जो न केवल उस ही अंग पर प्रभाव डालती है किन्तु अन्यत्र भी उसका प्रभाव पड जाता है। हां, विशेष करके उस स्थान पर होता है। अभिमर्श से रोग तथा मानसिक दोष दूर किये जा सकते हैं। इस अभिमर्शविद्या को पाश्चात्य विद्वान् मेस्मरिज्म (Mesmerism) कहते हैं और अभिमर्श क्रिया को पास करना (Passes)कहते हैं। अभिमर्श के द्वारा चिकित्सा करने का अथर्ववेद में वर्णन है, हम यहां कुछ मन्त्रों के द्वारा इसे प्रदर्शित करते हैं।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।।
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि।

(अथर्व0 4/13/6,7)

अर्थ – हे प्यारे रोगी! **(अयं मे)** यह मेरा **(हस्तः)** हाथ **(भगवान्)** भाग्यवान् यशस्वी भागधेयी फलवान् है **(अयं मे भगवत्तरः)** यह मेरा दूसरा हाथ अत्यधिक भाग्यवान् यशस्वी और फलवान् है **(अयं मे विश्वभेषजः)** यह मेरा हाथ समस्त रोगों का शमनकारक औषधरूप है **(अयं शिवाभिमर्शनः)** यह सुख शान्ति के स्पर्श वाला है। **(हस्ताभ्यां दशशाखाभ्याम्)** दशों अंगुलियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित हाथों से तथा (**ताभ्यामनामयित्नुभ्याम् हस्ताभ्याम्**) उन आरोग्यकारक हाथों से (**त्वाभिमृशामसि**) मैं मुझे अभिमर्श करता हूं –छूता हूं। तथा (**वाचः पुरोगवी जिह्वा**) वाणी को अग्रसर करने वाली मेरी जिह्वा है उससे तुझे आदेश देता हूं।।

रोगी को खुली अंगुलियों वाले हाथों से अभिमर्श करने का विधान इन मन्त्रों में है। अभिमर्श प्रभावकारी स्पर्श का नाम है वह तब हो सकता है जब कि रोगी के अंग को स्पर्श करने में प्रयोजक के हाथ ढीले हों और अंगुलियों का स्पर्श अंग पर भार न डाले (किञ्चित् ही स्पर्श हो) जो कि अंगुलियों के आगे सरकने से रोगी के उस अंग में या बाहर भीतर त्वचा में एक संस्पर्श (सनसनाहट) उत्पन्न कर दे, इस ऐसे स्पर्श का ही नाम अभिमर्श(passes) है। ऐसे संस्पर्श(सनसनाहट) से शरीर के तन्तुओं में लहरें चलने लगती हैं वे आगे बढ़ती हुई नाड़ियों की गति को तीव्र कर देती हैं इससे रोगी पर एक प्रभाव पड़ता है वह अपने अन्दर विद्युत् जैसी स्फुरणा अनुभव करता है। इस प्रकार आन्तरिक गतियां चालू हो जाने से रोगी का मल नीचे उतरने लगता है अन्य दोष भी यथास्थान पर आने लगते हैं,रक्त में शुद्धि और मन में सुख शान्ति का अनुभव होता है तथा वह नींद में भी चला जाता है, ऐसे कुछ काल करने से रोगी को बड़ा लाभ होता है। माताओं के हाथों की लोरी से बच्चे आराम से सो जाते हैं। अभिमर्श दो प्रकार को होता है, एक तो गतिरूप दूसरा स्थानिक गतिरूप अभिमर्श अंगुलियां फैलाए हुए हाथों को धीरे धीरे ऊपर से नीचे या आड़ी ओर सरकाने को कहते हैं यह रोगों या मानसिक दोषों को दूर करने में हितकर है। दूसरा स्थानिक अभिमर्श एक स्थान में ही पुनः पुनः स्पर्श करने का नाम है। यह बल सुख शान्ति या सद्भावों के भरने में उपयुक्त है। उक्त दो प्रयोजन अभिमर्श के हैं जो 'अयं मे हस्तो भगवान्' से ऊपर ले मन्त्र में वेद ने कहे हैं। *"दक्षं त उग्रमा भारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।" (अथर्व0 4/13/5)* अर्थात् हे रोगी ! तू चिन्ता न कर मैं अपने हाथों द्वारा तेरे अन्दर से रोग को दूर करता हूं और तुझ में बड़े भारी बल स्वास्थ्य सुख को भरता हूं।

यह तो हुआ हस्ताभिमर्श, अब अन्य किसी वस्तु के सम्बन्ध में भी विचार करते हैं जो कि मार्जन या पुरश्चरण कहलाता है जिसे साधारणजन झाड़–फूंक के नाम से कहते हैं।

मार्जन या पुरश्चरण –

मार्जन या पुरश्चरण में जहां तक वैज्ञानिक सम्बन्ध है वहां तक तो सब ठीक है और शेष केवल ढोंग तथा मिथ्या है। मार्जन या पुरश्चरण के साधन पदार्थ जल, वस्त्र, कूर्च आदि हैं। इनके द्वारा मार्जन या पुरश्चरण के एक दो उदाहरण संक्षेप में यहां देते हैं।

जल से–

मस्तिष्क में चक्कर आने, अचेत हो जाने (बेहोशी) और सर्प काटे पर जल के छिड़काव से लाभ होता है। यह बात कोई मन्त्र विद्या या जादू की नहीं है किन्तु वैज्ञानिक है और आयुर्वेद के साथ सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक डाक्टर और वैद्य इसके साक्षी हैं। जो लोग इसे मन्त्रविद्या या जादू कहते हैं वे भ्रम में हैं। ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग किसी साधु या महात्मा के हाथों से बेहोश हुए को जल छिड़के जाने पर होश में आ जाना उसको मन्त्रविद्या या जादू समझते हैं। क्योंकि वे आयुर्वेद शास्त्र से अनभिज्ञ होते हैं उन्हें जल के गुणों, प्रभावों और जलचिकित्सा का ज्ञान नही। देखिए जल में मूर्च्छा अर्थात् बेहोशी आदि रोग हटाने के गुण आयुर्वेद में बतलाये हैं *"पानीयं श्रमनाशनं क्लमहर मूर्च्छापिपासहम्।"* (वारिवर्ग–2 भावप्रकाश निघण्टु)

वस्त्र से–

जल में भीगे मोटे वस्त्र का स्पर्श आंखों और सिर दर्द तथा अचेतता को हितकर है। यहां तक तो ठीक है परन्तु किसी व्यक्ति को रुमाल मारकर जादू से अचेत कर देना अवैज्ञानिक है। रुमाल में कोई अचेत कर देने वाली गन्ध लगा देने से ऐसा हो जाता है।

कूर्च से –

कोई कोई रोग ऐसा होता है जो किन्हीं बालों में पुरश्चरण अर्थात् झाड़न, ब्रुश से दूर होते हैं। अतिप्राचीन काल में चमरमृग (चंवरी गौ) के पुच्छ की बालमञ्जरी का उपयोग चला आता है उसके स्पर्श से त्वचा के दोष, कृमियों के संसर्ग से हुए रोग दूर होते हैं, शरीर में ओज बल प्राप्त होता है। स्वयं अथर्ववेद में कहा भी है *"यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि"* (अथर्व० 2/33/7) कशयप का अर्थ वैद्यक –शब्द –सिन्धु में मृग विशेष दिया है जो चमरमृग के लिए है *"कश्यपः मृगविशेषः"* (वैद्यकशब्दसिन्धुः) शरीर में पित्ति उछल आने पर जुलाहे के ताना संवारने वाले कूचे से पुनः पुनः अनुलोम स्पर्श से पित्ति दब जाती है। इसी प्रकार तृणों के पुरश्चरण झाडू से झाड़ने या स्पर्श से कई रोगों को। लाभ होता है विशेषतः रक्तविकार के रोगों को पर लोग इनको मन्त्र या जादू का प्रयोग समझते हैं। इनके द्वारा चिकित्सा करने वाले लोग अपना प्रभाव जमाने को कहते हैं कि हमने मन्त्र या जादू के बल से रोग को झाड़ दिया।

रोगों को दूसरों पर उतारने की समस्या–

कुछ लोगों का कथन है कि मार्जन से रोगी के रोग को दूसरे प्राणी और वनस्पति आदि पर उतारा जा सकता है ऐसा अथर्ववेद में दिया है। इसके सम्बन्ध में हमारा कहना है कि इस विषय के समझने में जनता में कुछ भ्रान्ति है,क्योंकि वैज्ञानिक तथा आयुर्वैदिक नियमों के अनुसार मानना तो ठीक है परन्तु प्रतिकूल कल्पना मिथ्या है। यह वैज्ञानिक या आयुर्वैदिक या जीवनसृष्टि का नियम है कि मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर के अन्दर से निकला वायु जो कि उनके लिए दूषित समझा जाता है वह वनस्पतियों के लिए अनुकूल है एवं वनस्पतियों से निकला वायु जो उनके लिए दूषित है, वह मनुष्य आदियों के अनुकूल है। यदि मनुष्य आदि के उक्त दूषित वायु को वनस्पतियां न ले और वनस्पतियों के दूषित वायु को मनुष्य आदि ग्रहण न करें तो दोनों का जीवन स्वस्थ नहीं रह सकता। यह बात केवल वायु तक ही नहीं उनके मलों के भी परस्पर ग्रहण करने का व्यवहार है। मनुष्य आदि के मल मूत्र आदि वनस्पतियों के हितकर हैं। एवं वनस्पतियों के छाल, गोंद,मद आदि दोष मनुष्य आदि के हितकर हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्य आदियों के दोषों रोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्पतियां अपनाती हैं और वनस्पतियों के दोषों को मनुष्य अपनाते हैं। जब यह है तब मनुष्य आदि के रोगों का वनस्पतियों पर अवतरण होता है या वनस्पतियां उन रोगों को आकर्षित करती है और वनस्पतियों के रोगों का अवतरण मनुष्य आदियों पर होता है या मनुष्य आदि उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इस लिए मनुष्य आदि के रोगों का अवतरण वनस्पतियों पर होता है यह कोई मन्त्र या जादू की बात नहीं हैं। एवं मनुष्य आदि प्राणियों में भी परस्पर यहीं नियम है मनुष्यों के दोषों या रोगों को पशु पक्षी अपनाते हैं उनके लिए वे दोष नहीं किन्तु औषधरूप हैं। हां इसमें भी प्रत्येक वनस्पति मनुष्य के रोगों और दोषों को अपनावे या प्रत्येक वनस्पति या पशु पक्षी के दोष को मनुष्य अपनावे ऐसा नहीं किन्तु जिस वनस्पति को मनुष्यादि का जो दोष अनुकूल होता है वही उसे अपनाता है एवं जिस वनस्पति या पशु या पक्षी का जो दोष जिस किसी मनुष्य को अनुकूल होता है वही अपनाता है। जैसे मनुष्य के क्षय रोग के दोषों या क्षय रोग से दूषित वायु को वनस्पतियों में चील (चीड़) का वृक्ष और पशुओं में बकरी तथा बन्दर अधिक अपनाते हैं। ऐसे ही मनुष्य के कामला (पीलिये) दोष को दारुहल्दी के वृक्ष और हरिये तोते आदि पक्षी अपनाते हैं। इत्यादि बातें वैज्ञानिक आयुर्वेदिक और जीवन सृष्टि की विद्या के साथ सम्बन्ध रखती हैं कोई जादू नहीं है। यदि ऐसी बातें अथर्ववेद में आई हैं तो आश्चर्य ही क्या है। यहां हम उन दो– एक ऐसी बातों को दर्शाते भी हैं।

शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि।।

(अथर्व० 1/22/4)

अर्थ– (ते) हे रोगी ! तेरे (**हरिमाणम**) तेरे हलीमक कामला रोग को (**शुकेषु**) शुकों –तोते पक्षियों तथा (**रोपणाकासु**) सदा रोहण करने वाली हरी भरी दूब के पौधों में(**दध्मसि**) धरते हैं (**अथो**) और (**ते हरि माणम्**) तेरे हलीमक कामला रोग को (**हारिद्रवेषु**) हरिद्रु वृक्ष अर्थात् दारुहल्दी के वृक्ष के समूह में *"तस्य समूहः"– "अनुदात्तादेरञ्"* *(अष्टा० 4 /2/37,44)* (**निदध्मसि**) निहित करते हैं विलुप्त करते हैं।

हलीमक कामला के रोगी के पास तोते रहने चाहिए उसे हरी हरी दूब घास में घुमाना, सैर कराना और बिठाना चाहिए। दारूहल्दी के जंगल में उसका निवास कुछ काल तक कराना अत्यन्त उपयोगी है हरे रंगे के तोते,हरी घास और दारुहल्दी के वृक्ष उसके हरियाले पीलिए कामले पाण्डु रंग का आकर्षण कर लेंगे ऐसा यहां मन्त्र में सूचित किया है। आयुर्वेदिक निघण्टु में दूब को रुहा कहा भी है जो मन्त्र में दिए " रोपणाका" का पर्याय है और इसे रक्त शुद्धि करने वाली जीवन देने वाली लिखा भी है ***" नीलदूर्वा तू मधुरा तिक्ता रुरुचप्रदा। संजीवनी च तुवरा रक्तशुद्धिकरी मता"***। हरिद्रु अर्थात् दारुहल्दी को राजनिघण्टु में अंगकान्ति करने वाली अर्थात् रक्त शोधक,रक्तवर्द्धक, पाण्डुता या पीलापन और हरापन नष्ट करने वाली बतलाया है *"हरिद्रुः शीतलस्तिक्तो मंगल्यः पित्त्वान्तिजित्। अंग कान्तिकरो बल्यो नानात्वग्दोशनाशनः" (राजनिघण्टु 9/27)* इस प्रकार हलीमक कामला रोग वाले रोगी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिया (हरियाले) तोतों हरीदूब के स्थलों और दारुहल्दी के वृक्षों में निवास भ्रमण आदि द्वारा स्वस्थ करना कोई मन्त्र जादू से रोग को उन पर उतारना नहीं कहा जा सकता किन्तु उक्तरोग को आकर्षित करना रोगी के शरीर से बाहर निकालना उनका गुण है।

तथा –

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य। यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च।।

(अथर्व0 1/12/3)

अर्थ– (**शीर्षक्त्याः**) उन्माद आदि शिरो रोग से (**उत**) तथा (यः) जो (**वातजाः**) वातप्रकोप से उत्पन्न वातिक (**शुष्मः**) शोषक पित्तप्रकोप से उत्पन्न पैत्तिक (**च**) और (**यः**) जो (**अभ्रजाः**) घनरूप कफप्रकोप से उत्पन्न श्लैष्मिक (**कासः**) खांसी रोग क्षयरूप खांसी रोग (यः) जो (**अस्य**) इस रोगी के (**परुष्परुः**) जोड़ जोड़ में (**आविवेश**) घुसा हुआ है या घुस बैठता है, उससे (एनम्) इस रोगी को (**मुञ्च**) छुड़ा। वह रोगी (**वनस्पतीन्**) वनस्पतियों को (**च**) और (**पर्वतान्**) पर्वतों को (**सचताम्**) सेवन करें " षच सेचने सेवने च " (भ्वादिः)।

मन्त्र में बतलाया है कि उन्माद आदि शिरोरोग का रोगी और क्षय खांसी वाला रोगी वनों पर्वतों का सेवन करे। आजकल उक्त रोगों के रोगियों को डाक्टर लोग वनों पर्वतों में रहने की अनुमति देते हैं और वे वहां रहकर स्वस्थ हो जाते हैं यही बात वेद ने कही है। यह भी मन्त्र या जादू की बात कोई नहीं है।

विशेष– हमने उक्त अर्थ में 'सचताम्' क्रिया का कर्ता रोगी को बनाया है और वास्तव में रोगी ही उसका कर्ता है वह वनस्पतियों–वनों, पर्वतों को सेवन करता है प्रत्यक्ष भी ऐसा ही है।परन्तु सायणानुसार जो कोई भी रोग वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक हो वह वनस्पतियों और पर्वतों को प्राप्त हो– उनके अन्दर घुस जावे उनमें उतर जावे। ऐसा अन्वय और अर्थ करने में मन्त्र का शीर्षक्ति और कास रोग को पृथक् पढ़ना निरर्थक हो जाता है क्योंकि ये दानों रोग भी आ जाते। **"इदानीं वातपित्तश्लेष्मविकारजनितानां सर्वेषामपि व्याधीनां अस्मात्पुरुषादन्यत्रावस्थानं प्रार्थयते यो अभ्रजा इति"** अतः 'यो अभ्रजा' आदिविशेषण कास रोग के हैं उसके साथ अन्वय करना चाहिए। पुनः अब दो रोग ही रहे 'शीर्षक्ति' (उन्माद आदि शिरोरोग) और 'कास' (क्षय खांसी) फिर 'मुञ्च' क्रिया का 'एनम्' पद रोगी वाचक शेष रह जाता है उसके रोग से छूटने की विधि यह है कि वह रोगी वनस्पतियों वनों पर्वतों का सेवन करे उनमें रहे। यह शुद्धार्थ हुआ। कदाचित् मान लिया जावे कि रोग उन वनस्पतियों और पर्वतों को प्राप्त हो। इसका भी वही तात्पर्य होगा जो हम मन्त्रार्थ में तथा उससे पूर्व बतला आए हैं कि वन के वनस्पतियों और पर्वत अर्थात् पर्वतीय ओषधियों में उक्त रोगों के दोषों के खींचने की शक्ति है। परन्तु एक बात यहां पर्वत शब्द के साथ होने से रोग का अवतरण पर्वत पर घटाना दुष्कर ही नहीं किन्तु असम्भव भी है क्योंकि वह निर्जीव जड़ है। पर्वत पर रोग का उतरना ऐसा समझना चाहिए जैसे पृथिवी जल वायु पर रोग को उतारना हो। उक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी वायु आदि में तो हर समय प्राणियों के रोग उतरते रहते ही हैं इसमें मन्त्र या जादू के यत्न की आवश्यकता ही क्या है। तात्स्थ्योपाधि से 'पर्वतीय–ओषधियां'अर्थ लेने में बात एक ही है जैसा कि पूर्व बतलाया जा चुका है परंन्तु यहां तो वही अर्थ शुद्ध है जो हमने किया है। इसलिए मन्त्र या जादू की बात यहां कुछ भी नहीं है केवल वही आयुर्वेदिक सिद्धान्त की बात है।। अस्तु।।

चतुर्थ पटल

आदेशविद्या या संवशीकरण

सबल और सफल आश्वासन या उपदेश का नाम आदेश है जिसका कि पात्र पर प्रभाव अनिवार्य हो। आदेश द्वारा किसी रोगी के रोग को दूर करना उसके अन्दर स्वास्थ्य को लाना,किसी दुर्व्यसनी या पापी के दोषों को हटाना और उसके अन्दर सद्गुणों को लाना ओजबल एवं वीरता को प्रविष्ट कराना आदि होता है। आदेश से प्रायःसभी रोगों में लाभ होता है। परन्तु विशेषतः मानसिक रोगों एवं शारीरिक स्थायी क्षेत्रिय, क्षय,पाण्डु तथा मस्तक के रोगों में अतीव लाभ होता है। आदेश के अन्दर प्रयोजक (प्रयोग करने वाले) की वाणी और मन काम करते हैं और इन दोनों के द्वारा पात्र(प्रयोग जिस पर हो) के मन पर प्रभाव प्रथम पड़ता है, मन समस्त शरीर, प्राणों प्राणाशयों को प्रेरित करने वाली विद्युत्–शक्ति है। मन प्रभावित हुआ स्वानुकूल स्वशक्ति से इन सबको चेष्टायमान करता है। पुनः शीघ्र या धीरे–धीरे साधनानुसार अभीष्ट परिणाम का साधक हो जाता है। अथर्ववेद में इन सब विधियों, प्रयोग स्थलों और परिणामों का वर्णन है। यहां कुछ मन्त्रों द्वारा इस विषय पर सक्रम प्रकाश डालते हैं। हम पीछे 'अभिमर्श ओर मार्जन' प्रकरण में एक मन्त्र लिख आए हैं जिसमें हाथों के अभिमर्श द्वारा किसी के शरीर पर प्रभाव डालना बतला आए हैं उसी मन्त्र में आदेश देकर प्रभाव डालना भी दिया है वहां मन्त्र में स्पष्ट कहा है।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी। अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि। (अथर्व0 4/13/7)

मन्त्र में जहां यह कहा है कि मैं रोग दूर करने वाले हाथों से तुझे अभिमर्श (स्पर्श)करता हूं या तुझ पर अभिमर्श करता हूं वहां साथ में *''जिह्वा वाचः पुरोगवी''* मेरी जिह्वा भी वाणियों–आदेशों को अग्रसर करने वाली है। उस जिह्वा से या उन वाणियों आदेशों से भी तुझे स्वच्छ करता हूं। यह तो हुआ प्रयोजक की वाणी का प्रभाव पात्र पर डालना तथा प्रयोजक के मन का प्रभाव भी पात्र पर पड़ता है। वाणी से आदेश तो दिया ही जाता है परन्तु साथ में प्रयोजक द्वारा मन के अन्दर रोगी के रोग एवं दोष दूर करने उसे स्वस्थ एवं स्वच्छ बनाने के लिए संकल्प प्रधानता अर्थात् आन्तरिक सद्भाव हितचिन्तन और हार्दिक इच्छा से आदेश देने की आवश्यकता है। इस प्रकार प्रयोजक के मन का पात्र के ऊपर प्रभाव पड़ता है ऐसा वेद में कहा है। पात्र के ऊपर प्रभाव डालने के लिए प्रथम उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए ऐसा वेद में लिखा है और उसके लिए पात्र के प्रति कहा है कि –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद्व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः।।

(अथर्व0 7/12/4)

अर्थ – **(यद् वो मनः परागतम्)** हे प्यारे पात्र जो तुम्हारा मन कहीं दूर की सोच रहा हो **(यद् इह वा– इह वा बद्धम्)** या इधर–उधर वासना आदि में बन्धा हुआ हो (तद् वः आवर्तयामसि) उस तुम्हारे मन को मैं अपनी ओर लाता हूं **(यो मनो मयि रमताम्)** तुम्हारा मन मेरे में रमण करे–मेरी ओर रहे कि मैं क्या करता हूं।

जिस व्यक्ति पर प्रयोग करना हो प्रयोजक उसे अपने सम्मुख शान्ति से आराम से बिठलाकर कहे कि तुम अपने मन को इधर उधर से हटाकर निश्चिन्त हो मेरी ओर ध्यान रखो, मैं जो हितकर संकल्प अपने मन में लाऊंगा तुम्हारा मन उधर लगेगा, निश्चय मैं तुम्हारे मन को अपनी ओर आकर्षित करता हूं अब तुम्हारा मन मेरे ऊपर निर्भर होगा।

तथा–

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत। मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत।। (अथर्व0 3/8/6)

अर्थ – **(अहं मनसा मनांसि गृभ्णामि)** हे पात्र ! मैं अपने मन से तुम्हारे मन को अपनाता हूं– स्वानुकूल बनाता हूं **(मम चितमनु चित्तेभिः एत)** मेरे चित्त के अनुकूल अपने चित्त से चलो मेरी विचाराधारा के अधीन अपनी विचारधारा करो **(मम वशेषु वः हृदयानि कृणोमि)** मैं अपने वश में तुम्हारे हृदय को करता हूं **(मम यातमनु वर्त्मान एत)** तुम मेरे बतलाए मार्ग पर चलोगे।

हे प्यारे पात्र ! देखो तुम्हारा मन अब मेरे अधीन हो गया है तुम्हारी विचाराधारा को अपने अनुकूल कर लिया है उसे रोक लिया और तुम्हारा हृदय भी मेरे वश में हो गया है। अब तुम्हारे इस शरीर और मन पर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा अपितु मेरा पूरा अधिकार हो गया। अतएव तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया और मन भी निश्चेष्ट हो गया। इसलिए तुम शांति और विश्राम की स्थिति में होने के समान हो गए। सचमुच तुम सुषुप्ति की ओर जाते हुए से निश्चल हो गए परन्तु मेरे आदेश को सुनते हुए उनका अपने अन्दर प्रवेश करोगे उसके अनुसार अपने जीवन को बनाओगे। तुम सच्चे पात्र हो तुम अवश्य उन पर चलोगे। हां सुनो –

मानसिक दोष दूर करने का आदेश–

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि।।1।।
यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः।।2।।
अदो यत्ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम्।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव।।3।।

(अथ0 6/18/1–3)

(ईर्ष्यायाः प्रथमां ध्राजिम्) ईर्ष्या–डाह की प्रथम तरंग–लहर वेग को **(उत)** तथा **(प्रथमस्या अपराम्)** प्रथम तरंग–लहर से अगली तरंग लहर या वेग को जो कि **(ते)** हे प्यारे पात्र ! तेरे **(हृदय्यं शोकमग्निं तम्)** हृदय में स्थित जलती हुई अग्नि है उसको **(निर्वापयामसि)** शान्त करता हूं। क्योंकि – **(यथाभूमिर्मृतमनाः)** जैसे भूमि मरे मन की है –जड़ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मृतात्–मृतमनस्तरा) अपितु मरे जीव से – मुर्दा देह से अधिक मरे मन वाली अत्यन्त मुर्दा जड़ है **(उत)** तथा **(यथा मम्रुषों मनः)** जैसे मर चुके जीवका मन अभावत्व को प्राप्त हो जाता है **(एव)** ऐसे ही **(ईर्ष्योः)** ईर्ष्यालु ईर्ष्याशील मनुष्य का **(मनः)** मन **(मृतम्)** मर जाता है मरा हुआ हो जाता है अभावरूप को या जड़ता को प्राप्त हो जाता है।। अतएव–

(ते) हे प्यारे पात्र ! तेरे **(हृदि)** हृदय में **(श्रितम्)** स्थित **(अदः–यत्)** वह जो **(पतयिष्णुकम्)** पतनशील व्यग्र चंचल अशान्त **(मनस्कम्)** दयनीय मन है **(ततः)** उससे **(ते)** तेरी **(ईर्ष्याम्)** ईर्ष्या–डाह को **(दृतेः– ऊष्माण–मिव)** चमड़े की धोंकनी से फूंक की भांति **(निर्मुञ्चामि)** निर्मुक्त करता हूं– बाहर निकालता हूं।।

इन तीन मन्त्रों में ईर्ष्या को दूर करने का आदेश दिया है।. वह इस प्रकार कि पूर्व मन्त्रों के अनुसार पात्र को सम्मुख बिठला कर आश्वासन के साथ उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करके तथा स्वाधीन और अनुकूल बनाकर सर्वथा शान्त सोए हुए जैसी अवस्था में लाकर उपर्युक्त ईर्ष्या दूर करने का आदेश दे कि " मेरे प्यारे पुत्र आदि पात्र ! तुम्हारे अन्दर जो ईर्ष्या है– दूसरों की उन्नति समृद्धि देखकर जलना द्वेष करना है यह बहुत बुरा है हृदय के अन्दर यह धधकती अग्नि है तुम्हारे हृदय,जीवनरस, रक्त और शरीर को जलाने वाली है इसे मैं बुझाता हूं बुझा रहा हूं अब तुम्हारे अन्दर वह फिर न सुलगेगी तुम फिर कभी इसे सुलगाने का यत्न नहीं करोगे यह ईर्ष्यारूप अग्नि मन को भी भस्म बना देती है उसकी शक्ति को नष्ट कर देती है पुनः वह मनुष्य जड पदार्थ या मुर्दे जैसा विचारहीन हो जाता है। वह हृदय में रखा मन अपनी शक्ति से युक्त रहे अतएव मैं तुम्हारे मन के अन्दर से इस ईर्ष्या को बाहर जाती है। निश्चय रखो मैं तुम्हारी ईर्ष्या को बाहर निकालता हूं और ऐसी सुगमता से कि जैसे चाम की धोंकनी से भरी फूंक जरा दबाने से बाहर निकल रहा हूं– वह निकल रही है – वह समय शीघ्र आवेगा जबकि सर्वथा बाहर निकल जावेगी। तुम स्वयं अनुभव करोगे कि वह बाहर निकल रही है। जब तुम देखोगे कि तुम्हारा मन शान्त प्रसन्न और मस्तिष्क उष्णता से रहित ठण्डा हल्का तथा हृदय घबराहट से पृथक् हल्का स्वस्थ और स्वच्छ है। इस प्रकार प्रतिदिन तुम अपने को ईर्ष्या–अग्नि से अधिकाधिक अलग पाओगे" ।ऐसे सायं प्रातः प्रतिदिन शान्त समय और एकान्त स्थान में पात्र को आदेश देने से अत्यन्त लाभ होता है। मानसिक दोषों को दूर करने के सम्बन्ध में वेद का यह आदेश एक उदाहरण मात्र है इसी प्रकार अन्य दोषों को आदेशों से दूर किया जासकता है।।

उन्माद रोग के लिए आदेश–

अग्निष्टे निशमयतु यदि ते मन उद्युतम्।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि।।

(अथर्व0 6/111/2)

अर्थ– **(यदि ते मन उद्युतम)** हे प्यारे पात्र ! यदि तेरा मन उच्चाट हो गया उखड़ गया है– अव्यवस्थित हो गया है तो **(अग्निः ते निशमयतु)** अग्नि उसे बिल्कुल शान्त और ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देगा (**यथाऽनुन्मदितोऽससि**) जिस प्रकार कि तू उन्माद रहित हो जावे। इस प्रकार (**विद्वान् भेषजं कृणेमि**) सब जानते हुए चिकित्सा इलाज करता हूं।

इस मन्त्र में उन्माद रोग के रोगी को आदेश दिया है। उन्माद रोग दो प्रकार का होता है एक शान्त दूसरा प्रलाप वाला। मस्तिष्क के आन्तरिक तन्तु जब विशेष कफलिप्त या जड़ हो जाते हे तब मन मूढ़ होकर शान्त उन्माद को उत्पन्न करता है इसे आयुर्वैदिक परिभाषा में उन्माद या शान्त उन्माद कहते हैं और जब मस्तिष्क में वातपित्त–प्रकोप से तन्तु क्षुब्ध या दग्ध हो जाते हैं तब मन क्षिप्त विक्षिप्त और भ्रमयुक्त होकर प्रलापोन्माद को उत्पन्न करता है इसे आयुर्वैदिक परिभाषा में भ्रमोद्वेग तथा भूतोन्माद कहते है। इस भ्रम–जन्य उन्माद में भ्रम से रोगी अपने अन्दर विषम बातों को अनुभव करता है या पुरातन मिथ्याःविश्वास के संस्कारों से भिन्न–भिन्न विकट स्थितियों की कल्पनाएं अपने अन्दर कर लेता है और मैं भूत, प्रेत, चुड़ेल, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा आदि हूं ऐसा प्रलाप करने लगता है। ऐसा उन्माद अग्नि में लाल मिर्च, राई, सरसों, वायविडंग हींग, लशुन आदि चरपरी और तीक्ष्ण ओषधि को डालकर धुआं सुंघाने से दूर हो जाता है क्योंकि उस चरपरे और तीक्ष्ण धुंए से मस्तिष्क के तन्तुओं में उसकी परिस्थिति से विपरीत गति और सचेतता मिलती है। मस्तिष्क में उस भूत आदि के भ्रम या कल्पना का अवसर या अभाव हो जाता है पुनः तुरन्त आदेश साथ में देने से रोगी अनुभव करता है कि उन्माद चिकित्सक के प्रभाव से उन्माद दूर हुआ है यह विश्वास हो जाने से पुनः वह उन्माद चला जाता है। इसी प्रकार शान्त उन्माद रोग में अग्नि के अन्दर सात्विक गन्ध वाले कपूर, चन्दन, तुलसी या तुलसीबीज अथवा सुगन्ध होम करके धुंआ सुंघाने से रोगी के मस्तिष्क के तन्तुओं में विकास जागृति और प्रसाद आता है, पुनः वह स्वस्थ हो जाता है। दोनों प्रकार के उन्माद रोगी तब अपने मन और मस्तिष्क तन्तुओं को सचेत स्वस्थ प्रसन्न अवस्था में अनुभव करते हैं साथ ही चिकित्सक को आदेश देते हुए देखकर अपने को उसके आदेश से अच्छा हुआ समझते हैं पुनः पुनः आदेश से अपने को उत्तरोत्तर उस उन्माद रोग से रहित स्वस्थ अनुभव करते जाते हैं। हमने भी इस विधि से कई एक उन्माद रोगियों को स्वस्थ किया है इस विधि में कोई मन्त्र या जादू की बात कुछ भी नहीं है। अन्य उन्माद चिकित्सक ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि हम मन्त्र या जादू करके तुम्हारे उन्माद और भूत आदि को दूर करते हैं केवल यह उन्माद रोगी को विश्वास दिलाने मात्र की बात है। वास्तव में उन्माद रोग के दूर होने का कारण है, अग्नि में ओषधिधूप और आश्वासन। ऐसे रोगों में मन्त्रानुसार इस प्रकार का आश्वासन देना चाहिए कि "हे प्यारे पात्र ! अग्नि देवता तुम्हारे रोग को शान्त कर रहा है उस भूत प्रेतादि का शमन कर रहा है। मैं भी उन्माद को दूर करने भूत भगाने में कुशल हूं उस उन्माद रोग और भूत आदि का दमन तथा उसे अग्नि में भस्म कर रहा हूं तुझे अच्छा कर रहा हूं एवं इस भूत आदि को भगा रहा हूं। बस तुम अब अच्छे हो रहे हो बहुत कुछ अच्छे हो गए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो बस अब बिल्कुल अच्छे हो गए हो प्रेत भाग गया भगा दिया, जल गया उसे जला दिया अग्नि में भस्मीभूत हो गया उसे भस्म कर दिया। उठो जाओ अब कभी फिर न आयेगा सदा के लिए उससे तुम छूट गये। " यहां अग्नि से उन्माद के दूर होने का साधन अग्नि अर्थात् अग्नि होम करना धूप देना है जो इससे पूर्व के मन्त्र में स्पष्ट है " **इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति। अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति।।** (अथर्व. 6/111/1) हे अग्नि! यह जो उन्मादी पुरुष सुनियन्त्रित और बन्धा हुआ भी प्रलाप करता है इसे तू उन्माद रोग से छुड़ा अतएव तेरे अन्दर **'भागधेय'** आहुति देते हैं होम करते हैं– धूप डालते हैं जिससे यह उन्माद रहित हो जावे।।

यक्ष्मज्वर–क्षय रोग दूर करने के लिए आदेश–

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्।।7।।
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव।।8।।
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम्।।9।।
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः।।16।।

(अथर्व0 5/30/7–9, 16)

अर्थ – **(अनुहूतः)** हे प्यारे रोगी ! तू मेरे द्वारा आमन्त्रित हुआ– मेरी ओर आकर्षित हुआ – मेरे ओदशानुकूल बन **(विद्वान्)** समझदार होता हुआ **(पथः–उदयनम्)** जीवन पथ के उदय को स्वास्थ्य को **(पुनः–एहि)** फिर प्राप्त कर और **(आरोहणम्–आक्रमणम्)** उस जीवन पथ के आरोहण अवलम्बन तथा आक्रमण आगे बढ़ने को भी प्राप्त हो। यही **(जीवतो जीवतः–अयनम्)** प्रत्येक जीवितं रहने वाले का आश्रय है –लक्षण है।

(मा बिभेः) न डर **(न मरिष्यसि)** नहीं मरेगा, नहीं मर सकता **(त्वा जरद्रष्टिं कृणोमि)** तुझे जरावस्थापर्यन्त जीने वाला – बुढापे तक जीने वाला –पूर्णायु तक जीने वाला करता हूं **(तव – अङ्गेभ्यः)** तेरे अंगों से **(अङ्गज्वरं यक्ष्मम्)** अंगों को पीड़ित करने वाले यक्ष्म रोग – क्षयरोग को **(अहं निरवोचम्)** मैं निराकृत–निवृत्त करता हूं।

(यश्च) और जो **(अङ्गभेदः)** अंगों को तोड़ने वाला **(अङ्गज्वरः)** अंगों में ज्वर करने वाला **(हृदयामयः)** फेफड़ेसहित हृदय को रोगी बनाने वाला विकृत करने वाला है। वह **(ते यक्ष्मः)** तेरा यक्ष्मरोग क्षय **(वाचा परस्तरां साढः)** मेरी वाणी से आदेश से अत्यन्त तिरष्कृत हुआ – ताडित हुआ **(श्येन इव प्रापप्तत्)** बाज पक्षी की भांति बाज या चील निशाने से ताडित किया हुआ जैसे नीचे गिर पड़ता है ऐसे ही तेरा क्षय रोग रुग्ण स्थान या शरीर से बाहर गिर पड़ता है छिन्न भिन्न हो जाता है – नष्ट हो जाता है।

(इयं बद्धा पनिष्पदा जिह्वा) यह सुनियन्त्रित मितभाषण और सत्यभाषण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयमित तथा विद्युत् की भांति पुनः पुनः स्पन्दन करती हुई लहरें फेंकती हुई मेरी वाणी **(अन्तर्वदति)** अन्दर से कही रही है – भीतर से बोल रही है कि **(त्वया)** तुझ चिकित्सक से प्रेरित की हुई अथवा तुझ रोगी से 'विभक्ति व्यत्ययः' **(यक्ष्मम्)** यक्ष्मा रोग को **(निरवोचम्)** निराकृत निवृत कर देती हूं। तथा **(तक्मनः शतं रोपीश्च)** रोग के सैकड़ों और सहज–रोगांकुरों उपद्रवों को भी निराकृत कर देती हू – हटा देती हूं।

यक्ष्मा या क्षयरोग होने पर फेफड़ों में दर्द रहता है, अंग अंग में ज्वर और घबराहट होती है, हृदय में रक्त के जीवन कणों का क्षय होता रहता है जीवन की आशा मरती रहती है। इसी यक्ष्मा या क्षयरोग के लिए मन्त्रों में आदेश द्वारा चिकित्सा करने का विधान है। यहां आदेश में शक्ति कैसे आती है इसका भी प्रतिपादन है **''इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा''** मितभाषण गम्भीरता से तथा सत्य भाषण से संयमित वाणी हार्दिक भावों से प्रेरित– मांनसिक संकल्पों से पुष्ट हुई रोगी के रोग दूर करने की प्रबल आंतरिक भावना से परिपूर्ण वाणी द्वारा आदेश चिकित्सक दे कि '' हे प्यारे ! तू मेरी ओर आकर्षित हुआ हुआ समझ के साथ अपने जीवन मार्ग के उदय को अनुभव कर, स्थिरता से जीवनयात्रा में आगे बढ़'' बस जीवन का लक्षण यही है। हे प्यारे ! तू भय मत कर, भय की कोई बात नहीं तू मर नहीं सकता, तू मेरे हाथों में आ गया है मैं तुझे पूर्ण आयु तक ले जाऊंगा तेरे अन्दर से इस यक्ष्मा या क्षयरोग को मैं निःसन्देह बाहर निकाल दूंगा। मेरे अन्दर से यह आवाज आ रही है कि तुम इस रोग से निर्मुक्त हो जाओगे बिल्कुल मुक्त हो जाओगे मैं इसे दूर कर रहा हूं यह दूर हो रहा है। अब तुम्हारे रक्त के जीवन कण बढ़ने आरम्भ हो गये और दिनों दिन बढ़ते जावेंगें अतः शरीर का भार भी बढता जावेगा। रक्त के जीवन कणों एवं शरीरभार की वृद्धि का प्रारम्भ ही क्षय रोग के नष्ट होने की सूचना है। क्षय रोग दूर तभी होता है जबकि जीवित रहने के विचार बलवान् होते हैं तुम्हारे अन्दर जीवित रहने के विचार प्रबल रूप में होते जाएंगे और तुम बस अब बिल्कुल स्वस्थ हो जाओगे'' तुम जीवनवान् पुष्ट हाथी आदि प्राणी या सुपुष्ट बलवान् मनुष्य का आदर्श अपने सामने रखो। पुनः पुनः उसका दर्शन करो इसी प्रकार हरे भरे पौधों को और जीवनमय कांतिवाले प्राणियों को क्रीड़ा तथा आमोद–प्रमोद करते देखो। जीवनमय उद्यान, उपवन, जंगल और पर्वतों का सेवन करो तुम्हारी जीवन शक्ति ऐसा करने से दिनों दिन बढ़ती जाएगी तुम्हारे अन्दर यह विचार अब बढ़ते रहना चाहिए कि 'मैं स्वस्थ हो रहा हूं' पुनः शीघ्र ही तुम स्वस्थ हो जाओगे।

मृत्यु से उभरने का आदेश–

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङं त्वा हरामि शतशारदाय। अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राधीय आयुः प्रतरं ते दधामि।।

(अथर्व0 8/2/2)

अर्थ – **(जीवतां ज्योतिः– अभ्येहि)** हे प्यारे ! तू जीनेवालों की ज्योति को प्राप्त हो **(त्वा शतशारदाय– अर्वाङ् आहरामि)** तुझे सौ वर्ष तक जीवित रखने के लिए इधर इसी लोक में ले आता हूं **(मृत्युपाशान्–अशस्तिम्–अवमुञ्चन्)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु के पाशों को तथा मन की अशस्त भावना को छुड़ाता हुआ (**ते प्रतरं द्राघीयः आयुः दधामि**) तेरे लिए उत्कृष्ट दीर्घ आयु को धारण करता हूं।

इस मन्त्र में रोगी को रोग से विमुक्ति और जीवित रहने का आदेश दिया है कि '' हणे प्यारे रोगी ! तू जीने वालों की ज्योति को प्राप्त कर – जीने वालों की भांति जीवन कांति और उत्साह को धारण कर। मैं चिकित्सक तुझे पूर्ण आयु तक जीवित रहने के लिए अपने अधिकार में ले आया। प्यारे पात्र ! चिन्ता या भय की कोई बात नहीं, मैं समस्त रोगों और तुम्हारे अन्दर की निराशा आदि भावनाओं को दूर करता हूं तुम्हारे अन्दर दीर्घ जीवन की शक्ति डालता हूं। निश्चय रखो अब तुम दिनों दिन दीर्घ जीवन की ओर चलोगे।''

तथा–

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः। उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि।।
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि।। (अथर्व0 8/1/3,6)

अर्थ– (**इह ते असुः**) हे प्यारे रोगी ! तेरा श्वास उच्छ्वासरूप प्राण इस देह में रहे (**इह प्राणः**) इस देह में प्राण शक्ति रहे (इह आयुः) इस देह में पूर्ण आयु रहे (**इह ते मनः**) इस देह में मन रहे (**त्वा**) तुझे (**निर्ऋत्याः पाशेभ्यः**) जीवन की अरमणीयता के बन्धनों से जीवननिराशा के भावों से ''**निर्ऋतिनिरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरितरा**'' (निरु.2/7) (**दैव्या वाचा उद्‌भरामसि**) दैवीवाणी– सत्यवाणी–प्रभावकारी आदेश से उभारते हैं– ऊपर करते हैं– छुड़ाते हैं। ''**सत्यमेव देवाः**'' (श0 1/1/1/4)।।3।।

(**पुरुष**) हे प्यारे रोगी मनुष्य ! (**उद्यानं ते न अवयानम्**) बस अब तेरा –तेरे स्वास्थ्य का उदय उत्थान है ह्रास या पतन नहीं। (**जीवातुं दक्षतातिं ते कृणोमि**) तेरे लिए जीवनदेने वाले और बल करने बलबढ़ाने वाले उपाय को मैं कर रहा हूं (**इमं अमृतं सुखं रथम्**) इस न मरने योग्य अभी जीवित रहने वाले सुखसाधक शरीर रथ पर *'' शरीरं रथमेव तु '' (कठोप0 3/3) '' रथः शरीरम्'' (मैत्र्युप0 2/6)* (**हि–आरोह**) अवश्य चढ़ा रह (**अथ**) पुनः (**जिर्विः**) वृद्ध बूढ़ा होता हुआ (**विदथम्–आवदासि**) अपने जीवनानुभव को घोषित कर।।6।।

इन मन्त्रों में इस आशय का आदेश रोगी को देने का विधान है कि '' हे प्यारे रोगी ! तू स्मरण रख इसी शरीर में तू स्वस्थ और प्रसन्न रहता हुआ पूर्णायु को भोगेगा मैं तुझे जीवन निराशा की ग्रन्थियों और उलझनों में से अपने सत्य आदेश द्वारा निकाल रहा हूं। तू निश्चय रख और देख अब से तेरे स्वास्थ्य का उदय ही उदय हो रहा है मैं तेरे अन्दर जीवनशक्ति को डाल रहा हूं और बल भी दे रहा हूं बस अब तू इस शरीर पर पूर्ण आधिपत्य और अधिकार रखता हुआ बुढ़ापे तक जीवन के अनुभव का लाभ प्राप्त करेगा क्योंकि तेरे शरीर में अब कोई दोष नहीं रहेगा जो तुझे हानि पहुंचा सके ''।।

वीरता के लिए आदेश–

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋ0 5/35/4)

अर्थ – **(इन्द्र वृषा हि–असि)** ओ वीर ! या हे राजन् ! तू सचमुच साण्ड है– साण्ड के समान गर्जने वाला आक्रमणकारी और प्रतापी है **(राधसे जज्ञिषे)** समाज तथा राष्ट्र की समृद्धि के लिए तू जन्मा है **(ते शवः वृष्णि)** तेरा निज बल तथा सैन्यबल वर्षाप्रपात के समान शत्रु पर प्रपतन शील है **(ते मनः)** तेरा मन **(स्वक्षत्रं धृषत्)** स्वकीय क्षात्रबल का अभिमानी और धर्षणशील है **(पौंस्यं सत्राहम्)** और तेरा पौरुष साहस शत्रुओं का हननकर्ता है।

समाज या राष्ट्र के रणक्षेत्र में आनेवाले वीर या राजा को मन्त्रानुसार आदेश देना चाहिए कि " हे वीर पुरुष ! या राजन् ! तू अपने को सबल समझ साण्ड जैसा बलवान् प्रभावशाली समझ, वास्तव में तू महाबलवान् है बड़ा प्रतापी और शूरवीर है तू समाज तथा राष्ट्र की समृद्धि ओर अभ्युदय के लिए जन्मा है तेरी शूरवीरता जाति और देश के उठाने के लिए है तू शत्रु पर सबल और सफल आक्रमणकारी है शत्रु पर तेरे बल का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, निज क्षात्रबल और क्षात्रधर्म का अभिमानी है देश तथा राष्ट्र के हित में तेरा सर्वस्व है तेरे अन्दर शत्रुहनन का साहस है शत्रु पर विजय पाने का साहस है निश्चय तू सदा जिष्णु–जयशील है किसी भी रणक्षेत्र में विजय पाना तेरे लिए अवश्यम्भावी है " इत्यादि।

सर्पदष्ट विषनाशन के लिए आदेश–

सांप के काट लेने पर विष नष्ट करने के आदेश को मन्त्र कहा जाता है और मन्त्र नाम है गुप्त रहस्यमय विचार का। सर्वसाधारण जिस सिद्धान्त को न समझ सके वही मन्त्र या मन्त्रविद्या है, वास्तव में वह एक आश्वारान है। जिसको सर्प ने काट लिया उस व्यक्ति को आश्वासन देना ही मन्त्र है और आश्वासन का सफल ढंग ही आश्वासनविद्या या मन्त्रविद्या है। "चरक" ग्रन्थ में भी ऐसी स्थिति में आश्वासन देना बतलाया है।

दुरन्धकारे दंष्टस्य केनचिद् विषशंकया।
विषोद्वेगाज्ज्वरश्छर्दिर्मूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत्।।
ग्लानिर्मोहोऽतिसारश्चाप्येतच्छङ्काविषं मतम्।
चिकित्सितमिदं तस्य कुर्यादाश्वासनं बुधः।।

(चरक। विषचिकित्सा /अ0 23/221–222)

घने अन्धकार में किसी जन्तु के काट लेने पर सर्प के काटने की शंका हो जाने से उस व्यक्ति को ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह, दस्त ये सर्पदष्ट के उपद्रव हो जाते हैं (यह शंकाविष कहलाता है)। इसकी चिकित्सा आश्वासन है। ऐसे रोगी को बुद्धिमाञ्जन विविध आश्वासन दें, यह चरककार का कथन है। परन्तु वेद इससे भी आगे बढ़ा हुआ है, वेद तो सर्प के काटे से भी मरना नहीं मानता, वेद कहता है कि *"भियसा नेशत" (अथर्व0 5/13/2)* सांप का काटा भय से मरता है। वेद का यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसमें कारण भी है क्योंकि प्रथम सर्पविष की मीमांसा करने से सभी धर्माचार्यो का कथन है कि पचास प्रतिशत सर्प तो बिना विष के हैं उनके काटने से मरने का कोई प्रसंग ही नहीं है यदि मरता है तो भय से मरता है। सर्प के नाम से ही लोग भय खाते हैं। पचास विष वालों में भी पच्चीस अल्पविष के हैं उनके काटने से भी मनुष्य नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर सकता यदि मरते हैं तो भय से। शेष पच्चीस में भी महाविष के सर्प आधे हैं साढे बारह और फिर इनमें बच्चे, अति वृद्ध,रोगी, कृश, केंचुली छोड़ते हुए, डरे हुए, नेवले से पछाड़े हुए, जल के ताड़े हुए का अल्पविष होता है।[6] अब तो और भी कम महाविष के सर्प रह गये हैं जो साढ़े बारह में अधिक से अधिक छः हुए। फिर इनके भी दृष्ट (डंक–घाव) तीन प्रकार के होते हैं " सर्पित (सर्पदष्ट विष के पूर्ण लक्षणों वाला) रदित (सर्पदष्ट विष के अल्प लक्षणों वाला) सर्पांगाभिहत (सर्प के अंगों से स्पर्श हुआ या घिसा हुआ मात्र) " ये तीन होते हैं, तब तो महाविष सर्पो के काटे के महाविषस्थान छः में दो ही रहे इस विचार से तो सर्पो के काटे हुए सौ में दो ही अधिक से अधिक मरने चाहिए परन्तु इनका भी तुरन्त बन्धन आदि उपचार हो जावे तो ये भी नहीं मर सकते यदि मरते हैं तो भय से ही मरते हैं और वेद में तो इन दो को भी चाहे बन्धन न भी बान्धा हो, "**भियसा नेशत्**" भय से ही मरते हैं. ऐसा कहा है। जब यह बात है तब आश्वासन चिकित्सा करना अत्यावश्यक है और रोगी मरने से पहले बच जाता है। आश्वासन तो डूबते हुए तक को भी बचा लेता है ऐसा संसार में देखने में आता है किसी डूबते हुए को किसी कुशल अच्छे तैरने वाले की ओर से जब आश्वासन मिलता है कि " मैं कदापि न डूबने दूंगा– "तब इस डूबने वाले के अन्दर एक बिजली–सी दौड़ कर उसमें हाथ, पांव मारने की शक्ति आ जाती है और वहडूबने से बच जाता है। अतः वेद सर्पदष्टविष वाले मनुष्य को मरने से बचने का आदेश देने का विधान करता है–

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रै–
र्नि रि॑णामि ते वि॒षम् । खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑–
ग्रभ॒मिरे॑व धन्व॒न्नि ज॑जास ते वि॒षम् ।।

(अथर्व0 5/13/1)

अर्थ –(**वरूणो दिवः कविः**) वरनेवाले जगत् के धारक वेद वाणी के कवि परमात्मा ने (**मह्यम्**)[7] मेरे में (**ददिः–हि**) निश्चय ऐसा भारी तेज दिया है कि (**उग्रैर्वचोभिः**) उग्र वचनों से (**ते विषम्**) तेरे विष को (**निरिणामि**) मैं निकालता हूं– दूर करता हूं– शक्तिहीन करता हूं। तथा (**खातम्**) सर्पदान्तों के गहरे घाव को[8] (**अखातम्**) गहरे नहीं किन्तु सर्पदान्तों के चिन्हरूप को [9] (**उत**) तथा (**सक्तम्**) सर्प से सम्पृक्त –स्पर्श प्रभावमात्र को [10] (**अग्रभम्**) मुक्त सर्पविषचिकित्सक ने स्ववश कर लिया है,अब (**ते विषम्**) तेरा विष (**इरा–इव धन्वन्**) मरुस्थली–रेतीले स्थान में पड़े जल की भांति (**निजजास**) विनष्ट हो जाता है।

इस मन्त्र में तीन बातों का वर्णन है जिसमें एक तो सर्पदष्ट (**घावों**) के तीन भेद खात (गहरा) अखात (कम घाव) सक्त (स्पर्शमात्र) दूसरे आश्वासनचिकित्सा में अपना आदर्श विषनाशक शक्ति देने वाला तेजस्वी परमात्मा तीसरे मुख्य बात "**वचोभिरुग्रैर्निरिणामि ते विषम्** " उग्र प्रभाव पूर्ण वचनों से तेरे विष को निर्बल करता हूं और " **इरेव धन्वन् निजजास ते विषम्**" वह विष मरुस्थली में गिरे जल के समान निकम्मा हो गया। अर्थात् मैंने परमात्मा से बहुत तेज प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया हुआ है मेरे सामने तेरे सर्प काटे का गहरा विष भी कुछ नहीं मैंने इसे स्वाधीन कर लिया है और अपने प्रभावशाली वचनों से तेरा विष निर्बल कर रहा हूं दूर कर रहा हूं नष्ट कर रहा हूं, वह निर्बल हो रहा है नष्ट हो रहा है अवश्य नष्ट हो रहा है अब निर्बल हो गया दूर हो गया सर्वथा दूर हो गया और सर्वथा नष्ट हो गया। अब नहीं रहा –नहीं रहा, मरुभूमि में गिरे जल की भांति नष्ट हो गया – सर्वथा नष्ट हो गया, बस तुम अच्छे हो स्वस्थ हो इत्यादि आदेश दे।

इसके अतिरिक्त बन्धन बांधते हुए भी आदेश देना चाहिए कि "देखो! मैंने तुम्हारे निकृष्ट,मध्य, और गहरे विष को बांध दिया है – यह बस आगे नहीं जावेगा तुम निश्चिन्त रहो तुम नहीं मरोगे और सर्प के काटे से नहीं मरोगे मरने का काम नहीं,भय मत करो मनुष्य सर्प के काटे से कभी नहीं मरता भय करने से ही मरता है बस भय मत करो, तुम वीर हो भय तुम्हारे पास नहीं फटकना चाहिए तुम साहस रखो अपने मन को दृढ़ रखो –कभी भी नहीं मर सकते, भाई मन अन्दर की बिजली है इससे विषप्रभाव नष्ट हो जाएगा।" ऐसे आदेश देते हुए अपने हाथों या वस्त्र या रोम कुञ्ची से ऊपर से नीचे को अभिमर्श (किंचित् स्पर्श) करते रहो।

सर्प काटे को देर हो जाने पर औषध उपचार करते हुए भी ठण्डे अभिमर्श (स्पर्श) करते और आदेश देते रहो। आदेश– चिकित्सक गम्भीर, सत्यवादी, संयमी, हितदृष्टिमान् होगा तो प्रभाव अधिक पड़ेगा। 'सुश्रुत' में भी मन्त्र चिकित्सकों को संयमी रहने को कहा है। अस्तु।।

पञ्चम पटल

मणि बन्धन

मणिबन्धन का विषय अथर्ववेद में आता है। कण्ठ, मस्तक, शिर, नाभि और हाथ आदि अंगों में मणियां बांधी जाती हैं। लोग अथर्ववेद के मणिबन्धन से आधुनिक प्रचलित तावीज, नक्श, गण्डा, डोरा, धागा आदि बातों को भी सिद्ध करते हैं। किन्तु इन बातों के लिए प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में भी स्थान नहीं है फिर वेद में तो कथा ही क्या। हां मनोवैज्ञानिक और आयुर्वैदिक शास्त्र से अनुमोदित या सम्बन्धित मणिबन्धन का वेद में वर्णन होना अत्यावश्यक और निर्दोष है। मणियां चार प्रकार की होती हैं। खनिज, सामुद्रिक, प्राणिज और वानस्पत्य **"खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः"** (कौटिल्यार्थ शास्त्रप्रकरण 27) हीरा पन्ना आदि स्फटिक या पाषाणिक सोना चांदी आदि धातुरूप खनिज मणि हैं। मोती मूंगा आदि सामुद्रिक मणि हैं। हाथी के दान्त और उसके मस्तक का मोती (गजमुक्ता) बाघ के नख, कस्तूरिया मृग की नाभि, बारहसींगे के सींग, सर्प की मणि, मेण्ढक का जहर मोहरा आदि जंगमन या प्राणिज मणि हैं और वनस्पतियों के मूल कन्द फल आदि पृथक् पृथक् तथा उनकी रसक्रिया गुटिका और अनेकों वनस्पतियों का बना एक योग गोलीरूप में वानस्पत्य या ओषधिज मणि हैं। स्वयं वेद ने कहा है **"मणिर्वीरुधां त्रायमाणो"** (अथर्व0 8/7/14)। इन मणियों के धारण से तीन प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

1– भूषा–अलंकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2– मन में प्रसन्नता, शान्ति और वीरता आदि का प्रभाव आना।

3– रोगों का दूरीकरण तथा अनाक्रमण विशेषतः विष का प्रतिकार और अनाक्रमण होना।

उपर्युक्त बातों के सम्बन्ध में प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण देकर स्पष्ट करते हैं–

मुक्ताविद्रुमवज्रेन्द्रवैदूर्यस्फटिकादयः।
चक्षुष्या मणयः शीता लेखना विषसूदनाः।
पवित्रा धारणीयाश्च पाप्मालक्ष्मीमलापहाः।।

(सुश्रुत सूत्रस्थान – अ0 46 लवणादि वर्ग 329–330)

इस वचन में बताया है कि मोती, मूंगा, हीरा वैदूर्य (लहसुनिया) स्फटिक आदि मणियां धारण करने चाहिए क्योंकि ये नेत्रशक्तिवर्धक, शीतल, दोष–विलेखन करने वाली, मन में पवित्रता लाने, अशोभा को हटाने, शोभा को बढ़ाने और विष को दूर करने वाली हैं।

उक्त वचन में सामुद्रिक और खनिज मणियों के गुण और उन्हें धारण करने का वर्णन है। यहां एक बात विशेष यह कही है कि मणियां विषनाशक हैं इन मणियों में सुश्रुत ने आयुर्वैदिक दृष्टि से गुणों का वर्णन करते हुए धारण करना बतलाया है, किसी मनघड़न्त गण्डा तावीज आदि अलौकिक जादू की बात नहीं कही, तथा चरक में भी देखिए–

वज्रं मरकतं सारं पिचुको विषमूषिका।
कर्कोटकमणिः सर्पाद् वैदूर्यगजमौक्तिकम्।।
धार्य गरमणिर्याश्च वरौषध्यो विषापहाः।

(चरक। विषचिकित्सा अ 0 23/252,253)

इस चरकवचन में हीरा, मरकत, पन्ना, सार (चन्दनादि [11]) पिचुकी (इतर गन्धवत्ती [12]) विषमूषिका (विषमणि विषमुष्टिका–कुचला या द्रवन्ती) कर्कोटक मणि सर्प से, वैदूर्य (लहसुनिया), गजमुक्ता, गरमणि और जो उत्तम विषहर औषधियां धारण करनी चाहिए।

इस वचन में प्राणिज खनिज मणियों तथा सार(चन्दनादि) और ''**वरौषध्यो विषापहाः**'' उत्तम विषनाशक ओषधियों को धारण करने के कथन से वानस्पत्य मणियों का भी उल्लेख हो जाता है। ओषधिमणियों के सम्बन्ध में कौटिल्यार्थशास्त्र के निम्न वचन देखिए–

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे।
जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहर।।

(कौटिल्यार्थशास्त्र अधि0 14,प्रकरण 179)

जीवन्ती, श्वेता (अपराजिता या अतीस) मोखा, नागकेसर, वन्दा तथा सोंजने या महानिम्ब के ऊपर हुआ पीपल इन सब की बनाई मणि सब विषों को हरने वाली है।

इस वचन में कई ओषधियों के योग की मणि का वर्णन है। 'सुश्रुत' के कल्पस्थान में 'मूषिका' (आखुकर्णी द्रवन्ती) और अजरुहा (अजशृंगी) ओषधियों को हाथ में बांधने से विषयुक्त अन्न का विष निर्बल हो जाना बतलाया है–

मूषिकाऽजरुहा वापि हस्ते बद्धा तु भूपतेः।
करोति निर्विषं सर्वमन्नं विषसमायुतम्।।

(सुश्रुत कल्प0 अ 0 1/77)

उपर्युक्त 'चरक' 'सुश्रुत' और 'कौटिल्यार्थ शास्त्र' के प्रमाणों से यह स्पष्ट हुआ कि खनिज, सामुद्रिक, प्राणिज और वानस्पत्य चार प्रकार की मणियां होती हैं। जो कि विषहरण आदि के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। इसके साथ ही यह भी सिद्ध हुआ कि इन चार से भिन्न और कोई वस्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि नहीं है और न ही मणि की भांति धारण करने योग्य है फिर यन्त्र, नक्श, गण्डा, ताबीज धारण करना अनार्ष और अप्रामाणिक है अतः वेद की मणियां भी निश्चित उक्त खनिज सामुद्रिक, प्राणिज और वानस्पत्य ही हैं मिथ्या कल्पित नक्श, गण्डा, ताबीज नहीं। सामुद्रिक आदि मणियों के धारण करने के तीन प्रयोजनों का कुछ विवरण निम्न प्रकार करते हैं।

1. अशोभा को दूर करने शोभा और भूषा को बढ़ाने के लिए हीरा, पन्ना, नीलम आदि खनिज मोती आदि सामुद्रिक तथा प्राणिज और वानस्पत्य मणियां गले, कान, सिर, हाथ, कङ्कण अंगुलि आदि में धारण की जाती हैं। अतएव मणियों को 'अलक्ष्मीघ्न' कहा है। इस प्रयोजन के लिए केवल मनुष्यों में ही नहीं किन्तु गौ आदि पशुओं तक के गले आदि में भी धारण कराते हैं। हां बहुमूल्य खनिज मणियां तो राजे महाराजे अपने हाथी घोड़ों को भी धारण कराते हैं परन्तु साधारण जन अल्पमूल्य सामुद्रिक शङ्खसीपी कोड़ी आदि मणियां ही अपने पशुओं को धारण कराते है। न केवल इतना ही किन्तु मेज चौकी घर की भित्ति आदि को भी शङ्खकोड़ी सामुद्रिक, बारहसिंहे के सींग आदि प्राणिज मणियों से सजाते हैं।

2– मन में प्रसन्नता वीरता आदि के भावों को जागृत तथा विकसित करने के लिए भी स्फटिक आदि खनिज महाशङ्खआदि सामुद्रिक हाथी दान्त बाघनख आदि प्राणिज मणियों को धारण करते हैं अतएव मणियों को ओज और तेज बढ़ाने वाली कहा गया है।

3– विष के अनाक्रमण तथा विषदूरीकरण के लिए हीरा पन्ना आदि खनिज, मोती मूंगा आदि सामुद्रिक, गजमुक्ता, जहरमोहरा, कस्तूरीनाभि आदि प्राणिज, चन्दन, कपूर आदि पृथक् पृथक् तथा योग से निष्पन्न वानस्पत्य मणियों को धारण करते हैं। विषदूरीकरण के अतिरिक्त अन्य रोगों में भी इनका उपयोग करते हैं। महामारी (प्लेग) में कपूर, चन्दन, श्लैष्मिक रोग (इन्फ्लूएंजा) में जायफल आदि वानस्पत्य मणियों के धारण करने का प्रभाव अच्छा देखा जाता है। उपर्युक्त खनिज, सामुद्रिक, प्राणिज और वानस्पत्य मणियों का ही अथर्ववेद में उक्त तीनों प्रयोजनों के लिए धारण करने का विधान है यह वेद का विधान जादू टोना या गण्डा ताबीज नहीं है किन्तु आयुर्वैदिक या वैज्ञानिक सिद्धान्त का विषय है अब हम उक्त मणियों का जो अथर्ववेद के मन्त्रों में विधान है उनका यहां विचार करेंगे।

खनिजमणि में आञ्जनमणि–

अथर्ववेद काण्ड 4 सूक्त 9 में "आञ्जन" मणि का वर्णन है, कौटिल्यार्थशास्त्र के मणि प्रकरण में "अञ्जनमूलक " नाम से ख़निज मणि कहा है "**विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः** " (कौटिल्य0 प्रकरण 27) अर्थ दोनों 'अञ्जनमूलक' और 'अञ्जन' का एक ही है, 'अञ्जनमूलक' अञ्जन जिसका मूल है और 'आञ्जन' अञ्जन का बना हुआ, इस प्रकार आशय एक ही है। अञ्जन नाम की खनिज वस्तु है जिसे सुरमा भी कहते हैं इस अञ्जन या सुरमे की बनी मणि गोली या टिकिया आञ्जनमणि है। अथर्ववेद में उस 'आञ्जन' अञ्जन अर्थात् सुरमे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मणि अर्थात गोली या टिकिया के पास रखने का नेत्र आदि रोगों के दूर करने के लिए विधान है। यहां इस 'आञ्जन' अञ्जन मणि या सुरमें की गोली या टिकिया को बांधने के लिए नहीं कहा है क्योंकि मन्त्र 5 में स्पष्ट ''यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन'' से यह बात स्पष्ट हो रही है क्योकि उसे ''बध्नाति'' शब्द से नहीं कहा किन्तु ''बिभर्ति '' धारण करता है – पास रखता है ऐसा कहा है, इससे तो यही सिद्ध होता है कि सुरमे की गोली या टिकिया पास रखनी चाहिए आवश्यकता के समय काम आने वाली वस्तु है, उस सुरमे की गोली या टिकिया को समय पर पानी में डुबाने या घिसकर आंख में उसका जल टपकाना, नाक में डालना मुख द्वारा पान करना, सर्प आदि के काटे स्थान पर उसे घिस कर लगाना आदि उपयोग लेना चाहिए ऐसा सूक्त का तात्पर्य है। अस्तु। अब मन्त्रार्थ भी देखिये–

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम्।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय_ कम्।।1।।

अर्थ– (**जीवं त्रायमाणम्–एहि**) हे आञ्जन [13] तू जीव को रोग से बचाने के हेतु प्राप्त हो (**जीवनाय परिधिः कम्**) निश्चय तू जीवन की परिधि प्राकार परकोटा है (**विश्वेभिः–देवैः**) समस्त देवों के द्वारा (**दत्तम्**) दिया हुआ– सम्पन्न किया हुआ (**पर्वतस्य–अक्षम् असि**) पर्वत का नेत्र है।।1।।

परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे।।2।।

अर्थ– (**पुरुषाणां परिपाणाम्**) हे अञ्जन ! तू पुरुषों को स्वास्थ्य देकर रक्षा करने वाला है (**गवां परिपाणम्– असि**) गौवों को स्वास्थ्य देकर रक्षा करने वाला है (**अश्वानाम् अर्वताम्**) आशुगामी घोड़ों के (**परिपाणाय**) स्वास्थ्यरक्षण के लिए (**तस्थिषे**) स्थित है।।2।।

उतासि परिपाणं यातुजम्भमाञ्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम्।।3।।

अर्थ–(**आञ्जन**) हे आञ्जन ! अञ्जन से सम्पन्न विशुद्ध मणि गोली टिकिया रूप औषध ! तू (**उत**) सम्भवनीय– अवश्यम्भावी (**परिपाणम्–असि**) स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला है (**यातुजम्भनम्**) यातना–पीड़ा का नाश करने वाला है (**उत**) अपितु (**त्वम्**) तू (**अमृतस्य वेत्थ**) अमृत–उत्तम स्वास्थ्य का 'वेदपथ' अनुभव कराता है या अमृत अर्थात् विषनाशक गुण को अपने अन्दर विद्यमान रखता है (**अथ**) तथा (**जीव भोजनम् –असि**) जीवों को संसार में सुखभोग कराने वाला क्षय हटाकर जीवन भुगाने वाला औषध है (**अथ–उ**) और भी (**हरितभेषजम्**) हरित रोग कामला पाण्डु का औषध है।।3।।

इस मन्त्र में आञ्जन को विषनाशक, जीवनसमृद्धि देने वाला, कामला पाण्डु का नाशक कहा है।।3।।

यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं विबाधस उग्रो मध्यमशीरिव।।4।।

अर्थ–(**आञ्जन**) हे अञ्जन से निष्पन्न गोली या टिकिया रूप औषध ! तू (**यस्य**) जिस मनुष्य के (**अङ्गङ्गम्**) अंग अंग में (**परुष्परुः**) जोड़ जोड़ में (**प्रसर्परि**) पान द्वारा पहुंच जाती है –फैल जाती है (**ततः**) उस मनुष्य से (**उग्रो मध्यमशीः इव**) उग्र विद्युत की भांति अर्थात् जैसे अन्तरिक्षस्थानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उग्र विद्युत् मेघ को ताडित करती है ऐसे (यक्ष्मं विबाधरो) आन्तरिक रोग को अंगों–जोड़ों में घुसे रोग को ताडित करती है।।4।।

इस मन्त्र में आञ्जन को अंग अंग में और जोड़ जोड़ में 'प्रसर्पसि' पहुंचने का वर्णन होने से सिद्ध होता है कि आञ्जन गोली या टिकिया घिस कर पान करना यहां अभीष्ट है। बिना पान किए किसी अंग में बांध लेने से सब अंगों और जोड़ों में पहुंचने फैलने की बात नहीं बन पड़ती।

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन।।5।।

अर्थ –(**आञ्जन**) हे अञ्जन की टिकिया (**यः**) जो मनुष्य (**त्वा**) तुझे (**बिभर्ति**) धारण करता है अपने पास रखता है (**एनम्**) इस उस मनुष्य को (**शपथो न प्राप्नोति**) निन्दावचन नहीं प्राप्त होता है मन पर प्रभाव नहीं डालता है या छूत का रोग नहीं प्राप्त होता है (**न कृत्या**) विषयुक्त शतक क्रिया भी[14] प्राप्त नहीं होती प्रभाव नहीं डालती (**न अभिशोचनम्**) उदासीनता निराशा भी प्राप्त नहीं होती सदा उत्साह रहने से (**विष्कन्धम्–एनं न अश्नुते**) आलस्य प्रमाद जड़ता शैथिल्य भी उसे प्राप्त नहीं होता है।।5।

इस मन्त्र में अञ्जन टिकिया के सेवन से आलस्य, शैथिल्य, छूत रोग, विष की घातक क्रिया के प्रतिकार का वर्णन है, अञ्जन सेवन से प्रसन्नता और उत्साह बढ़ता है और यह विषप्रभाव को नष्ट करता है, ऐसा आयुर्वेदशास्त्र का मत है।

असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत। दुहार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन।।6।।

अर्थ– (**आञ्जन**) हे आञ्जन ! तू (**असन्मन्त्रात्**) अयुक्त विचार से (**दुष्वप्न्यात्**) बुरे स्वप्न के कारण से वात–प्रकोप तथा मस्तिष्क की शुष्कता से (**उत**) तथा (**दुष्कृतात् शमलात्**) पापमल से (**दुर्हार्दः**) हृदयरोग से (**तस्मात् चक्षुषो घोरात्**) उस प्रसिद्ध आंखों के घोर रोग से (**नः**) हमें (**पाहि**) बचा।।6।।

अञ्जनसेवन से मन विकसित होता है उससे असम्यक् विचार, अनिद्रावासना नष्ट होती है और हृदयरोग, नेत्ररोग भी नहीं सताता।

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष।।7।।

अर्थ– (**आञ्जन**) हे आञ्जन ! (**अहं विद्वान्**) मैं जानता हुआ (**इदं सत्यं वक्ष्यामि**) यह सत्य कहता हूं (**नअनृतम्**) झूठ नहीं कहता कि (**तव पूरुष**) यह मैं तेरा पुरुष "सुपां सुलुक्0" (अष्टा0 7/3/39 – इति सुलुक्) तेरा सेवन करने वाला (**अश्वम्**) घोड़े को (**गाम्**) गौ को (**आत्मानम्**) अपने शरीर को (**सनेयम्**) तेरे उपयोग से सुखयुक्त करता हूं।।7।।

आञ्जन का उपयोग गौओं घोड़ों के लिए भी उपयोगी है।

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता।।8।।

अर्थ– (**आञ्जनस्य**) तुझ आञ्जन के (**तक्मा**) कष्टदायक उदर रोग (**बलासः**) बलनाशक–कफ रोग (**आत्**) तथा (**अहिः**) सर्प–सर्पविष (**त्रयः**) ये तीनों (**दासाः**) दास हैं– तेरे द्वारा नष्ट होने वाले हैं (**पर्वतानाम्**) पर्वतों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वर्षिष्ठः –त्रिककुत्) समृद्ध ऊंचा तीन शिखरों वाला पर्वत **(नाम)** वास्तव में **(ते पिता)** तेरा जनक है।

अञ्जन के प्रयोग से भयंकर ज्वर, कफरोग, सर्पविष दूर हो जाता है वह अञ्जन तीन शिखरों वाले पर्वत से लेना चाहिए। आयुर्वैदिक निघण्टु में अञ्जन को विषनाशक कहा है। वेद के कथन से प्रतीत होता है आञ्जन सर्पविष के लिए विशेष उपयोगी है।

यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि। यातूंश्च सर्वान् जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः।।9।।

अर्थ–(हिमवतः – परि) हिमालय श्रेणि में **(त्रैककुदं जातम्)** तीन शिखरों वाले पर्वतभाग से निकला हुआ **(यत्)** जो **(आञ्जनम्)** आञ्जन–अञ्जनभेषज है वह **(सर्वान् यातून् च)** और सब यातना देने वाली स्त्री कृमियों को **(जम्भयत्)** नष्ट कर देता है।

जो छोटे–छोटे कृमि आंख कान नाक मुख में घुस कर यातना देते हैं उनको तथा उनके दूषित प्रभाव को अञ्जन प्रयोग नष्ट कर देता है।

यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन।।10।।

अर्थ– (आञ्जन) हे आञ्जन! तू **(यदि वा)** चाहे **(त्रैककुदम्–असि)** तीन शिखरों वाले पर्वत से उत्पन्न होने के कारण त्रैककुद नाम का लोक में सौवीराञ्जन है **(यदि)** उत्पन्न होने के कारण 'यामुन' लोक में स्रोतोञ्जन कहा जाता है **(ते उभे नाम्नी)** तेरे दोनों गुणानुसार नाम (भद्रे) सुन्दर हैं– यथार्थ हैं **(ताभ्यां नः पाहि)** उनके द्वारा हमारी रोगों से रक्षा कर।

यहां मन्त्र में आञ्जन के दो नाम उत्पत्तिभेद से बताएं हैं एक पर्वत दूसरा नदी इसके उत्पत्तिस्थान हैं इन्हीं दोनों से इसे त्रैककुद और यामुन कहा है।।

इस सूक्त में अञ्जन अर्थात् सुरमे को शुद्ध उपयुक्त करके गोली या टिकिया बनाकर या चूर्ण के रूप में पास रखने का वर्णन है। सूक्त में अञ्जन के 'त्रैककुद' और 'यामुन' ये दो यौगिक नाम दिये हैं किसी रूढ पर्वत या नदी से इसका सम्बन्ध नहीं किन्तु 'त्रैककुद' से भूमितल पर तीन प्रक्रम से उठे हुए पर्वत त्रिककुद् और यामुन से दूसरी नदियों को मिलाती हुई उनसे मिलती हुई नदी यमुना अभीष्ट है [15] एवं पर्वत व नदी से उद्भव होने से उसके ये नाम हैं आयुर्वैदिक निघण्टु में इन्हें 'सौवीराञ्जन' और 'स्रोतेञ्जन' नाम दिये हैं तथा उन्हें 'पार्वतेय' और 'नादेय' भी कहा है–

अञ्जनं यामुनं चापि कापोताञ्जनमित्यपि।
तत्तु स्रोतोञ्जनं नदीजं च वाल्मीकं च जयामलम्।।(धात्वादि वर्ग–135 भाव प्रकाश नि0)
स्रोतोञ्जनं नदीजं च वाल्मीकं च जयामलम्।
सौवीरकं पार्वतेयं मेचकं नीलमञ्जनम्।।

(शालिग्राम निघण्टु0)

वेद ने इस उपर्युक्त सूक्त में अञ्जन को यातुजम्भन, हरितभेषज (कामला हलीमक पाण्डुनाशक) अन्दर प्रविष्ट हुए रोग को हटाने वाला, कृत्या (विषक्रिया) का निवारक, ढीलेपन का नाशक, दुःखनाशक, नेत्ररोग निवारक, तक्मा ज्वर (क्षय) का नाशक बलास– कफ रोग का विध्वंसक और सर्पविष को दूर करने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाया है। आयुर्वैदिक निघण्टु में आञ्जन के गुण उक्त दिये हैं–

स्रोतोञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत्।
कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राहिच्छर्दिविषापहम्।।

(धात्वादि वर्ग, भाव प्रकाश निघण्टु 137–138)

सिध्यक्षयःसुहृत् शीतं सेवनीयं सदा बुधैः।।
सौवीराञ्जनं प्रोक्तमत्यन्तं शिशिरं बुधैः।विषहिध्माविकारघ्नमक्षिरोगविषापहम्।।

(धन्वन्तरि निघण्टु)

इस प्रकार आयुर्वैदिक निघण्टु शास्त्र में प्रदर्शित अञ्जन के लाभ उक्त सूक्त में 'आञ्जन' अञ्जन से बने गोली टिकिया सुरमे के आंख नाक मुख आदि द्वारा सेवन से बताना कोई मन्त्र तन्त्र गण्डा तावीज की बात नहीं है। सूक्त में इसके बांधने का वर्णन भी नहीं। और यदि 'आञ्जन' को 'आऽअञ्जन' ऐसा माना जावे जैसा कि पदपाठ में दिया है तब तो बांधने का प्रसंग शशश्रृंग जैसा ही है क्योंकि उसका अर्थ 'आ' भली भांति आञ्जा जाने वाला लेप करने आंख में लगाने सुशोभित करने फैलने वाला पदार्थ आञ्जन हुआ। अस्तु। अब सामुद्रिक मणि के प्रसंग में लिखते हैं।

सामुद्रिक मणि में 'शङ्खमणि'–

अथर्ववेद के काण्ड 4 सूक्त 10 में शङ्खमणि का वर्णन है। सूक्त में शङ्ख से तात्पर्य साधारण शङ्खनहीं है क्योंकि वहां मन्त्रों में उसके विशेषण **शङ्खः कृशनः** (मन्त्र 1,2) **'दिवाकरः'** (मन्त्र 5) दिये हैं। यास्क निघण्टु में कृशन हिरण्य नामों में पढ़ा है **''कृशनं हिरण्यनाम''** (निघं0 1/2) यह शङ्खसुनेहरा है।'दिवाकर' सूर्य को कहते हैं इससे भी सुनेहरा चमकीला ही तात्पर्य है। अतएव यह मुक्ताशङ्खहै जिसमें मोती होता है। कौटिल्यार्थ शास्त्र 29 में मणिसंग्रह प्रकरण में मोती की योनि शङ्ख को भी बतलाया है '' **शङ्खः शुक्तिः प्रकीर्णकं च योनयः** '' (कौटि0 27 प्रकरण)। तथा '' आयुर्वेद प्रकाश'' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में भी मोती की योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान शङ्ख भी बतलाया है '' **शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः। वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञैर्मौक्तिकयोनयः** '' (आयुर्वेद प्रकाश। अ0 5/13) यहां सीपी, शङ्ख, हाथी, सुअर, सर्प, मछली, मेण्ढक, बांस, ये आठ मोती के उत्पत्ति स्थान है। इससे यह सिद्ध होता है कि यहां शङ्ख शब्द से मोती सहित मोती वाला शङ्ख अभीष्ट है अथवा शङ्ख शब्द में अकार मत्वर्थीय है या ताद्धित प्रत्यय का लोप है। जैसे निरुक्त में कहा गया है **''ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति– गोभिः श्रृणीत मत्सरम्–इति पयसः ''गोभिःसन्नद्धा पतति प्रसूता – स्नाव च श्लेष्मा च''** (निरु0 2/5) इसी सूक्त के छठे मन्त्र से यह भाव पुष्ट भी होता है **''रथे त्वमसि दर्शत इषुधौरोचनस्त्वम्** (अथर्व0 4/10/6) रथ में लगा हुआ द्रष्टव्य या दर्शनीय है और तरकस में चमकने वाला है। शङ्ख का मोती चमकने वाला है। शङ्ख का मोती चमकता है यह आयुर्वैदिक निघण्टु में भी स्पष्ट कहा है कि **''शङ्खस्याच्युतहारिणो जलनिधौ ये वंशजा कम्बुकास्तेष्वन्तः किल मौक्तिकं भवति वै तच्छुक्रतारानिभम्''** (शालिग्राम नि0) शङ्ख का मोती शुक्रतारा की तरह चमकीला होता है। सूक्त में उसे मणि कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है शङ्ख का मोती भी मणि है कयोंकि मोती को भी मणि कहते हैं। यह 'आयुर्वेद प्रकाश' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में भी कहा है "**वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः। चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजार्वतश्च सप्तमः। गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयो ह्यमी।।**" (आयुर्वेद प्रकाश 5/131) अतः उपर्युक्त हेतुओं से सूक्त के अन्दर शङ्ख शब्द से शङ्ख का मोती लेना अनुचित नहीं है और सूक्त में जो गुण बतलाए हैं वे गुण भी मोती के अन्दर आयुर्वैदिक निघण्टु में बतलाए हैं जिनको सूक्त व्याख्या के पश्चात् तुलना के लिए रखेंगे। अब सूक्त की व्याख्या करते हैं।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख कृशनः पात्वंहसः।।1।।

अर्थ – (**वातात्**) वायु से (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**विद्युतः**) विद्युत् से (**ज्योतिषः**) सूर्यरूप ज्योति से (**परि – जातः**) अधिजात सम्पन्न या प्रगट हुआ। तथा (**हिरण्यजाः**) सुवर्ण तेज से उत्पन्न (**सः**) वह (**कृशनः शङ्खः**) हिरण्यरूप सुनेहरी शङ्खमणि– शङ्खमुक्ता शङ्ख का मोती 'कृशनं हिरण्यम्' (निघं0 1/8) (**नः**) हमें (**अहंसः**) रोग पीड़ा और दोष से (**पातु**) बचावे।। 1।।

समुद्र के अन्दर शङ्ख में मोती केवल समुद्र के कारण ही नहीं होता किन्तु अनुकूल वृष्टि से जिसमें वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत, सूर्य तथा सुवर्णादि पार्थिवतेज का सम्बन्ध भी होता है अतएव वह रोग, पीड़ा और दोषों से बचा सकता है।।1।।

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्रिणो वि षहामहे।।2।।

अर्थ –(**यः**) जो (**समुद्रात्–अधि**) समुद्र के अन्दर से (रोचनानाम्) चमकीले पदार्थों में (**अग्रतः**) अग्र प्रथम (**जज्ञिषे**) उत्पन्न हुआ। उस (**शङ्खेन**) शंखमणि शङ्ख के मोती द्वारा (**रक्षांसि**) राक्षसों दृश्य घातक जन्तुओं को (**अत्रिणः**) रक्त मांस आदि शरीर की आन्तरिक धातुओं के खाने वाले कृमियों को (**हत्वा**) मारकर (**विषहामहे**) उन पर विजय पावें या उनके दूषित विषों को सहन कर सके निराकृत कर सकें।।

समुद्र के अन्दर अन्य चमकीली वस्तुओं में शङ्खका मोती सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ या सर्व श्रेष्ठ वस्तु है। उसके द्वारा स्थूल बाहिरी तथा शरीर के भीतरी सूक्ष्म जन्तुओं के आक्रमण से बच सकते है।। 2।।

शङ्खेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः।। 3।।

अर्थ –(**शङ्खेन**) शङ्खमणि – शङ्खमुक्ता से (**अमीवाम्**) रोग को (**अमतिम्**) भोगवासना को "**अशनाया वा अमतिः** (श09/2/3/8) (**उत**) तथा (**शङ्खेन**) शङ्खमणि शङ्खमुक्ता से (**सदान्वाः**) सदा शब्द कराने वाली रुलाने वाली आन्तरिक मानसिक रोग। वेदनाओं को दूर करे '**सदान्वा सदानोनुवे शब्दकारिके**" (निरु0 6/30) (**कृशनः शंखः**) सुनेहरी शङ्खमणि शङ्खमुक्ता (**विश्वभेषजः**) समस्त भेषजधर्म वाला (**नः**) हमें (**अंहसः**) रोग दोष से (**पातु**) बचावे।।

शङ्खमणि शङ्खमुक्ता से शारीरिक मानसिक रोग तथा अतिकामवासना आदि दोष दूर होते हैं।। 3।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः। स नो हिरण्यजाः श ङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः।।4।।

अर्थ –(**दिवि जातः**) द्युलोक में प्रकट हुआ वृष्टि जल में बीज भाव से प्राप्त हुआ। अथवा लुप्तोपमा।' द्युलोक में प्रकट हुए सूर्य के समान (**सः समुद्रजः**) यह समुद्र से उत्पन्न हुआ (**हिरणयजाः**)तेजोमय तत्वों से सम्पन्न (**शङ्खः मणिः**) शङ्खमणि शङ्खमुक्ता (**सिन्धुतः**) स्यन्दनशील लहरों वाले समुद्र या समुद्र से मिलते हुए नदमुख से (**पर्याभृतः**) खोज से लाया हुआ (**नः**) हमारे लिए (**आयुष्प्रतरणः**) आयु का फैलाव करने वाला हो।

शङ्खमणि, शङ्खमुक्ता आयु का वर्धक है सूर्य के समान कान्ति वाला है वह समुद्र में बडे नद के मुख पर (जो समुद्र से मिलता है वहां) प्राप्त हो सकता है। ऐसा मन्त्र का आशय है।। 4।।

समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः। सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्य ः।।5।।

अर्थ – (**समुद्रात् –जात : मणिः**) समुद्र से प्रकट हुआ शङ्खमणि शङ्ख का मोती (**वृत्रात् जातः दिवाकरः**) मेघ से प्रकट हुए मेघ से बाहर निकले सूर्य के समान है (**सः**) वह (**हेत्याः**) विषादिजनित घातक क्रिया से (**देवासुरेभ्यः**) दैविक और आसुरी उत्पातों से आकाश और भूमि में वर्तमान पदार्थो के उपद्रवों से (**अस्मान्**) हमें (**सर्वतः**) सब ओर से (**पातु**) बचावे।।

शङ्खमणि –शङ्ख का मोती आकाश के सूर्य वायु मेघ आदि पदार्थो के उत्पातकृत प्रभावों रोगों से और पृथिवी के कृमि–कीटों और भूगर्भीय उपद्रवों के किए कष्टों तथा विषकृत घातक क्रियाओं से रक्षा करता है।।5।।

हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे। रथे त्वमसि दर्शत इषुधौरोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत्।।6।।

अर्थ – (**हिरण्यानाम्–एकः असि**) हे शङ्खमणि शङ्खमुक्ता ! तू चमकने वाले सुनहरी पादार्थो में एक है (**त्वम्**) तू (**सोमात्**) सोम से चन्द्रमा से उसके प्रभाव से या सौम धर्म से (**अधिजज्ञिषे**) उत्पन्न हुआ है (**त्वम्**) तू (**रथे**) रथ में संग्राम रथ में (**दर्शतः–असि**) दर्शनीय है (**त्वम्**) तू (**इषुधौ**) बाणपात्र–तरकसमें (**रोचनः**) चमकने वाला है (**नः**) हमारी (**आयूंषि**) आयु को (**प्रतारिषत्**) बढा " अत्र पुरुषव्यत्ययः"।।6।।

देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व_न्तः। तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु।।7।।

अर्थ– (देवानाम्) शंखमणि, –मुक्ता शङ्ख देवताओं की (**कृशनम्–अस्थि बभूव**) सुनेहरी हड्डी है (**तत्**) वह (**आत्मन्वत्**) आत्मा वाला हो (**अप्सु–अन्तः**) जलों के अन्दर (**चरति**) विचरता है (**तत्**) उस शङ्खमुक्ता को (**ते**) तेरे (**वर्चसे**) तेज के लिए (**आयुषे**) जीवन के लिए (बलाय) बल के लिए (**दीर्घायुत्वाय**) दीर्घ आयु के लिए (**शतशारदाय**) सैकड़ों वर्ष जीने के लिए (**कार्शनः**) उस सुनेहरे शङ्ख से निकला मोती (**त्वा**) हे पात्र ! या रोगी ! तुझे (**अभिरक्षतु**) रोग से बचावे।।

जीवन, तेज, बल, दीर्घायु और रोगों से बचाव के लिए शङ्खमणि – शङ्खमुक्ता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांधने अंगूठी या अन्य भूषणों में जड़ित करा कर धारण करने का विधान मन्त्र मे है।

इस समस्त सूक्त के अन्दर शङ्खमणि– शङ्खमुक्ता के मोती को बांधने से मानसिक दोष, बाहरी और रक्तभक्षक आन्तरिक कृमियों के आक्रमण, शारीरिक और तीव्र मानसिक रोग, विषघातक क्रिया, आकाशीय और भूमि के उत्पातों के प्रभाव का नाशक तथा तेज बल दीर्घायु और स्वास्थ्य का देने वाला एवं रथ में जड़ा, तरकस में लगा युद्धक्षेत्र में प्रताप का बढ़ाने वाला चमकदार सुनेहरी सामुद्रिक रत्न बतलाया है। जो कौटिल्यार्थशास्त्र तथा आयुर्वैदिक ग्रन्थों के द्वारा शङ्खका मोती है और वह बड़ा चमकदार सुनेहरी होता है यह हम प्रथम ही सप्रमाण बतला चुके हैं। अब आयुर्वैदिक ग्रन्थों में उक्त मोती के गुण वेद के साथ तुलना करने के लिए नीचे प्रदर्शित करते है।

मौक्तिकं सुमधुरं सुशीतलं दृष्टिरोगशमनं विषापहम्। राज्ञयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्द्धनम्।। कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्य जित्। पुष्टिदंवृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम्।। (नि० र०)

इस प्रकार आयुर्वैदिक शास्त्र के अनुसार उपर्युक्त लाभों के लिए शंखमणि –शंखमुक्ता का धारण सेवन करना कोई मन्त्र जादू गण्डा तावीज की बात नहीं है। अस्तु।

प्राणिज या जान्तव मणि में 'अस्तृत' मणि–

अथर्ववेद का 19 सूक्त 46 में 'अस्तृत' मणि का वर्णन है यह 'अस्तृत' शब्द अस्त्रित का है। सम्भव है मूलरूप वैदिक पाठ 'अस्रित' हो अन्यथा अस्रित का अस्तृत छान्दस प्रयोग है, उच्चारण में तो भेद नहीं है अर्थो में भी भेद न हो यह मानना कोई अनुचित नहीं है जैसे 'क्रिमि' और 'कृमि' शब्द दोनों उच्चारण में समान होते हुए अर्थो में भी समान है। इस प्रकार 'अस्तृत' को श्रुतिसामान्य से 'अस्त्रित' समझ लेना भी उचित हो सकता है निरुक्त में कहा भी है "**अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद् वृत्तिसामान्येन**"(निरु० 2/1) इस प्रकार अस्तृत को श्रुति–सामान्य से अस्त्रित समझ लेने से इसका अर्थ व्याघ्रनखजडित शस्त्र हो जाता है क्योंकि 'अस्त्र' का अर्थ व्याघ्रनख है "अस्त्रं व्याघ्रनखे" (वैद्यक शब्दसिन्धुः) इस अर्थ में वेद की इसी सूक्त में अन्तःसाक्षी भी है देखिए

"**अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते। व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।**" (मन्त्र 5) यहां स्पष्ट अस्तृत मणि को या उसके धारण करने वाले को व्याघ्र कहा गया है। सायण के वचन भी यहां देखने योग्य हैं– "**एवं वीर्यप्राणोपतो मणिस्त्वं व्याघ्रः**" (सायणः) व्याघ्र जंगल का राजा और पराक्रमी है उसके नख से जड़ा हुआ शस्त्र धारण करना हाथ में बांधना राजा के अन्दर व्याघ्रपराक्रम को उत्पन्न करने वाला हो सकता है। इस सूक्त में है भी पराक्रम का विषय, जैसे व्याध्र शेर जंगल के सब प्राणियों को परास्त कर देता है एवं राजा के अन्दर भी शत्रुओं पर पराकम करने का साहस आवे इसलिए इस अस्तृत मणि के बांधने का अथर्ववेद में विधान है। मन पर शूरता वीरता पराक्रम के प्रभाव को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालना ही यहां उद्देश्य है।यहां कोई मन्त्र या जादू की बात नहीं किन्तु मनोवैज्ञानिक तथा धनुर्विद्या की बात है। अस्तु। अब सूक्त का अर्थ करते हैं।

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय
चास्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।1।।

अर्थ –(**प्रजापतिः**)प्रजापालक सम्राट् (**त्वा**) तुझ (**अस्तृतम्**)व्याघ्रनखजड़ित शस्त्र को (**वीर्याय**) वीर्य–बल के लिए वीर्यप्राप्ति के लिए (**कम्**) अवश्य (**प्रथमं बध्नात्**) प्रथम बांधता है। अतः (**तत्**) उसे (**ओजसे**) प्रताप के लिए (**च**) और (**बलाय**) बल के लिए (**ते**) हे राजन् ! तेरे (**बध्नामि**)बांधता हूं (**अस्तृतः**)वह व्याघ्रनखजड़ित शस्त्र (**त्वा**) तेरी (**अभिरक्षतु**) रक्षा करे।।1।।

व्याघ्रनख अर्थात् शेर का पंजा लगा हुआ शस्त्र हाथ में बांधने से राजा में मानसिक विद्युत् का प्रवाहरूप पराक्रम बढ़ जाता है। उससे आयु, तेज, प्रताप, बल का राजा में संचार हो जाता है। राजसिंहासन पर बैठने वाले प्रत्येक राजा को पराक्रम देने वाला इस सिंघनख पंजे को शस्त्ररूप में धारण करना अत्युत्तम और आवश्यक है।।1।।

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन्
पणयो यातुधानाः। इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व
पृतन्यतः सर्वां छत्रून्
विषहस्वास्तृतस्त्वाभिरक्षतु।2।

अर्थ – (**अस्तृतः**) अस्तृतमणि–व्याघ्रनखयुक्त शस्त्र ''विभक्तिलुक्'' (**इमम प्रमादं रक्षन्**) इस प्रमादरहित या इस राजा की निरन्तर रक्षा करता हुआ (**ऊर्ध्वःतिष्ठतु**) ऊंचा उन्नत रूप में स्थिर होवे (**यातुधानाः**) हे राजन् ! यातना धारणा करने वाले यातनाकारी (**पणयः**) व्यवहार प्रयोग (**मा त्वा दभन्**) तुझे तिरस्कृत न करें। (**इन्द्र इव**) विद्युत् की भांति (**दस्यून्**) दस्युओं को (**अवधूनुष्व**)नष्ट कर(**पृतन्यतः**) संग्राम चाहते हुए (**सर्वान् शूत्रन्**)सब शत्रुओं को(**विषहस्व**)परास्त कर(**अस्तृतः**)व्याघ्रनखशस्त्र(**त्वा**)तेरी(**अभिरक्षतु**) रक्षा करे।3।

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो
बलमस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।3।।

अर्थ– (**शतं प्रहरन्तः**) व्याघ्रनख शस्त्र धारक को सैकड़ों प्रकार से प्रहार करने वाले शत्रुजन (**न तस्तिरे**) हिंसित नहीं कर सकते (**च**) और (**निघ्नन्तः**) हिंसित करने वाले शत्रुजन भी (**न**) हिंसित नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उस व्याघ्रनख शस्त्र में (**चक्षुः**) प्रहार आदि करते हुए शत्रुओं के नेत्र (**प्राणम्**) प्राण (**अथो**)और (**बलम्**) बल को (**इन्द्रः**) विद्युत् (**पर्यदत्त**) तेरे परिगृहीत–वश कर देती है। वह (**अस्तृतस्त्वाभिरक्षतु**) व्याघ्रनखशस्त्र तेरी रक्षा करे।।3।।

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परिधापयामो यो
देवानामधिराजो बभूव। पुनस्त्वा देवाः प्रणयन्तु
सर्वेऽस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।4।।

अर्थ – (**त्वा**) हे राजन् ! तुझे (**इन्द्रस्य वर्मणा**) इन्द्र के कवच से (**परिधापयामः**) परिरक्षित करते ढांपते हैं (**यः**) जो इन्द्र (**देवानाम्**) देवों का (**अधिराजः**) सम्राट् अधिपति (**बभूव**) है (**पुनः**) फिर (**सर्वे देवाः**) उस इन्द्र के सब देव–दिव्य गुण– दिव्यतरंगे (**त्वा**) तुझे (**प्रणयन्तु**) आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरित करें और (अस्तृतः) व्याघ्रनखशस्त्र (त्वा) तेरी (अभिरक्षतु) रक्षा करे।।4।।

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते। व्याघः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।5।।

अर्थ– (अस्मिन् अस्तृते मणौ) इस व्याघ्रनखशस्त्र मणि में (एकशतं वीर्याणि) एक सौ वीर्य बल हैं (अस्मिन्) इसमें (सहस्रं प्राणाः) हजारों प्राण हैं जीवनको उत्साहित करने वाली शक्तियां हैं, अतः इस व्याघ्रनखशस्त्र रूप मणि को हाथ में धारण करके हे राजन् ! तू (व्याघ्रः) साक्षात् व्याघ्र शेर जैसा बना हुआ है (सर्वान्–शत्रून्) सब शत्रुओं पर (अभितिष्ठ) आक्रमण कर (यः) जो (त्वापृतन्यात्) तेरे साथ लड़ना चाहे (सः) वह (अधरः –अस्तु) परास्त हो। वह (अस्तृतः) व्याघ्रनख शस्त्र (त्वा) तेरी (अभिरक्षतु) रक्षा करे।।5।।

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः। शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाछभिरक्षतु।6।।

अर्थ– (घृतादुल्लुप्तः) घृत से चुपड़ा हुआ या घृत से तेज किया हुआ है या घृत से चुपड़ा चिकना बना हुआ जैसा (मधुमान्) शहद से भी संस्कृत किया गया हुआ मधु जैसा चमकदार (पयस्वान्) दूध जैसा शुभ्र रंग का (सहस्रप्राणः) हजारों प्राणशक्तियों का देने वाला (शतयोनिः) सैकड़ों कारणशक्ति वाला (वयोधा.) आयु का धारक है। उससे हे राजन् ! तू (शंभूः) कल्याणसाधक (मयोभूः) सुख का अनुभव कराने वाला (च) और (ऊर्जस्वान्) बलवान् (च) और (पयस्वान्) वीर्यवान् हो (अस्तृतः) वह व्याघ्रनखशस्त्र (त्वा) तेरी (अभिरक्षतु) रक्षा करे।।6।।

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा। सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।।7।।

अर्थ– (यथा) जैसे हे राजन् ! (त्वम्) तू (उत्तरः) ऊंचा बढ़ा हुआ (असपत्नः) शत्रुरहित (सपत्नहा) शत्रुनाशक (असः) हो। तथा (सजातानाम्)समान उत्पत्ति वालों– समान देश वेश वालों का (वशी) वश करने वाला नियन्त्रक (असत्) हो सके (तथा) वैसे (सविता) सर्वैश्वर्यवान् जगदीश्वर (त्वा) तुझे (करत्) बनावे (अस्तृतः) व्याघ्रनख शस्त्र (त्वा) तेरी (अभिरक्षतु) रक्षा करे।।7।।

इस प्रकार इस सूक्त में ' अस्तृत मणि ' अर्थात् व्याघ्रनखशस्त्र के हाथ में बांधने धारण करने से मन पर वीरता आदि का प्रभाव पड़ कर शारीरिक तथा मानसिक बल उत्साह, तेज, ओज, पराक्रम, वीरता, शूरता आदि गुण बढ़ते हैं। जैसे खाली हाथ की अपेक्षा साधारण लाठी हाथ में रखने पर मनुष्य में बहुत कुछ उत्साह साहस आ जाता है फिर व्याघ्रनख जैसे शस्त्र के हाथ में रखने पर तो कहना ही क्या है। इसमें किसी गुप्त मन्त्र जादू या गण्डा तावीज की बात नहीं यह तो मनोवैज्ञानिक तथा धनुर्विद्या सम्बन्धी बात है। वेद के इस 'व्याघ्रनखशस्त्र' का वर्णन प्राचीन भारतीय युद्ध और युद्ध की सामग्री 'नामक पुस्तक में ''सिंहनखा' नाम का शस्त्र सं0 46 में दिया हुआ भी है।अस्तु।

वानस्पत्य मणि– वनस्पतियों से बनाई मणि वानस्पत्य कहाती है उसके दो भेद हैं। एक तो चन्दन आदि सारवान् तीव्र गन्ध वाले वृक्षों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकतानुसार गोल, चतुष्कोण (चौकोन), त्रिकोण आदि टुकड़े के रूप में होती है (''पीलुमयो मणिरग्निगर्भः'' – कौटिल्यार्थ0 प्र0 178)।दूसरे विशेषगुणकारी एक या अनेक औषधियों के पत्र आदि भागों में स्वरस से रसक्रिया की बनाई गोली या पीसी लुगदी की या उनके चूर्ण की बनाई गोली या टिकिया के रूप में होती है कौटिल्यार्थ शास्त्र में भी ऐसी मणियों के बनाने का विधान किया है–

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।'

(कौटिल्यार्थ0 ।अधि0 14 ।प्रकरण 179)

इस वचन में सर्व विष हरने के लिए 'जीवन्ती' अपराजिता या अतीस, मोखा, नागकेसर, वन्दा, रोंजने या महानिम्ब पर हुआ पीपल, इन सबका इन सबके स्वरस की रसक्रिया या चूर्ण की मणि (गोली या टिकिया) बनाने का विधान है। अस्तु।

इस प्रकार वनस्पतियों के स्वरस से रसक्रिया वटी तथा उनके मूल, काण्ड, सार आदि की मणियां अथर्ववेद में कई वर्णित हैं हम उन सबका भी यहां विवेचन करते है।

जङ्गिड मणि– अथर्ववेद काण्ड 2 सूक्त 4 तथा काण्ड 19 सूक्त 34–35 में 'जङ्गिड' मणि का वर्णन है। वह 'जङ्गिड' क्या है। यह हमें देखना है। सायण ने अथर्व0 2/4 के भाष्य में तो बनारस में प्रसिद्ध एक वृक्ष बतलाया है ''**जङ्गिड : वृक्षविशेषो वाराणस्यां प्रसिद्धः**'' (अथर्व0 2/4/1 सायणः) और अथर्व0 काण्ड 19 सू0 34 के भाष्य में उत्तर देश में प्रसिद्ध विशेष ओषधि बतलाई है। ''**जङ्गिडो नाम कश्चित् ओषधिविशेषः स च उत्तरदेशे प्रसिद्धः**''(अथर्व0 13/34/1)इस प्रकार सायण का वचन सन्दिग्ध तथा परस्परविरूद्ध होने से प्रमाण न रहा। 'अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका' में इन दोनों स्थलों पर देवता चन्द्रमा, जङ्गिड और वनस्पति को बतलाया है।

दीर्घायुत्वाय इति चान्द्रमसमुत जङ्गिड देवताकम् ।(अथर्व0 – बृहत्सर्वा–2/4)

जङ्गिडोसिजङ्गिड इति द्वे प्रथमं दशकं द्वितीयं पञ्चकमङ्गिर उभे मन्त्रोक्तदेवत्ये उत वानस्पत्ये। (अथर्व0 –बृहत्सर्वा0 19/34)

इस प्रकार काण्ड 19/34 में उसे वनस्पति नाम से पुकारा है ''**उग्र इत्ते वनस्पते** '' (19/34/9) तथा का0 2 सू0 4 में उसे अरण्य से लाई हुई बतलाया है ''**अरण्यादन्य आभृतः**'' (2/4/5)

इतने विवरण से यहां 'जङ्गिड ' का स्वरूप निश्चय किया जा सकता है।

उपर्युक्त वचनों में जङ्गिड कोई वनस्पति है और वह चनद्रमा से अभिन्न वस्तु है ऐसा कहा गया है। ऐसी वस्तु यहां सोम ओषधि है सोम एक वनस्पति भी है जैसा कि ऋग्वेद के सोमदेवता वाले नवम मण्डल में सोम को वनस्पति नाम दिया है। '' **वनुस्पतिं पवमानुमध्वा समंङ्ग्धु धारया**'' (ऋ0 9/5/10) तथा सोम को चन्द्रमा भी कहते हैं ''**चन्द्रमासोमलताभेदे**'' (वैद्यक शब्दसिन्धुः) ''**अंशुमान्मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः। एते सोमाः समाख्याता वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः**'' (सुश्रुत चिकित्सास्थान। अ0 29/3–6) अतएव अथर्ववेदीया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत्सर्वानुक्रमणिका के ''**दीर्घायुत्वाय इति चान्द्रमसमुत जङ्गिड देवताकम्**'' इस वचन में (4/2) सूक्त का देवता चन्द्रमा तथा जङ्गिड कथन से 'जङ्गिड' का अर्थ यहां सोम है। जङ्गिड शब्द 'जङ्गन्ति वैदिक धातु से बना है 'जंगति' गति के अर्थ में है 'जंगति गतिकर्मा' (निघं0 2/14) से बना छान्दस प्रयोग ''जाङ्गिड'' है जिसका अर्थ स्वयं अपनी तरंगों धाराओं द्वारा गति करने वाला है तथा सेवन करने वाले में ज्ञान और प्रगति की धाराओं को उत्पन्न करने वाला है। **पवस्व सोम धारया**'' ''**पवित्रं सोम रंह्या**'' (ऋ0 9/1/1, 9/2/1) इत्यादि वेदवचनों से भी स्पष्ट है। अथर्व0 का0 2। सू0 4 में ''**दीर्घायुत्वाय**'' सोम को दीर्घ आयु देने वाला कहा है। तथा अथर्व0 का0 19/35/2 में ''**देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम्**'' सोम को ब्राह्मणों का रक्षक तथा उपादेय कहा है। वेद में कहे हुए आयुवृद्धि और विद्याप्राप्ति या बुद्धिप्राप्ति उक्त दोनों गुण सुश्रुत आयुर्वैदिक ग्रन्थ में सोम के सेवन से बतलाये भी हैं। ''**ओषधीनां पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः। दशवर्षसहस्राणि नवां धारयते तनुम्। नाग्निर्न तोयं न विषं न शस्त्रं नास्त्रमेव च। तस्यालमायुः क्षपणे समर्थाश्च भवन्ति हि।।'' साङ्गोपाङ्गांश्च निखिलान् वेदान् विन्दति तत्त्वतः** (सुश्रुत चिकि0 29/19–24)। इस प्रकार विवेचन और प्रमाणों से जङ्गिड का अर्थ सोम ओषधि है और वह (अथर्व0 2/4) में सोमरसक्रिया से बनाई मणि अर्थात् गोली या टिकिया है। हां अथर्व0 19/34–35) में जंगिड को मणि विशेषण न देने से यह 'जङ्गिड ' सोमरस है जिसको पीने से उक्त लाभ होते हैं, अस्तु।

अब हम उपर्युक्त सूक्तों के अर्थ करते हैं। प्रथम अथर्व0 का0 2 सू0 4 को देते हैं।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव। मणिं विष्कन्धदूषणं जंगिडं बिभृमो वयम्।।1।।

अर्थ – (**वयम्**) हम (**अरिष्यन्तः**) हिंसित न होते हुए (**सदा–एव**) सदा ही (**दक्षमाणाः**) बढ़ते हुए ''दक्षवृद्धौ'' (**भ्वादि0**) (**दीर्घायुत्वाय**) दीर्घ आयु के लिए दीर्घजीवन के लिए (**बृहते रणाय**) महान् रमण के लिए (**विष्कन्धदूषणम्**) स्कन्धों –जोड़ों के शैथिल्य को दूर करने वाले (**जङ्गिड मणिम्**) अन्तः स्थल में तथा आत्मा में उन्नति की तरंगों को उठाने वाली सोमरसक्रिया से बनी मणि –गोली टिकिया को (**बिभृमः**) धारण – सेवन करते है।।1।।

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात्। मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः।।2।।

अर्थ– (**सहस्रवीर्यः – जङ्गिड : –मणिः**) सहस्त्रशक्ति वाला सोमरसक्रिया गुटिकारूप जङ्गिड मणि (**जम्भात्**) नाश से क्षय से देहपात से (**विशंरात्**) शरीर के छिन्न भिन्न होने से (**विष्कन्धात्**) स्कन्धों–जोड़ों के शैथिल्यभाव से (**अभिशोचनात्**) मोह आदि मानसिक रोग से (**नः**) हमारी (**विश्वतः**) सब ओर से (**परिपातु**) भली भांति रक्षा करे।।2।।

अयं विष्कन्धं सहतेयं बाधते अत्रिणः।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिड पात्वंहसः।।3।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ –(अयम्) यह जङ्गिड मणि (विष्कन्धं सहते) स्कन्धों रहित सर्वथा शिथिल निःसत्व बनाने वाले विषप्रयोग आदि को सहता है उसे निर्बल करता है (अयम्) यह (अत्रिणः – बाधते) राक्षसों रुधिर मांसभक्षक कृमियों को हटाता है –नष्ट करता है " अत्रिणो वै रक्षांसि" (षड्0 3/1) (अयं विश्वभेषजः –जङ्गिड) यह समस्त रोगों का भेजषरूप जङ्गिड औषधमणि (नः) हमें (अंहसः) दोष से रोग से (जातु) बचावे।। 3।।

देवैर्दत्तेन मणिना जंगिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे।।4।।

अर्थ– (देवैर्दत्तेन) देवों के द्वारा दी हुई (मयोभुवा) सुखसम्पादक (जङ्गिड`न मणिना) जङ्गिड मणि से (विष्कन्धम्) शरीर को शिथिल निःसत्व करने वाले विषप्रयोग को या विषप्रयोग की विफलता को। तथा (सर्वारक्षांसि) सारे घातक कृमियों जन्तुओं को (व्यायामे) पौरुष–संघर्ष के अवसर पर (सहामहे) सहते हैं– उनके प्रभावों से रहित होते हैं।।4।।

शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः।। 5।।

अर्थ – (शणः – च) शण (जङ्गिडः –च) और जाङ्गिड सोमरसक्रिया गुटिकारूप मणि दोनों (विष्कन्धात्) विष –प्रयोग से (मा) मेरी (रक्षताम्) रक्षा करें (अरण्याद् अन्यः) जंगल से अन्य जङ्गिड सोम (कृष्याः – अन्यः) खेती से अन्य शण (आभृतः) लाया गया है "हृग्रहोर्भश्छन्दसि" (अष्टा0 वार्तिक सूत्रम्) इस प्रकार (रसेभ्यः) रसों से सोम की रसक्रिया से बना हुआ।

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।।6।।

अर्थ– (अयं जङ्गिडः – मणि) यह जङ्गिड मणि (कृत्यादूषिः) कृत्या हिंसकक्रिया विषप्रयोग को दूषित करने वाली है (अथो) तथा (अरातिदूषिः) अपौष्टिक अवयवों तथा शरीराङ्गों का हास करने वाले कृमियों को नष्ट करने वाली बल– सम्पन्न सोमरस–क्रिया से बनी गुटिका (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्रतारिषत्) आगे बढ़ावे।।

इस सूक्त में ' जङ्गिड मणि'अर्थात् सोमरसक्रिया गुटिका के गुण बतलाएं हैं कि दीर्घायु स्वास्थ्य पुष्टि देने वाला विषप्रयोग और शरीरहास क्षय का निवारक, शरीर के अन्दर रुधिर मांसभक्षक कृमियों का नाशक है। वह ऐसा जङ्गिड मणि सोम के स्वरस की रसक्रिया –गुटिका शण के योग से बनाई हुई उसमें गुटिका बनाने के लिए शण अन्दर डाल कर गोली बनाना लक्षित होता है। उस गुटिका के धारण सेवन से उसकी उड़नशील गन्ध और रस श्वास के साथ फुफ्फुसों के अन्दर जाने से लाभ होता है।

दूसरा स्थल ' जङ्गिड ' का है अथर्व0 का0 19/ सू0 34–35। यहां मन्त्रों में जङ्गिड को मणि शब्द से सम्बोधित किया है परन्तु वह सोम वनस्पति के बने जङ्गिड को घिस कर पान लक्षित होता है, अर्थसहित सूक्त यहां दिये जाते हैं।

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः।1।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ– (जङ्गिड :–असि जङ्गिड :) तू जङ्गिड सचमुच जङ्गिड है (जङ्गिड :) जङ्गिड (रक्षिता– असि) तू रक्षा का साधन है (जङ्गिड) जङ्गिड (अस्माकम्) जो हमारे (द्विपात्) दो पैर वाला मनुष्य आदि (चतुष्पात्) चार पैर वाला गौ आदि हैं (सर्वम्) सब की (रक्षतु) रक्षा करे ।।1।।

या गृत्स्य स्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत्।।2।।

अर्थ– (याः) जो (त्रिपञ्चाशीः–गृत्स्यः) तीन बार पचास[16] गर्धनशील अर्थात् शरीरधातुओं को खाने वाली व्याधियां है (च) तथा (ये शतं कृत्याकृतः) जो सौ सैकड़ों विषक्रिया करने वाले प्रयोग हैं (सर्वान्) सब को (तेजसः) तेज से (जङ्गिड :) जङ्गिड (विनक्तु) विचलित करे "विजि भयचलनयोः" (रुधादि0) तथा (अरसान् करत्) रसहीन कर दे।

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय।।3।।

अर्थ– (जङ्गिड) हे सोमरसरूप जङ्गिड ओषधि! तू (कृत्रिमं नादम्) कृत्रिम–स्फोटक पदार्थों से किए नाद को जो कि मस्तिष्क में या मन में भयरूप में बैठ गया है उसको (अरसम्) रसहीन–प्रभावहीन कर (सप्तः विस्रसः) शत्रु के द्वारा छोड़ी हुई सात विद्युत् –धाराओं के प्रभावों या सात मूर्धा के छिद्रों –कानों आंखों नासिका छिद्रों और मुख में स्वयं बहते हुए रुग्ण छिद्र स्रोतों को (अरसाः) निर्बल कर। तथा (अमतिम्) रोग महामारी या निर्बुद्धिता को (इतः) यहां से (इषुम्–अस्ता– इव) बाण को फेंकने वाले के सदृश (अपशातय) नष्ट कर।।3।।

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः। अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।।4।।

अर्थ – (अयं सहस्वान् जङ्गिड :)यह बलप्रद जङ्गिड सोमरस (कृत्यादूषणः) कृत्याओं – हिंसकक्रियाओं को नष्ट करने वाला (एव) अवश्य है (अथो) तथा (अरातिदूषणः) शरीर के अन्दर पौष्टिक अवयवों – रोगकारणों शरीर की क्षति के कारणरूप कृमियों का नष्ट करने वाला है (अथो) और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (प्रतारिषत्) पूर्ण करता है– बढ़ाता है।।4।।

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा।।5।।

अर्थ– (जङ्गिड स्य) जङ्गिड की (सः) वह यह (महिमा) प्रभाव (नः) हमारी (विश्वतः) सब ओर से (परिपातु) रक्षा करता है (येन) जिससे (ओजसा) ओज को प्राप्त करके उस से (विष्कन्धनम्) अंगशैथिल्य रोग रूप (संस्कन्धम्) अंगकाठिन्य रोग रूप (ओजः) रोगबल को (सासहे) तिरस्कृत करता हूं।।5।

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः।।6।।

अर्थ– (भूम्याम् –अधि) भूमि में (निष्ठितम्) निहित–गुप्तरूप से रखे हुए (त्वा) तुझ सोमरूप जङ्गिड को (देवाः) देवताओं–विद्वानों ने (त्रिः –अजनयन्) तीन बार वर्षा, ग्रीष्म और शीत ऋतुओं में उत्पन्न किया है। (तम्–उत्वा) उस तुझको निश्चय (अङ्गिरा) अङ्गिरा अर्थात् अथर्ववेदविधि में विद्वान् कुशल या अग्नि या प्राण "अंङ्गिरा वा अग्निः" (श0 6/4/4/4) "प्राणो वा अङ्गिराः"(श0 6/1/2/28) तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(**पूर्व्याः—ब्राह्मणाः —इति**) पूर्वकाल में उत्पन्न या श्रेष्ठ ब्राह्मण ही (**विदुः**) जानते हैं ।6 ।।

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वां तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ।।7 ।।

अर्थ— (**त्वा**) हे जङ्गिड सोम ! तुझे (**न**) न (**पूर्वाः— ओषधयः**) पहिली ओषधियां तथा (**त्वा**) तुझे (**न**) न (**याः— नवाः**) जो नई ओषधियां हैं वे (**तरन्तिं**) पार करती हैं— लांघती हैं (**जङ्गिडः**) जङ्गिड रूप सोम (**उग्रः**) उग्र प्रबल (**विबाधः**) रोग आदि का तिरस्कर्ता है। तथा (**सुमङ्गलः**) उत्तम कल्याण—साधक (**परिपाणः**) पूर्णरक्षक है।।7।।

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्य ददौ ।।8।।

अर्थ— (**अथ**) तथा (**उपादान**) हे समृद्धि देने वाले (**भगवः**) भगवान् ऐश्वर्यवान् (**अमितवीर्य**) अतुल शक्तिमान् (**जङ्गिड**) जङ्गिड सोम ! (**उग्राः**) तीव्र बलवान् या उग्र तेजस्वी जन (**ते**) तेरा (**पुरा ग्रसते**) पूर्वकाल में भक्षण करते थे या प्रथम भक्षण करते थे तथा तेरे अन्दर (**इन्द्रः**) इन्द्र ने —सूर्य नें (**वीर्यम्**) वीर्य प्रबल गुण (**उपददौ**) स्थापन किया है।।8।।

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ।।9।।

अर्थ— (**वनस्पते**) हे वनस्पति ! (**ते**) तेरे अन्दर (**उग्र —इत्**) निश्चित उग्र प्रबल (**इन्द्रः**) इन्द्र ने (**ओज्मानम्**) ओज अतिबल को (**आदधौ**) स्थापित किया है (**ओषधे**) हे जङ्गिड ओषधि ! तू (**सर्वाः**) सब (**अमीवाः**) रोगों का (**चातयन्**) नाश करता हुआ (**रक्षांसि**) दुःख—दायक कृमियों को (**जहि**) नष्ट कर।।

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ।10 ।

अर्थ— (**जङ्गिडः**) जङ्गिड सोम (**आशरीकम्**) शरीर को पूर्ण आघात पहुंचाने वाले रोग को (**विशरीकम्**) उसी विशेष अंग को तोड़ देने वाले रोग को (**बलासम्**) बलनाशक क्षय या कफरोग को (**पृष्ट्यामयम्**) पसलियों में छाती में होने वाले शूल रोग को (**तक्मानम्**) अति—कष्टदायक विषमज्वर को (**विश्वशारदरम्**) समस्त शरद् ऋतु में रहने वाले पाण्डु रोग को (**अरसान्**) रसहीन शक्ति हीन निर्बल अर्थात् नष्ट (**करत्**) कर देता है।। 10।।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ।। 1 ।।

अर्थ— (**ऋषयः**) ऋषियों ने (**इन्द्रस्य नाम**) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का नाम ग्रहण करते हुए ईश्वर को आराधन उपासन करते हुए (**जङ्गिडम्**) सोम— रूप जङ्गिड ओषधि को (**ददुः**) खोजकर दिया है। पुनः (**यम्**) जिसको (**देवाः**) विद्वानों – आयुर्वेदविद्याकुशल विद्वानों ने (**अग्रे**) प्रथम प्रथम (**विष्कन्धदूषणम्**) शरीर को शिथिल करने वाले विषादिकृत रोग को नष्ट करने वाला (**भेषजम्**) भेषज ओषधि (**चक्रुः**) बनाया है।।1।।

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ।। 2 ।।

अर्थ – (**स जङ्गिडः**) वह जङ्गिड सोम (**धनपालः धना—इव**) धनपाल जैसे धन की ऐसे (**नः**) हमारी (**रक्षतु**) रक्षा करे (**यम्**) जिसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(देवाः– ब्राह्मणाः) विद्वान् ब्राह्मणों ने (परिपाणम्) परिरक्षक तथा (अरातिहम्) क्षयकारक प्राणी आदि का नाशक (चक्रुः) बनाया है। ।2। ।

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय
परिपाणोऽसि जङ्गिडः। । 3। ।

अर्थ– (**दुर्हार्दः**) हृदय के दुर्भावों – रोगों को (**पापकृत्वानं संघोरं चक्षुः**) पापकारी बुरी दृष्टि या बुरे नेत्र रोग को (**आगमम्**) मैं प्राप्त हो जाता हूं (**तान्**) उन रोगों और दोषों को (**त्वं सहस्रचक्षो**) तू बहुत सचेत करने वाले मेधाजनक ! (**प्रतीबोधेन**) प्रतीबोध से प्रतीबोध देकर सात्विक यथार्थबुद्धि देकर (**नाशय**) नष्ट कर (**जङ्गिडः परिपाणः असि**) जङ्गिड रूप सोम तू परिपालक है। । 3। ।

परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः। परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशो दिशो जङ्गिडः पात्वस्मान्। । 4। ।

अर्थ– (**जङ्गिडः**) सोमरूप जङ्गिड (मा) मेरी (दिवः) द्युलोक से (परिपातु) रक्षा करे (मा पृथिव्याः परि) पृथिवी से मेरी रक्षा करे (**वीरुद्भ्यः– मा परि**) ओषधियों से मेरी रक्षा करे (मा भूतात् परि) भूतकालिक दोष से मेरी रक्षा करे (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्ष से रक्षा करे (उत) तथा (भव्यात्–मा परि) भविष्य से मेरी रक्षा करे (दिशः– दिशः) दिशा दिशा से (अस्मान्) हमारी (पातु) रक्षा करे। । 4। ।

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः।
सर्वास्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत्। । 5। ।

अर्थ– (**ये**) जो (**देवकृताः**) देव के किए ईश्वरीय या प्रकृति के देवों के किए (**ऋष्णवः**) उत्पात हिंसा कारक प्रभाव हैं ''रिष हिंसायाम्'' (भ्वादि0) 'रिकारस्य ऋकारश्छान्दसः' (**उत**) तथा (यः) जो (**अन्यः**) दूसरा अपना किया – अपने अपराध से हुआ दुख (**ववृते**) पुनः पुनः घेर रहा है (**विश्वभेषजः – जङ्गिडः**) समस्त ओषधियों के गुणों वाला सोमरूप जङ्गिड (**तान् सर्वान्**) उन सबको (**अरसान्–करत्**) अरस –निर्बल कर देता है। । 5। ।

इस प्रकार 19वें काण्ड के इन दोनों 34–35 वें सूक्तों में सोम–रसरूप जङ्गिड को विषदोषनाशक, कृत्रिम विषक्रियाओं का नाशक, शरीर के अंग अंग में होने वाले रोग, कफ रोग, पार्श्व पीड़ा, ज्वर, शरीर की शिथिलता, हृदय रोग, नेत्ररोग को नष्ट करने वाला, आन्तरिक तथा अन्य कठिन रोगों का नाशक, स्वास्थ्य और आयुष्य को देने वाला निज के लिए अपराध–रोगों और पाप–वासनाओं को दबाने वाला तथा दैविक उत्पातों के प्रभाव का नाशक बतलाया है। अस्तु।

पर्णमणि–

अथर्ववेद काण्ड 3 सूक्त 5 में सोमलता को मणि कहकर वर्णन है। उक्त सूक्त का देवता '**अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका**' में **आ त्वागन्**(3/4/1) '**आयमगन्' इति द्वे सूक्ते, आद्यं सप्तकं द्वितीयमष्टकं पूर्वमैन्द्रमुत्तरं सौम्यम्**।(अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका)'पर्ण मणि' दिया है **आयमगन् पर्णमणिर्ब**ली (1) 'पर्ण' सोम को नाम है जैसे शतपथ ब्राह्मण में कहा है'' **सोमो वै पर्णः** (श0 6/5/1/1)। इसी सूक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मे पर्ण मणि को चतुर्थ मन्त्र में सोम कहा भी है'' **सोमस्य पर्ण सह उग्रमागन्**'' (4) पूर्व कहे 'जङ्गिगडरूपसोम' के प्रकरण में ''**इन्द्रो वीर्यं ददौ।। उग्र इत्ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ**'' अथर्व0 19/34/8,9) **दीर्घायुत्वाय**'' (अथर्व0 2/4/1) में सोमरूप जङ्गिगड का इन्द्र के साथ सम्बन्ध तथा दीर्घायु के लिए उसका सेवन बतलाया है एवं यहां भी सोमरूप पर्णमणि का इन्द्र के साथ सम्बन्ध और दीर्घायु के लिए सेवन करना कहा है। ''**सोमस्य पर्णः सह उग्रमागिन्नन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः। तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।**'' (अथर्व0 3/5/4)। इस प्रकार तुलना से जङ्गिगड मणि और पर्णमणिसोम के स्वरूप हैं। जङ्गिगड मणि सोम की रस क्रिया गुटिका है और पर्णमणि केवल पत्तों के रूप में ही है। इसे पर्णमणि इसलिए भी कहा गया है कि अन्य वनस्पतियों की मणियां प्रायः सारमणियां या मूलमणियां हैं उनके सार (बीच के काष्ठ भाग) से तथा उनकी जड़ों से बनती हैं परन्तु सोम कोई वृक्ष नहीं है एक लता है अतः इसके पत्तों की ही मणि बन सकती है। इसलिए इसे पर्णमणि कहा है। हो सकता है इस पर्णमणि के हरे पत्ते सूखे पत्ते पास रखने चबाने खाने या स्वरस पीने आदि में उपयोग हो। अस्तु। मन्त्रार्थ निम्न प्रकार है।

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान्। ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन्।। 1।।

अर्थ– (**अयम्**) यह (**बली**) बलवान् बलवर्द्धक (**पर्णमणिः**) सोमपत्र मणि (**बलेन**) स्वबलप्रदान द्वारा (**सपत्नान्**) मेरे शत्रुओं को (**प्रमृणन्**) विनष्ट करने के हेतु ''लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'' (अष्टा0 3/2/126) (**आगन्**) मेरे अन्दर तरंगों के रूप में आता है जो (**देवानाम्**) देवों आकाश के दिव्य पदार्थों का (**ओजः**) ओज–स्वरूप है तथा (**ओषधीनां पयः**) पृथिवी पर उगने वाली ओषधियों का सार है वह (**अप्रयावन्**) मेरे अन्दर सात्म्य होता हुआ (**मा**) मुझे (**वर्चसा**) वीर्यबल प्रताप से (**जिन्वतु**) पूर्ण करे – भर दे।। 1।।

मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।। 2।।

अर्थ– (**पर्णमणे**) हे पर्णमणि – सोमपत्रमणि ! तू (**मयि**) मेरे अन्दर (**क्षत्रम्**) क्षात्रबल को मयि मेरे अन्दर (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**धारयतात्**) धारण करा– स्थापित कर (**अहम्**) मैं तेरे सेवन से (**राष्ट्रस्य**) राष्ट्र के (**अभीवर्गे**) मण्डल में– पार्लियामैण्ट में (**उत्तमः**) उत्कृष्ट–प्रधान (**निजः भूयासम्**) अपनाया जाऊं।। 2।।

यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे।। 3।।

अर्थ– (**देवाः**) प्रकृति के देवों– विद्युत् आदि दिव्य पदार्थों ने (**वनस्पतौ**) वनस्पति में (**यं गुह्यं प्रियं मणिम्**) जिस रहस्यमय प्रिय मणि को (**निदधुः**) रखा है (**तम्**) उसको (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**आयुषा सह**) आयु के साथ (**देवाः**) देव (**भर्तवे**) धारण करने के लिए (**ददतु**) देवें।। **सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः। तं प्रियासं बहुरोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।। 4।।**

अर्थ– (**सोमस्य पर्णः**) सोम का पत्र (**उग्रं सहः**) उग्र बलस्वरूप है। वह (**इन्द्रेण दत्तः**) सूर्यद्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया हुआ (**वरुणेन शिष्टः**) चन्द्रमा द्वारा विशिष्ट गुण सम्पन्न किया हुआ (आगन्) प्राप्त हुआ है (तं बहुरोचमानः–बहुरोचमानः, इति बहुरोचमानम् "सुपां सुलुक्0"– अष्टा0 7/3/39 इति सुप्रत्ययः।) उस बहुत रोचमान रुचिकर सोमपर्ण को (**शतशारदाय दीर्घायुत्वाय**) सौ वर्ष के लिए दीर्घ जीवन के लिए (**प्रियासम्**) पसन्द करता हूं।।4।।

आ मां रुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः।।5।।

अर्थ– (**पर्णमणिः**) सोमपत्र मणि (**मह्यै**) महती (**अरिष्टतातये**) कल्याणकारिता के लिए (**मा**) मेरे प्रति (**आरुक्षत्**) आरोहण करे – प्राप्त हो (**यथा**) जिससे कि (**अहम्**) मैं (**अर्यम्णः**) चक्रवर्ती राजा का (**उत**) तथा (**संविदः**) पूर्ण विद्वान् का (**उत्तरः**) उत्कृष्टः उत्तराधिकारी (**असानि**) होऊं।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्।।6।।

अर्थ– (**ये**) जो (**धीवानः**) बुद्धिमान् (**रथकाराः**) यान आदि यन्त्र बनाने वाले (**कर्माराः**) कर्मकुशल शिल्पी (**ये**) जो (**मनीषिणः**) मनस्वी योगी, ऋषि– मुनि हैं। उन (**सर्वान्**) सब मनुष्यों को (**पर्ण**) सोमपत्रमणि ! (**त्वम्**) तू सेवन किया हुआ मेरे गुण लाकर (**मह्यम्– उपस्तीन्– अभितःकृणु**) मेरे लिये रहने वाले भरपूर कर।। 6।।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्।।7।।

अर्थ– (**ये**) जो (**राजकृतः राजानः**) राजा को बनाने वाले राजा लोग हैं तथा (**ये सूताः**) जो मन्त्रीजन या रथनायक (**च**) और (**ग्रामण्यः**) ग्रामनेता हैं (**उपस्तीन्**) उन सब मनुष्यों को हे सोमपत्र मणि तू सेवन किया हुआ मेरे अन्दर गुणों को लाकर मेरे लिए पास रहने वाले खूब कर।।7।।

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे।। 8।।

अर्थ– (**मणे**) हे सोमपत्रमणि ! तू (**मया वीरेण**) मुझ वीर राजा के साथ (सयोनिः) समानाश्रयी – एकांग (**वीरः**) वीरस्वरूप – वीरताप्रद गुणों वाला (तनूपानः) शरीर रक्षक (**पर्णः**) पत्र (**असि**) हो बन " लिङर्थे लेट्" (**तेन**) इसलिए (**संवत्सरस्य तेजसा**) सूर्य के तेज से तेज के निमित्त 'एष वै संवत्सरो य एष आदित्यः तपति' (**त्वा**) तुझे (**बध्नामि**) बांधता हूं।।8।।

इस सूक्त में 'सोमपत्र मणि 'धारण करने से राजा के अन्दर शत्रुओं को संग्राम में परास्त करने का बल और साहस प्राप्त होता है, निज वर्ग में प्रताप दीर्घजीवन स्वास्थ्य पौरुष प्राप्त होता है तथा सोमपर्ण मणि धारण करने से बुद्धि का विकास होकर राष्ट्रव्यवस्था को भी उत्तम बना लेता है – कैसे कैसे राष्ट्र में विद्वान् शिल्पी राजा सदस्य और पदाधिकारी होने चाहिए इसका यथावत् गम्भीर विचार करके उन्हें उचित रूप में पदापन्न कर सकता है एवं राजा स्वयं सूर्य की भांति तेजस्वी हो जाता है। अस्तु। अब इसके पश्चात् अन्य वानस्पत्य मणि पर विचार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतवार मणि –

अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 36 में शतवार मणि का वर्णन है यह 'शतवार' नाम किसी आयुर्वैदिक निघण्टु में कहा हुआ नाम नहीं है किन्तु वेद का अपना यौगिक नाम है स्वयं वेद ने इसका निर्वचन भी किया है, छठे मन्त्र में कहा है– **''शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्तीनां शतवारेण वारये'** यहां मन्त्र में स्पष्ट 'शतं वारये' शतवार से शत (सैकड़ों रोगों) को वरण करता हूं 'शतं वारयतीति शतवार अर्थात् सैकड़ों–बहुत रोगजातियों का वारण करने वाला 'शतवार' है। इसका आयुर्वैदिक नाम भी बता दिया है, **''हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शतवारो अयं मणिः''** सुनेहरे शृङ्ग अर्थात् शृङ्ग – जैसे अग्रभागों नोकों वाला ऋषभ अर्थात् ऋषभक ओषधि यह शतवार मणि है। वेद ने ऋषभक ओषधि को यहां शतवार मणि कहा है। ऋषभक ओषधि का नाम ऋषभ भी है तथा जो उसके साथ '**हिरण्यशृङ्ग**' शृङ्ग का सम्बन्ध इस पंचम मन्त्र में तथा **''शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते** '' (2) द्वितीय मन्त्र में बताया है सो ऋषभक ओषधि को '**शृङ्गी**' कहा भी है और शृङग अर्थात् सींग का आकार होता है। देखिए आयुर्वैदिक निघण्टु में इसके नाम और आकृति का वर्णन है।

ऋषभो गोपतिर्धीरो विषाणी दुर्धरो वृषः।
ककुद्मान् पुङ्गवो बोढ़ा शृङ्गी धुर्यश्च भूपतिः।। (राजनिघण्टु)
जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत् कन्दौ निस्सारौ सूक्ष्मपत्रकौ।।
जीवकः कूर्चिकाकार ऋषभो वृषशृङ्गवत्।
(हरितक्यादिवर्ग –भावप्रकाश नि0123–124)

इन वचनों में ऋषभ ओषधि जिसे ऋषभक भी कहते हैं उसे शृङ्गी नाम भी दिया है। उस की आकृति लहसुन के केन्द्र जैसे परन्तु दोनों ओर शृङ्गाकार बनी होती है। अतः यहां सूक्त में ऋषभक ओषधि ही शतवार मणि कही गई है। ऋषभक अष्टवर्ग की ओषधियों में से एक है जिन्हें आज कल अप्राप्य कहा गया है, परन्तु ये अप्राप्य नहीं हैं। इन नामों से इनका व्यवहार नहीं रहा अन्य नाम हो गए। ऋषभक ओषधि हमारो सम्मति में ''सालव मिश्री '' है उसकी आकृति वही है जो ऋषभक की बतलाई है कि लहसुन जैसी सालव मिश्री होती है। सालव मिश्री भी दो प्रकार की है छोटी ओर बड़ी। बड़ी ऋषभक और छोटी सम्भवतः जीवक हो। गुण भी सालव मिश्री के ऋषभक जैसे हैं, सालव मिश्री पौष्टिक वीर्यवर्द्धक है और हिमालय में होती है। अब मन्त्रार्थ करते है।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः।। 1।।

अर्थ– (शतवारः मणिः) सैकड़ों बहुत रोगों का निवारण करने वाली ऋषभक औषधिमणि **(तेजसा)** तेज से स्वकीय तीव्र गुण स्व–प्रभाव से **(यक्ष्मान्)** रोगों को तथा **(रक्षांसि)** रक्तभक्षक कृमियों को **(अनीनशत्)** भली प्रकार नष्ट करती है **(वर्चसा सह–आरोहन्)** और अपने गुण बल के साथ शरीर में आरोहण करती हुई शरीर की रक्त आदि धातुओं पर अधिकर जमाती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दुर्णामचातनः) बुरे नाम वाले अकथनीय गुह्यरोगों को नष्ट करने वाली होती है।।1।।

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्मातितत्रति।।2।।

अर्थ– (शृङ्गाभ्याम्) दोनों सिरों से (रक्षः) रक्त आदि धातुओं के भक्षक कृमियों को (नुदते) ताड़ित करता है नष्ट करता है (मूलेन) मूल से (यातुधान्यः) हिंसाकारक बाह्यक्रियाओं तथा उनके प्रभावों को नष्ट करता है (मध्येन) मध्य से (यक्ष्मम्) यक्ष्मरोग को (बाधते) हटाता है (पाप्मा) 'ज्वर पाप्मा उवरे'' (रस–र – वैद्यक शब्दसिन्धु) (एनन्) इस ऋषभक को (न) नहीं (अतितत्रति) अतिप्लावन करता है – लांघता है।

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत्।3।

अर्थ – (ये यक्ष्मासः) जो रोग (अर्भकाः) छोटे (महान्तः) बड़े (ये च) और जो (शब्दिनः) शब्द वाले कराहट शब्द कराने वाले या केवल रोग हैं ऐसा कहे जाने वाले हैं किन्तु वास्तविक निदान और चिकित्सा में सन्दिग्ध हैं ऐसे उन (सर्वान्) सब रोगों को (दुर्णामहा) गुह्य रोगनाशक (शतवारः मणि :) ऋषभक नाम वाली ओषधि (अनीनशत्) सर्वथा नष्ट कर देती है।।3।।

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते।।4।।

अर्थ– (शतं वीरान् अजनयत्) उक्त ' ऋषभक' ओषधि बहुत पुत्रों को उत्पन्न करती है ''पुत्रो वै वीरः'' (श0 3/3/1/12) (शतं यक्ष्मान् अपावपत्) बहुत रोगों को नष्ट करती है (सर्वान् दुर्णाम्नः हत्वा) सब गुह्य रोगों को नष्ट करके (रक्षांसि अवधूनुते) रक्तभक्षक कृमियों को नष्ट कर देती है।

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वा रक्षांस्यक्रमीत्।।5।।

अर्थ– (अयं शातवारः मणिः) यह शतवार (*शतवार एव शतवारः स्वार्थे अण् प्रत्ययः*) मणि (हिरण्यशृङ्ग ऋषभः) सुनेहरी– रो पीले रंग वाले सिरों वाला ऋषभक ओषधि है (सर्वान् दुर्णाम्नः) वह सब गुह्य रोगों को (तृड्ढ्वा) छिन्न भिन्न करके (रक्षांसि) रक्त भक्षक कृमियों को (अक्रमीत्) हटा देता है – परास्त कर देता है।

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये।।6।।

अर्थ– (अहम्) मैं (शतं दुर्णाम्नीनाम्) बहुतेरे गुह्यरोगों को (शतं गन्धर्वाप्सरसाम्) बहुतेरे शरीर में गन्ध छोड़ने वाले और रक्त में गति करने वाले कृमियों को (शतं शश्वन्तीनाम्) बहुतेरी पुरानी व्याधियों को (शतवारेण) बहुत रोगों को हटाने वाली ऋषभक ओषधि से (वारये) वारित करता हूं – हटाता हूं।।

इस सूक्त में ऋषभकरूप शतवार मणि को क्षय जैसे कठिन रोग, रक्त आदि भक्षक कृमि, गर्भ सम्बन्धी गुह्य रोग, ज्वर, सन्दिग्ध रोगों, मांस आदि दूषित रूप, पुरानी व्याधियों को नष्ट करने वाला तथा पुत्रोत्पत्ति शक्ति देने वाला बतलाया है। दुर्णाम अर्थात् गुह्यरोगों को दूर करने का पुनः पुनः आवर्तन दर्शाता है कि स्त्री–पुरुष के उपस्थ योनि आदि सम्बन्धी रोगों को यह ऋषभक ओषधि रूप शतवार मणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य सर्वथा दूर करती है। आयुर्वैदिक निघण्टुओं में भी इसके गुण ऐसे ही बतलाए हैं–

ऋषभको मधुः शीतो गर्भसन्धानकारकः।
शुक्रधातुकफानां च कारको बलदायकः।।
वृष्यःपुष्टिकरःप्रोक्तःपित्तरक्तातिसारजित्।
रक्तरुक्कृशतावातज्वरदाहक्षयापहः।। (नि० र०)

यहां आयुर्वैदिक निघण्टु में ऋषभक ओषधि के तुलनात्मक गुण देखें उसे गर्भसन्धानकारक अर्थात् गर्भस्थापन कराने वाला अर्थात् शुक्र अर्थात् वीर्य बढ़ाने वाला, बलदायक, वृष्ण, पुष्टिकर, कृशतानाशक, ज्वरनाशक, क्षयनाशक कहा है।।

औदुम्बर मणि –

अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 31 में 'औदुम्बर मणि' का वर्णन है। यह भी वानस्पत्य मणि है, उदुम्बर गूलर वृक्ष को कहा जाता है। मणि प्रकरण के प्रारम्भ में हम बतला आए हैं कि मणियों के तीन प्रयोजन हैं जो कि भूषा– शोभा, मन में प्रसन्नता, शान्ति और वीरता के भाव लाना, तीसरे रोगों और विषों का अनाक्रमण तथा उनका प्रतीकार। भूषा– शोभा के प्रसंग में भी बतला दिया गया है कि न केवल शरीर की ही भूषा या शोभा के लिए मणियां धारण की जाती है किन्तु आसन्दी (कुरसी)मेज आदि उपकरणों पर भूषा– शोभा के लिए शंख, काचमणि, आदि पदार्थ लगाए और रखे जाते हैं। मकान की भूषा– शोभा के लिए बारहसिंगे का सींग, हाथी दांत, हीरे पन्ना आदि मणियां भित्ति छत आदि में लगाई जाती हैं एवं ग्राम की शोभा– भूषा तथा सार्वजनिक और पशुओं के हित के लिए औदुम्बर मणि वनस्पतिरूप में (वृक्ष के रूप में) ग्राम में लगाना उसे सुरक्षित रखना चाहिए ऐसा ही इस सूक्त के मन्त्रों से सिद्ध होता है। जैसे मन्त्र 9 में उसे वनस्पति कहकर सम्बोधन किया है "**यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्टया सह जज्ञिषे**" (9) तथा इस मणि को मन्त्र 12 में ग्रामणी ग्राम का नेता साथ में 'अभिषिक्त' जल से सींचा हुआ भी कहा है "**ग्रामणीरसिग्रामणी रुत्थायाभिषिक्तोभि मा सिञ्च वर्चसा**" (12) इस प्रकार ग्राम में लगा हुआ उदुम्बर(गूलर) ग्राम की शोभा को बढ़ाता है साथ में अन्य अनेक लाभ भी वेद ने ऐसे बतलाए हैं जिनका खाने के साथ सम्बन्ध है जैसे मन्त्र 11 में "**स त्वमस्मत् सहस्व .... क्षुधं**।" क्षुधा (भस्मक रोग) को हमसे दूर कर। क्षुधानिवृत करने का खाने के साथ सम्बन्ध है। गूलर का फल क्षुधा और तृष्णा को दूर करने वाला है यह बात आयुर्वैदिक निघण्टु रत्नाकर में भी कही है– "**उदुम्बरः शीतलः स्याद्....। कोमलं चास्य फलं.... तत्पकं... रक्तरुक्पित्तदाहक्षुत्तृषाश्रमप्रमेहहम्।**" (नि० र०) उदुम्बर के फल क्षुधानाशक हैं इस विषय में अन्य शास्त्रों के प्रमाण भी देखने योग्य हैं। "**उदुम्बरफलं पक्वमङ्कुलीतैलपाचितम्। भुक्त्वा मासं क्षुधां हन्ति पिपासां नात्र संशयः।।**"(सिद्धनागार्जुन कक्षपुष्ट कौतुककलापाः 17) **शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णसर्पिषासंहृत्यार्धमा. सिकः क्षुद्योगः**" (कौटिल्यार्थ शास्त्र। 178 पृ०) इन वचनों में कहा है कि गूलर फल को अंकोल बीज के तैल में पकाकर खाने से एक मास तक क्षुधा नहीं सताती। दूसरे योग में शिरस, (उदुम्बर) गूलर, शमी को घृत में मिलाकर खाने से आधे मास तक क्षुधा नहीं लगती। इस प्रकार (उदुम्बर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूलर के फलों से क्षुधा की निवृत्ति होती है यहां सूक्त में ऐसा होने से उदुम्बर का वृक्षरूप में ग्राम के अन्दर रखना ही उसका मणि होना अभीष्ट है। अन्य भी इसके कई कारण हैं स्वयं सूक्त में कहे हैं जो आगे बतलाए जावेंगे, अब सूक्तार्थ करते हैं।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्।।1।।

अर्थ– (**औदुम्बरेण**) उदुम्बर वृक्षों के समूह रूप[17] (**वेधसा**) प्रजापति पदवाच्य (**मणिना**) ग्राम की शोभा करने वाली मणि के द्वारा (**सविता**) उत्पादक परमेश्वर या उत्पत्ति–शक्ति–वर्द्धक सूर्य (**मे पुष्टिकामाय**) मुझ पुष्टि चाहने वाले के लिए (**गोष्ठे**) गोष्ठ में गौओं के बाड़े में (**सर्वेषां पशूनाम्**) सब पशुओं की (**स्फातिम्**) वृद्धि–समृद्धि को (**करत्**) करे।। 1।।

ग्राम के बीच या ग्राम के किसी एक किनारे पर कुछ उदुम्बर वृक्षों का समूह होना चाहिए वहां गौ भैंस आदि के नित्य बैठने उठने विश्राम पाते रहने से उन गौ आदि पशुओं की वृद्धि होती है। वह उनमें पुष्टि और सन्तति शक्ति देता है आगे यह विषय आने वाला है। इस प्रकार गोष्ठ तथा गौओं पशुओं के साथ उदुम्बर का सम्बन्ध वृक्ष रूप में ही सम्भव है यह सिद्ध होता है।

यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या।।2।।

अर्थ– (यः)जो (**औदुम्बरः वृषा मणि**) सुख वर्षक उदुम्बर समूह रूप शोभायमान मणि (नः) हमारे (**पशूनाम्**) पशुओं का (**गार्हपत्यः –अग्निः–अधिपाः**) पालक गार्हपत्य अग्नि (**असत्**) है (सः) वह (**पुष्ट्या**) पुष्टि सामृद्धि के साथ (**मा सृजतु**) मुझे संयुक्त करे।।2।।

इस मन्त्र में बतलाया है कि जैसे मनुष्यों के घर में गृहपति –घर के स्वामी के साथ सम्बन्ध रखने वाली गार्हस्थ्य धर्म का अधिनायक गार्हपत्य अग्नि होती है एवं पशुओं के घर, बाड़े, हाते, घेर या उनके बैठने आदि के स्थान रूप घर में उदुम्बर–समूह गार्हपत्य अग्नि है यही उनके अन्दर गार्हपत्य अग्नि का काम करता है उसकी छाया का सेवन फल पर्ण आदि का खाना उन्हें गर्भस्थापन एवं सन्ततिशक्ति को प्रदान करता है, इस कथन से भी उदुम्बर के वृक्ष का गोष्ठ में खड़े रहना ही वहां लक्षित होता है।। 2।।

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे। 3।।

अर्थ– (**धाता**) परमेश्वर या सूर्य (**औदुम्बरस्य तेजसा**) उदुम्बरवृक्ष समूह के प्रभाव से (मे) मेरे लिए (**करीषिणीम्**) गोबर करने वाली स्वस्थ नित्यपुष्ट ''**नित्यपुष्टां करीषिणीम्**'' (महानारायणोपनिषद्) (**फलवतीम्**) सन्तति वाली (**इराम्**) गौ को ''**इला गोनाम्**'' (निघं0 1/11) (**च**) और (**स्वधाम्**) अन्न सम्पत्ति को (**पुष्टिम्**) पुष्टि को (नः **गृहे**) हमारे घर में (**दधातु**) धारण करावे – स्थापित करे।। 3।।

यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः।
गृहणे३हं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम्।। 4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ– **(यत् च द्विपात्)** जो भी दो पैर वाले पुत्रादि **(चतुष्पात् च)** और चार पैर वाले गौ आदि पशु **(यानि–अन्नानि)** जो अन्न हैं **(ये रसाः)** जो स्वादु रस दूध आदि हैं **(एषां तु)** उन सभी के **(भूमानम्)** बाहुल्य– आधिक्य अधिकता को **(अहम्)** मैं **(औदुम्बरं मणिं बिभ्रत्)** उदुम्बर वृक्षों के शोभायमान समूह को धारण करता हुआ रखता हुआ **(गृह्णे)** प्राप्त करता हूं।।4।।

उदुम्बर वृक्षों तथा उनके फल आदि के सेवन से निज सन्ततिवृद्धि और पशुसन्ततिवृद्धि होती है, पशु सन्तति वृद्धि से दूध आदि रस और अन्नों की वृद्धि होती है।।4।।

पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्। पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्।।5।।

अर्थ– **(अहम्)** मैं **(पशूनां पुष्टिम्)** पशुओं की पुष्टि– पशुओं का पुष्ट होना **(च)** और **(द्विपदां चतुष्पदाम्)** दो पैर वालों तथा चार पैर वालों का **(धान्यम्)** अन्न भोजन **(परिजग्रभ)** स्वायत्त करता हूं। तथा **(पशूनां पयः)** पशुओं के दूध को **(ओषधीनां रसम्)** ओषधियों के रस को **(सविता)** उत्पादक **(बृहस्पतिः)** महान् परमेश्वर या सूर्य **(मे)** मेरे लिए **(नियच्छात्)** देवे।

उदुम्बर वृक्षों के द्वारा पशुओं में पुष्टि और ओषधियों में रस अन्न की वृद्धि होती है। इसलिए उदुम्बर वृक्षों का गोष्ठस्थानों खेतों में रहना अत्यावश्यक है।।5।।

अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु। मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु।।6।।

अर्थ–**(अहम्)** मैं **(पशूनाम्)** पशुओं का **(अधिपाः)** स्वामी **(असानि)** होऊं **(पुष्टपतिः)** पोषण शक्ति का पालक उदुम्बर– समूह **(मयि)** मुझ में **(पुष्टं दधातु)** पोषण धारण करावे **(औदुम्बरः मणिः)** उदुम्बरवृक्ष समूह मणि **(मह्यम्)** मेरे लिए **(द्रविणानि)** बलों "**द्रविणं बलनाम**" (निघं. 2/9) **(नियच्छतु)** देवे।।6।।

उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च। इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन् सह वर्चसा।7।।

अर्थ– **(औदुम्बरः मणिः)** उदुम्बर–वृक्ष समूह मणि **(मा)** मुझे **(प्रजया च)** सन्तति से **(धनेन च)** और धन से **(उपागन्)** प्राप्त हो तथा **(इन्द्रेण)** ऐश्वर्यवान् परमेश्वर या सूर्य से **(जिन्वितः)** प्रेरित किया हुआ **(मणिः)** उदुम्बरवृक्ष समूह मणि **(वर्चसा सह)** गुण प्रभाव से **(मा)** मुझे 'उपागन्' प्राप्त हो।

देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये। पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु।8।।

अर्थ– **(देवः मणिः)** सुख देने वाला यह उदुम्बर वृक्ष समूह मणि **(सपत्नहा)** रोगरूप शत्रुओं का नाशक **(धनसाः)** गौ आदि समृद्धिरूप धनैश्वर्य का सेवन कराने वाला **(धनसातये)** उक्त धनैश्वर्य के सेवन कराने के लिए **(पशोः)** पशु के **(अन्नस्य)** अन्न के **(भूमानम्)** बाहुल्य अधिकता को **(गवाम्)** गौओं के **(स्फातिम्)** वृद्धि फैलाव को **(नियच्छतु)** प्रदान करे।।8।।

यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे। एवा धनस्य मे स्फातिमादधातु सरस्वती।।9।।

अर्थ– **(वनस्पते)** हे वनस्पति! **(यथा)** जैसे **(त्वम्)** तू **(अग्रे)** प्रथम ही **(पुष्ट्या सह)** पुष्टि के साथ वृद्धि समृद्धि के साथ **(जज्ञिषे)** उत्पन्न हुआ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एव) इसी प्रकार तेरे सेवन और वास से (सरस्वती) गौ 'सरस्वती गौः' (मेदिनी कोष) (मे) मेरे लिए (धनस्य) धन ऐश्वर्य की (स्फातिम्) समृद्धि को (आदधातु) स्थापन करे।।9।।

आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम्।
सिनीवाल्युपावहादयं चौदुम्बरो मणिः।।10।।

अर्थ–(सरस्वती) गो (मे) मेरे लिए (धनम्) धन (धान्यम्) धान्य–अन्न (पयस्फातिं च) और दूध की वृद्धि को (आ अवहात्) प्राप्त करावे। तथा (अयम् औदुम्बरः मणिः) यह उदुम्बर – वृक्ष–समूह–रूप मणि (च) और (सिनीवाली) गौ "या गौः सा सिनीवाली" (ऐ० 3/48) (उपावहात्) उक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करावे।10।

त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान। त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च।।11।।

अर्थ– (त्वम्) तू (मणीनाम्– अधिपाः) अन्य मणियों का या मणिरूप गौओं का रक्षक तथा (वृषा– असि) सुखवर्षक है (पुष्टपतिः) सब रक्षकों के पुष्ट करने वाले परमेश्वर या सूर्य ने (त्वयि) तेरे अन्दर (पुष्टं जजान) पोषण धर्म को उत्पन्न किया है (त्वयि) तेरे अन्दर (इमे वाजाः) ये बल तथा (सर्वा द्रविणानि) सब अन्न धन हैं(सः त्वम् औदुम्बरः) वह तू उदुम्बरवृक्षसमूह (अस्मत्) हमारे से (अरातिम्) अलाभ को (अमतिम्) रोग को (च) और (क्षुधम्) क्षुधा को (आरात्–सहस्व) दूर भगा।11

ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोभि मा सिञ्च वर्चसा। तेजोसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि।।12।।

अर्थ– (ग्रामणीः असि) तू ग्रामणी है ग्राम का आश्रयभूत है तू(ग्रामणीः) ग्रामणी (अभिषिक्तः) अभिषिक्त हुआ (उत्थाय) उठकर बढ़कर शाखादि से पूर्ण होकर (मा) मुझे (वर्चसा) तेज से (सिञ्च) सींच (तेजः असि) तू तेजोरूप है (मयि– अधि) मेरे अन्दर (तेजः) तेज को (धारय) धारण करा (रयिः असि) तू ऐश्वर्यरूप है (मे) मेरे में (रयिं धेहि) ऐश्वर्य धारण करा।12।

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु। औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्।।13।।

अर्थ– (पुष्टिः असि) तू पुष्टिरूप है (मा) मुझे (पुष्ट्या समङ्ग्धि) पुष्टि से संयुक्त कर (गृहमेधी) तू गृहमेधी –गृहपति है (मा गृहपतिं कृणु) मुझे गृहपति कर (औदुम्बरः सः त्वम्) उदुम्बर समूह तू (अस्मासु) हमारे में (रयिं धेहि) ऐश्वर्य धारण करा(च) और (नः) हमारे लिए (सर्ववीरम्) सब पुत्रसामर्थ्य को –वीर्य को (नियच्छ) दे (अहम्) मैं (रायस्पोषाय) ऐश्वर्य पोषण के लिए (त्वाम्) तुझे (प्रतिमुञ्चे) स्वीकार करता हूं।।13।।

अयमौदुम्बरा मणिर्वीरो वीराय बध्यते। सनः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात्।14।

अर्थ– (अयम् औदुम्बरः मणिः) यह अदुम्बर वृक्ष समूह रूप मणि (वीरः) वीर –वीर्यशाक्तिगुणसम्पन्न है (वीराय) वीर्यशक्ति के लिए – पुत्रोत्पति शक्ति प्राप्ति के लिए "पुत्रो वै वीरः" (श० 3/3/1/12) (बध्यते) बांधा जाता है। उद्यान आदि की भांति सुरक्षित रखा जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) वह (नः) हमारे लिए (**मधुमतीं सनिम्**) गुणवती उपभोग क्रिया को (**कृणोतु**) करे (च) और (नः) हमारे लिए (**सर्ववीरं रयिं नियच्छात्**) सब पुत्र–शक्ति वाले ऐश्वर्य गुण को प्रदान करे।। 14।।

इस सूक्त में 'उदुम्बरमणि ' अर्थात् उदुम्बर वृक्ष समूहरूप मणि के गुण बहुत बतलाए हैं जिनमें उससे पुष्टि का प्राप्त होना तो बार–बार कहा गया है मानो यह गुण विशेष तथा अनिवार्य है इसके साथ गौ आदि पशुओं की वृद्धि अन्नैश्वर्य की समृद्धि बल प्राप्ति क्षुधारोग को दूर करना, निराशा कृपणता के भाव को हटाना और पुत्रोत्पत्ति शक्ति का देना आदि बतलाए हैं। इस प्रकार आयुर्वैदिक शास्त्रों में भी इसके उक्त गुण कहे हैं–

1. उदुम्बरः शीतलः स्वादु गर्भसन्धानकारकः।
2. योनिरोगं नाशयति।
3. वल्कं दुग्धं तुवरं गर्भ्यम्।
4.कोमलञ्चास्य च फलं.. स्यान्मांसवद्धिकरं मतम्।
5.तत्पक्वञ्च....रक्तरुक्पित्तदाहक्षुत्तृषाश्रम प्रमेहहम्।
6शोषमूर्च्छाहरं प्रोक्तं पूर्वैः स्वे स्वे निघण्टुके।

(नि0 र0)

इन आयुर्वैदिक निघण्टु–वचनों में इसे गर्भसन्धान कारक योनि रोग नाशक ओर इसकी छाल को गर्भबीज कारक कहा है इससे वेद में कहे पुत्रोत्पादक और गौ आदि पशुओं की वृद्धि करने वाला बतलाना अत्यन्त उचित है तथा फल मांस वर्द्धक, प्रमेहनाशक, शोष हटाने वाला होने से वेद का पुष्टि कारक कहना भी सुसमीचीन है। जब गौ आदि पशुओं की वृद्धि इससे होती है तब धन अन्न ऐश्वर्य का देने वाला भी स्वयं सिद्ध हो जाता है। गौओं के अधिक होने से कृषि द्वारा अन्न की वृद्धि भी होती है।

अभिवर्त मणि–

अथर्ववेद काण्ड 1 सूक्त 29 में अभीवर्त मणि का वर्णन है। 'अभीवर्त' का अर्थ है अभिवर्तन अर्थात् आक्रमण करने का साधन। शत्रु पर जिस साधन के द्वारा आक्रमण किया जावे उसका नाम अभीवर्त है जैसा कि ताण्ड्य ब्राह्मण में कहा है **अभीवर्तेन वै देवा असुरानभ्यवर्त्तन्त** (तां0 8/2/8) यहां सूक्त में भी इस 'अभीवर्त' का उक्त प्रयोजनार्थ वर्णन है **अभिवृत्य सपत्नाभि या नो अरातयः। अभिपृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति**।। (2) अब यह देखना है कि वह शत्रु पर आक्रमण का साधन 'अभीवर्त' मणि क्या है। कुछ थोड़े हेर फेर से यही सूक्त ऋग्वेद मण्डल 10 में सूक्त 174 है। उसकी तुलना से 'अभीवर्त' का स्वरूप जाना जा सकता है। इस सूक्त का केवल प्रथम मन्त्र यहां देते हैं जो निम्न हैं–

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय।।

(ऋ0 10/174/1)

इसकी तुलना करें अथर्ववेद के प्रस्तुत सूक्त के प्रथम मन्त्र से–

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय।।

(अथर्व0 1/29/1)

यहां देखें अथर्ववेद में 'अभीवर्तेन मणिना' और ऋग्वेद में अभीवर्तेन हविषा पाठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ऋग्वेद के पाठ से इस 'अभीवर्त' मणि का निश्चय किया जा सकता है क्योंकि ऋग्वेद में दिए उसी अभीवर्त का हविः से तात्पर्य है गन्धक आदि खनिज तथा जंगम और स्थावर विष का अग्नि द्वारा धूम करना धूम वायु का फैलाना है। वही हविः–वस्तु अथर्ववेद में भी अभीष्ट है पर उसे मणि कहा है – मणिरूप को गोले के रूप में (बम के रूप में) लेना चाहिए ऐसा स्पष्ट तुलना से सिद्ध होता है। हां, इस गोले में लोहे आदि धातुओं का मिश्रण करके गोला बनाकर शत्रु पर फेंकना चाहिए। अस्तु। अब अथर्ववेद के 'अभीवर्त' मणि सम्बन्धी मन्त्रों का सक्रम अर्थ देते हैं।

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृते।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय।।1।।

अर्थ– **(ब्रह्मणस्पते)** हे पुरोहित! **(येन–अभीवर्तेन मणिना)** जिस अभीवर्त मणि शत्रु पर आक्रमण के साधन स्फोटक और विषैले द्रव्यों लोहे आदि धातुओं से बने गोले बम के प्रयोग से **(इन्द्रः)** राजा **(अभिवावृधे)** समृद्धि को प्राप्त होता है – आगे बढ़ता है–*''छन्दसि लुङ्लङ्लिटः''– अष्टा 3/4/6 सामान्य काल में लिट्।* **(तेन)** उससे **(राष्ट्राय)** निज राष्ट्रहित के लिए **(अस्मान्)** हमें **(अभिवर्धय)** समृद्ध कर आगे बढ़ा।।1।।

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति।।2।।

अर्थ– **(सपत्नान्)** शत्रुओं पर **(अभिवृत्य)** आक्रमण करके **(याः)** जो **(नः)** हमारी **(अरातयः)** अदानवृत्तिवाली– हमारा सहाय न देने वाली या ऐश्वर्य का अपहरण करने वाली शत्रु सेनाएं है। उन पर **(अभि)** आक्रमण करके **(पृतन्यन्तम्)** संग्राम चाहते हुए–संग्राम करते हुए पर **(अभि)** आक्रमण करके **(यः)** जो **(नः)** हमारा **(दुरस्यति)** बुरा चाहता है। उस पर भी **(अभितिष्ठ)** आक्रमण कर।।2।।

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि।।3।।

अर्थ– **(त्वा)** हे अभीवर्त मणि शत्रुओं पर आक्रमण साधन के रूप कृत्रिम गोले! तुझे **(सविता देवः)** सूर्य या अग्नि देव ''अग्निरेव सविता'' गो0 पू0 1/33। **(अभिअवीवृधत्)** शत्रुओं के सम्मुख बढाता है फैलाता है तथा **(सोमः)** सोम–वायु **योऽयं वायुः पवते एष सोमः** (श0 7/3/1/1) **अन्तरिक्षदेवत्यो हि सोमः** (गो 0 उ0 2/4) **(अभि)** शत्रुओं के सम्मुख फैलाती है **(यथा)** जिस प्रकार तू **(अभीवर्तः)** शत्रुओं पर आक्रमण का साधन **(अससि)** हो जावे।।3।।

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे।।4।।

अर्थ– **(अभीवर्तः मणिः)** अभीवर्त मणि शत्रुओं पर आक्रमण का साधन गोला **(अभिभवः)** आक्रमणकारी तथा **(सपत्नक्षयणः)** शत्रुओं का नाश कने वाला है **(सपत्नेभ्यः पराभुवे)** शत्रुओं के पराजय–हार के लिए तथा **(मह्यं राष्ट्राय)** मेरे राष्ट्र के लिए या मेरे लिए राष्ट्र हो इसलिए **(बध्यताम्)** बन्ध जावे गोलरूप में तैयार हो जावे।।4।।

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा।।5।।

अर्थ– **(असौ सूर्यः)** वह सूर्य **(उदगात्)** उन्नत हुआ है **(इदं मामकं वचः)** यह मेरा घोषणा वचन **(उत्)** उन्नत हुआ है **(यथा)** जिससे **(अहम्)** मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शत्रुहः) शत्रु नाशक (असपत्नः) शत्रुरहित (सपत्नहा) शत्रु–घातक (असानि) होऊं।।5।।

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च।।6।।

अर्थ– (सपत्नक्षयणः) शत्रुओं का क्षय करने वाला (वृष) बलवान् (अभिराष्ट्रः) राष्ट्र का अधिकर्ता राष्ट्रशासक (विषासहिः) शत्रु पर प्रत्याक्रमणकारी होऊं– {'असानि' क्रिया की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति आती है।} **(यथा)** जिससे (अहम्) मैं **(एषां वीराणाम्)** इन वीरों सैनिकों का (च) और (जनस्य) जनपद का देश का– 'जनः' अधिकरणे घञन्तः प्रयोगः। **(विराजानि)** ईश्वर हो जाऊं अधिपति बन जाऊं।।6।।

इस प्रकार अभीवर्त मणि शत्रु पर आक्रमणकारी साधनरूप गोले (बम) को तैयार करके शत्रुओं पर आक्रमण करना यह धनुर्विद्या की बात है कोई मन्त्र, जादु, गण्डा, ताबीज की बात नहीं है। अस्तु।

प्रतिसर मणि –

अथर्ववेद के काण्ड 8 सूक्त 5 में प्रतिसर मणि का वर्णन है। इस सूक्त में 22 मन्त्र हैं हम इन सबका ग्रन्थविस्तारभय से अर्थ न करेंगे तथा अर्थ भी प्रायः एक जैसे और सरल हैं एवं आगे आने वाले मणि सम्बन्धी सभी मन्त्रों के अर्थ न करेंगे। यथामुखीन के रूप में तो खनिज आदि उत्पति स्थान के भेद से मणियों के समस्त मन्त्रों के अर्थ दे चुके ही हैं। प्रतिसर का अर्थ है मण्डल घेरा अर्थत् अपनी सेना के चहुं ओर घेरा बनाना कि जिस में से प्रतिसरण अर्थात् शत्रु के कृत्यारूप आक्रमण विषैली वस्तुओं के प्रयोग को उल्टा फेंकने का काम करता है। जैसे पूर्व प्रकरण में 'अभीवर्त मणि' का वर्णन था। उसके द्वारा शत्रु पर आक्रमण करना, एवं इस सूक्त में 'प्रतिसर मणि' से शत्रु के विषरूप कृत्याप्रयोग के प्रभाव को अपने ऊपर न आने देना तथा पीछे लौटाना होता है। पूर्वोक्त मणि 'अभीवर्त' है तो यह 'प्रतिसर' मणि 'प्रतीवर्त' है स्वयं इसी सूक्त के मन्त्र 4 में इस 'प्रतिसर' को 'प्रतीवर्त' कहा भी है।

अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान् विमृधोवशी सो अस्मान् पातु सर्वतः।।4।।

मन्त्र का आशय है यह 'स्राक्त्य दिशाओं में फैलने वाला– *दिशो ह्यस्य स्रक्तयः* – छान्दोग्य0 3/15/1) मन्त्र में कहा गया है **(अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्रः)** (अथर्व0 8/5/3) या माला जैसे घेरे में स्थापित 'प्रतीवर्त' शत्रु के आक्रमण का प्रतिकार करने वाला प्रतिसर नाम का बड़ा ओजस्वी संग्रामों को वश करने वाला हमारी सब ओर से रक्षा करे। यह प्रतिसर मणि विषनाशक उग्र ओषधियों का बनाया जाता है जैसे मन्त्र 11 में कहा है।

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव0...
।11।

औषधियों के मिश्रण से मणि अर्थात् छोटी गोली या बड़े गोले के रूप में बनाना वेद को अभिष्ट है अन्यत्र कहा भी है।

वैयाघ्रो मणिः वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः।
(अथर्व0 8/7/14)

इस 'प्रतिसर' मणि की गन्ध एवं गुणों तथा प्रभावों को सूर्य अपनी किरणों से छोड़ता है और फैलाता है जैसा कि मन्त्र 14 में कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुश्यपुस्त्वामसृजत कुश्यपस्त्वा समैरयत् ।14 ।

इस 'प्रतिसर' मणि के मालाकार मण्डल में होने से सैकड़ों गोलों के संघ का नाम 'प्रतीवर्त' है जैसा कि मन्त्र 15 में इसे शतपर्वा कहा है।

प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा। 15।
अयमिद्वै प्रतीवुर्त ओजस्वान् सञ्जयो मणिः।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः।। 16।।

यहां यह तात्पर्य है कि हे राजन् ! शत्रु जो विषप्रयोग – क्रियाओं से मारना चाहता है उसे सैंकड़ों पर्वो वाले इस 'प्रतिसर' मणिरूप वज्र के द्वारा प्रतिगति से पीछे लौटा कर मार। यह 'प्रतिसर' अवश्य शत्रु के आक्रमण को पीछे फेंकने वाला ओजस्वी विजय का साधन मणि है वह अपनी सेनारूप प्रजा और धन का उत्तम रक्षक है। यह 'प्रतिसर' मण्डल रूप में मणि अपने सेना दल के सब ओर फैलाया जाता है जिससे शत्रुकृतकृत्याओं को पीछे फेंकता रहे और जिस मण्डल या घेरे में सैकड़ों ही 'प्रतिसर' मणियां लगी होती हैं जैसे मन्त्र 5 में बतलाया है।

ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः
प्रतिसुरैरजन्तु।।5।।

वे हमारे सामने की सूर्यकिरणें या हमारे आगे हुए दिव्यप्रयोग शत्रु की विषादिकृत कृत्याओं को इन प्रतिसरों घेरे में प्रतिकार करने वाले सैकड़ों विषनाशक औषध–गोलों के द्वारा पीछे लौटाते हैं। 'स्राक्त्य मणि' के सम्बन्ध में अथर्ववेद में अन्यत्र भी ऐसा ही संकेत किया है।

स्राक्त्योऽसि प्रतिसुरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।

(अथर्व0 2/11/2,5)

यहां 'प्रतिसर' मणि को दिशाओं में फैलने प्रत्याक्रमण करने वाला शुक्र (शुभ्र) भ्राज (ज्वलन्त) स्वः (तापक) ज्योतिरूप कहा है। उक्त 'प्रतिसर' मणियों का घेरा हमारे लिए कवच बनकर काम आता है यह भी मन्त्र 7 में कहा है।

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते। सूर्य इव
दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी।।7।।

जो मनुष्य इस 'प्रतिसर' मणि को घेरे रूप प्रतिकारक मणिमण्डल को अपना वर्म अर्थात् कवच बनाते हैं उनके द्वारा प्रयुक्त 'प्रतिसर' मणि सूर्य जैसे आकाश में आरूढ़ हो अन्धकार और दोषों को हटाता है ऐसे ही शत्रु की विषकृत्याओं को हटाता है। यह प्रकरण भी आयुर्वेद तथा विज्ञान का अनुसरण करता हुआ धनुर्विद्या शस्त्रास्त्र विद्या का विषय है मन्त्र जादू या गण्डा ताबीज का नहीं।

दर्भ मणि –

अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 28–30, 32, 33 इन पांच सूक्तों में दर्भमणि का वर्णन है पूर्व की भांति विस्तारभय तथा प्रायः विषय की समानता और मन्त्रों की सुगमता के कारण हम यहां भी प्रत्येक मन्त्र का अर्थ नहीं करेंगे केवल दर्भ मणि पर ही विचार करेंगें कि वह क्या है। पांचों सूक्तों के मन्त्रों पर विचार करने से यहां दर्भ का अर्थ दाभ या कुशा घास नहीं है किन्तु दृदलिभ्यां भः (उणा0 3/151) से बाह्य शत्रु के लिए उपद्रवों और आन्तरिक कृमियों तथा दोषों एवं रोगों को विदीर्ण करने वाला कोई वज्ररूप वस्तु है। 'राज निघण्टु' में वज्र का पर्याय दर्भ शब्द दिया है **दर्भे च कुशिके वज्रम्** (राजनिघण्टु। व0 23)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्रक को वज्र कहते हैं **नीलाभ्रं दर्दुरा नागः पिनाको वज्र इत्यपि** (राजनिघण्टु व0 ....13)। इसके अतिरिक्त हमारी इस धारणा में मंत्रवर्णन रूप वेद की स्वयं अन्तःसाक्षी भी हैं, हम यहां मन्त्रों के कुछ वर्णन और आयुर्वेद निघण्टु में दिये अभ्रक के गुणों को तुलना के लिए प्रदर्शित करते हैं।

मन्त्र वर्णनः–

(1) ''**इमं बध्नामि ते मणिं। दर्भः**''....(अथर्व 19/28/1) दीर्घायु के लिए इस दर्भमणि को तेरे बांधता हूं।

आयुर्वेद वर्णनः–

(1) *''अभ्रंकषायं मधुरं सुशीतमायु दीर्घायुत्वाय तेजसे। करं धातुविवर्धनं च''* *(धात्वादिवर्ग भावप्रकाश नि0 113–115) अभ्रक आयु वर्धक है।*

मन्त्र वर्णनः–

(2) ''**दर्भेण देवजातेन दिविष्टम्भेन शश्वदित्**''। (अथर्व0 19/32/7) द्युलोक में स्तम्भित अर्थात् तना या लटका हुआ दर्भ।

आयुर्वेदवर्णनः–

(2) *''गगनान् स्खलितं यस्माद गगनं च ततो मतम् (अभ्रकम्)''* *(धात्वादि वर्ग भाव0 प्र0 नि0 115) गगन से स्खलित हुआ अभ्रक अभ्र बादल दिविष्टम्भद्युलोक में तना या लटका हुआ होता है। (*यह नाम की तुलना)

मन्त्र वर्णनः–

(3) ''**सहस्रंपर्ण उत्तिरः। दर्भो0**'' (अथर्व0 19/32/1) ''**पयस्वान्...सनोयं दर्भः**'' (अथर्व0 19/33/1) सहस्र अर्थात् (**सहस्रं बहुमाम**) (निघं0 3/1) बहुत पत्रों वाला दर्भ, जलवाला दर्भ।

आयुर्वेदवर्णनः–

(3) *''अभ्रकं.....अब्दं व्योमघनं शुभ्रं बहुपत्रं घनाह्वकम्'' (शालिग्राम नि0) 'अब्द' जल देने वाला 'बहुपत्र' बहुत पत्रों वाला (अभ्रक में बहुत) पत्ते होते हैं।*

मन्त्र वर्णनः–

(4) ''**बाध्नमि जरसे स्वस्तये**'' (अथर्व0 19/33/4) है। वृद्धावस्था तक पहुंचने के लिए दर्भ को बांधता हूं।

आयुर्वेद वर्णनः–

(4) *''द्रढयति वपुः'' (धात्वादिवर्ग 124 भावप्र0 नि0) शरीर के दृढ़ करता है।*

मन्त्र वर्णनः–

(5) ''**यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह। ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत।।**'' (अथर्व 19/30/5) जो मेघ रामुद्र बिजली के द्वारा गर्जा तो उससे चमकदार बिन्दु हुआ पुनः उससे दर्भ हुआ।

आयुर्वेदवर्णनः–

(5) *''पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वजमुदधृतम्। विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्माद गगने परिसर्पिताः। निपेतुर्घनध्वानाः शिखरेषु महीभृताम्। तेभ्य एव समुत्पननं तत्तदिगरिषु चाभ्रकम्।। तदवज्रं वज्रपातत्वाद अभ्रमभ्ररवोदभवात्। गगनात्स्खलितं यस्माद गगनं च ततो मतम्।।'' (धात्वादिवर्ग 113-115 भावप्रकाश नि0) इन्द्र अर्थात् बिजली ने पूर्व काल में वृत्रवध के लिए वज्र को उठाया ऊपर फेंका उससे चिनगारियां मेघ गर्जना करती हुई पर्वतों के शिखरों पर गिरीं इन चिनगारियों से पर्वतों पर अभ्रक उत्पन्न हुआ। वह वज्र है वज्रपात के कारण, वह अभ्रक है अभ्र गर्जना से उत्पन्न होने*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण, वह गगन है गगन से गिरने के कारण।

मन्त्र वर्णन–

(6) "**प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च। यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते।।**" (अथर्व० 19/32/8) हे दर्भ ! तू मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए प्रिय बना जिस किसी के लिए हम कामना करतें हैं उस सबके विशेष देखने दिखाने के लिए भी।

आयुर्वेदवर्णनः–

(6) *विप्रक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्माच्चतुर्विधः। क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः।।"* *(धात्वादिवर्ग 116 भावप्रकाश निघं०) अभ्रक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संज्ञक हैं जो क्रमशः सफेद, लाल, पीला और काला होता है।*

इस प्रकार तुलना से यह स्पष्ट हो रहा है कि यहां सूक्तों में कहा दर्भ अभ्रक है। अब इस अभ्रक का उपयोग मन्त्रों में दो प्रकार से वर्णन किया है एक तो शरीर पर उसका वर्म (आवरणकारक कवच) जैसा कि कहा है।

यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते।
तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नां जहि वीर्यैः।। (अथर्व० 19/30/1)

दर्भ अर्थात् हे अभ्रक ! समस्त वर्मो आवरण कवचों में तेरा वर्म आवरण कवच 'जरामृत्युशतम्'– {जरामृत्युशतम् इति सायणः।} जरा और मृत्यु का नाशक है उससे तू इस राजा को (वर्मिणम्) वर्म वाला आवरण कवचवाला बनाकर अपने गुण बलों से शत्रु को नष्ट कर। अभ्रक का वर्म बनाया जाता है यह कहा है। अब लीजिए किस अंग के लिए यह वर्म बनाना आवश्यक है वह भी दिया है।

नास्य केशान् प्रवपन्ति नोरसि ताडमाघ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति।।
(अथर्व 0 19/32/2)

इसका आशय है पुरोहित अच्छिन्नपर्ण अर्थात् जिसके पत्ते शस्त्र से नहीं कटते हैं ऐसे उस दर्भ अभ्रक के द्वारा जिस राजा के लिए सुख चाहता है उसके 'केशान् न प्रवपन्ति' शत्रुजन केशों सिर के बालों को नहीं उखाड़ सकते–{*वप मुण्डतन्तुबीजोप्त्योः* कविकल्पद्रुमः *वपति मस्तकं नापितः। "शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्"* मनु:0 5/140}नहीं बिगाड़ सकते और 'न उरसि ताडमाघ्नते' न छाती पर वार का आघात कर सकते हैं। इस प्रकार सिर और छाती की रक्षा अभ्रक के वर्म (आवरण कवच जरोबखतर) के द्वारा करने का विधान है। अभ्रक का सिर के लिए शिरोवेष्टन टोपी टोप और छाती के उरोवेष्टन या वक्षोवेष्टन (जरोबखतर) बनाना चाहिए क्योंकि अभ्रक पर तलवार आदि शस्त्र से काट नहीं होती बल्कि शस्त्र कुण्ठित हो जाता है।

अभ्रक का उपयोग धनुर्विद्या की दृष्टि से भी है, यहां अथर्ववेद में इसकी चर्चा की है।

दर्भेण त्वं कृण्वद् वीर्याणि दर्भे बिभ्रदात्मना चा व्यथिष्ठाः। (अथर्व0 19/33/5)

.....सपत्नां जहि वीर्यैः (अथर्व0 19/30/1)

दर्भ अभ्रक के द्वारा शत्रुओं को मारने के लिए वर्णन किया है। संग्राम के जहाजों में कांच के स्थान पर अभ्रक लगाते हैं क्योंकि कांच तो गोला बारूद के धमाके से टूट जाता है किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्रक नहीं टूटता। यह कहा जाता है कि अभ्रक पर विद्युत् का प्रभाव नहीं पड़ता संग्राम में विद्युत् के अस्त्रों का वार रोकने में भी काम होता है। स्वयं भी वज्र नाम होने से अस्त्र के मसाले में पड़ने से आघातकारी हो सकता है और शत्रुदल को मार सकता है जैसा कि भावप्रकाश निघण्टु में लिखा है **दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम्। गोलकान् बहुशःकृत्वा स स्यान्मृत्युप्रदायकः** (भा. नि. धात्वादिवर्ग 119–120) अर्थात् दर्दुर जाति का अभ्रक अग्नि में डालने से गड़गड़ाहट ध्वनि करता है और बहुत गोले बना कर मार सकता है। इस कथन से अभ्रक को अस्त्र या बम आदि में डाला जा सकना भी संभव है। इस प्रकार दर्भ नाम से कहा इतना गुणकारी और प्रभावकारी पदार्थ यहां अभ्रक ही है। इसी के वर्म आवरण कवच और अस्त्रमणि के रूप में यहां हैं।। अस्तु।।

वरण मणि–

अथर्ववेद काण्ड 10 सूक्त 3 में 'वरण मणि' का वर्णन है और उसके 25 मन्त्र हैं यहां भी प्रत्येक मन्त्र का अर्थ पूर्व की भांति विस्तारभय आदि कारणों से नहीं करेंगे हां 'वरण मणि' पर विचार अवश्य करना है। मन्त्र 11 में इसे वनस्पति कहा है तथा छाती पर धारण करने को बतलाया है।

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।11

इस मन्त्र से दो बातें प्रकट होती हैं एक तो यह कि 'वरणमणि' वनस्पति है और दूसरे इसे छाती पर धारण करने से हृदय की रक्षा होती है तथा हृदय रोग को दूर करने के लिए और कभी संग्राम आदि जैसे विकट अवसर पर हृदय घबराए नहीं इसलिए इसे भी अभ्रक की भांति आवरक के रूप में धारण करना चाहिए। छाती पर धारण करने से रात्रि में सोते हुए स्वप्नभयों से भी बचा सकेगा ऐसा भी संकेत सूक्त में है।

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्। परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते।।6।।

स्वप्न सोकर नींद लेकर नींद में यदि तू कोई बुरा स्वप्न देखे कि सिंह आदि भयंकर जंगली पशु अयोग्य रीति से तुझ पर आक्रमण करता है तो उससे तथा बुरी डरावनी बोली वाले पक्षी के डराने झपटने से यह 'वरण मणि' तुझे बचावेगा। वरण वनस्पति आयुर्वैदिक 'वरुण' और 'वरण' नाम का एक वृक्ष है जिसे लोकभाषा में बरना कहा जाता है। वरण वनस्पति के गुण आयुर्वैदिक ग्रन्थों में कहे जैसे ही बतलाए हैं–

वरुणो वरणः सेतुस्तिक्तशाकः कुमारकः।

(षटादिवर्ग 65 भावप्रकाश निघ०)

वरुणो. ....कृमीन् रक्तदोषं शीर्षवातं मूत्राघातं च हृद्रुजम। हृद्रोगं नाशयत्येव। (नि० र०)

इन वचनों से स्पष्ट ही 'वरण' को हृदयरोग और हृदय शूल को हटाने वाला कहा है। तथा शीर्षवात सिर की वात को नष्ट करता है इससे भी यह सिद्ध होता है कि स्वप्न में भय आदि से भी वरण रक्षा करता है कारण कि स्वप्न का आना, नींद का ठीक न आना या स्वप्न में भय आदि का लगना सिर में वातप्रकोप से होता है, उसे 'वरण' बरना नष्ट कर देता है। 'वरण' कृमिनाशक भी है और अनेक रोगों को भी नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है यहां वेद ने भी इसका उपयोग विशेषतः रोग दूर करने में बतलाया है।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः। यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्।।5।।

यह 'वरण' बरना वनस्पति रोग को हटा देता है, जो यक्ष्म रोग इस मनुष्य के अन्दर प्रविष्ट हुआ है उसको देव विद्वान् इसके द्वारा हटाते हैं। मन्त्र में 'वरण' मणि वरने का छाती पर धारण करना कहा है। हृदय–रोग छाती में शूल और सोते हुए हृदय में भय न हो इसके लिए 'वरण' बरना के नव पल्लवों कोंपलों का स्वरस या कल्क का वस्त्र आदि पर आलेप करके उरोवस्त्र पहनना तथा औषधरूप में गुटिका गोली बनाकर सेवन करना भी उचित है। औषध रूप इसकी जड़ की या जड़ की छाल की गोली बनाकर सेवन करना भी उपयोगी हो सकता है। अस्तु

फाल मणि––

अथर्ववेद काण्ड 10 सूक्त में 6 में 'फालमणि' का वर्णन है। सूक्त में मन्त्र 35 हैं यहां पर भी पूर्व की भांति विस्तारभय आदि के कारण प्रत्येक मन्त्र के अर्थ न करेंगे। प्रत्युत कुछ मन्त्रों द्वारा 'फाल' मणि क्या है यही विचार करेंगे। इस सूक्त का यह फाल मणि न तो आयुर्वेदिक दृष्टि से और न संग्राम की दृष्टि से कोई शरीर पर धारण करने वाली वस्तु है, किन्तु इससे भिन्न है। इस 'फाल' मणि को समझने के लिए प्रथम एक ऐसे मन्त्र को प्रस्तुत करते हैं जिसमें ऐसी ही भिन्न मणि का वर्णन है। यह मन्त्र यह है–

देवा इमं मधुना संयुतं यवंसरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।। (अथर्व0 6/30/1)

अर्थ– (**देवाः मधुना संयुतम् इमं यवम्**) देवों ने मधुरगुण से युक्त इस यव जौ अन्न को (**सरस्वत्याम् अधि मणौ अचकृषुः**) नदी– *सरस्वती नदीनामसु (निघ. 1/13)* के तटरूप भूमिभाग में बोये (**शतक्रतुः इन्द्रः सीरपतिः आसीत्**) असंख्य क्रिया शक्ति वाला इन्द्र क्षेत्रपति था (**सुदानवः मरुतः कीनाशाः आसन्**) उत्तम दानशील मरुत् किसान थे।

इस मन्त्र में कृषि का प्रकरण है और वह नदी के मणि पर। यहां मणि का अर्थ नदी का तटरूप भूमिभाग है यह निःसन्देह है। लोक में नदी की मण कुएं की मण शब्द तटरूप भूमिभाग के लिए प्रयुक्त होते भी हैं यहां लोकभाषा में मणि की ह्रस्व मात्रा 'इ' का उच्चारण नहीं होता या लोप हो गया है जैसे विधि का विध, रीति का रीत, प्रीति का प्रीत। उक्त मन्त्र से मणि शब्द विशेष भूमिभाग के अर्थ में जैसे प्रयुक्त होता है ऐसे ही अर्थ में अथर्व0 का0 10 सूक्त 6 का 'फालमणि' भी है। यह बात पाठक निम्न मन्त्रों द्वारा देखें।

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा।2।

अर्थ– (**अयं मणिः फालात् जातः**) यह मणि हल में लगे हुए भूमि में घुसने वाले लोहे के फाल से प्रकट हुआ या उत्पन्न हुआ (**मह्यं वर्म करिष्यति**) मेरे लिए मेरे जीवन के लिए वर्म प्राणों का आवरण रक्षण करने के साधन रूप यव आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्न को उत्पन्न करेगा (**मन्थेन पूर्णः**) मन्थन से पूर्ण –फालमन्थन हल जोतने से पूर्ण–पूर्ण जोता हुआ (**रसेन वर्चसा सह मा– आगमत्**) रसभरे अन्न के साथ या हरे शाक फल तथा तेजोरूप खाद्य यवादि अन्न के साथ मुझे प्राप्त हो। 'रसोऽन्ननाम' (निघं० 2/7) 'वर्चोऽन्ननाम' (निघं० 2/7)

मन्त्र के इस वर्णन से कि '**फालात् जातः**' फाल से प्रकट या उत्पन्न और मन्थन तथा अन्न आदि से पूर्ण यह मणि है जिसका नाम 'फालमणि' आगे मन्त्रों में दिया है। प्रथम तो फाल से जात होने प्रकट होने से यह 'फाल' मणि है यहां तद्धित प्रत्यय का छान्द लुप् (लोप) है। दूसरे यह अन्नों से भरा हुआ फाल से प्रकट हुआ पदार्थ क्या हो सकता है वह ऐसा 'फालमणि' यहां क्यारियों से उत्पन्न हरा भरा क्षेत्र खेत ही है यही निःसन्देह उत्तर मिलेगा और देखिये अगला मन्त्र।

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम्।।3।।

अर्थ– (**शिक्वः हस्तेन तक्ष वास्या त्वा यत् परावधीत्**) हे हरे भरे खेत रूप मणि ! अव्यक्त बोली वाला बन्दर आदि प्राणी हाथ से या छेदन करने वाला मनुष्य द्रान्ति, कुठार आदि से तुझे नष्ट करता है –बिगाड़ता है (**तस्मात्**) तो (**जीवलाः शुचयः आपः**) जीवन देने वाले शुद्ध जल (**त्वा शुचिं पुनन्तु**) तुझे फिर शुद्ध वैसे ही रूप में पवित्र करें पूर्ण करें।

इस मन्त्र में 'फालमणि' हरे भरे खड़े खेत को प्राणियों और मनुष्यों के द्वारा नष्ट होने की सम्भावना बतलाई और जलों से सींचने द्वारा ठीक होने बढ़ाने की सूचना दी है इससे तो 'फालमणि' हरा भरा खेत ही है, इस विषय की स्पष्ट पुष्टि है, और लीजिए।

ऋतवस्तमबध्नतार्तवस्तमबध्नत।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति।। 18।।

अर्थ– (**ऋतवः तम् अबध्नत**) उस खेतरूप फाल मणि को ऋतुएं बांधती हैं – सम्भालती हैं (**आर्तवाः तम् अबध्नत**) ऋतुओं में होने वाले मास उसे बांधते हैं सम्भालते हैं (**संवत्सरः तं बद्ध्वा सर्वं भूतं विरक्षति**) संवत्सर वर्ष उसे बांध कर सम्भालकर समस्त प्राणीमात्र की रक्षा करता है।

मन्त्र के इस वर्णन में 'फालमणि' हरा भरा खेत रूप भूमिभाग ही है क्योकि महीने ऋतुएं और संवत्सर उसे सम्भालते हैं और वह प्राणियों की जीवनरक्षा का साधन हैं।

स मायं मणिरागमत्सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह।।24।।

(**सह अयं मणि व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह**) वह यह मणि चावल यव अन्नों के साथ महती विभूति ऐश्वर्यता के साथ (**मा आगमत्**) मुझे प्राप्त हो।। पुनः–

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा।।32।।

(**देवाः पितरः मनुष्याः यं सर्वदा उपजीवन्ति**) देव पितर और मनुष्य सर्वदा जिसके आश्रय से जीवित रहते हैं।

इस कथन में भी जीवन का आधार 'फालमणि' हरा भरा खेत रूप भूमि सिद्ध होती है। अब लीजिए विशेष वचन–

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु।। 33।।

(यथा फालेन कृष्टे) जैसे ही फाल से हलके फाल से जोत देने पर **(उर्वरायां बीजं रोहति)** उपजाऊ भूमि में बीज उग सके बढ़ सके **(एवा)** ऐसे **(मयि)** मेरे निमित्त इस 'फाल' से प्रकट खेत रूप 'फाल' मणि द्वारा–*अयं मणिः फालाज्जातः* (2) **(प्रजा)** सन्तति **(पशवः)** गौ आदि पशु **(अन्नम् अन्नम्)** अन्न– अन्न, अन्न पर अन्न अधिकाधिक अन्न **(विरोहतु)** उत्पन्न हो सके बढ़ सके।।

यह कथन 'फाल' मणि खेतरूप भूमि भाग है इसके लिए निर्णय–सदृश वचन है। 'फालमणि' भूमिभाग है इसका अन्तिम निर्णय भी लीजिए।

तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः। 12।

(तेन मणिना) हल की फाल से प्रकट होने योग्य खेत भूमिभाग रूप उस फाल मणि से **(अश्विनौ इमां कृषिम् अभिरक्षतः)** अश्विनौ इस कृषि–बीज बोना उत्पन्न करना काटना रूप खेती को सम्भालते हैं।

इस प्रकार इस सूक्त में हल में लगे फाल से प्रकट हुए 'फालमणि' (खेतरूप भूमिभाग) का रहस्य खुल जाता है वास्तव में देवा वे तो खेतरूप भूमिभाग एक महत्वपूर्ण मणि बहुमूल्य वस्तु है इसके बिना जीवन निर्वा नहीं हो सकता है इसका रहना और बांधना अत्यावश्यक है। खेत रूप भूमि–भाग नाम की फालमणि को खदिर खैर कीकर आदि **यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे''।** (अथर्व० 10/6/6) कंटीले झाड़ झंकाड़ों से सब ओर उसकी सीमाओं पर बाढ़ बांधना ही इस खेत रूप फालमणि का बांधना है। यह 'फालमणि बन्धन' कोई मन्त्र जादू गण्डा, ताबीज की बात नहीं किन्तु कृषिविद्या का विषय है।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में मणि नाम देकर कही हुई सब मणियों पर हमने इस ग्रन्थ में विचार किया है पाठकों ने देखा होगा कि वेद का मणिबन्धन साम्प्रदायिक विषय या मिथ्या कल्पित तान्त्रिक मन्त्र यन्त्र तन्त्र या नक्श गण्डा ताबीज जादू का विषय नहीं है किन्तु वैज्ञानिक, आयुर्वैदिक, धनुर्विद्या शस्त्रास्त्रविद्या और कृषिविद्या से सम्बन्ध रखने वाला कितना महत्वपूर्ण विषय है। अस्तु।

अब इसके आगे 'कृत्या–अभिचार' विषय पर विचार करते हैं।

षष्ठ पटल

कृत्या–अभिचार

अथर्ववेद में बहुत से स्थलों पर कृत्या और अभिचार के प्रयोगों को शत्रु एवं शत्रुसेना पर फेंकने और प्रेरित करने के लिए कहीं पर अलग–अलग और कहीं पर दोनों का एक साथ भी वर्णन आता है। कृत्या से तात्पर्य हिंसकक्रिया है जो कि शत्रु सेना के घात के लिए प्रयुक्त की जाती है। यह इसका शाब्दिक साधारण स्वरूप है क्योंकि **''कृञ् हिंसायाम्''** (स्वादि0) से कृत्या शब्द बना है एवं अभिचार का आशय उस प्रयोग से है जो कि शत्रु के शरीर में प्रविष्ट हो उसे व्याधित तथा पीड़ित कर मार डालने में समर्थ हो। यह इसका शाब्दिक साधारण स्वरूप है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि ''**चर भक्षणे**'' (स्वादि0) से अभिपूर्वक 'अभिचार' शब्द बना है जो शत्रु के शरीर पर आक्रमण कर या अन्दर प्रविष्ट हो उसे खा जाता है। अस्तु। अब इन दोनों का अलग अलग विशेष स्वरूप और वर्णन करते हैं।

कृत्या विचार–

कृत्या के सम्बन्ध में अथर्ववेद में अनेक स्थल हैं जिनमें कि कृत्या का स्वरूप, कृत्या का कार्य, कृत्या की संख्याएं या भेद, कृत्या के आधार, कृत्या के पात्र, पर–कृत्या का अवरोध–प्रतिकार आदि वर्णन हैं। हम यहां इन सभी पर विचार करेंगे और साथ साथ मन्त्रार्थ तथा क्वचित् क्वचित् समस्त सूक्त के अर्थ भी देंगे परन्तु विस्तारभय से सुगम मन्त्रों और सूक्तों के अर्थ न करेंगे। अस्तु।

कृत्या का सामान्य स्वरूप–

कृत्या के सम्बन्ध में लोगों के अन्दर एक भ्रम फैला हुआ है। जनसाधारण कृत्या को मन्त्र अर्थात् मूठ जादू टोना समझते हैं यह भ्रम अर्वाचीन तान्त्रिक लोगों ने फैलाया हुआ है परन्तु प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों में यह बात नहीं है वहां मन्त्र से तात्पर्य किसी गुप्त अस्त्र शस्त्र से है जो शत्रु सेना का घात कर सके। मन्त्रों का वर्णन करते हुए 'उड्डीश तन्त्र ' ग्रन्थ में लिखा है कि ''**मुसलं क्षोभणे बन्धे शृङ्खला... नाराचः सैन्यभेदने**'' (उड्डीशतन्त्र 44–46) यहां देखिये 'नाराच' यह एक अस्त्र है इसे मन्त्र नाम से कहा है। और लीजिए **विश्वमूर्तिः स्फुलिङ्गिन्यसौ धूमवर्णा मनोजवा। लोहिताख्या करालाख्या काली तामस्य ईरिताः। एताः सप्त युञ्जन्ति क्रूरकर्मसु मन्त्रिणः।** (उड्डीश तन्त्र 140) इस वचन में अग्नि की सात ज्वालाओं का वर्णन है जैसे मुण्डकोपनिषद् में आया है **काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।** (मुण्डको0 1/2/4) यहां तुलना करें वे ही मुण्डकोपनिषद् वाली अग्नि की सात ज्वालाएं तन्त्र वचन में भी हैं केवल क्रम उल्टा है। उक्त तन्त्र वचन में शत्रुसेना नाश के लिए कृत्या–प्रयोग का वर्णन है यहां तीन वचन विशेष ध्यान देने योग्य है **एताः सप्तयुञ्जन्ति, क्रूरकर्मसु, मन्त्रिणः** मन्त्रीजन क्रूर कर्मो में अर्थात् शत्रु सेना नाश के कार्यो में इन सात ज्वालाओं को काम में लाते हैं। अग्नि की ज्वालाओं द्वारा क्रूर हिंसा कृत्या रूप हिंसा कार्य करने वाले को मन्त्री कहा है। इसलिए मन्त्र का अर्थ अग्नि ज्वालाओं के द्वारा अग्नि में वनस्पति सम्बन्धी तथा खनिज विष डाल कर उनकी रंग–बिरंगी ज्वालाओं को उत्तेजित कर शत्रु सेना के लिए हिंसा प्रयोग करना मन्त्र है। अब आगे चलिए 'कृत्या' के सम्बन्ध में लिखा है कि ''**पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः**'' (कौटिल्यार्थ शास्त्र। प्रकरण 150–152) पुरोहित पुरुष वैज्ञानिक विद्वान् राजा को संग्राम के लिए कृत्या अभिचार की सम्मति दें उनका सम्पादन करें। जैसा कि अथर्ववेद में भी पुरोहितों द्वारा कृत्याओं के प्रतिकार– सम्पादन का स्पष्ट वर्णन है ''**ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु।**'' (अथर्व0 8/5/5) अब शत्रुकृत कृत्याओं का स्वपक्ष रक्षा के लिए प्रतिकार और शत्रुसेनाओं में विषधूम आदि रूप कृत्याओं का प्रयोग करना भी कौटिल्यार्थशास्त्र में दिया है। **एतैः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्याप्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः। अमित्रेषु प्रयुञ्जीत विषधूमाम्बुदूषणान्।। (कौटिल्यार्थ शास्त्र। प्रकण 179) इस कौटिल्यार्थ शास्त्र के वचन में पूर्व कही हुई मणियों का 'एतैः' पद से संकेत कर उनके द्वारा शत्रु की विषप्रयोगरूप कृत्याओं का प्रतिकार करना लिखा है क्योंकि उक्त मणियां विषनाशक हैं जैसा कि इस मणि प्रकरण के प्रारम्भिक वचन से स्पष्ट होता है कि **"स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषिविषगराणं प्रतीकारे......स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः"** (कौटिल्यार्थ शास्त्र प्रकरण 179) तथा **जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीबे जातस्य अश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।** (कौटिल्यार्थ शास्त्र प्रकरण 179) यहां अतिस्पष्ट ही है शत्रुप्रयुक्त समस्त विषक्रियाओं को मणियां नष्ट करती हैं। यही सिद्धान्त अथर्ववेद के मन्त्रों में है।

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वां जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।।
(अथर्व0 19/34/4)

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।। (अथर्व0 2/4/6)

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः।।
(अथर्व0 8/5/2)

मणियां विषनाशक ओषधियों की होती हैं और ओषधियां भी विषनाशक होने से कृत्याओं की नाशक हैं यह भी अथर्व वेद के मन्त्र से प्रमाणित है–

उन्मुञ्चन्तीर्विवरूणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहायन्त्वोषधीः।। (अथर्व0 8/7/10)

यहां स्पष्ट विषनाशक ओषधियों को कृत्यानाशक कहा है। अस्तु। अब इतने वर्णन से सिद्ध हुआ कि शत्रुसेना का घात करने के लिए अग्नि ज्वालाओं में किन्हीं विषैले वानस्पत्य और खनिज पदार्थों के प्रयोग का नाम कृत्या है। 'शब्दकल्पद्रुम' में दिए कृत्यासम्बन्धी एक वचन से भी ऐसा ही लक्षित होता है *कृत्यामुत्पादयामासुर्ज्वालामालोज्वलाकृतिम्* अस्तु।

इस प्रकार कृत्या का उपर्युक्त राप्रमाण विवेचन करने के अनन्तर अब अथर्ववेद में दिया हुआ स्वरूप, आधार, उपयोग, प्रयोग आदि का वर्णन क्रमशः करते हैं।

कृत्या का विशेष स्वरूप –

पूर्व कथन में ऐसा बतलाया जा चुका है अग्नि ज्वालाओं में वानस्पत्य और खनिज विष के प्रयोग द्वारा शत्रु सेना का घात करना कृत्या है। अब इसी जैसा और इसरो भी स्पष्ट वर्णन अथर्ववेद का देखिए।

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति।।
(अथर्व0 4/18/3)

अर्थ– **(यः पाप्मानम् अमा कृत्वा)** जो हिंसा रूप प्रयोग को गुप्तस्थान में तैयार करके **(तेन – अन्यं जिघांसति)** उस हिंसाकारी प्रयोग रो अन्य का घात करना चाहता है **(तस्यां दग्धायाम्)** उस जली हुई कृत्या में {**यो देवाः कृत्यां कृत्वा** (2) इस पूर्व मन्त्र में 'कृत्या' का वर्णन है उसका विशेषण यहां 'तस्यां दग्धायाम्' है।} **(बहुलाः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्मानः फट् करिक्रति) बहुत प्रकार के मनशिल पोटाश आदि पाषाण 'फट्' ऐसा शब्द पुनः पुनः या अत्यन्त करते हैं।

इस मन्त्र से स्पष्ट हुआ कि कृत्या के अन्दर फट्– फट् करने वाले पटखने वाले पाषाण भी होते हैं। अर्थात् वानस्पत्य तथा खनिज विषों के साथ मनशिल पोटाश आदि पटखने चटखने और अग्निज्वालक पदार्थो का बना आघातकारी प्रयोग 'कृत्या' है जैसा कि बम होता है। तथा–

असद् भूम्याः समभवत् तद् द्यामेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु।।

(अथर्व0 4/19/6)

अर्थ– **(असत्)** अविद्यमान गुप्त या तुच्छ अथवा दुष्टकर्म कृत्यारूप **(भूम्याः समभवत्)** भूमि से प्रकट हुआ पृथिवी पर प्रकट किया हुआ **(तत्)** वह **(महत् व्यचः)** बड़ा फैला हुआ हो **(द्याम्)** द्युलोक अर्थात् आकाश को **(एति)** प्राप्त होता है **(ततः)** फिर **(वै)** निश्चय **(विधूपायत्)** मनुष्यों को सन्ताप देता है – घात करता है **(तत्)** वह ऐसा कृत्याकर्म **(कर्तारम्)** कर्ता को **(प्रत्यक्–ऋच्छतु)** पीछे लौटे कर्ता का ही घात करे।

कृत्या पृथिवी के पदार्थो से बनी हुई गुप्तरूप में अल्पाकार होती है परन्तु प्रयोग द्वारा आकाश में फैलकर बड़ारूप धारण कर लेती है पुनः मनुष्यों का घात करती है। इस वर्णन से कृत्या एक विषैला वायव्य (गैसरूप) घातक प्रयोग है यह सिद्ध होता है।

उपर्युक्त इन दोनों मन्त्रों से दो प्रकार की कृत्याओं की सूचना मिलती है। एक कृत्या स्फोटक पदार्थो से बनी हुई ठोस भारी। दूसरी फैलने वाली वायव्यरूप को धारण करने वाली है। दोनों कृत्याएं हिंसाकारी हैं प्रथमकृत्या स्फोटक पदार्थो वाली विशेषतः तोड़ फोड़ के लिए उपयुक्त होती है जो मकानों स्थानों को तोड़ती फोड़ती हुई प्राणियों का भी घात करती है। दूसरी केवल वायु और आकाश में फैलकर मनुष्य आदि प्राणियों का घात करती है। ऐसे ये दो प्रकार की कृत्याएं हुई। अन्यत्र वेद में स्पष्ट रूप से कृत्याओं के दो प्रकारों का वर्णन है। वह भी देखिए–

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः। उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति। (अथर्व0 8/5/9)

अर्थ– **(याः)** जो **(आङ्गिरसीः कृत्याः)** अग्नि से या अग्नि ज्वालाओं को छोड़ती हुई कृत्याएं हैं **अङ्गिरा उह्यग्निः** (श0 1/4/1/25) **अङ्गिरा वाऽग्निः** (श0 6/4/4/4) और दूसरी **(याः)** जो **(आसुरी कृत्याः)** केवल प्राणों में रमण करने प्राणों में आघात पहुंचाने वाली मायामयी गुप्त वायव्यरूप (गैसरूप) में फैलने वाली कृत्याएं हैं **मायेत्यसुरा........ उपासते** (श0 10/5/2/20) **आसुरी माया स्वधया कृतासीति प्राणो वा असुस्तस्यैषा माया स्वधया कृता** (श0 6/6/2/6) **(याः कृत्याः)** जो ये दोनों कृत्याएं **(स्वयंकृताः)** शत्रुसेना के घातार्थ अपनी की हुई हों **(याः उ च)** और जो भी ये दोनों कृत्याएं **(अन्येभिः)** दूसरों ने – शत्रुओं ने हमारे घातार्थ **(आभृताः)** सम्पादन की हैं **(ताः उभयीः)** वे दोनों प्रकार की कृत्याएं **(नवतिं नाव्याः अति)** नव्वे पूर्ण भरी नदियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिक्रमण करके (परावतः) दूर (परायन्तु) चली जावें।

इन दो प्रकार की कृत्याओं में पहली कृत्या जो 'आङ्गिरसी' अग्नि या अग्निज्वालाओं की उत्पादक अग्नि चूर्ण द्रव्यों से बनती है। अग्नि चूर्ण में अग्निप्रदीप्त करने वाले स्फोटक पदार्थ होते हैं इसके सम्बन्ध में शुक्रनीति में अग्निचूर्ण की वस्तुएं बतलाई हैं––

अङ्गारस्य गन्धस्य सुवर्चिलवणस्य च।
शिलाया हरितालस्य तथा सीसमलस्य च।
हिंगुलस्य तथा कान्तरजसः कर्पूरस्य च।
जतोर्नील्याश्च सरलनिर्यासस्य तथैव च।
समन्यूनाधिकैरंशैरग्निचूर्णान्यनेकशः।।

(शुक्र0 अ0 4 । प्र0 7 ।20 6–208)

यहां गन्धक, शेरा, मनशिल, पोटाश, हरिताल, सीसे का मल, सिंगरफ,फौलाद का चूरा, कपूर या खपरिया, लाख, नील, राल, या बेरजा आदि द्रव्यों का अग्निचूर्ण बनाया जाता है। इस ऐसे अग्निचूर्ण में आवश्यकतानुसार लोहे के टुकड़े गोले आदि आघातकारी पदार्थ डाले जाते हैं यहीं आंगिरसी कृत्या है। दूसरी आसुरी कृत्या जो केवल प्राणघातक है वह स्थावर जंगम विषों के योग से बनाकर वायव्य धूम के रूप में छोड़ी जाती है इसके सम्बन्ध में कौटिल्यार्थ शास्त्र में अनेक योग दिये गये हैं। जैसे –

चित्रभेककौण्डिन्यककृकणपञ्चकुष्ठशतपदी चूर्णमुच्चिदिङ्गकम्बलीशतकन्देध्मकृकलासचूर्ण गृहगोलिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिका चूर्णभल्लातकावल्गुकारसंयुक्तं सद्यः प्राणहर एतेषां वा धूमः। (कौ0 अर्थ0 अपनि0 14/1/5)

इस योग में चितकबरा मेण्डक, कौंडिल्यक अग्नि प्रकृति कीट जिसके विष्ठा और मूत्र में विष होता है, कृकण कीट या कयार पक्षी, कुष्ठ का पंचाङ्ग, कानखजूरा इन का चूर्ण। उच्चिटिंग कीट जिसके पीड में डंक होता है कम्बली कीट कनेर की लकड़ी, गिरगिट इनका चूर्ण। छिपकली, अन्धाहिक एक विष मछली, कृकण कीट या कयार पक्षी, दुर्गन्धी कीट, कटेहली इनका चूर्ण। भिलावा, बाबची इन दोनों के रस में गीले करके इनका धूंआ तुरन्त प्राणों का नाशक है। इन दोनों प्रकार की कृत्याओं का संकेत या मूल निम्न मन्त्र में भी है–

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधी रुत वीरुधः।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन्।। सर्वास्तान् अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय।।

(अथर्व0 11/1/24)

इन दोनों प्रकार की आंगिरसी और आसुरी कृत्याओं का उपयोग संग्राम में शत्रुसेना का घात करने के लिए होता है। अब यह देखिये–

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया।।

(अथर्व0 11/10/6)

अर्थ– **(कृत्ये)** हे कृत्या ! तू **(त्रिषन्धेः सेनया सह)** तीनों स्थल जल और आकाश में सम्बन्ध करने वाले राजा की सेना द्वारा छोडी हुई **(अमित्रेभ्यः)** शत्रुओं के लिए शत्रुओं के संहार के लिए **(भव)** हो **(इयम्)** यह सेना **(शरव्या)** शर– हिंसक शस्त्रास्त्र फेंकने में योग्य **(शितिपदी)** शीघ्र पैरों वली **(चतुष्पदी)** चार पद अर्थात् पैदल घोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथी विमान से सज्जित (संद्यतु) शत्रुसेना को खण्डित करे।

इस मन्त्र में सेना द्वारा प्रयुक्त कृत्या संग्राम में काम आने वाली है।

कृत्या के आधार–

कृत्याएं दो प्रकार की बतलाई गई हैं एक आंगिरसी स्फोटक पदार्थों वाली जो गिर कर मकानों स्थानों को तोड़ फोड़ देने वाली है। दूसरी विषवस्तुओं से बनी मनुष्यों प्राणियों का घात करने वाली आसुरी है। उस आसुरी के आधार और प्रयोगस्थानों का वर्णन निम्न मन्त्रों में देखिये–

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि।।

(अथर्व0 4/17/4)

अर्थ– (ते) तेरे लिए **(याम्)** जिस कृत्या को **(आमे पात्रे)** कच्चे पात्र में निर्बलपात्र में **(चक्रुः)** करते हैं **(याम्)** जिसको **(नीललोहिते)** नीले लाल रंग के पक्के पात्र में (चक्रुः) करते हैं **(यां कृत्याम्)** जिस घातक प्रयोग को **(आमे मांसे)** कच्चे मांस में **(चक्रुः)** करते हैं **(तया)** उसी घातक क्रिया या प्रयोग से **(कृत्याकृतः)** कृत्या करने वालों को **(जहि)** मार।

विषकृत्या के तीन आधार बतलाए हैं, कच्चे निर्बल पात्र में पक्के दृढ़ पात्र में और मांस में विषकृत्याओं के प्रयोग किये जाते हैं। निकट स्थान पर या शीघ्र की जाने वाली कृत्याएं कच्चे पात्र में विषयुक्त पदार्थों को भरना होता है। कुछ दूर स्थान पर किसी के द्वारा भेजने वाली कुछ देर में की जाने वाली या ऊंचे से विमान आदि द्वारा छोड़ी जाने वाली कृत्याएं पक्के पात्रों में की जाती हैं और अधिक दूर स्थान पर भेजने वाली देर में परिणाम लाने वाली कृत्याएं कच्चे मांस में करते हैं जिससे विषपदार्थ देर में वायव्य बनकर फैल सकें या किसी जीवित प्राणी में करते हैं, उसके स्पर्श सहवास दूध और मूत्र, तथा पुरीष आदि से विषाणु दूसरे का घात कर सकें जैसा कि सुश्रुत में शत्रुओं के घात के लिए विषकन्या तैयार करने का वर्णन है।

कृत्या के प्रयोग स्थल–

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम्।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां निदध्मसि।।

(अथर्व0 14/2/65)

अर्थ– **(यत्)** जो कि **(आसन्द्याम्)** कुरसी में **(उपधाने)** सिरहाने में **(यत्–वा)** और जो कि **(उपवासने)** उपवस्त्र चादर आदि में **(कृतम्)** किया है **(विवाहे)** विशेष वाहन पालकी आदि सवारी में **(आस्नाने)** स्नान करने के जलाशय में **(यां कृत्याम्)** जिस कृत्या को **(चक्रुः)** करते हैं **(ताम्)** उसे **(निदध्मसि)** निराकृत करते हैं– तिरस्कृत करते हैं।

इस मन्त्र में आसन्दी (गद्दी,शय्या) तकिये,वस्त्र, चादर, पालकी आदि सवारी और जलाशय में विषकृत्याओं के करने की चर्चा है। 'सुश्रुत' के कल्पस्थान में भी विषप्रयोग इन स्थानों में शत्रु के घात के लिए करते हैं ऐसा कहा है।

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु।।

(अथर्व0 4/18/5)

अर्थ– **(यां क्षेत्रे चक्रुः)** जिस कृत्या घातक विषक्रिया को अन्न,के खेत में करते हैं **(यां गोषु)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसको गौओं में गौ आदि पशुओं में **(यां वा)** या जिस कृत्या को (ते) तेरे **(पुरुषेषु)** पुरुषों में **(सर्वाः कृत्याः)** उन सब कृत्याओं को **(अनया–ओषध्या)** इस ओषधि से **(अहम्)**मैं **(अदूदुषम्)** दूषित करता हूं।

इस मन्त्र में अन्न के खेतों में अन्न विषैले बनाने के लिए तथा गौ आदि पशुओं और मानवों के घात के लिए विष कृत्याएं की जाती हैं ऐसा कहा है। यहां एक विशेष बात कही है कि खेत में विषकृत्या से खेत के अन्न विषदूषित हो जाते हैं ऐसी सम्भावना अन्यत्र भी अथर्ववेद मे ही दी है जो निम्न प्रकार है–

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
......अविषं कृणोमि।। (अथर्व0 8/2/19)

इस प्रकार अनेकों वस्तुओं में कृत्याएं की जाने का अथर्ववेद में वर्णन है विस्तार भय से हम सब पर यहां विचार नहीं कर सकते।

कृत्या का लौटाना–

अथर्ववेद में कृत्याओं के लौटाने का वर्णन है वह दो प्रकार से हो सकता है एक तो कृत्या के विषप्रभाव या घातक प्रभाव का शमनरूप, दूसरे उसके प्रतिकार में प्रत्याक्रमणरूप अर्थात् शत्रु पर वैसा ही प्रयोग करना। शमनरूप प्रतिकार औषधियों के द्वारा और प्रत्याक्रमणरूप अग्नि, विद्युत्, सूर्य किरणों आदि के द्वारा हो सकता है यही कृत्या का लौटाना है। यहां प्रथम कृत्या लौटाने के दो एक मन्त्रदेकर पुनः लौटाने के उपायों पर विचार करेंगे।

असद् भूम्याः समभवत्तद् द्यामेति महद् व्यचः।
तद्वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु।।
(अथर्व0 4/19/6)

इसका अर्थ हम अभी पीछे कर आये हैं फैलने वाले पदार्थो का घातक प्रयोग कृत्या है यहां केवल यही बतलाना ध्येय है कि इसमें कृत्या के लौटाने का वर्णन भी "**प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु**" वचन से ज्ञात होता है।

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम्।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम्।।
(अथर्व0 4/18/2)

अर्थ– **(देवाः)** हे देवो ! **(यः कृत्यां कृत्वा)** जो कृत्या करके **(अविदुषः–गृहं हरात्)** बिना जाने हुए के स्थान का संहार करे **(तम्)** उसको **(धारुः इव मातरम्)** दूध पिलाने वाली माता के प्रति जैसे **(वत्सः)** बछड़ा जाता है ऐसे **(प्रत्यक् उपपद्यताम्)** पीछे लौट जावे। एवम्–

पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः।।
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।
(अथर्व0 5/14/10,13)

अर्थ– **(कृत्ये)** हे कृत्या ! तू**(पुत्रः इव पितरं गच्छ)** पुत्र जैसे पिता के पास जाता है अपने उत्पादक के पास जा **(स्वजः इव अभिष्ठितः दश)** लिपटने वाला सांप जैसे अपने आश्रय में स्थित हुआ काटता है ऐसे काट **(बन्धम्–इव–अवकामी)** बान्धने वाले शिकारी पर जैसे जंगली जन्तु आक्रमण करता है ऐसे **(कृत्याकृतं पुनर्गच्छ)** कृत्या करने वाले के पास फिर जा–लौट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(**अग्निः इव प्रतिकूलं एतु**) कृत्या की भांति प्रतिकूल प्राप्त हो शत्रु के प्रति जावे (**उदकम् इव अनुकूलम्**) जल के समान अनुकूल होकर जा हमारे लिए शमनरूप में हो जा (**सुखः रथः इव**) सुख हलका प्रगतिशील रथ के समान होकर (**कृत्या कृत्याकृतं पुनर्वर्ततताम्**) कृत्या कृत्याकरने वाले को पुनः प्राप्त हो।

कृत्याएं लौटाई जाती हैं शमन रूप में या प्रत्याक्रमण रूप में यह तो बतलाया जा चुका है वे ओषधियों तथा ओषधियों से बनी मणियों से शमन रूप में और अग्नि, विद्युत्, सूर्यकिरणों द्वारा प्रत्याक्रमण में लौटाई जाती हैं अब इस विषय में मन्त्र और सूक्त देते हैं–

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।
(अथर्व0 2/4/6)

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः।
अथो सहस्वन् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।।
(अथर्व0 19/34/4)

नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन।।
(अथर्व0 4/9/5)

इन मन्त्रों का अर्थ हम पीछे मणियों के प्रकरण में कर आये हैं वहां से देखें। यहां तो केवल यह बतलाना ध्येय है कि जङ्गिड मणि को पिछले दो मन्त्रों में 'कृत्यादूषिः ' और 'कृत्यादूषणः' कहा है तीसरे मन्त्र में 'आंजनमणि' से कृत्याओं का प्रभाव नष्ट होता है यह बतलाया है। मणियां विषनाशक ओषधियों की तरह होती हैं। विषनाशक ओषधियां विषैली वस्तुओं से बनी घातक क्रियारूप कृत्या की नाशक हैं। स्वयं अथर्ववेद में भी ओषधियों को कृत्यानाशक कहा है। देखिए–

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः।।(अथर्व0 8/7/10)

अर्थ– (**याः विवरुणाः**) जो विशेष वरणीय उत्तम पूर्ण (**उग्राः**) तीव्र गन्ध रस आदि गुणों से युक्त (**विषदूषणीः**) विषनाशक (**अथ**) और (**बलासनाशनीः**) कफनाशक (**च**) और (**याः**) जो (**कृत्यादूषणीः**) कृत्या नाशक (**ताः**) वे(**ओषधीः**) ओषधियां (**उन्मुञ्चन्तीः**) रोगों से छुड़ाती हुई आवें प्राप्त हों।

इस मन्त्र में विषदूणी ओषधि तथा विषनाशक ओषधियों को कृत्यादूषणीः कृत्यानाशक कहा है। तथा–

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु यां वा ते पुरुषेषु।। (अथर्व0 4/18/5)

इस मन्त्र का अभी अर्थ कर आये हैं इसमें '**अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्**' से औषधियों के द्वारा कृत्याओं के नाश करने का वर्णन है।

इस प्रकार विषनाशक ओषधियों तथा उनसे बनी मणियों के द्वारा कृत्याओं के नष्ट करने का वर्णन शमन रूप से है। तथा मणियां ऐसी भी हैं जो कृत्याओं का प्रत्याक्रमण भी करती हैं जैसे 'प्रतिसर' अर्थात् 'प्रतीवर्त' मणि देखिये निम्न मन्त्र–

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।.......
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः। ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु (अथर्व0 8/5/1–2,5)

इन मन्त्रों का अर्थ हम पीछे 'प्रतिसर मणि' के प्रकरण में कर आये हैं और वहां यह भी बतला आये हैं कि यह 'प्रतिसर मणि' एक फेंकने वाला अस्त्र है तभी मन्त्र में कहा है कि यह वीर मणि वीर सैनिक द्वारा बांधा जाता है जैसे बन्दूक आदि गोली फेंकने का साधन है। 'प्रतिसर' उससे भी बढ़ कर मशीनगन या टैंक जैसा अस्त्र है उसमें से बहुत 'प्रतिसर' मणियां गोले गोलियां निकल कर कृत्याओं का प्रत्याक्रमणरूप नाश करती हैं तब ही तो यहां कहा है '**प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु**' कृत्याओं को प्रतिसरों प्रतिसर रूप अनेक मणियों गोलियों गोलों से पीछे हटावें। कौन हटावें इसके लिए कहा है '**देवाः**' देव वे कौन उसका भी कुछ संकेत है कि अग्नि, सोम, बृहस्पति, सविता, इन्द्र (विद्युत्)। इस वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि ये प्रतिसर मणियां अस्त्र अनेक प्रकार की होती हैं जिनसे शत्रु की कृत्याओं अस्त्रों का प्रत्याक्रमण रूप में उत्तर दिया जा सके। निःसन्देह प्रतिसर मणियां अस्त्र हैं इन अग्नि आदि वस्तुओं के नाम आग्नेय अस्त्र आदि बाल्मीकि रामायण में भी दिये गये हैं विश्वामित्र ऋषिद्वारा राम के प्रति अस्त्रों के प्रदान प्रकरण में —

विष्णुचक्रं तथाप्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च।
वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ.....।। आग्नेयमस्त्रं
प्रस्वापनं प्रशमनं ददमि सौम्यं च राघव।
सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोपकर्षणम्।।

(बाल्मीकि रा0। बालका0 सर्ग 17,5,6,10,15,19)

अब हम स्फोटक कृत्याओं का जो कि मकानों नगरों को तोड़ फोड़ देने तथा प्राणियों का घात करने वाली हैं उनके प्रत्याक्रमण रूप लौटाने के ब्राह्मास्त्र आदि अन्य उपायों का वर्णन एक समस्त सूक्त (अथर्व0 10/1/1) के द्वारा करते हैं।

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः। सारादेत्वपनुदाम एनाम्।।1।।

अर्थ– (**चिकित्सवः**) रासायनिक–रसायन जानने वाले खनिज और वनस्पति पदार्थों के विज्ञानवेत्ता जन (**वहतौ वधूम् इव**) वर या वरपक्ष वालों के निमित्त वधू की भांति (**यां विश्वरूपां हस्तकृताम्**) जिस समस्तरूपों वाली हाथों से बनाई घातक वस्तु मूर्तिविधि को (**कल्पयन्ति**) सम्पन्न करते हैं तैयार करते हैं (**सा**) वह (**आरात् एतु**) हमसे दूर जावे (**एनाम् अपनुदामः**) इसको हम हटाते हैं लौटाते हैं।

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता सम्भृता विश्वरूपा। सा0 ।।2।।

अर्थ– (**कृत्याकृता**) कृत्या बनाने वाले के द्वारा (**शीर्षण्वती**) सिरवाली (**नस्वती**) नाक वाली (**कर्णिनी**) कान वाली (**विश्वरूपा**) समस्तरूपों वाली जो (**सम्भृता**) तैयार हुई कृत्या है (सा0) वह हमसे दूर हो जावे। इसको हम हटाते हैं–लौटाते हैं।

इस मन्त्र में ऐसा लक्षित होता है कि घातक कृत्याएं पुतलियों के रूप में बनाई जाती हैं बाहर से स्त्री आदि प्रतीत हों परन्तु अन्दर पटखने तोड़ फोड़ मचाने वाले घातक पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें हों दूसरे लोग उन्हें ठीक न समझ कर उन पर आक्रमण करते हैं तब वे या स्वयं समय पर फटकर शत्रु के मण्डल नगर आदि में तोड फोड़ के पदार्थ छोड़ घात कर डालती है। {शस्त्र–अस्त्रों के बाह्यरूप माया के बनाये जाते हैं उनके नाक कान आदि रहित आकृतियां बनाते हैं । हैदराबाद दक्षिण के दौलताबाद दुर्ग में एक मेंढा के आकार की तोप हमने देखी है उसे मेंढा तोप कहते हैं।}

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु।।3।।

अर्थ– (शूद्रकृता) शूद्रों द्वारा की हुई (राजकृता) राजाओं के द्वारा की गई (स्त्रीकृता) स्त्रियों के द्वारा की गई (ब्रह्मभिः कृता) भेषजवेत्ता विद्वानों द्वारा की गई (जाया पत्या नुत्ता – इव) पति से ठुकराई हुई स्त्री जैसे अपने उत्पन्न कर्ता पितृकुल में चली जाती है ऐसे यह कृत्या हमसे ठुकराई हुई (कर्तारं बन्धु ऋच्छतु) उत्पन्न करने तैयार करने वाले बन्धु को {सुपां सुलुक– अष्टाध्यायी 7/3/39 से 'बन्धुं' शब्द की द्वितीया विभक्ति का लुक् अर्थात् लोप होगा।} प्राप्त हो।।3।।

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्या गोषु यां वा ते पुरुषेषु।।4।।

अर्थ– (अहम् अनया ओषध्या) मैं इस ओषधि से (सर्वाः कृत्याः) सारी कृत्याओं को (अदूदुषम्) नष्ट करता हूं (यां क्षेत्रे) जिसको अन्न के खेत में (यां गोषु) जिसको गौ आदि पशुओं में (वा) अथवा (ते) तेरे (यां पुरुषेषु) मनुष्यों में (चक्रुः) करते है।

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक् प्रति प्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत्।।5।।

अर्थ– (यथा) जैसे (अघकृते) पाप करने वाले के लिए (अघम्) पाप तथा (शपथीयते) शपथ देने वाले अपशब्द कहने वाले के लिए (शपथः) अपशब्द (अस्तु) हो। ऐसे ही (प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मः) कृत्या को भी पीछे लौटाते हैं (कृत्याकृतं हनत्) वह कृत्या करने वाले का घात करे।।5।।

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि।।6।।

अर्थ– (आङ्गिरसः) अङ्गिरा–अग्नि–अग्नितत्व का अग्निविद्या का जानने वाला अंगिराः वा अग्निः (श० 6/4/4/4) तदधीते तद्वेद (अष्टा० 4/2/59) (प्रतीचीनः) प्रत्यंचनकारी शत्रु के घातक प्रयोगों को लौटाने वाला (नः) हमारा (अध्यक्षः पुरोहितः) अक्ष में समक्ष में वर्तमान हुआ पुरोहित है। वह तू (कृत्याः) कृत्याओं को (प्रतीचीः आकृत्य) उल्टी करके (अमून् कृत्याकृतः) उन कृत्या करने वालों को (जहि) मार।।6।।

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः।7।

अर्थ– (यः) जो (त्वा– उवाच) तुझे कहता है (परेहि– इति) जा (तं प्रतिकूलम् उदाय्यम्) उस प्रतिकूल उद्धत शत्रु को (कृत्ये) हे कृत्या ! तू (अभिनिवर्तस्व) लौट (अस्मान् अनागसः) हम अनपराधियों को (मा इच्छः)मत चाह।।7।

यस्ते परूंषि सन्दधौ रथस्येवर्भुर्धिया।
तं गच्छ तत्र तेयनमज्ञातस्तेयं जनः।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ– (यः) जो (**ते परूंषि**) तेरे जोड़ों को (**सन्दधौ**) जोड़ता है (**धिया रथस्य इव ऋभुः**) जैसे विश्वकर्मा रथकार बुद्धि से रथ को बनाता है। (**तं गच्छ**) उसको प्राप्त हो (तत्र) वहां(**ते अयनम्**) तेरा आश्रय है (**अयं जनः**) यह जन जनपद (**ते– अज्ञातः**)तेरा अज्ञात है अपरिचित है।।8।।

ये त्वां कृत्वा लेभिरे विद्वला अभिचारिणः।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि।।9।।

अर्थ– (ये) जो (**विद्वलाः**) ज्ञानवान् या पीड़ा देने वाले (**अभिचारिणः**) घातक प्रयोग करने वाले जन (**त्वा**) हे कृत्या ! तुझे (**कृत्वा**) बनाकर (**आलेभिरे**) ठोकर देने के साधन से प्रेरित करते हैं (**इदं शम्भु कृत्या दूषणम्**) यह शमनकारक कृत्यानाशक (**प्रतिवर्त्म**) पीछे लौटाने वाला (**पुनःसरम्**) पीछे गति देने वाला 'पुनः सर' साधन हमारे पास है (**तेन**) उससे (**त्वा**) तुझे (**स्नपयामसि**) लपेटते हैं -- *ष्णै वेष्ठने (भ्वादि0)* या गर्भस्रावित कराते हैं।

कृत्याओं के लौटाने का साधन 'पुनःसर' नामक यहां कहा गया है जो कि मणि प्रकरण में कहे 'प्रतिसरै' की भांति है परन्तु यह मणि नहीं है एक यान्त्रिक साधन है।।9।।

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम।
अपैतु सर्वे मत् पापं द्रविणं मोपतिष्ठतु।।10।।

अर्थ– (**यत्**) कि हे कृत्या ! (**दुर्भगाम्**) दुर्भगा–कुत्सित इन्द्रयवाली को (**प्रस्नपिताम्**) गर्भस्राव करती हुई (**मृतवत्साम्**) बच्चा मर जाने वाली स्त्री की भांति (**उपेयिम**) तुझे प्राप्त हों। तो (**मत्**) मुझ से (**सर्व पापम्**) समस्त दोष (**अपैतु**) दूर हो जावे (**द्रविणम्**) बल (मा) मुझे (**उपतिष्ठतु**) प्राप्त हो।।10।।

यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः।11।

अर्थ– (**ते पितृभ्यः–ददतः**) हे राजन् ! तेरे पिता आदि महानुभावों के लिए देते हुओं ने (वा) या (**यज्ञे**) यज्ञ में देते हुओं ने (**यत्**) जो (नाम) उस कृत्या से सम्पर्क का जल ''**नामेत्युदकनाम**''(निघं0 1/12)। (**जगृहुः**) ग्रहण किया है उस (**सर्वस्मात् संदेश्यात् पापात्**) समस्त नोदने अन्दर घुसने वाले प्रभाव से (**त्वा**) तुझे (**इमाः ओषधीः**) ये ओषधियां (**मुञ्चन्तु**) मुक्त करें।।11।।

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात्। मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम्।।12।।

अर्थ– (**देवैनसात्**) देवों के प्रति किये अपराध से (**पित्र्यात् नामाग्रहात्**) पिता आदि सम्बन्धी अपयशकारी नाम लेने से (**अभिनिष्कृतात् संदेश्यात्**) मुख से निकाले ताड़ना रूप वचन से (**वीरुधः**) ओषधियां (**त्वा**) तुझे (**वीर्येण**) गुण बल से (ब्रह्मणा) ब्रह्म विद्वान् के द्वारा (**ऋग्भिः**) ऋचाओं से (**ऋषीणां पयसा**) गतिशील पदार्थो सूर्यकिरणों के तेज के सहयोग से (त्वा) तुझे (**मुञ्चन्तु**) मुक्त करें। 12

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्। एवा मत् सर्व दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति।।13।।

अर्थ– (**यथा**) जैसे (**वातः**) वायु (**भूम्याः**) भूमि से (**रेणुम्**) धूलि को (च) और (**अन्तरिक्षात्**)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष से (**अभ्रम्**) बादल को (**च्यावयति**) च्युत कर देता है उड़ा देता है (**एव**) इसी प्रकार (**मत्**) मुझ से (**सर्वं दुर्भूतम्**)सब बुरा प्रभाव (**ब्रह्मनुत्तम्**) ब्रह्मा वैज्ञानिक से या ब्रह्मास्त्र से प्रेरित किया हुआ(**अपायति**)दूर हो जावे। 13

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव। कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता।। 14।।

अर्थ– (**नानदती**) अत्यन्त नाद करती हुई (**विनद्धा**) बिना बंधी हुई (**गर्दभीव**) गर्दभी घोड़ी की भांति (**अपक्राम**) भाग जा तथा (**इतः**) यहां से (**वीर्यवता ब्रह्मणा**) बलवान् ब्रह्मास्त्र से (**नुत्ता**) ताड़ित हुई (**कर्तॄन् नक्षस्व**) कर्ताओं को प्राप्त हो।। 14।।

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्रहिण्मः। तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी।। 15।।

अर्थ– (**कृत्ये**) हे कृत्या ! (**अयं पन्थाः**) यह मार्ग है (**इति**) बस इससे (**त्वा**) तुझे (**नयामः**) ले जाते हैं (**अभिप्रहितां त्वा**) शत्रु से भेजी हुई तुझको (**प्रतिप्रहिण्मः**) पीछे प्रेरित करते हैं –लौटाते हैं (**तेन**) उससे तू (**भञ्जती**) तोड़ फोड़ करती हुई (**अनस्वती**) यान वाली (**वाहिनी**) वाहन वाली (**विश्वरूपा**) सब रूपों वाली (**कुरूटिनी**) बुरी तरह घात करती हुई (**अभियाहि**) शत्रु के सम्मुख जा।। 15।।

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रस्मदयना कृणुष्व। परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि।।16।।

अर्थ– (**पराक**) पीछे लौटने को (**ते**) तेरे लिए (**ज्योतिः**) प्रकाश है –मार्ग है (**अर्वाक**) इधर हमारी ओर आने को (**ते**) तेरे लिए (**अपथः**) अमार्ग है (**अस्मात्–अन्यत्र**) हमसे अन्यत्र (**अयना कृणुष्व**) आश्रय बना (**नवतिं नाव्याः दुर्गाः स्रोत्याः**) नौकाओं से पार होने योग्य गहरी नब्बे नदियों को (**परेण–अतीहि**) परले शत्रु के तरफ के मार्ग के द्वारा अतिक्रमण कर (**मा क्षणिष्ठाः**) हमें मत हिंसित कर (**परेहि**) दूर जा।16।

वात इव वृक्षान् निमृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्। कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येप्रजास्त्वाय बोधय।। 17।।

अर्थ– (**कृत्ये वातः इव वृक्षान् कर्तॄन निमृणीहि**) हे कृत्या ! तू अपने बनाने वालों भेजने वालों को आंधी जैसे वृक्षों को नष्ट करती है ऐसे हिंसित कर (**पादय**) विनष्ट कर (**एषाम्**) इनके (**गाम्–अश्वं–पुरुषं मा–उच्छिषः**) गौ घोड़े मनुष्य को मत शेष रहने दे (**इतः**) यहां से (**निवृत्य**) लौट कर (**अप्रजास्त्वाय बोधय**) उनको प्रजाहीनता के लिए जला फूंक।। 17।।

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः। अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम्।। 18।।

अर्थ– (**यां कृत्यां ते बर्हिषि**) जिस कृत्या को तेरे जलाशय में " बर्हिरुदकनाम" (निघ० 1/12) (**यां श्मशाने**) जिस कृत्या को श्मशान भूमि में (**क्षेत्रे**) खेत में (**वा**) या (**वलगम्**) वलग–गुप्त घातक प्रयोग को (**निचख्नुः**) नीचे दबाते हैं (**वा**) या (**धीरतराः**) अत्यन्त कठोर जन (**त्वा पाकम्–अनागस सन्तम्**) तुझ शुद्ध पापरहित होते हुए के प्रति (**गार्हपत्ये – अग्नौ**) गार्हपत्य अग्नि में (**अभिचेरुः**) अभिचार करते हैं छल से घातक प्रयोगः करते हैं उसे हम नष्ट करते हैं।। 18।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्। तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम्।। 19।।

अर्थ– (उपाहृतम्) ऊपर से ढके हुए (अनुबुद्धम्) स्फुरित होने वाले पटखने जलने खिलने वाले (निखातम्) सुरंग आदि द्वारा दबाए हुए (त्सारि) कुटिल (कर्त्र वैरम्) हिंसक घातक वैर को शस्त्र अस्त्र प्रयोग को(अन्वविदाम) हम जान चुके हैं (तत्) वह (यतः आभृतम्) जहां से आया लाया (तत्र) वहां (एतु) जावे (अश्वः इव) वहां घोड़े के समान (विवर्तताम्) उलटा वर्ते–दौड़ जावे (कृत्याकृतः प्रजां हन्तु) कृत्या करने वालों की प्रजा को नष्ट करे।।

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते
कृत्ये यतिधा परूंषि। उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि।। 20।।

अर्थ– (कृत्ये) हे कृत्या ! (नः गृहे) हमारे घर में (स्वायसाः) उत्तम लोहे से बनी हुई (असयः) तलवारें (सन्ति) हैं। तथा (ते) तेरे (यतिधा) जितने प्रकार के (परूंषि) जोड़ हैं। उन्हें (विद्म) हम जानते हैं अतः (अज्ञाते) हे अज्ञातरूपा छिपी हुई कृत्या ! तू (उत्तिष्ठ एव) उठ ही (इतः परा–इहि) यहां से दूर चली जा (किम्) क्या (इह) यहां (इच्छसि) चाहती है, देख !

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव। इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती।।21।।

अर्थ– (कृत्ये) हे कृत्या ! (ते) तेरी (ग्रीवाः) गर्दने–गर्दनों के भागों (च) और (पादौ) दोनों पैर (अपि कर्त्स्यामि) अवश्य काट दूंगा। अतः (निर्द्रव) निकल जा (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि (अस्मान्) हमारी (रक्षताम्) रक्षा करें (यौ) जो (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रजावती) प्रजापति हैं– *प्रजावती–प्रजापती पकारस्य वकारश्छान्दसः पदपाठे प्रगृह्यं मत्वा चेति कारणात्।।* 21।।

इस मन्त्र में इन्द्राग्नी विद्युत् अग्नि को कृत्याओं से बचाने वाले कहा है। इनके द्वारा कृत्या का शमन या शत्रुओं के प्रति प्रेरित किया जाना लक्षित होता है।

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु। 22

अर्थ– (सोमः राजा) सोम ओषधि या चन्द्रमा (अधिपाः) रक्षक (मृडिता) सुखकारक (च) तथा (भूतस्य) उत्पन्न संसार के(पतयः) पालक पदार्थ (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें।। 22।।

यहां कृत्यानाशक योग में सोम ओषधि या चन्द्रमा को भी साधनरूप में बतलाया है। ।22।।

भवशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम्। 23।।

अर्थ– (पापकृते) कृत्या रूप पाप करने वाले (दुष्कृते) दुष्कर्म करने वाले (कृत्याकृते) कृत्या करने वाले के लिए(भवशर्वौ) उत्पादक नाशक प्रकाश और दाह अग्नि के दोनों धर्म तथा मित्र वरुण दो शक्तियां (देवहेतिं विद्युतम्) दिव्यवज्ररूप विद्युत् को (अस्यताम्) फेंके।। 23।।

यहां प्रकाशक, दाहक, आग्नेय दो धर्मो से विद्युत् को फैंकने की चर्चा है।।

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता सम्भृता विश्वरूपा। सेतोष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने।। 24।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ– **(दुच्छुने)** दुष्टवृत्ति वाली कृत्या ! तू **(कृत्याकृता)** कृत्या बनाने वाले के द्वारा **(यदि)** यदि **(द्विपदी)** दो पैरवाली **(चतुष्पदी)** चार पैर वाली **(विश्वरूपा)** सब रूपों वाली **(सम्भृता)** तैयार की हुई **(इयथ)** आई है **(सा)** वह तू **(अष्टापदी)** आठ पैर वाली **(भूत्वा)** होकर **(इतः)** यहां से **(पुनः परेहि)** पीछे लौट या पुनः लौट।। 24।।

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि। जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम्।। 25।।

अर्थ– **(कृत्ये)** हे कृत्या! तू **(सर्वं दुरितं भरन्ती)** पूर्ण दुःख पहुंचाने के हेतु **(अभ्यक्ता)** माया से चिकनी चुपड़ी की हुई पालिश चढ़ी हुई **(आक्ता)** चित्रित की हुई **(स्वरंकृता)** सजाई हुई है। अतः **(परेहि)** दूर जा **(दुहिता इव स्वं पितरम्)** लड़की जैसे अपने पिता को ऐसे **(कर्तारंजानीहि)** कर्ता को जान।। 25।।

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति।। 26।।

अर्थ– **(कृत्ये)** हे कृत्या ! तू **(परेहि)** परे जा **(मा तिष्ठ)** मत ठहर **(विद्धस्य इव पदं नय)** बिंधे हुए शिकार के पद चिन्ह की ओर चल **(सः मृगः)** वह मृग है **(त्वं मृगयुः)** तू व्याध है **(त्वा)** तुझे **(न)** नहीं **(निकर्तुमर्हति)** काट सकता है। 26

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा। उत पूर्वस्य निघ्नतो निहन्त्यपरः प्रति। 27।

अर्थ– **(उत)** या तो **(अपरः)** दूसरा पुरुष **(पूर्वासिनम्)** पहिले से बैठे को **(प्रत्यादाय)** पकड़ कर **(इष्वा)** फेंकने योग्य अस्त्र से **(हन्ति)** मारता है **(उत)** या फिर **(पूर्वस्य निघ्नतः)** पहिले से मारते हुए के **(प्रति)** प्रतिकार में **(अपरः)** दूसरा पुरुष **(निहन्ति)** मारता है।अतः–

**एतद्धि शृणु मे वचोथेहि यत एयथ।
यस्त्वा चकार तं प्रति।। 28।।**

अर्थ-- **(एतत्–हि)** इतना ही **(मे वचः)** मेरा वचन **(शृणु)** सुन **(यतः)** जहां से **(एयथ)** आती है (यः) जो (त्वा) तुझे **(चकार)** करती है **(तं प्रति)** उसके प्रति **(अथ)** अब **(इहि)** जा। 28।।

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव।। 29।।

अर्थ– **(कृत्ये)** हे कृत्या ! **(अनागोहत्या)** अदोषी की हत्या **(वै)** निश्चय **(भीमा)** भयंकर है बुरी है (नः) हमारे **(गाम् –अश्वं पुरुषम्)** गौ घोड़े मनुष्य को **(मा वधीः)** मत मार **(यत्र यत्र)** जहां जहां **(निहिता असि)** छिपी पड़ी है (ततः) वहां से (त्वा) तुझे **(उत्थापयामसि)** हम उठाते हैं **(पर्णात्)** पत्ते से भी **(लघीयसी)** हलकी **(भव)** हो।।29।।

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव। सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्रहिण्मसि। 30।

अर्थ–(यदि) यदि **(तमसा)** अन्धकार से **(आवृताः)** भरी हुईं। तथा **(जालेन)** जाल से **(अभिहिताः इव)** जाल से सम्पन्न हुई–सी **(स्थ)** हो **(सर्वाः कृत्याः)** सब कृत्याओं को **(संलुप्य)** मूर्च्छित करके **(इतः)** यहां से **(कर्त्रे)** कर्ता के लिए **(पुनःप्रहिण्मसि)** हम पीछे लौटाते हैं। 30।।

यहां कृत्याओं को धूम से भरी हुई और जालमयी बतलाया है जो मनुष्यों को अन्धा कर देती है तथा उन्हें पाश में बान्ध लेती हैं।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्। मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि।।31।।

अर्थ– (**कृत्ये**) हे कृत्या ! तू (**वलगिनः**) बन्धन के गुप्त प्रयोग करने वालों तथा (**अभिनिष्कारिणः**) अभिघात करने वालों अभिचार करने वालों और (**कृत्याकृत्यः**) कृत्या करने वालों की (**प्रजाम्**) प्रजा को (**मृणीहि**) मार (**अमून् कृत्याकृतः**) उन कृत्या करने वालों को (मा– **उच्छिषः**) मत छोड़। किन्तु (**जहि**) मार।। 31।।

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्। एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि।। 32।।

अर्थ– (**यथा**) जैसे (**सूर्यः**) सूर्य (**तमसः परि**) अन्धकार से (**मुच्यते**) छूट जाता है। तथा (**रात्रिम्**) रात्रि को (**च**) और (**उषसः केतून्**) उषा के चिन्हों प्रकाशान्धकारमय रूपों को भी (**जहाति**) छोड़ देता है। (**एव**) ऐसे ही (**अहम्**) मैं (**कृत्याकृता**) कृत्या करने वाले के द्वारा (कृतम्) किए गये (**सर्वम्**) सब (**दुर्भूतम्**) बुरे (**कर्त्रम्**) घातक प्रयोग को (**जहामि**) छोड़ देता हूं। तथा (**हस्तीव**) हाथी जैसे (**रजः**) धूल को छोड़ देता है ऐसे (**दुरितम्**) घातक प्रयोग को छोड़ देता हूं।

इस सूक्त में कृत्या लौटाने की चर्चा पुनः– पुनः है और उपाय ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, वैद्युतास्त्र, सौम्यास्त्र बतलाएं हैं। इसके पूर्ण सावित्रास्त्र (सौरास्त्र) और बार्हस्पत्यास्त्र से हटाने का भी वर्णन बतला आए हैं। इन अस्त्रों से कृत्याओं को छिन्न भिन्न और निर्बल किया जाता है तथा इनके द्वारा कृत्याओं की अभिगति (अपनी ओर आक्रमणकारी गति) को शान्त करके प्रति गति (लौटने की गति) देकर अपने जनस्थान सेना मण्डल से हटाकर शत्रु के जनस्थान सेना मण्डल या देश में प्रेरित कर देना होता है। अस्तु। इस प्रकार कृत्याएं दोनों प्रकार के वायव्य विष प्रयोग (विषैली गैरा बनाने का साधन) और स्फोटक अर्थात् तोड़ फोड़ मचाने वाला ध्वंसक खनिज आदि का प्रयोग ये दोनों ही धनुर्विद्या शस्त्रास्त्र विद्याविषयक चर्चा है कोई कल्पित मन्त्र जादू टोना की बात नहीं है।।

वलग और अभिचार –

वलग भी एक घातक प्रयोग का नाम है जो कृत्या और अभिचार से भिन्न है। कृत्याएं दो प्रकार की बतलाई गई हैं एक वायु आदि को विषैला बना देने वाली और दूसरी स्फोटक खनिज पदार्थों से युक्त मकानों नगरों को तोड़ने फोड़ने वाली कही है। और अभिचार किसी को खान पान आदि में विष देकर हिंसा करने का नाम है परन्तु वलग उस प्रयोग का नाम है जिससे न वायु आदि विषदूषित किये जावें या मकान नगर आदि तोड़े जावें और न किसी को खानपान मे विष देकर हिंसा की जावे किन्तु इन दोनों से भिन्न बन्धनस्तम्भनकारी तथा उपद्रवकारी गुप्त प्रयोग है जो कि कहीं भूमि आदि में गाड़ या दबा छिपा दिया जावे और पुनः कालान्तर में हानिकारक सिद्ध हो, 'वलग' से स्थानिक व्यक्तियों को पीड़ा और कृत्या से पूरे पूरे नगर सेनामण्डल और देश का घात होता है। अस्तु। कृत्या के सम्बन्ध में तो बतलाया जा चुका है। अब 'वलग' और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अभिचार' के सम्बन्ध में यहां विचार करना है। 'वलग' शब्द "वल वल्ल संवरणे संचलने च" (भ्वादि०) से बना है इसका शब्दार्थ जो प्रयोग संवरण अर्थात् स्वयं संकोच दूसरे को आर्कषण करने और संचलन करने अर्थात् चंचल हो जावे दूसरे को चंचल कर दे जो प्रथम संकुचित हो पुनः जहां गाड़े या छिपावे वहां के थान में विकृति चंचलता उत्पन्न कर मनुष्य आदियों को संवरण आकर्षण कर उन्हें क्षुब्ध ओर कम्पित करके पीड़ित कर दे विद्युत् की भांति अपना प्रभाव उनके अन्दर डाल दे जिससे उनका मुक्त होना असम्भव हो जावे। ऐसे वैद्युत शक्ति भरे प्रयोग का नाम 'वलग' है। अथर्व 10/1/18 में 'वलग' अथर्व 19/9/9 में 'वल्ग' पाठ है। इनमें वास्तविक पाठ 'वलग' ही है 'वल्ग' पाठ वाले अथर्व 19/9/9 की टिप्पणी में क्वचित् पुस्तकों में 'वलग' पाठ भी दिया है। तथा तैत्तिरीय संहिता में भी 'वलग' पाठ है अतः शुद्ध पाठ 'वलग' ही है अन्यत्र भी अथर्व 5/31/4 में 'वलग' ही पाठ है। अस्तु। 'वलग' गाड़े जाने वाले छिपाये जाने वाले घातक प्रयोग हैं इसके लिए निम्न वचन देखिये–

असुरा वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन्। तान् बाहुमात्रेन्वविन्दन् तस्माद् बाहुमात्राः खायन्ते।। तै० सं० 6/2/11/1

निकलते हुए–छोड़कर जाते हुए असुरों ने देवों के प्राणों के निमित्त–प्राणों के नाशार्थ वलगों को नीचे गाड़ दिया उन्हें बाहुमात्र परिमाण में गड़े हुए पाया क्योंकि बाहुमात्र परिमाण में ही नीचे गाड़े जाते हैं–अथर्ववेद में भी वलग को गाड़ने का विधान है *"वलगं वा निचख्नुः"* अथर्व 10/1/18। वलग में विष–पदार्थ भी होते हैं ऐसा सायण ने लिखा है–

विषवृक्षादिनिर्मिताः पुत्तल्यो वलगा इत्युच्यन्ते।
अथर्व. 19/9/9 सायणभाष्य

'वलग' और 'अभिचार' के मन्त्र एकत्र हैं अतः दोनों के सम्बन्ध में अन्य कुछ विवरण मन्त्रों द्वारा इकट्ठा ही दिया जावेगा। 'अभिचार' का शब्दार्थ किसी के शरीर पर आक्रमण कर या शरीर में प्रविष्ट हो उसे खा जाने वाला विषप्रयोग है यह पीछे बतला आये हैं। 'शब्दकल्पद्रुम' में इसका अर्थ किया है कि "अभिचारः आभिमुख्येन शत्रुवधार्थः चारः कार्यकरणम्' (शब्दकल्पद्रुमः) तन्त्रग्रन्थों के अनुसार अभिचार वे छः विशेष कर्म हैं जिनसे किसी का 'मारण, मोहन, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण' किया जाता है। षट्कर्म प्रदीपिका तन्त्र में मारण आदि के प्रारम्भ में कहा है–

अभिचारस्य विषयानाकर्णय वदामि ते।
सक्रूरे क्रूरवर्गस्थे चन्द्रे वलिनि शोधने।।
विष्टियोगे च कर्तव्योऽभिचारोऽप्यरिनैधने।1।
विषाग्निक्रूरशस्त्राद्यैर्हिंसक प्राणिनां मुदा।
योजयेन्मारणेकर्मण्येतान्न पातकी भवेत्।। 2।।

षट्कर्मप्रदीपिकातन्त्र मारणम्। 1.2

इन प्रयोगों में भी विष तथा विष जैसे उग्र पदार्थो का उपयोग कर किसी को मारना मोहित करना जड़ बनाना आदि होता है ऐसा तन्त्रग्रन्थों में देखा गया है। यहां विस्तारभय से केवल एक दो प्रयोग ही उद्धृत किये जाते हैं–

(मारणम्) **ऊर्णनाभञ्च षड्विन्दुं समांशं कृष्णवृश्चिकम्। यस्याङ्गे निक्षिपेच्चूर्णं सप्ताहात् स्फोटकैर्मृतिः।।** (मोहनम्) **महिष्याः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णसर्पस्य रक्ते चूर्णन्तु भावयेत्।
कृष्णधुस्तूरपञ्चाङ्गं तद्धूपो मोहकृन्नृणाम्।।

(ऐन्द्रजालिक सिद्धनागार्जुनकक्षपुट तन्त्र)

अब अथर्ववेदानुसार 'वलग' और 'अभिचार ' पर प्रकाश डालते हैं।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः। शं नो निखाता वलगाः शमुल्कादेशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु।। (अथर्व 19/9/9)

इस मन्त्र में उल्काओं से घिरा हुआ नक्षत्र, अभिचार, कृत्या, वलग, उल्का, देशोपसर्ग (देश के उत्पात=भूमि के उत्पात) के शमन करने का वर्णन है यहां अभिचार और कृत्याओं के साथ 'वलग' का वर्णन होने से 'वलग' को भी वैसा ही घातक होना सिद्ध करता है। दूसरी बात मन्त्र में विशेष कही गई है 'निखाता वलगाः' वलग नीचे गाड़े दबाए बिछाए छिपाये जाते हैं अथर्व 10/1/18 में वलग को जल में गाड़ने, दबाने, छिपाने, बिछाने का वर्णन आया है। जल में दबाना, बिछाना, छिपाना जाल के सदृश हो सकता है जो शत्रु के यात–आयत यानों जहाजों का संचरण आकर्षण और संचलन तथा उन्हें बिखेर तोड़ फोड़ कर नष्ट कर देने का काम करता है वे वलग सुरंगों के रूप में है। अब केवल 'अभिचार' के सम्बन्ध में ही वर्णन करते है।

'अभिचार' का सम्बन्ध केवल व्यक्ति के साथ ही है ओर विषयुक्त खान पान आदि द्वारा किसी को मारने का नाम 'अभिचार' है यही बात अथर्ववेद के निम्न मन्त्र से स्पष्ट होती है।

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्सबन्धुभ्यः। अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम्। अथर्व 8/2/26

अर्थ– (**समानेभ्यः सबन्धुभ्यः**) समानाधिकार समानपद वाले तथा बन्धु बान्धवों से हुए (**अभिचारात्**) अभिचार से खान पान में विषप्रयोग से खान पान आदि द्वारा घातक विषप्रयोग से (**त्वा**) तेरी (**परिपातु**) भेषज– औषध रक्षा करे। तू (**अमम्रिः**) उस अभिचाररूप विषप्रयोग से न मरने वाला (**अमृतः**) मरणरहित – स्वस्थ (**अतिजीवः**) दीर्घजीवनवाला (**भव**) हो (**असवः**) प्राण (**ते शरीरम्**) तेरे शरीर को (**मा हासिषुः**) मत त्यागें।

यहां समानस्पर्द्धा वाले जनों तथा बन्धुओं द्वारा किए अभिचार से मर जाने की सम्भावना और भेषज से न मरने देने की चर्चा से 'अभिचार' निश्चित खान पान आदि मे विषप्रयोग का नाम है। तथा 'त्वा' शब्द एकवचन मन्त्र मे आने से 'अभिचार' का क्षेत्र अल्प परिमित व्यक्ति तक होने से भी यह भोजन में विषप्रयोग है। तथा–

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि। मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज।। अथर्व 11/1/22

अर्थ– (**पशुभिः सह एनाम् अभ्यावर्तस्व**) गौ आदि पशुओं सहित इस गृहपत्नी का भली भांति उपभोग कर (**देवताभिः सह–एनां प्रत्यङ् एधि**) देवताओं सहित इस गृहदेवी को बाहर से निवृति पाकर पूर्णरूप से अपना (**त्वा**) तुझे (**शपथः**) स्पृश्यरोग छूत की हवा 'शपति स्पृशतिकर्मणः' (निरुक्त0 3/21) (**मा प्रतात्**) न प्राप्त हो (**मा अभिचारः**) भोजन आदि में विषप्रयोग मत प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो (स्वे क्षेत्रे) अपने परिवार में (अनमीवा विराज) रोगरहित हुआ विराजमान हो।

यहां 'अनमीवा' रोगरहित होने का प्रसंग 'अभिचार' को मारण विषप्रयोग सिद्ध करता है और वह 'त्वा' से व्यक्तिगत अल्पस्थान वाला प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे व्यक्ति गत विषप्रयोग रूप 'अभिचार' के दूर करने के उपाय पर भी विचार करते है।

यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते।

(अथर्व 5/30/2)

अर्थ– (त्वा) हे प्रिय ! तेरे प्रति (यत्) जो (स्वः पुरुषः) अपना मनुष्य (यत्) जो (अरणः जनः) अन्य दुष्टजन (अभिचेरुः) अभिचार करते हैं – खान पान आदि में घातक विष का प्रयोग करते हैं (ते) उस तेरे लिए (वाचा) अपनी वाणी से (उन्मोचनप्रमोचने) उन्मोचन अर्थात् विषपदार्थ को उत्क्लेशित करने उखाड़ने–बाहर निकालने और प्रमोचन अर्थात् शमन करने रूप (उभे) इन दो उपायों को (वदामि) बतलाता हूं।

जब किसी के द्वारा विष दिया पेट में चला जाता है तो उसके प्रभाव को नष्ट करने के दो ही उपाय या साधन हैं। एक तो उस विषपदार्थ को उत्क्लिष्ट कर देना अर्थात् ऐसी ओषधियां देना जिनसे वमन और विरेचन हो जावे। तुरन्त खाया हुआ विष जबकि आमाशय में ही हो तो वमन कराना और देर हो गई हो पक्वाशय में पहुंच गया हो तो विरेचन कराना अथवा दोनों वमन– विरेचन कराना चाहिए। इस प्रकार ओषधियों से वमन और विरेचन कराना उदर के विष का 'उन्मोचन' उखाड़ना बाहर निकालना है। दूसरा उपाय या साधन उस विषपदार्थ के विषत्व या प्रभाव को अन्दर ही अन्दर शान्त कर दे ऐसी संजीवनी अगदों ओषधियों और घृत मधु आदि का प्रयोग करना प्रमोचन अर्थात् शमन करना है। 'सुश्रुत' और 'चरक' में विषभक्षण पर ये ही दो उपाय बतलाये गए हैं–

महासुगन्धमिदमगदं यं प्रवक्ष्यामि तं भिषक्।
पानालेपनस्येषु विदधीताञ्जनेषु च।।
विरेचनानि तीक्ष्णानि कुर्यात्प्रच्छर्दनानि च।

(सुश्रुत कल्पस्थान। अध्याय 1/76-77)

मन्त्र में 'उन्मोचनप्रमोचने' में उन्मोचन अर्थात् वमन विरेचन प्रथम कहा है एवं सुश्रुत चरक में भी प्रथम ही वमन विरेचन का विधान है। देखिये–

आमाशयं गतम्–
तत्राशुमदनालाबुबिम्बीकाशातकी फलैः छर्दनम्।
पक्वाशयं गतम्– विरेचनं ससर्पिष्कं तत्रोक्तं नीलनीफलम्।।

(सुश्रुत कल्पस्थान अ0 1/41/43)

अब अभिचार के दूर करने का एक और उपाय अथर्ववेद काण्ड 10 सूक्त 3 मन्त्र 7 में बतलाया है वह भी देखिये–

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद वरणो वारयिष्यते।।
(अथर्व 10।3।7)

इस मन्त्र में कायरता, उदासीनता, अभिचार, भय, मृत्यु और वध से बचाने वाला 'वरण' मणि बतलाया है। हम पीछे मणिबन्धन प्रकरण में 'वरण' मणि का वर्णन कर आये हैं वहां इसके सेवन करने के सम्बन्ध में भी प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल आये हैं 'वरण' वरना वृक्ष है यह हृदय रोग को दूर करता है यही भी हम वहीं 'वरण मणि' के प्रकरण में आयुर्वैदिक प्रमाणों से दर्शा आये हैं। यहां मन्त्र में इसे 'अभिचार' से बचाने वाला इसलिए कहा है कि अभिचार खान पान में विषप्रयोग हो जाने पर हृदय की रक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है जैसा कि सुश्रुत और चरक में विषभक्षण पर हृदय की रक्षा करना ब्रतलाया है। "हृदयावरणं नित्यं कुर्याञ्च मित्रमध्यगः" (सुश्रुत कल्पथान अ 1/ 78) आदौ हृदयं रक्ष्यं तस्यावरणं पिबेद्यथालाभम्। चरक विषचिकित्सा अ 23/44) अतः अथर्ववेद ने 'वरण' बरना को अभिचार से रक्षा का साधन बतलाया है।

इस प्रकार 'अभिचार' पर वैदिक विचार करने से यह स्पष्ट हुआ कि किसी व्यक्ति के घात के लिए खान पान मे विषप्रयोग का नाम 'अभिचार' है। कोई तान्त्रिक, कल्पित कल्पना से मन्त्र या जादू टोटका आदि नहीं है।

।। इति ।।

पादटिप्पणियां

1. हिन्दी में इसे दीर्घान्त माना गया है।

2. बृहद्धि ज़ालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः।
तेन शत्रूनभिसर्वान् न्युब्ज यथानमुच्यातैकतमश्चनैषाम्।
मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम्।।
(अथर्व0 8.8.6,18)

3. अज्ञानी जन इसे झाड़ फूंक के नाम से कहते हैं।

4. इसी का अशुद्धरूप गण्डा ताबीज नक्श डोरा धागा आदि चला हुआ है।

5. इसी को भ्रान्ति से लोगों ने टोना टोटका मूठ मारना आदि रूप दिया हुआ है।

6. "तथातिवृद्धबालाभिदष्टमल्पविषं स्मृतम्।
नकुलाकुलिता बाला वारिविप्रहताः कृशाः।
वृद्धा मुक्तत्वचो भीताः सर्पास्त्वल्पविषाः।।
(सुश्रुत) कल्प0 4/20/33

7. वागिति द्यौः (जै0 उ0 4.12.11)

8 सर्पित को।

9. रदित को।

10. सर्पागभिहत को।

11.कोषाध्यक्षः कोषप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तज्जात्करणाधिष्ठितः प्रतिगृहणीयात् । कौटिल्यार्थ शास्त्र अधि0 2 प्रकरण 27)
चन्दनम्,अगरू,तैलपर्णिकम्, भद्रश्रीयम् कालेयकः। इति साराः (कौटिल्यार्थशास्त्र प्रकरण 27)

12.'पिचुकम्' रुई के फाए का नाम है एवं पिचुकी रुई की बत्ती है मणिबन्धन प्रकरण में पिचुक अर्थात् इतर सुगन्धवाला रुई का फाया धारण करना अष्टांगहृदय ग्रन्थ में भी बताया है।
वैदुर्यगर्दभमणिं पिचुकं विषमूषिकाम्
–अष्टाङ्गहृदय

13. यातुजम्भनमाञ्जन (मंत्र 3)

14.कृत्वा के सम्बन्ध में देखो इस पुस्तक में आगे कृत्या–अभिचार प्रकरण को।

15. रामायण में सामान्य नदी के अर्थ में यमुना शब्द आया भी है वहां कहा है कि गई रात नहीं लोटतीजैसे ही जल भरे समुद्र को गई यमुना भी नदी नहीं लौटती।
अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्ण समुद्रमुदकाकुलम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां गई रात के न लौटने की समता में यमुना शब्द का रखना। तथा उसके जलपूर्ण समुद्र तक पहुंचने के कथन से यमुना सामान्य नदी अर्थ में स्पष्ट सिद्ध होता है।

16. शरीर के तीन भाग हैं एक शिर, दूसरा मध्य, तीसरा जघन अर्थात् नीचे का। इन प्रत्येक में पचास पचास व्याधियां होने से सब डेढ़ सौ हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (86-108) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद का विहङ्गम परिचय

आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

प्राचार्या- पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी-१०

अथर्ववेद का परिचय

वेद ४ हैं। चौथा वेद अथर्ववेद है। वेदों के ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान ये ४ मुख्य विषय हैं। विज्ञान अथर्ववेद का प्रमुख विषय है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद जैसे ईश्वरीय ज्ञान हैं, मनुष्यकृत नहीं हैं, ऋषियों द्वारा दृष्ट हैं, वैसे ही अथर्ववेद भी ईश्वरीयज्ञान है, अपौरुषेय है, मनुष्यकृत नहीं, ऋषियों द्वारा दृष्ट वेद है। अथर्ववेद ईश्वरीय ज्ञान है, मनुष्य कृत नहीं है, इस तथ्य की अन्त:-साक्षी अथर्ववेद में ही विद्यमान है। मन्त्र है-

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

(अथर्व. १०.८.३२)

अर्थात् हे जीव! तुम, **देवस्य**= दिव्य प्रकाशमय प्रभु के, **काव्यम्**= इस वेदज्ञानरूपी काव्य को, **पश्य**= देखो। यह ज्ञान, **न ममार**= न विनष्ट होता है, **न जीर्यति**= न ही जीर्ण होता है।

मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है कि यह ईश्वरीय ज्ञान सनातन है, अनादि है तथा सदा नवीन ही रहता है, कभी पुराना नहीं होता। ईश्वर का यह ज्ञान तीनों कालों में उपयोगी होता है।

अथर्ववेद विषय

इस चतुर्थ वेद का नाम अथर्ववेद है। अथर्ववेद शब्द अथर्वन् शब्द से सिद्ध हुआ है। अथर्वन् शब्द का अर्थ है- गति रहित, स्थिर। अथर्वन् का ऐसा अर्थ क्यों है ? क्योंकि **थर्व** धातु का अर्थ गति या चेष्टा है। अथर्वन् शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए यास्क ने लिखा है-

थर्वतिश्चरतिकर्मातत्प्रतिषेध:।

(निरु. ११.२.१३)

अर्थात् **थर्व** धातु चर= चलनार्थक है, गत्यर्थक है। उस गति का प्रतिषेध अथर्वन् या अथर्वा शब्द से कहा जाता है।

यास्क की व्युत्पत्ति से स्पष्ट हुआ कि **जिस वेद में स्थिरता, चित्तवृत्तियों के निरोध का अतिशय से कथन है वह अथर्ववेद संज्ञा से अभिहित होता है।**

अथर्ववेद अनेक विद्याओं का ज्ञान-भण्डार

अथर्ववेद में अनेकों ऐसे सूक्त हैं जिनमें परमात्मा, आत्मा आदि विषयों का प्रज्ञान भरा है। उनमें **आत्म विद्या** (अथर्व. ४.२), **आत्मा** (अथर्व ५.९, ९.१०), **आत्म रक्षा** (अथर्व. ५.१०), **ब्रह्मविद्या** (अथर्व. ४.१, ५.६), **महद् ब्रह्म** (अथर्व. १.३२), **ज्येष्ठ ब्रह्म** (अथर्व. १०.८), **उच्छिष्ट ब्रह्म** (अथर्व ११.७), **ब्रह्मौदन** (अथर्व. ११.१), **ब्रह्मपुरी** (अथर्व. १०.२) सूक्त अतिप्रसिद्ध हैं, प्रख्यात हैं। अथर्ववेद के ये सूक्त ज्ञापित करते हैं कि **अथर्ववेद योग, उपासना,**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म, चित्तवृत्ति निरोध, ब्रह्म-प्राप्ति की विद्या से प्रतिबद्ध वेद है।

दर्शन स्तम्भ

दर्शन सिद्धान्त के ब्रह्म, जीव, प्रकृति विशिष्ट आधार हैं। दर्शन के इन आधारों का अथर्ववेद में विस्तार से वर्णन है। **ईश्वर द्रष्टा और साक्षी है, कर्मफल देने वाला है** (अथर्व. ९.९.२०), **ईश्वर शुद्ध, सात्त्विक, अविनाशी है** (अथर्व. ५.११.६), **ईश्वर जीव और प्रकृति दोनों में व्याप्त है** (अथर्व. १०.८.२५), **ईश्वर निराकार है, शरीर, मांस, हड्डी से रहित है** (अथर्व. ९.९.४) आदि **ईश्वरविषयक विवेचन अथर्ववेद में संप्राप्त हैं।**

जीवात्मा जगत् रूपी वृक्ष पर रहते हुए कर्मफल को भोगता है (अथर्व. ९.९.२०), जीवात्मा ईश्वर की भाँति अदृश्य, दुष्प्राप्य है(अथर्व. ५.११.६), जीवात्मा शरीर धारण करता है आदि जीव विषयक सिद्धान्त अथर्ववेद में विद्यमान हैं।

प्रकृति जड़ और अचेतन है(अथर्व. ९.९.२०), प्रकृति में समस्त ऐश्वर्य सुख समृद्धि हैं, प्रकृति घृत आदि का आधार है(अथर्व. १८.४.५), प्रकृति सत्त्व, रजस्, तमस् ३ गुणों वाली है(अथर्व. ८.९.२, १०.८.४३, ८.२.१), प्रकृति में महत्तत्त्व है जिसे अथर्ववेद में बृहत् कहा गया है(अथर्व. ८.९.४) आदि प्रकृति विषयक ज्ञान अथर्ववेद में निहित है।

इसके अतिरिक्त दर्शन के अवयवभूत प्राण, अपान, शरीर आदि पदार्थों का भी भलीभाँति अथर्ववेद में वर्णन है। इन दार्शनिक विषयों से सिद्ध है कि अथर्ववेद दर्शन विद्या का वेद है।

शिक्षा स्तम्भ

शिक्षा व्यक्ति के विकास की साधन है। शिक्षा के अङ्ग हैं- बुद्धि, आयु, गुरु, शिष्य, लेखन आदि। शिक्षा सम्बन्धी इन सभी अवयवों का अथर्ववेद में प्रतिपादन है। **शिक्षा बुद्धि को तीक्ष्ण करती है** (अथर्व. ७.१६.१), **शिक्षा पढ़ने वाले को मेधावी बनाती है, प्रबुद्ध करती है**(अथर्व ७.६१.१), **विद्या, सुख देती है** (अथर्व ७.६८.३), शिक्षा के आधार गुरु शिष्य होते हैं, आचार्य शिष्य को नया जन्म देता है(अथर्व. ११.५.३), **आचार्य की सेवा करना, उनके आयु की कामना करना शिष्य का कर्त्तव्य है** (अथर्व. १९.६४.४) आदि शिक्षा सम्बन्धी उपादानों का उत्तम वर्णन अथर्ववेद में है। जो सिद्ध करता है कि **अथर्ववेद शिक्षा निदेशक वेद है।**

अर्थ स्तम्भ-

अर्थ, धन जीवन का अभिन्न अङ्ग है। अर्थोपार्जन की जितनी भी कृषि, व्यापार आदि अवयभूत विधायें हैं, उनका अथर्ववेद में विस्तार से उल्लेख है। **कृषि जीवन और अर्थ का आधार है**(अथर्व. ८.१०.२४), **धन धान्य के साथ अर्थ के साधन परिवार में पशु, धन होवे, गाय होवे, दुग्ध घृत होवें**(अथर्व. २.२६.४) **गाय का वध न हो**(अथर्व. ७.७३.८), **गोदान होवे** (अथर्व. १०.१०.३३), **व्यापार में संलग्न जन दृढ़**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चयी उत्साह युक्त हों (अथर्व. ३.२४.७) आदि अर्थ संग्राहक निदर्शन अथर्ववेद में विद्यमान है। इससे ज्ञात होता है कि अथर्ववेद अर्थोपार्जन शिक्षा का वेद हैं।

राज्य शासन स्तम्भ

राज्य, शासन विकास और उन्नति के लिये होता है राज्य सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्र का विवरण अथर्ववेद में विद्यमान है। **राष्ट्र का शासक धारक, पालक होवे** (अथर्व. ६.८७.१), **प्रजा कर्त्तव्य पालन करते हुए कोश को उन्नत करे** (अथर्व. १८.९.१-२), **विराट्, स्वराट् शासन के ३ प्रकार हैं**(अथर्व. १७.१.२२), **प्रजा राजा को गद्दी पर बैठाती है**(अथर्व. ३.३.५) **सभा समिति राजा की पुत्री रूप प्रजा के हित की २ प्रतिष्ठायें हैं**(अथर्व. ७.१२.१) आदि शासन सम्बन्धी अनेक पक्ष अथर्ववेद में व्याख्यात हैं। राज्य सम्बन्धी इन विवरणों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद शासकीय विद्याओं का संवाहक है।

समाज स्तम्भ

कर्त्तव्य के अनुसार कर्म करने वालों का जो समुदाय है, वह समाज कहा जाता है। उस समुदाय के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ४ वर्ग सुनिश्चित हैं। इन वर्णों का अथर्ववेद में भली प्रकार विवेचन है। **ब्राह्मण देव भक्त होता है** (अथर्व. ५.१५.१३), **ब्राह्मण का धन वेदवाणी है। ब्राह्मण समाज का नेता है, मार्ग दर्शक है**(अथर्व. १२.५.४), **ब्राह्मण हन्ता को परमेश्वर नष्ट कर देता है**(अथर्व. १२.५.४१)। **क्षत्रिय राज्य का रक्षक होता है** (अथर्व. ५.१७.३), प्रजा की आयु बढ़ाने वाला क्षत्रिय होता है(अथर्व. ७.१०३.१)। वैश्य राजा को क्रय-विक्रय की विधाओं से सम्पन्न करता है(अथर्व. ३.१५.२), **वैश्य= व्यापारी शुद्ध चरित्र वाला होवे** (अथर्व. ३.१५.४)। **शूद्र का कार्य मेरा शुश्रूषा करना है। उसका कल्याण होवे, वह धन धान्य को प्राप्त करे** (अथर्व. १९.३२.८, १९.६२.१) आदि समाज के वर्ण, आश्रम आदि आधार स्तम्भों का अथर्ववेद में वर्णन है। ये वर्णन ज्ञापित करते हैं **अथर्ववेद समाज व्यवस्था का निदर्शन कराने वाला वेद है।**

अथर्ववेद के विशेष नाम

उपर्युक्त अध्यात्म, दर्शन, समाज आदि स्तम्भों की भाँति धर्म, कर्त्तव्य, चिकित्सा, भैषज्य आदि स्तम्भों की संपदा का ज्ञान भी अथर्ववेद प्रदान करता है। इन समस्त विशेषताओं के कारण अथर्ववेद के छन्दः, ब्रह्म, भैषज्य वेद आदि विभिन्न नाम हैं। इन नामों की प्रामाणिकता वेद तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में विद्यमान है। यथा-

छन्दः नाम

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
अथर्व. ११.७.२४

ब्रह्म नाम

ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदो ब्रह्मवेद इति।
गो.ब्रा. १.२.६

भैषज्य नाम

ऋचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमः॥
अथर्व. ११.६.१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद चिकित्सा=भैषज्य वेद

रोग निवारक लिभिन्न उपायों द्वारा रोगों का प्रतिकार करना चिकित्सा कही जाती है। अथर्ववेद चिकित्सा विधियों का सुमहत् ज्ञान सागर है। चिकित्सा के अनेकानेक आयाम प्रकार अथर्ववेद में ओत-प्रोत हैं। अथर्ववेद में चिकित्सा के उपाय भेद से कई प्रकार के हैं। उन में चिकित्सा की दो विधियाँ अतिमहत्त्वपूर्ण हैं- ओषधि और भेषज।

ओषधि-

१. ओषधयः ओषद्धयन्तीति वा, ओषति एना धयन्तीति वा, दोषं धयन्तीति वा।(निरु. ९.३.२२)

अर्थात् जो जलाने तपाने वाले रोगों का नाश करती हैं, दाहक रोग होने पर लोग इन्हें पीते हैं, अथवा दोषों को यह पीती है, अतः ओषधि कही जाती है।

२. ओषं रसम्, तं धारयन्तीति ओषधिः।

अर्थात् जो ओष=रस को धारण करती हैं, वे ओषधि कही जाती हैं।

इस प्रकार ओषधि रस एवं रस प्रधान पदार्थों का नाम है। ओषधि के द्वारा शरीर और मन के दोषों, विकारों को दूर किया जाता है। ओषधि दीपन, पाचन, ओज, बल को बढ़ाने वाली होती हैं तथा लेपन, पान, मर्दन, बन्धन आदि के उपयोग में ली जाती हैं।

भेषज

१. भेषं भयम् (ञिभी भये). रोगभयं जयति इति भेषजम्।

अर्थात् जो रोग के भय को, त्रास को जीत लेता है, वह भेषज कहा जाता है।

२. भिषज्यति (भिषक् चिकित्सायाम्) येनेति भेषजम्,

अर्थात् जिसके द्वारा चिकित्सा की जाती है, उसे भेषज कहते हैं।

इन व्युत्पत्तियों से स्पष्ट हुआ कि भेषज नाम पदार्थ व क्रिया दोनों का है। रोग निवारण के लिये जो योग, उपासना, यज्ञ, मार्जन, अभिमर्षण, बन्धन तथा जलावसेचन आदि की जो क्रिया, उपाय व उपयोग हैं, वे भेषज विभाग में आते हैं।

रोग=उपताप प्रकार

रोग=उपताप तीन प्रकार के हैं- रोग, आधि, व्याधि।

रोग-

शरीरगत धातुओं को क्षीण करने वाले, नाड़ी, प्राण, इन्द्रियों को दुर्बल करने वाले, शिथिल व निष्क्रिय करने वाले, प्रगति और अभ्युदय के बाधक बनने वाले उपताप=दुःख की संज्ञा 'रोग' होती है।

आधि-

सूक्ष्मतम मानसिक उपताप का नाम 'आधि' होता है।

व्याधि

त्रिधातु, शरीर, प्राण, मन, अन्तःकरण, चित्त एवं बुद्धि व अन्य इन्द्रियों के विकाररूप उपताप को 'व्याधि'[1] कहा जाता है।

व्याधियाँ दो कारणों से उत्पन्न होती हैं- १. उत्पत्ति दोष अर्थात् पापजन्य कर्म के कारण, २. मिथ्या आहार विहार के कारण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन समस्त रोग प्रकारों का उपचार ओषधि और भेषज द्वारा किया जाता है। अथर्ववेद में इन्हीं चिकित्सा प्रकारों का प्रतिपादन है। अथर्ववेद में चिकित्सा विज्ञान होने के कारण अथर्ववेद को भैषज्य वेद कहा जाता है और अथर्ववेद में कहे गये चिकित्सा व चिकित्सा ज्ञान को भेषज, अमृत कहा गया है। वचन है-

येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्, यद्भेषजं तदमृतम्, तदमृतं तद् ब्रह्म। (गो.ब्रा. २.३.४)

अर्थात् जो अथर्ववेद में प्राणी मात्र के लिये कहा गया है वह भेषज है, जो भेषज है वह अमृत है, जो अमृत है वही ब्रह्म=वेद ज्ञान है।

चिकित्सा विभाग

रोग-निवारण के इन ओषधि व भेषज चिकित्सा प्रकारों को भी अथर्ववेद के एक मन्त्र में ४ भागों में बाँट कर चिकित्सा पद्धति के प्रारूपों का विस्तार किया गया है। वह मन्त्र है-

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।। (अथर्व. ११.४.१६)

अर्थात् **प्राण**= हे प्राण! **यदा=** जब तू, **जिन्वसि=** प्रेरणा करता है तब तक ही **आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी, उत=** एवं **मनुष्यजा ओषधयः=** मनुष्य कृत ओषधियाँ, **प्रजायन्ते=** उत्पन्न होती हैं।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में ओषधि और भेषज चिकित्सा पद्धति को **आथर्वणी=** मन्त्र, विचार चिकित्सा, **आङ्गिरसी=** मानसिक शक्ति चिकित्सा, **दैवी=** अग्नि, वायु, जल, तेज आदि दैविक पदार्थों द्वारा जल चिकित्सा, सौर्य चिकित्सा, वायु चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा, वर्ण चिकित्सा, अग्नि= यज्ञ चिकित्सा, आसन, प्राणायाम, चिकित्सा आदि एवं **मनुष्यजा=** मनुष्यों द्वारा निर्मित क्राथ, चूर्ण, अवलेह, भस्म, कैप्सूल, गोली, सीरप आदि एवं चीड़, फाड़, ऑपरेशन आदि चिकित्सा के इन ४ प्रकारों में प्रख्यात कर रोगों को दूर करने का उपाय बताया है।

रोग, दुःख आदि बाधाओं से सुरक्षित करने वाले अथर्ववेद में कहे गये चिकित्सा पद्धति के चारों विभाग ही आज नित्य प्रति व्यवहार में खरे उतर रहे हैं। इन प्रकारों से अतिरिक्त कोई नई चिकित्सा नहीं हो रही है। ये चिकित्सा पद्धतियाँ ही मनुष्य जीवन की सत्य चिकित्सायें हैं।

मृत्यु कारण

चिकित्सा करने वाले वैद्य, चिकित्सक, डॉक्टर आदि तो रोग, दुःख के कारण जानते ही हैं, अन्यों को भी जानना आवश्यक है। अथर्ववेद में मृत्यु= मरण दुःख के १०१ प्रकार बताये गये हैं, ये प्रकार रोगों की अनिवार्यता से नहीं कहे गये हैं, अपितु मनुष्य की संभावित आयु १०० वर्ष की कही गई हैं, उस दृष्टि से कहे गये हैं। उन १०० वर्षों में कोई न कोई कष्ट आयेंगे, या आ सकते हैं, आते भी हैं। तो वे कष्ट १०० मृत्यु रूप होंगे। इस प्रकार १०० वर्ष की संभावित १०० कष्ट रूप मृत्युयें हुई। जीव १० मास गर्भ में रहता है, उस अवस्था में भी मृत्युकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भावना होती ही है। इस प्रकार संभावित १००+१=१०१ मृत्यु रूप कष्ट हैं।

इन सम्भावित मृत्यु कारणां व कष्टों में कुछ ज्वर, यक्ष्मा, संग्रहणी, चोट, प्रहार आदि बहु चर्चित हैं, मृत्यु के कुछ एक ऐसे भी कारण हैं, लोक में जिनका नाम तो ज्ञात है, पर स्वरूप प्रायः अविदित हैं। वे प्रमुख कारण हैं-

१. **यातुधान**
२. **यक्ष**
३. **राक्षस**
४. **गन्धर्व**
५. **अप्सरा**
६. **पिशाच**
७. **भूत** आदि।

ये कारण किस स्वरूप वाले हैं? यह तब तक ज्ञात नहीं हो सकता जब तक इन शब्दों के शब्द निबन्धन की व्युत्पत्ति सुविदित न हो।

यातुधान

यातुधान दो शब्दों का समुदाय है- यातु और धान। या प्रापणे धातु से **कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च** (उणा. १.७३), सूत्र द्वारा तुन् प्रत्यय करके या+तुन्=यातु शब्द निष्पन्न होता है। अथवा छान्दस् यत् ताडने धातु से **कृवापाजिमि.** (उणा. १.१) उणादि सूत्र द्वारा उण् प्रत्यय करके यत्+उण्=यातु शब्द निष्पन्न होता है। डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु से **आतो युच्**(पा. ३.३.१२८) सूत्र से युच् प्रत्यय करके धा+युच्=धान शब्द निष्पन्न होता है। इन दोनों शब्दों के संघात 'यातुधान' शब्द की व्युत्पत्ति है-

यातुं प्रापणं गतिं दधाति स यातुधानः।

अर्थात् जो गति को रोक लेता है, गति को अपने अन्दर धारण कर लेता है, वह 'यातुधान' कहा जाता है।

यातुं ताडनं पीडां दधाति ददाति स यातुधानः।

अर्थात् जो ताडन= पीड़ा को धारण करता है, देता है वह 'यातुधान' कहा जाता है।

इस प्रकार 'यातुधान' गति को रोकने वाले, पीड़ा देने वाले वे कृमि या रोग हैं, जो दूसरों को पीड़ा देते हैं।

यक्ष

यक्ष शब्द में दो शब्द हैं- य और क्ष। या प्रापणे धातु से बाहुलक 'क' प्रत्यय करके **या+क=** यः शब्द निष्पन्न होता है। क्षणु+हिंसायाम् धातु से बाहुलक उ प्रत्यय करके क्षणु+उ=क्षः शब्द निष्पन्न होता है। यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति है-

यां प्रापणं गतिं क्षणोतीति यक्षः।

अर्थात् जो गति को, उन्नति को हिंसित कर देता है वह 'यक्ष' कहलाता है।

रक्षः, राक्षस

रक्षः, राक्षस शब्द रक्ष पालने धातु से **सर्वधातुभ्योऽसुन्**(उणा. ४.१९०) सूत्र से असुन् प्रत्यय करके (रक्ष्+असुन्=रक्षः), पुनः उसी रक्षस् शब्द से **प्रज्ञादिभ्यश्च**(पा. ५.४.३८) सूत्र से स्वार्थ में अण् प्रत्यय द्वारा रक्षस्+अण्=राक्षस क्रमशः दोनों शब्द सिद्ध होते हैं। अथवा रहस् उपपद रहते क्षणु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसायाम् धातु से एवं रात्रि उपपद रहते **नक्ष व्याप्तौ** (नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा, निघं. २.१८) धातु से असुन् प्रत्यय करके रहस्+क्षण्+असुन्=रक्ष:, पुन: रक्षस् से अण् द्वारा राक्षस: शब्द निष्पन्न होते हैं। जिनकी व्युत्पत्तियाँ हैं-

रक्षन्त्यस्मादिति रक्ष:, राक्षसो वा।

अर्थात् जिससे रक्षा करते हैं बचते हैं वह रक्ष: अथवा राक्षस: कहलाता है।

रक्षो रक्षितव्यमस्माद्, रहसि क्षणोतीति वा, रात्रौ नक्षते इति वा।(निरु. ३.४.१८)

अर्थात् इससे अपनी रक्षा करनी चाहिए, इस भाव वाला होने से वह रक्ष: या राक्षस है, अथवा एकान्त स्थान में दूसरे को मारता है, रात्रि के समय बहुत अधिक फैलता है, वह रक्ष: या राक्षस कहा जाता है।

रक्ष:, राक्षस की पहचान बताते हुए कौषीतकि आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है-

असृग्भाजनानि ह वै रक्षांसि।

(कौषी. ब्रा. १०.४)

अन्यकृतानि हि रक्षांसि।

(तै.सं. ६.३.२.२)

अर्थात् **असृक्**= रक्त, रुधिर पीने वाले, कृमि, प्राणी राक्षस हैं एवं विपरीत कर्म व क्रिया करने वाले राक्षस होते हैं।

गन्धर्व- गन्धर्व शब्द गो शब्द उपपद रहते धृञ् धारणे धातु से **गविगन्धृञो व:**(श्वे. वन. वृ. ७४७. उणा. ५.७८) द्वारा व प्रत्यय तथा गन् आदेश करके गो+धृ+व=गन्धर्व शब्द की निष्पत्ति होती है। गौ का अर्थ गाय, पशु, इन्द्रिय व पृथिवी आदि हैं। गन्धर्व की व्युत्पत्ति है-

गां धारयतीति गन्धर्व:।

अर्थात् जो गौ=इन्द्रिय या पृथिवी=जड़त्व भाव आदि को धारण करते हैं, वे गन्धर्व कहलाते हैं।

इन गन्धर्वों का स्वरूप बताते हुए शतपथ में कहा है-

रूपमिति गन्धर्वा उपासते।

(शत.ब्रा. १०.५.२.२०)

अर्थात् रूप का सेवन करने वाले, रूप की ओर आकृष्ट होने वाले कृमि आदि गन्धर्व होते हैं।

अप्सरा- अप्सरा शब्द की कई निष्पत्तियाँ हैं, उनमें एक व्युत्पत्ति मत्वर्थ प्रत्यय की है। **अप्स इति रूपनाम**(निघण्टु ३.७), इस रूपार्थक अप्स प्रातिपदिक से बाहुलकात् मत्वर्थक र प्रत्यय करके अप्स+र=अप्सरा शब्द सिद्ध होता है। जिसकी व्युत्पत्ति है

अप्स इति रूपनाम अप्सातेः, अप्सानीयं भवति आदर्शनीयं व्यापनीयं वा। (निरु. ५.३.१३)

अर्थात् रूप वाले को 'अप्सरा' कहते हैं। रूप भक्षणीय नहीं होता, दर्शनीय व व्यापक होता है।

ये रूपवाले कौन होते हैं? इसे स्पष्ट करते हुए शतपथ में कहा-

अथो गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति। (शत.ब्रा. ९.४.१.४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् अप्सरा और गन्धर्व रूप के साथ रूप की ओर गिरते हुए, गन्ध के साथ गन्ध को फेंकते हुए विचरण करते हैं।

गन्ध इत्यप्सरसस्तं यथा यथा उपासते तदेव भवति। (शत.ब्रा. १०.५.२.२०)

अर्थात् गन्ध वाले पदार्थों व स्थानों में रहने वाले सूक्ष्म जन्तु जैसे- जैसे प्रविष्ट होते जाते हैं वे वैसे ही होते जाते हैं और वे अप्सरा कहे जाते हैं।

ये सूक्ष्म जन्तु वे हैं, जो गेंदा, गुलाब, बेला, चमेली आदि गन्ध वाले फूलों के अन्दर रहते हैं। फूलों को तोड़ते ही तुरन्त नासिका आदि में प्रविष्ट होकर मस्तिष्क में रोग उत्पन्न करते हैं।

पिशाच- पिश, आच इन दो शब्दों के मेल से 'पिशाच' शब्द निष्पन्न हुआ है। पिश अवयवे धातु से **इगुपधाज्ञाप्रीकिरः कः**(पा. ३.१.१३५) सूत्र से क प्रत्यय द्वारा पिश्+क=पिश शब्द बना है। आङ् पूर्वक चमु अदने, भक्षणे वा धातु से बाहुलक ड प्रत्यय करके आङ्+चम्+ड=आच शब्द बना है। दोनों को मेल से पिश+आच=पिशाच शब्द हुआ। जिसकी व्युत्पत्ति है-

पिशितमवयवभूतं मांसरुधिरादिकमाचमतीति पिशाचः।

अर्थात् जो अवयव भूत मांस, रुधिर आदि एवं अन्नादि के कणों को खाने, चाटने वाले कृमि, जीव हैं, वे 'पिशाच' कहे जाते हैं।

कृमि, जीव पिशाच होते हैं, इसका स्पष्टीकरण अथर्ववेद का मन्त्र ही कर रहा है। मन्त्र है-

यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः॥ (अथर्व. ५.२९.५)

अर्थात् **अस्य=** इस रोगी का, **यद् मांसम्=** जो मांस, **पिशाचैः हृतम्=** मांसभक्षी रोग, कृमि, जीव आदि ने उखाड़ लिया है, खेंच लिया है, **विहृतम्=** अलग कर दिया गया है, **यत्पराभृतम्=** जो अपूर्णीय कर दिया है तथा **यतमत्=** जो अंश, **आत्मनः जग्धम्=** शरीर का खा लिया है, **तत्=** उस मांस को, **अग्ने=** हे अग्रणी, **विद्वान्=** विज्ञ चिकित्सक अथवा अग्नि प्रधान ओषधि! **त्वं पुनः=** तुम फिर से, **शरीरे आ भर=** शरीर में पूर्ण कर दो। जिससे इस शरीर में **असुम् एरयामः=** ज्ञान व प्राण शक्ति को प्रेरित करें।

मन्त्र में पिशाच द्वारा खाये गये मांस को पूर्ण करने की अग्नि और चिकित्सक से प्रार्थना की गई है। मन्त्र से स्पष्ट है कि वे **पिशाच** वे कृमि, प्राणी, जीव एवं मांसभक्षी मनुष्य हैं जिन्होंने मांस खा लिया है।

भूत- भूत शब्द क्त प्रत्ययान्त है। भू सत्तायाम्, भू प्राप्तावात्मनेपदी धातुओं से भाव, करण, अधिकरण में क्त प्रत्यय करके भू+क्त=भूत निष्पन्न होता है। जिसकी व्युत्पत्ति है-

यद्भूतं निर्मितं येन भूयते यस्मिन् भवन्तीति वा तद्भूतम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जो हो चुका हो, बन गया है, उत्पन्न है, जो उत्पन्न होता है जिसमें होता है, वह भूत कहलाता है।

भूत संज्ञा बीते हुए काल व पदार्थों आदि की है, उत्पन्न हुई वस्तुओं की है। पञ्चभूतों से सृष्टि निर्माण होने के कारण पञ्च तत्त्वों की भूत संज्ञा है। उत्पन्न होने वा उत्पन्न करने के कारण प्राणियों, जीवों को भी 'भूत' कहते हैं।

इन यातुधान, यक्ष, रक्षः राक्षस् आदि शब्दों की व्युत्पत्तियों से सुज्ञात है कि ये शब्द रोगजनक सूक्ष्म जन्तु, उन जन्तुओं से आहत प्राणी एवं कुत्सित कर्मों से यातुधान, राक्षसत्व वृत्ति को प्राप्त व्यक्ति विशेषों के वाचक हैं। जो किन्हीं आकार विशेष वाले, किंवदन्ती रूप भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि योनि विशेष में प्रसिद्ध हैं, जिनके विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें हैं कि वे मनुष्य तथा हस्ति आदि से भी बड़े, पर्वत के बराबर एवं डरावनी आँख, नाक और लम्बे-लम्बे दांत आदि वाले होते हैं, उनके वाचक नहीं हैं।

यातुधान आदि रोगजनक- यातुधान, यक्ष, रक्षः, राक्षस, अप्सरा, पिशाच, भूत आदि आक्रमणकारी सूक्ष्म कृमि, जन्तु हैं। ये जब मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं, तब उनसे दो प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं-

१. उन्माद
२. भूतोन्माद

} मानसिक तथा शारीरिक असन्तुलन

उन्माद- उन्माद रोग शान्त व आन्तरिक होता है। ये पूर्वोक्त पिशाच= भूत आदि सूक्ष्म जन्तु मच्छर, मक्खी, भुनगे आदि जमघट के साथ मनुष्यों के सिर पर, आँखों के सामने आते हुए एवं घावों में बैठकर तुरन्त मस्तिष्क व आँखों में आलस्य जड़ता उत्पन्न कर देते हैं। शरीर में मादक विष का प्रवेश कर देते हैं। मस्तिष्क के आन्तरिक तन्तु कफ लिप्त होकर जड़ हो जाते हैं। जिससे मन मूढ़ होकर शान्त उन्माद को उत्पन्न करता है। उन्मादी व्यक्ति निन्दा, अपमान, सज्जनों का असंग करने लगता है। विषय वासना, मिथ्याशोक, चिन्ता, लोभ, मोह, भोग विलास आदि वृत्तियों से घिर जाता है।

भूतोन्माद- भूतोन्माद प्रलाप वाला एवं बाह्य होता है। यातुधान राक्षस, गन्धर्व, पिशाच आदि जन्तु, कृमि, मनुष्यों पर घावों पर, आक्रमण कर विष फैला देते हैं, जिससे वात, पित्त, कफ कुपित हो जाते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क के तन्तु क्षुब्ध और दग्ध हो जाते हैं और व्यक्ति असंबद्ध प्रलाप करने लगता है। आयुर्वेद में इसी स्थिति को भूतोन्माद, भ्रमोद्वेग कहा जाता है। इस भूतोन्माद से ग्रस्त व्यक्ति अपने अन्दर विष के कारण विषम बातों की कल्पना करता है। पूर्व श्रुत बातों, विश्वासों एवं पूर्व संचित मलिन संस्कारों के कारण मैं भूत, प्रेत, चूड़ैल आदि हूँ, आदि भी तीव्र, कठोर उच्चस्वर में चिल्लाता है, गालियाँ देता है, नाचता घूमता, फिरता है।

ये राक्षस पिशाच आदि उन्माद, भूतोन्माद रोगों को कैसे उत्पन्न करते हैं? वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने प्रकार के उन्माद हैं? इसका चरक और सुश्रुत में विस्तार से वर्णन है। उन्माद प्रकार बताते हुए चरकऋषि कहते हैं-

इह खलु पञ्चोन्मादा भवन्ति, तद्यथा- वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ता:।

(चरक. निदा. ७.३)

अर्थात् इस संसार में पाँच प्रकार के उन्माद होते हैं-

१. वातज, २. पित्तज,

३. कफज, ४. सन्निपात,

५. आगन्तु।

इन उन्मादों का व्यक्ति पर क्या प्रभाव होता है, इसका वर्णन किया जा चुका है। गन्धर्व आदि कैसे अपना विष फैलाते हैं, व्यक्ति को पीड़ित करते हैं? इसका कथन करते हुए चरकाचार्य कहते हैं-

स्पर्शन्तो गन्धर्वा: समाविशन्तो यक्षा:, राक्षसस्त्वामगन्धमाघ्रापयन्त:, पिशाचा: पुनरधिरुह्य वाहयन्त:।। [3]

अर्थात् गन्धर्व मात्र स्पर्श करते हुए, यक्ष मात्र शरीर में प्रविष्ट होते हुए, राक्षस आम=कच्चे मांस जैसी गन्ध देते हुए, सूँघाते हुए एवं पिशाच रोगी का आलिङ्गन करते हुए, उस रोगी को अपनी सवारी बनाते हुए उसमें उन्माद उत्पन्न करते हैं।

गन्धर्व आदि से पीड़ित मनुष्य किस आचरण वाला होता है? इसका सुश्रुत में भी पृथक्-पृथक् लक्षणों द्वारा प्रतिपादन किया है-

**हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचार:
प्रियपरिगीतगन्धमाल्य:।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्व
ग्रहपरिपीडितो मनुष्य:।।
ताम्राक्ष: प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गंभीरो
द्रुतमतिरल्पवाक् सहिष्णु:।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो
यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्य:।।
मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो
भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूर:।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचाद्विड्
भवति च रक्षसा गृहीत:।।
उद्ध्वस्त: कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गन्धो
भृशमशुचिस्तथाऽतिलोल:।
बह्वाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी व्याविग्नो
भ्रमति रुदन् पिशाच जुष्ट:।।** [4]

-सुश्रुत.उत्तर. ६०.१०, ११, १४, १५

अर्थात् **गन्धर्व** कृमियों से पीड़ित व्यक्ति प्रसन्न चित्त, नदी, तट एवं वनों में घूमने वाला, अपने स्वतन्त्र आचरण वाला, गीत, गन्ध माल्य आदि में अतिशय रुचि वाला, धीमे बोलता हुआ, नाचता हुआ सुन्दर हंसी हँसता है।

यक्ष कृमियों से आक्रान्त व्यक्ति ताम्र सदृश नेत्र वाला सुन्दर[5], हल्के एवं लाल रंग के वस्त्र धारण करने वाला होता है और गम्भीर स्वभाव वाला, अस्थिर चित्त वाला, चञ्चल, कम बोलने वाला सहनशील तथा तेजस्वी होता है और यह कहता फिरता है कि वह किस को क्या दे?

राक्षस कृमियों से पीड़ित व्यक्ति रक्त, मांस आदि प्रकार के पदार्थों एवं मदिराओं का अभिलाषी, लज्जा रहित, अत्यधिक क्रूर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिशूर, अतिक्रोधी, अतिबलशाली, रात में विचरण करने वाला होता है और वह पवित्रता से द्वेष रखता है।

पिशाच जन्तु, कृमियों से पीड़ित व्यक्ति ऊपर हाथ उठाये, दुर्बल, कर्कश, चिरकाल तक प्रलाप करने वाला होता है, उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है, अतिमलिन, अतिलालची होता है, अतिभोजन व सूनसान स्थान पर रहने वाला, शीतल जल, शीत रात्रि पसन्द करने वाला होता है, उद्वेग करता हुआ, रोता हुआ इतस्ततः घूमता रहता है।

सुश्रुत के इस प्रकरण से सुस्पष्ट है कि राक्षस, पिशाच आदि योनि विशेष नहीं हैं, क्षुद्र, सूक्ष्मकृमि हैं, जिन कृमियों के आक्रमण से मनुष्य उन जैसी चेष्टायें करने लगता है। जैसे गन्धर्व कृमि जलाशयों आदि को चाहता है। यक्ष, अप्सरा कृमि जैसे चञ्चल होते हैं, भीनी-भीनी ध्वनि करते हैं वैसे उनसे आक्रान्त मनुष्य भी चंचल ध्वनि करने वाला, कम बोलने वाला, प्रेमासक्त चेष्टा वाला हो जाता है। राक्षस, पिशाच जन्तु रुधिर होते हैं, रात्रि में घूमते हैं, दुर्गन्ध युक्त स्थानों में जाते हैं, सब वस्तुओं पर गिरते रहते हैं, दुबले होते हैं, ठण्डे स्थानों में रहते हैं। इन राक्षस, पिशाचों से पीड़ित मनुष्य भी रुधिर, मांस, मद्य खाने पीने वाले, कर्कश लालची होते हैं। दुर्गन्ध, घाव, सूने स्थान व रात्रि को पसन्द करते हैं। गन्धर्व कृमि स्त्रियों, पर अधिक आक्रमण करते हैं।[६]

गन्धर्व आदि कृमि हैं, योनि विशेष नहीं हैं। इस तथ्य पर सुश्रुत के हिन्दी व्याख्याकार डॉ. अनन्तराम शर्मा हरिद्वार की उत्तरतन्त्र में २७.२ पर की गई टिप्पणी उल्लेख्य है-

'ग्रह एवं भूत, पिशाचादि की चर्चा आयुर्वेद ग्रन्थों में अनेक स्थलों में मिलती हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक अङ्ग 'भूतविद्या' है।'[७]

सुश्रुत के अनुसार भूतविद्या का अर्थ है-

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम्। (सुश्रु. सूत्र. १.४) (चरकसू. में ३० में) **तस्यायुर्वेद स्याङ्गान्यष्टौ** इस २८ वें सूत्र में **भूतविद्या** भी एक अङ्ग है। वहीं टीकाकार कहते हैं-

ग्रहभूतपिशाचाद्या डाकिनीशाकिनीग्रहाः।
एतेषां निग्रहोपायो भूतविद्या निगद्यते॥ हा. रो.

प्राचीन वाङ्मय को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि **भूतोऽसी देवयोनयः** (अमर को.) १.१.११, अमरकोषकार ने जो विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्षः, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध आदि गिनाये हैं उनसे आर्य जाति अनादि काल से प्रभावित होती आयी है। इन वैज्ञानिक युग में भी भारतीय जनमानस इस अदृश्य एवं काल्पनिक प्राणियों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाया है।

भूतविद्या के शास्त्रीय उपचार को देखते हुए भूतविद्या मानव मन के दौर्बल्य की अवस्था मात्र है, जिसका उपचार पूर्णतः मानसिक है। (उत्तरत. सुश्रु. २७.२, पृ. १९९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. अनन्तराम शर्मा की यह टिप्पणी स्पष्ट ज्ञापित कर रही है कि गन्धर्व, यक्ष आदि सूक्ष्म प्राणी ही हैं, योनि विशेष नहीं है और उनका मानव शरीर व मन पर कुप्रभाव पड़ता है।

इन उन्मादों की चिकित्सा के अथर्ववेद और आयुर्वेद के ग्रन्थों चरक, सुश्रुत आदि में अनेक उपाय बताये हैं, जिनमें हींग; सरसों, तुलसी, गुग्गल, भिलावा आदि गरम व गन्ध वाले पदार्थ महत्त्वपूर्ण हैं। इनके भक्षण और धुएँ से राक्षस, पिशाच, गन्धर्व आदि कृमि नष्ट हो जाते हैं। चिकित्सा विधि के उदाहरणार्थ 'हिंगु' विषयक वाक्य हैं-

हिंगु रक्षोघ्नम्। राज निघण्टु
हिंगु जन्तुघ्नम्। धन्वन्तरि निघण्टु
हिंगु जन्तुनाशनम्। राज निघण्टु
भूत नाशनम् हिंगु। वै. निघण्टु

चिकित्सा के इन ग्रन्थों में राक्षस आदि के नाश के लिए हिंगु का निर्देश किया गया है।

रक्षः, गन्धर्व की अथर्ववेदीय चिकित्सा का ओषधि मन्त्र

इन उन्माद उत्पन्न करने वाले राक्षस आदि की चिकित्सा का उपचार अथर्ववेद के बहुत से मन्त्रों में उपदिष्ट है। राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा इनके उपचार का मन्त्र है-

त्वया व॒यमप्स॒रसो गन्ध॒र्वाँश्चा॑तयामहे।
अज॑ शृ॒ङ्ग्यज॒ रक्षः॒ सर्वा॑न्ग॒न्धेन॑ नाशय॥

(अथर्व. ४.३७.२)

अर्थात् हे **अजशृङ्गि**' = विषाणी[१], गुडमार, मेषशृङ्गी, अजशृङ्गी नामक ओषधि!, **त्वया=** तुम्हारे द्वारा, **वयम्=** हम, **अप्सरसः=** गन्ध वाले पदार्थों अथवा जल, जलाशयों में गति करने वाले, फैलने वाले **(अप्स इति रूपनाम,** निघं. ३.७) अप इति उदकनाम (निघण्टु १.१२०), **गन्धर्वान्=**कृमियों को, **गन्धेन=** अपनी गन्ध से, **अज=** दूर फैंक और, **नाशय=**नष्ट कर दे।

अजशृङ्गी ओषधि कीटनाशक होती है। इसके सेवन एवं धूम्र से जलों व नमी वाले स्थानों में रहने वाले मलेरिया, हैजे आदि के दोनों प्रकार के नर, मादा रोग कीटाणु नष्ट होते हैं।

अथर्ववेद के चौथे काण्ड के इस ३७वें सूक्त में समस्त मन्त्र गन्धर्व आदि कृमियों के नाश एवं उपचार का वर्णन है।

पिशाच चिकित्सा ओषधि मन्त्र

अ॒व॒का॒दान॑भिशो॒चान॒प्सु ज्यो॑तय मा॒म॒कान्।
पि॒शा॒चान्त्सर्वा॑नोषधे॒ प्र मृ॑णीहि॒ सह॑स्व च॥

(अथर्व. ४.३७.१०)

अर्थात् हे **ओषधे=**अजशृङ्गि ओषधि! अथवा ईश्वर, सूर्य, विद्युत्, तीव्र पदार्थ (अजशृङ्गी, तीक्ष्णशृङ्गी, अथर्व. ४.३७.६), **इन्द्रस्य हेतयः** (अथर्व. ४.३७.८, ९) तू, **अवकादान्=** अवक निकृष्ट जल, शैवाल, काई आदि को भी खाने वाले, **अभिशोचान्=** चारों ओर से दाह, सन्ताप उत्पन्न करने वाले, **अप्सु=** शरीरस्थ रक्त आदि में रहने वाले, **मामकान् पिशाचान्=** मेरे मांस आदि अवयवों को खाने वाले पिशाचरूपी कृमियों को **ज्योतय=** जला दे। हे ओषधि! **सर्वान्=** सब मांस खाने वाले कृमियों को, **प्र मृणीहि=**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसल दे, मार दे, **च=** और, **सहस्व=** इन कृमियों को बलपूर्वक कुचल दे।

जो कृमि रक्त को सुखा देते हैं, मांस खा जाते हैं उन रोग, कृमियों को अजशृङ्गी, सूर्य और विद्युत् नष्ट कर देते हैं।

उन्माद चिकित्सा ओषधि मन्त्र

अ॒ग्निष्टे॒ नि श॑मयतु॒ यदि॑ ते॒ मन॒ उद्यु॑तम्।
कृ॒णोमि॑ वि॒द्वान्भे॑ष॒जं यथा॒नु॒न्मदि॒तोऽस॑सि॥

-अथर्व. ६.१११.२

हे आतुर! **यदि=** यदि, **ते=**तेरा, **मन=** मन, **उद्युतम्=** उन्माद जन्य दोष, रोग अथवा विषयों से बद्ध है, उत्तेजित है तो **अग्नि:=** अग्रणी परमात्मा, यज्ञाग्नि, सूर्याग्नि, **ते नि शमयतु=** उन यज्ञाग्नि को, **कृणोमि=** तैयार करता हूँ, **यथा=** जिससे तू, **अनुन्मदित:=** उन्माद रहित, **अससि=** हो जाओ अथवा होते हो।

अग्नि स्वरूप परमेश्वर यज्ञाग्नि एवं सूर्याग्नि उन्माद ग्रस्त, विषय पीड़ित, कृमि पीड़ित की उत्तम भेषज=ओषधि है।

रक्ष:, पिशाच आदि से रोगग्रस्त, उन्माद ग्रस्त रोगी के उपचार के लिये अजशृङ्गी, अग्नि सदृश उष्ण प्रकृति वाले सरसों, राई, लहसुन, गुग्गुल आदि ओषधि, भेषजों को अथर्ववेद, आयुर्वेद आदि संहिताओं व शास्त्रों में उत्तम बताया है।

इस प्रकार रक्ष:, पिशाच आदि की परिभाषा, उनसे जन्य रोग, रोगों के उपचार आदि के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अथर्ववेद में आये भूत, पिशाच, राक्षस आदि शब्द रोगों के कृमियों के नाम हैं, तथा तद् ग्रस्त प्राणियों के हैं। इन नाम वाले जन्तु योनि विशेष के वाचक नहीं हैं।

अथर्ववेद में जादू टोना की कल्पना? कब और क्यों?

रक्ष:, पिशाच, यातुधान आदि कृमियों से ग्रस्त रोगियों की आयुर्वेद, अथर्ववेद में विहित जो चिकित्सा लोक में की जा रही थी, उसी चिकित्सा को लोभी, लालची, दुर्मदी, मनमाने कर्मकाण्डियों ने जादू टोना, मारण उच्चाटन, सम्मोहन, तन्त्र, मन्त्र आदि नाम दे दिया और अपनी इस गर्हित अभीप्सा को अथर्ववेद के नाम मढ़ दिया।

ज्ञान, विज्ञान, उपासना के साथ कर्मकाण्ड का ज्ञान भी जीवन का उपादेय ज्ञान है। जिसके उपाख्यान भूत प्राचीन ऋषियों के ब्राह्मण ग्रन्थ, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थ हैं, जिनसे कर्मकाण्ड की विधियाँ जानी जाती है। महाभारत युद्ध के समकाल प्राचीन ऋषियों द्वारा विरचित कर्मकाण्ड बोधक ऐतरेय, शतपथ, पूर्वमीमांसा, श्रौतग्रन्थ जब वेदयज्ञों के प्रमाद के कारण लुप्त हो गये, तब कर्मकाण्ड में अव्यवस्था हो गयी। अथर्ववेद जिसका यज्ञीय विधि कर्म में प्रयोग नहीं होता था, उसका भी यज्ञीय विधि कर्म से सम्बन्ध जोड़ा गया और अथर्ववेद के कल्पसूत्रों का भी यज्ञार्थ निर्माण हुआ।

अथर्ववेद के मन्त्रों का विनियोग करने के लिये जो कल्पसूत्र, श्रौत्रसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र व शुल्बसूत्र बनाये गये, उनमें कौशिक श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैतान श्रौतसूत्र, गृह्य व धर्मसूत्र, शान्तिकल्प, अङ्गिरस् कल्प एवं अथर्वपरिशिष्ट मुख्य हैं।[१०]

इनमें भी कौशिक निर्मित श्रौत, गृह्य आदि सूत्र सबसे प्रमुख हैं। कौशिक श्रौत आदि सूत्रों में मन्त्रों के जितने भी विनियोग निर्दिष्ट किये गये हैं, वे प्रायः **जादू टोना, तन्त्र मन्त्र, सम्मोहन, उच्चाटन** आदि की काल्पनिक क्रियाओं से भरे पड़े, भ्रान्तियों को फैलाने वाले हैं। कौशिक सूत्रकार बड़ा ही तान्त्रिक था। **कौशिक, वैतान** आदि तान्त्रिकों ने अथर्ववेद के मन्त्र, अनुवाक, प्रपाठक आदि के पूर्वापर प्रकरण की अपेक्षा किये बिना प्रायः सभी मन्त्रों के तन्त्रात्मक, अभिचारात्मक विनियोग घढ़े हैं।

कौशिक, वैतान आदि सूत्रकारों के विनियोगों के कारण अथर्ववेद जादू टोना का वेद है, राक्षस, पिशाच, भूत आदि की झाड़ फूँक का वेद है, ऐसी-ऐसी भ्रान्त धारणायें लोक में बद्धमूल हुई। कौशिक आदि के विनियोगों का अनुकरण सायण आदि भाष्यकारों ने किया और अथर्ववेद को जादू टोने का वेद माना। सायण ने अभिचार कर्म के संकेत अपने अथर्ववेद भाष्य में बहुत्र किये हैं। जादू, टोना आदि प्रतिपादक सायणाचार्य के विनियोग निर्देशक वाक्य के उदाहरण रूप में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के सातवें सूक्त की भूमिका द्रष्टव्य है- **आविष्टभूतपिशाचाद्युच्चाटनार्थं फलीकरणतुषावतक्षणहोमादीनि 'आरेसौ'** (अथर्व. १.२६ **इत्यपनोदनसूक्तकर्त्तव्यानि अपनोदनानि कर्माणि अनेन गणेन कुर्यादित्यर्थः।**

अर्थात् **आविष्ट**= आवेश करने वाले, **भूत, पिशाच** आदि का उच्चाटन करने के लिये फलीकरण, तुषावतक्षण, होम आदि **'आरेसौ'** (अथर्व. १.२६.१-४) इस अपनोदन सूक्त से कर्त्तव्य अपनोदन कर्म इस गण से करें।

इस प्रकृत प्रकरण के अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में ७वें सूक्त का प्रथम मन्त्र है-

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ॥

अथर्व १.७.१

मन्त्र का देवता 'अग्नि' है। 'अग्नि' शब्द ईश्वर, सूर्य, लौकिक अग्नि, यज्ञाग्नि, विद्वान् आदि का वाचक है। मन्त्रार्थ हुआ-

अर्थात् हे **अग्ने**= प्रकाशस्वरूप प्रभु, सूर्य, ज्ञान प्रकाशक विद्वन्, राजन्! तुम, **स्तुवानम्**=स्तवन करने वाले, अपनी यातना का कथन करने वाले, **किमीदिनम्**= अब क्या है? अब क्या है? इस प्रकार प्रश्न करके भेद डालने वाले, **यातुधानम्**=गति अवरोधक **(या प्रापणे)** को, **आ वह**= दूर कर! हे **देव**= ज्ञानस्वरूप प्रकाशक प्रभो, विद्वन्! **त्वं हि**=आप निश्चय से, **वन्दितः**=यातुधानों से पूजित होते हुये, **दस्योः**= इन उपक्षीण करने वालों के, **हन्ता**= नाशक बनते हो।

मन्त्र का जो तात्पर्य है वह स्पष्ट है कि पीड़ा देने वाले जो भी कृमि, प्राणी हैं उनको दूर करने में प्रभु, ज्ञानी, यज्ञ आदि समर्थ होते हैं। यहाँ मन्त्र में उच्चाटन, फलीकरण आदि करने का कोई भी संकेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, पर कौशिक सूत्र का **'चातनानाम् अपनोदनेन व्याख्यातम्'** (कौ. ४.१) सूत्र को उद्धृत कर आविष्ट भूत, पिशाच के उच्चाटन में मन्त्र का सायण ने विनियोग कर दिया। जबकि पिशाच भूत पृथक् शब्द है, यातुधान पृथक् शब्द है। अन्यच्च इन शब्दों का क्योंकि व्युत्पत्ति निमित्तक पृथक् हैं, अतः अर्थ[११] भी सबके पृथक् हैं।

सायण ने एतादृश उच्चाटन आदि के विनियोग दिखाकर बहुत अच्छी तरह अथर्ववेद को जादू टोना का वेद सिद्ध कर दिया। सायण का ही आगे के शोधकों, अनुवादकों भाष्यकारों ने अनुकरण किया।

सायण का विदेशी जैसे **मैक्डानल, ह्विटनी, ब्लूमफील्ड, ग्रिफिथ** आदि विद्वानों, शोधकों ने अनुकरण किया, वैसे ही देशी विद्वान् डॉ. दास गुप्ता, पं. बलदेव उपाध्याय, डॉ. राधाकृष्णन् आदि विद्वानों ने भी अनुकरण किया और अथर्ववेद को जादू टोना का वेद माना और कहा।

मान्य विद्वानों के जादू टोने का स्वरूप

इन विदेशी, देशी विद्वानों का मानना है कि **जादू टोना की पद्धति तो बहुत बाद की एवं अथर्ववेद से प्रेरित पद्धति है।** यह पद्धति अथर्ववेद द्वारा भारत से आरम्भ होकर, वाममार्गी तान्त्रिकों के माध्यम से, बौद्ध भिक्षुओं में गई। उनमें चीन, जापान, सुदूर पूर्व के देशों में तथा पश्चिम में ईरान में होती हुई मुसलमान फकीर, पीर बाबाओं के प्रयत्नों से समस्त अरब जगत् में फैली। ततः रूस, यूरोप भर में जाकर ईसाई पादरियों के माध्यम से एवं अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया आदि देश-देशान्तरों में प्रचलित हो गई, अर्थात् जहाँ भी धर्म किसी रूप में है, वहाँ जादू टोना है। मूर्तिपूजा जादू टोने का ही एक सौम्य अङ्ग है। अतः मूर्तिपूजा के विधान को भी तन्त्र कहा जाता है।......। आदि आदि अवधारणाओं के रूप में पूर्वोक्त विद्वानों ने जादू टोने का स्वरूप बताया है।

मान्यों की इस मान्यता का कारण

जो विद्वान् अथर्ववेद को जादू टोने का वेद मानते हैं, इसका क्या कारण है? यह उनकी पूर्वोक्त वाक्य रचना से ही स्पष्ट है कि 'जादू टोना' के कर्मों का प्रेरक अथर्ववेद नहीं है अपितु तान्त्रिक जन हैं। विद्वान् जादू टोना को करने वाले जिन वाममार्गी, बौद्धभिक्षु, मुसलमान फकीर, पीर बाबा, ईसाई पादरी आदि का नामोल्लेख करते हैं, **वे तो वेदों को ही स्वीकार नहीं करते, पुनः उन्हें वेद की प्रेरणा की बात हो ही नहीं सकती।** जादू टोना मानने वालों के मान्य ग्रन्थ तो उड्डीश तन्त्र, धम्म पद, त्रिपिटक, कुरान, बाइबिल आदि हैं। उन्हीं में जादू टोने की बातें हैं। यदि वे वेद को आदर्श मानते होते, तो जादू टोना, तन्त्र-मन्त्र आदि कर्म करते ही नहीं। अपने सुख, शान्ति हेतु यदि कुछ कर्मकाण्डीय कर्म करते, तो वे सप्त सोमयज्ञ, सप्त पाकयज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ[१२] करते, जो आङ्गिरसों के लिए ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट किये हैं।

स्वतः अथर्ववेद भी सुख, शान्ति के लिये घोष पूर्वक यज्ञ करने का ही संदेश देता है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हवि पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्।। अथर्व. १८.४.२

मन्त्र का देवता यम है। **अग्निर्वाव यमः**,(गो.ब्रा. २.४.८) मन्त्रार्थ हुआ-

देवाः= विद्वान् लोग, **ऋतवः**= नियमित ऋतु अनुकूल (**ऋ गतौ**), **यज्ञम्**= यज्ञ को, और **हविः**= चरु, आज्य, सोम आदि होम्य वस्तु, **पुरोडाशम्**= यव पिष्ट मोहन भोग आदि **स्रुचः**=जुहू, स्रुवा आदि चमसों एवं **यज्ञायुधानि**= यज्ञ के साधन वेदी, ऊलूखल आदि को, **कल्पयन्ति**=रचते हैं, सिद्ध करते हैं।

ऐ मनुष्यो! **तेभिः**=उन, देवयानैः **पथिभिः**=विद्वानों के द्वारा सेवित मार्ग से, **याहि**=चलो, क्योंकि, **यैः**=जिन मार्गों से, **ईजानाः**= यज्ञ कर्म करते हुए व कर चुकने वाले, **स्वर्गं लोकं यन्ति**= सुखदायी जन्म को प्राप्त करते हैं।

मन्त्र का अर्थ तो स्पष्ट ही है कि अथर्ववेद का यह मन्त्र सुस्पष्ट रूप से जादू टोना के विचार की धज्जियाँ उड़ा रहा है।

जादू टोना के सदृश अथर्ववेद मूर्तिपूजा का भी प्रेरक नहीं है। मूर्तिपूजा तो जैन बौद्धों की देन है।

देशी विदेशी भाष्यकारों और कौशिक सूत्र आदि ग्रन्थों ने ही जादू टोनों की बातों को कहा और फैलाया है। ये निरर्थक बातें अथर्ववेद में नहीं हैं, यह निःसन्देह तथ्य है। यह इस विश्लेषण से स्पष्ट है।

जादू टोना समर्थक अनर्गल प्रमाण

जादू टोना का प्रेरक अथर्ववेद है इसकी पुष्टि में मनुस्मृति का यह एक श्लोक दिया जाता है-

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः।।

मनु. ११.३३

इन श्लोक का अर्थ है- अथर्ववेद की **अङ्गिरसी**=मानसिक शक्ति चिकित्सा, **अविचारयन्**= शीघ्रातिशीघ्र, **कुर्याद्**= करे, ब्राह्मण की मन्त्रात्मक वाणी जो शस्त्ररूप है, उससे, **अरीन्**= राग द्वेषादि शत्रुओं व राष्ट्र द्रोहियों को, **द्विजः**=विप्र, **हन्यात्**=मारे, दूर करे।

यह आक्षेप भी निरर्थक

इस श्लोक में जादू टोना के भाव का निर्देशक कोई भी वर्ण, शब्द, पद ही नहीं है, जिससे यह ज्ञात होवे कि यह श्लोक जादू टोना का प्रेरक है। मनुस्मृति में जिस प्रसंग का यह श्लोक है वहाँ चारों वर्णों के मनुष्य अपने आत्मीय व राष्ट्र शत्रुओं के प्रति कैसा बर्ताव करें? इसका प्रसंग है। ब्राह्मण राष्ट्र द्रोहियों को किस प्रकार दण्डित करे? यह इस श्लोक में बताया गया है।

तात्पर्य हुआ ब्राह्मण अङ्गिरा ऋषि द्वारा प्राप्त ऋचाओं का बिना विचारे प्रयोग करे, क्योंकि ब्राह्मण की वाणी ही शस्त्र होती है, इसलिए ब्राह्मण उनसे शत्रुओं को मारे।

यहाँ श्लोक के माध्यम से मनु ने यह निर्देश किया है कि जब कोई अपराधी अपराध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे, तब **अविचारयन्**=दण्ड देने के अन्य प्रकारों की अपेक्षा किये बिना पहले उस पर **मन्त्र=**विचार शस्त्र का प्रयोग किये जाने योग्य है और ब्राह्मण को तो और भी। शस्त्र का अर्थ है कि शासन करने वाला। यद्यपि हथियार भी शासन करते हैं, तथापि वाणी का शासन प्रधान होता है।

आ जि॒ह्वया॒ मूर॑देवान्रभस्व।

अथर्व. ८.३.२

अर्थात् **मूरदेवान्**=मूढ़, मूर्ख, अज्ञानता पूर्ण व्यवहार करने वालों को, **जिह्वया**=ज्ञान के द्वारा, वाणी के द्वारा, **आ रभस्व**= पकड़ो, दूर करो।

इ॒ह प्र ब्रू॑हि यत॒मः सो अ॑ग्ने
यातु॒धानो॒ य इ॒दं कृ॒णोति॑।

अथर्व. ८.३.८

अर्थात् हे **अग्ने**=अग्रणी परमात्मन्, राजन्!, **यः यातुधानः**= जो दूसरों को पीड़ित करने वाला है, **य इदं कृणोति**=जो इस संसार को नष्ट करता है, प्राणियों को मारता है, **(कृञ् हिंसायाम्) सः यतमः**=वह जो कोई भी है, उसे, **इह**=यहाँ, **प्र ब्रूहि**= प्रकर्षरूप से उपदेश कीजिए।

ग्रावाणो घ्नन्तु र॒क्षस॑ उप॒ब्दैः।

अथर्व. ८.४.१७

अर्थात् **ग्रावाणः**=उपदेष्टा जन, **उपब्दैः**=हृदय को छूने वाले ज्ञान के शब्दों से, **रक्षसः** राक्षसी वृत्ति वाले लोगों को, **घ्नन्तु**=दूर करें, ज्ञान से उनकी बुरी वृत्तियों को हटावें।

अथर्ववेद के इन मन्त्रों से सुस्पष्ट है कि अपराधी को वाणी से, ज्ञान से अपराध मुक्त करना योग्य है। ब्राह्मण ज्ञानमूर्ति होता है। ब्राह्मण वाक्शस्त्र कथन से **श्रुतीरथर्वाङ्गिरसी**.(मनु.११.३३) में इन्हीं अथर्व ऋचाओं की ओर संकेत है। **अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा**,(मनु. १.८८) में ब्राह्मण की वाणी की शक्ति का ही महत्त्व दर्शाया है।

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसी०(मनु.११.३३) में किसी को किसी भी प्रकार का भ्रम न हो जाये, अतः उसके आगे ब्राह्मण की प्रशंसा में कहा-

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।

मनु. ११.३५

अर्थात् ब्राह्मण धर्मों का विधान करने वाला, शिष्य आदि को शिक्षा देने वाला, वेदादि प्रवचन करने वाला मित्र रूप होता है। अतः पूर्वोक्त श्लोक के 'श्रुतीरथर्वाङ्गिरसी' शब्द का अर्थ ब्राह्मण की ज्ञानयुक्त वाणी ही है, जादू टोना नहीं।

वैसे भी किसी को अपने अभीष्ट स्थान, पदार्थ से दूर करने के लिये वाणी का की प्रयोग करते हैं, क्योंकि वाणी ही पहला साधन होता है। किसी के क्षेत्र आदि में पशु के चले जाने पर 'हट हट' शब्द के द्वारा ही उसको हटाया जाता है। मनुष्य अपराधी को भी पहले वाणी से ही ब्राह्मण ज्ञानी समझाते हैं, बाद में क्षत्रिय दण्ड, हथियार उठाते हैं।

किसी भी बुराई को हटाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि कुत्सित और शुष्क वाणी का प्रयोग ही हो। कुवचन तो दोष व दोषी की पराकाष्ठा पर प्राप्त होता है। कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गलती करता है, चाहे बच्चा ही हो, पहले उसे शब्दों से मना किया जाता है, जब वह अति कर देता है तब क्रोध के वाक्य होते हैं, मान जाओ, नहीं तो मारेंगे।

ज़ादू टोना शब्दों का अर्थ

तान्त्रिकों एवं तान्त्रिकों के चेलों द्वारा प्रयुक्त प्रचलित जादू टोना शब्द लोक में फारसी, अरबी, तुर्की भाषा के माने जाते हैं। पर उनका सम्बन्ध वेद के रक्षा, चिकित्सा आदि प्रसङ्गों से जोड़ा जाता है। वेद से जोड़े गये फारसी, अरबी आदि भाषा के जादू शब्द का अर्थ फारसी कोषों में बाजीगरी के खेल, तमाशे, अमानुषिक करिश्मे, हिंसा, वशीकरण, परघात, हाथ की सफाई किया गया है।

ये 'जादू-टोना' शब्द वेदों में कहीं नहीं आये हैं पर यदि इनका सम्बन्ध वेद से जोड़ा जाएगा, तब इन शब्दों को फारसी आदि भाषा का न मानकर दोनों ही शब्दों को वेद एवं वैदिक शब्दों का अपभ्रंश निश्चय से मानना पड़ेगा। यातु, यादु एवं तोण शब्दों के जादू टोना अपभ्रंश शब्द हैं, यह स्वीकार करना होगा। **यातयति वधकर्मा,**(निघ. २.१९), **यादुरिति उदकनाम,**(निघ.१.१२) इन नैघण्टुक धातु व प्रातिपदिकों से तथा या प्रापणे धातु से अभिनिष्ठित जादू टोना शब्द हैं, यह समझना होगा।

जादू=यातु शब्द निष्पत्तियाँ

वेद एवं वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध ये यातु एवं यादु शब्द यौगिक हैं, प्रकृति, प्रत्यय से निष्पन्न हैं। जिनमें यातु शब्द की दो निष्पत्तियाँ हैं-

१. **याति+उ= यातुः**, नैघण्टुक वधकर्मा णिजन्त याति धातु से बाहुलक औणादिक उण् प्रत्यय द्वारा यातु शब्द सिद्ध होता है।

२. या प्रापणे धातु से **कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च,** (उणा.१.७३) इस औणादिक सूत्र द्वारा तु प्रत्यय करके यातु शब्द निष्पन्न होता है।

जादू=यादु शब्द की निष्पत्ति

वैदिक कोष निघण्टु में जलवाचक यादु शब्द पठित है, जो या प्रापणे, डुदाञ् दाने धातुओं से उण् प्रत्यय द्वारा या+दा+उण्=यादु शब्द बनता है।

यातु यादु शब्दों की व्युत्पत्तियाँ व अर्थ

यातु एवं यादु शब्द की व्युत्पत्तियाँ व अर्थ हैं-

यातयति वधं करोति इति यातुः, येन यातयते सः यातुः, यातयनं वा यातुः अर्थात् जो हिंसा व हिंसा का भाव है, वह यातु संज्ञक होता है।

याति उपलब्धिं करोति प्राप्नोति सः यातुः, येन यात्यते सः यातुः, यानं वा यातुः अर्थात् जो प्राप्त करता है, जिसके द्वारा प्राप्त किया जाता है अथवा जो प्राप्ति व प्राप्ति का भाव है, वह यातु कहा जाता है।

या+दा+उ=यादुः। यानं गतिं ददाति इति यादुः, येन यातिः गतिः दीयते सः यादुः, यानं गतिं दानं वा इति यादुः।

अर्थात् जो गति देता है, जिसके द्वारा गति दी जाती है अथवा जो गति की प्राप्ति, गति का भाव है उसकी यादु संज्ञा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि जिस किसी भी रोग, शत्रु, विपत्ति की हिंसा करने वाले, हिंसा के साधन, हिंसा कर्म करने के प्रयत्न आदि यातु कहे जाते हैं।

जिस किसी भी क्षेत्र की उपलब्धि करने वाले, उपलब्धि के साधन, उपलब्धि के कर्म आदि यातु संज्ञक होते हैं।

जिस किसी भी गति देने वाले, गति करने के साधन, की जाती हुई गतियाँ यादु कही जाती हैं।

तात्पर्य हुआ यातु शब्द कर्त्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि अर्थों का वाचक है। यादु शब्द भी कर्त्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न सहयोगी आदि ही अर्थों का वाचक है।

इन यातु, यादु दोनों शब्दों के अर्थों का प्रकरणानुसार नियोजन होता है, मनमाना नहीं। जब रोग, शत्रु, दुष्ट, कृमि आदि घातक, मारक पदार्थों का प्रसंग होता है, तब हिंसा, वध अर्थ वाले यातु शब्द का सम्बन्ध होता है। जब धन, विद्या, औषधि, राज्य आदि प्राप्ति का प्रसंग होता है, तब प्रमाण, प्राप्ति, गति अर्थ वाले यातु शब्द सम्बन्धित होता है।

जब स्वास्थ्य, चेतना, स्फूर्ति, ताजगी आदि गुणों, क्रियाओं का प्रसंग होता है, तब उदकवाची यादु शब्द का सम्बन्ध लगता है।

इन विशिष्ट अर्थ वाले निष्पत्ति द्वयक यातु शब्द एवं यादु शब्दों का ही अपभ्रंश जादू शब्द है। जिसके वही अर्थ समझने होंगे, जो यातु और यादु शब्दों के हैं।

तान्त्रिक एवं अन्य पाश्चात्य आक्षेपक जादू का सम्बन्ध यदि वेद से जोड़ते हैं, तो उन्हें जादू शब्द को वैदिक जलवाचक यादु शब्द का अपभ्रंश तो मानना ही पड़ेगा, यह चाहे सत्यता से माने, चाहे वक्रता से। लोक में जादूगरी की महत्त्वपूर्ण क्रिया है- मरे को जिला देना। यह कार्य जल पदार्थ करता है। वात, चोट, प्रहार, सर्पदंश, मिर्गी, शोक आदि में व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है, उस मूर्च्छा को हटाने के लिए जल के छींटे दिये जाते हैं। जल के छींटे पड़ते ही आतुर व्यक्ति शनैः-शनैः चैतन्य प्राप्त कर लेता है। चैतन्य की प्राप्ति यादु=जादू का कार्य है यानी जल का कार्य है। यह यादु=जल कार्य ही लोक में जादू नाम से प्रतिष्ठित हुआ, फिर पहुँच गया फारसी में। अपभ्रंश जादू शब्द के मूल यादु शब्द का अर्थ है जल तथा जलचिकित्सा।

टोना शब्द निष्पत्ति

टोना शब्द तोणः शब्द का अपभ्रंश है। तोण शब्द तुण कौटिल्ये धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है।

तोण व्युत्पत्ति

तोण शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ हैं-

यः तुणति कुटिलं गच्छति इति तोणः, येन तुण्यते सःतोणः, तोणनं वा तोणः।

अर्थात् जो कुटिल गति करता है, जिसके द्वारा कुटिल गति की जाती है अथवा जो कुटिलता, कुटिल चलना व कुटिलता का भाव है, वह तोण=टोना कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य हुआ रोग, कृमि, शत्रु के निवारण में कुटिलता, वक्रता करने वाले पदार्थ, व्यक्ति, क्रिया, कर्म, अस्त्र, शस्त्र आदि जो पदार्थ, साधन हैं, उनकी तोण=टोना संज्ञा होती है।

इस प्रकार 'जादू-टोना' शब्दों के मूल शब्द यातु, यादु एवं तोण शब्द की व्युत्पत्तियों एवं अर्थों से सुज्ञात है कि यातु, यादु शब्दों का अपभ्रंश जादू शब्द रोग, रोग कृमि, शत्रु, हिंसा, हिंसा का साधन तथा जल, जल चिकित्सा का वाचक है। तथा तोण का अपभ्रंश टोना शब्द भी रोग, रोगकृमि, शत्रु, हिंसा हिंसा के साधन, जल व जल प्रोक्षण व चिकित्सा का वाचक है। लोक प्रसिद्ध तान्त्रिकों द्वारा बीभत्स जादू टोना नाम से की जाने वाली क्रियाओं के वाचक ये जादू टोना शब्द नहीं हैं। और न इन शब्दों से तान्त्रिकों की मारण, उच्चाटन की क्रियायें ज्ञापित होती हैं।

कृत्या व कृत्या परिहरण शब्द की निष्पत्तियाँ

वेद में आये कृत्या व कृत्यापरिहरण आदि शब्द शरीर, राष्ट्र आदि की सुरक्षा व आरोग्य के साधन भूत प्रयोगों के अभिद्योतक व वाचक हैं।

कृत्या शब्द की निष्पत्ति अनेक धातुओं से होती है। यथा-

डुकृञ् करणे+क्यप्= कृत्या, **विभाषा कृवृषोः**(पा. ३.१.१२०), **कृञः श च** (पा. ३.३.१००) इति क्यप् प्रत्ययः।

कृञ् हिंसायाम्+क्यप्=कृत्या, **विभाषा कृवृषोः**(पा. ३.१.१२०), **कृञः श च** (पा.३.३.१००) इति क्यप् प्रत्ययः।

कृति छेदने+क्यप्=कृत्या, **ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः**(पा.३.१.११०) इति क्यप् प्रत्ययः।

कृत्या शब्द डुकृञ्, कृञ्, कृती इन तीन धातुओं से क्यप् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है।

कृत्या के निर्वचन व अर्थ

कृत्या शब्द की निष्पत्ति से स्पष्ट है कि कृत्या[१३] शब्द का अर्थ केवल मारना, काटना ही नहीं है, अपितु कृत्या शब्द के अनेकों अर्थ हैं। कृत्या शब्द की अनेकार्थता के प्रतिपादक कृत्या शब्द के निर्वचन हैं-

कुर्वन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो करते हैं, जिसके द्वारा करते है, जिस कर्म, क्रिया को करते हैं, वे सब कृत्या कहे जाते हैं।

कृण्वन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो हिंसा करते हैं, जिसके द्वारा हिंसा की जाती है, जिसकी हिंसा की जाती है, वे सब कृत्या संज्ञक हैं।

कृन्तन्ति ये येन यं वा सा कृत्या, अर्थात् जो काटते हैं या काटने वाले हैं, जिनके द्वारा काटते हैं एवं जिसको काटते हैं, वे सब कृत्या हैं।

कृत्या शब्द के इन निर्वचनों से स्पष्ट है कि जिस किसी भी कर्म को करने वाले जिस किसी भी कर्म को करने के साधन तथा जो कोई भी किये जाते हुए कर्म हैं, वे सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्या संज्ञक होते हैं। हिंसा करने वाले, हिंसा के साधन, हिंसा कर्म करने के प्रयत्न आदि की कृत्या संज्ञा होती है। एवं काटने वाले, काटने क्रिया के साधन, काटने कर्म का प्रयत्न आदि कृत्या शब्द से कहे जाते हैं।

तात्पर्य हुआ कृत्या शब्द कर्त्ता, कर्म, क्रिया, साधन, प्रयत्न, सहायक आदि अर्थों का वाचक है। कृत्या शब्द के इन शब्दार्थों का प्रकरण के अनुसार सम्बन्ध होता है। जब रोग, दुष्ट, शत्रु, कृमि आदि पीड़ादायक पदार्थों का प्रसंग होता है, वहाँ कृत्या शब्द का हिंसत्त, कर्त्तन अर्थ संगत होता है। हिंसन, कर्त्तन, कर्त्ता ईश्वर, वीर्य, औषधि, शस्त्र आदि होते हैं। जब रोग, शत्रु आदि पीड़ादायक प्रकरण नहीं होता, वहाँ कृत्या शब्द का अर्थ परोपकार, शिक्षा आदि कर्मों व तत्तत् कर्मों के साधनों का सम्बन्ध होता है। कर्म करने वाले ईश्वर, राजा, परोपकारी आदि जन होते हैं।

इस प्रकार वेदों में आया कृत्या शब्द तान्त्रिक जादू टोना, डाकिनी शाकिनी आदि का अभिद्योतक नहीं है, न उनका वेदों में प्रतिपादन है।

वेदों का मणि विज्ञान

अथर्ववेद आदि वेदों के मन्त्रों में अनेकत्र मणि शब्द आया है। वेदोक्त मणि शब्द शोभा, कान्ति के संवर्धक शंख, प्रतिसर, वरण आदि खनिज, सामुद्रिक, पार्थिव आदि जो पदार्थ आरोग्य, धन, धान्य, ऐश्वर्य को देने वाले हैं, उनका वाचक है। वेद के इस मणि शब्द को भी तान्त्रिक व अन्य अनभिज्ञ जन जादू टोने का ही सूचक मानते हैं, जो नितान्त भ्रमपूर्ण है। अथर्ववेद छन्दोवेद, ब्रह्मवेद आदि के साथ साथ भैषज्य शास्त्र भी है, यह क्यों भूल जाते हैं?[१४]

मणि शब्द की निष्पत्ति

मणि शब्द मण शब्दार्थयोः धातु से **सार्वधातुभ्य इन्**(उणा. ४.११९ उणादि सूत्र) द्वारा इन् प्रत्यय करके सिद्ध होता है।

मणि शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ

मणि शब्द यौगिक शब्द है। जिसकी व्युत्पत्ति व अर्थ हैं-

मणयति शब्दायतीति मणिः।

अर्थात् जो शब्द योग्य बनाता है या शब्द योग्य, प्रशंसा योग्य है, वह मणि कहाता है।

मणि वे पदार्थ हैं जिनके सेवन से निर्बल सबल हो जाते हैं, अमूल्य बहुमूल्य, अप्रशस्य, प्रशंसनीय योग्य बनते हैं तथा पाषाण, वृक्ष आदि द्रव्य, पदार्थ मणि हैं।

मणियों के चार भेद

मणियों के चार प्रकार हैं-

१. **खनिज**[१५]= हीरा, पन्ना, स्फटिक, सोना, चाँदी आदि तथा भूमि, खेत आदि।

२. **सामुद्रिक**[१६]= मोती, मूंगा, शङ्ख आदि।

३. **प्राणिज**=कस्तूरी, शृङ्ग, हाथी दाँत, जहर मोहरा आदि तथा मनुष्यादि के बल, वीर्य आदि गुण।

४. **वानस्पत्य**[१७] = नीम, गूलर, तुलसी, बिल्व आदि औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं इनके मूल= कन्द, अन्न, फल, फूल, पत्र आदि तथा गुटिका वटी, रसायन आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीरा, शङ्ख, लता आदि सभी मणियों के सेवन, धारण के प्रयोजन हैं-

१. शोभा, अलङ्कार, कान्ति का होना।

२. रोग नाश, रोग अनाक्रमण, विजातीय द्रव्य, विष आदि का प्रतीकार, संहार।

३. नीरोगता, शक्ति, शौर्य, प्रसन्नता, वीरता, जीत आदि की वृद्धि होना।

इन मणियों का धारण करना तान्त्रिक, वाममार्गियों द्वारा स्वीकृत गण्डा ताबीज, डोरा धागा आदि नहीं हैं, अपितु यह मणियों द्वारा आरोग्य लाभ की आयुर्वेदिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है, ईश्वरोक्त वेद का चिकित्सा विधान है।

इन मणियों का उपयोग खाने तथा लगाने के रूप में होता है। इन चारों प्रकार की मणियों का प्रभाव मिर्च मणि के उदाहरण से भलीभाँति समझ आ जाता है। मिर्च नित्य प्रति भक्षण करते हैं, मिर्च का प्रभाव अन्दर खाने पर भी प्रत्यक्ष दीखता है, ऊपर से लगाने, स्पर्श होने पर भी दीखता है। शान्त औषधियों का प्रभाव प्रत्यक्ष दीखता नहीं, पर प्रभाव पड़ता अवश्य है। धारण का मात्र पहनना अर्थ नहीं होता, लगाना भी होता है। चिकित्सा प्रसङ्ग में चारों मणियों को कूट, पीस आदि द्वारा लगाना, गुटिका, वटी आदि रूप में खाना आदि सब धारण करने का तात्पर्य है।

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि अथर्ववेद में तान्त्रिकों व वाममार्गियों के जादू टोना, कृत्या आदि दुष्कर्मों का प्रतिपादन नहीं है

---

[1] (१) तत्र व्याधिर्धातुरसकरणवैषम्यम्। व्या.भा. योग १.३० (२) तद्दुःखसंयोगाव्याधय उच्यन्ते। ते चतुर्विधाः- आगन्तवः, शरीराः, मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति। सुश्रु.सू.१.२२,२३

[2] (क) ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः। अथर्व. ८.२.२७ (ख) मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः। अथर्व. ११.६.१६

[3] राक्षसास्त्वात्मगन्धमाघ्रापयन्तिः, पिशाचाः पुनरुह्य वाहयन्तः। इति पाठभेदः। (ब्रह्मा. त्रि.चर. निदा. ७.१२)

[4] चरक चिकि. ९.१-९६

[5] यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्। मन्त्र ब्रा. १.७.१४

[6] प्रियो दृंश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियः। अथर्व. ४.३७.११

[7] तद्यथा- शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति।(सुश्रुत.सू. १.६)

[8] अजशृङ्गीरक्तरुक्कासतिमिरश्वासव्रणविषापहा। कृम्यर्शः शूलहृद्रोगनाशिनी। निघण्टु रत्नाकर

[9] विषाणी क्षीरपा कोल्यामजशृङ्ग्यां च योषिति।(मेदिनी कोष)

[10] तत्र शौनकीयादिषु चंतसृषु शाखासु अनुवाकसूक्तऋगादीनां गोपथब्राह्मणानुसारेण पञ्चभिः सूत्रैर्विनियोगोऽभिहितः। तानि च सूत्राणि। कौशिकम्, वैतानम्, नक्षत्रकल्पः, आङ्गिरसकल्पः, शान्तिकल्पश्चेति। तदुक्तम् उपवर्षाचार्यैः कल्पसत्राधिकरणे-
नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः।
तुर्य आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पञ्चमः॥ इति॥
(हिन्दी अथर्व. सा.भा. भू. पृ. ७२, संस्कृत अथर्व. सा.भा.उपो.पृ. २३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

---

[११] पिशाच, यातुधान आदि शब्दों के अर्थ इस निबन्ध के पृ. ८०, ८१ पर द्रष्टव्य हैं।

[१२] सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः। सर्वे ते यज्ञा अङ्गिरसोऽपियन्ति नूतना यानृषयो सृजन्ति ये च सृष्टाः पुराणैः॥ गो.ब्रा.पू. १.५.२५

[१३] कृत्या शब्द का विशेष निर्वचन लेखिका की 'विद्वन्मिलनम् वेद समाधान समज्या' पुस्तक के प्रश्नोत्तर २९ पर द्रष्टव्य है।

[१४] भेषजं वै देवानामथर्वाणो भेषज्यायै वारिष्ट्यै। ताण्ड्य ब्रा. १६.१०.१०

[१५] खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः। कौटि. २.२७.११.२, अर्थात् किसी खदान, विशेष जलप्रवाह तथा प्रकीर्णक=इन दोनों से भिन्न स्थानों में उत्पन्न मणि खनिज मणि कहाते हैं।

[१६] मणिः कौटो मालेयकः पारसमुद्रकश्च। कौटि. २.२७.११.२, अर्थात् कौट=मलय सागर के कोटि स्थान, मालेयकः=मलय देश के करणी पर्वत तथा पारसमुद्रकः= समुद्र पार सिंगल में उत्पन्न तीन प्रकार की मणियाँ होती हैं।

१७ "औदुम्बर" इस पद के सम्बन्ध में सायण ने "तस्य विकारः इति अण्प्रत्ययः" विकार अर्थ में अण् प्रत्यय बतलाया है परन्तु यहाँ अण् नहीं है क्योंकि वेद में यहाँ "औदुम्बरेण" पद आद्योदात्त है अण् होने पर प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त होना चाहिए था परन्तु यहाँ तो समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय है अञ् के ञित् से "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" (6/1/197) से आदि उदात्त हो जाता है।

१८ मणिर्वीरुधां त्रायमाणो. अथर्व ८.७.१४, अर्थात् वीरुध=लता, औषधियों से बनायी गयी मणिः=गुटिका अदि ओषधि रोगों से बचाने वाली होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (109-129) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेदीय भ्रान्ति निवारण

–स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

लेखक एवं वैज्ञानिक परिव्राजक स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती उन ख्यातनामा वैदिक विद्वानों में से एक हैं जिनका शतपथ ब्राह्मण शूल्वसूत्रों तथा चतुर्वेद संहिताओं के अग्रंजी अनुवाद तथा इनसे सम्बन्धित गम्भीर शोधपूर्ण कार्यो के लिए निखिल विश्व में सम्मानास्पद स्थान है। प्राचीन भारत के वैज्ञानिक प्रदायों के तत्त्वस्पर्शी गवेषक और लेखक पूज्यपाद स्वामी जी 41 इकतालीस वर्षो तक इलाहबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन–शोधकार्य में रत रहे (1930–1971 ई. तक)। अनुसन्धान तथा अध्यापन का विषय था रसायन विज्ञान। प्रस्तुत शोधपूर्ण लेख 1992 विक्रमीय में कलाप्रेस इलाहबाद से प्रकाशित आपकी पुस्तक 'वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप' का एक अंश है, जो कि हमें डॉ ज्वलन्त कुमार शास्त्री ने उपलब्ध कराया है (सम्पादक)।

अथर्ववेद के कुछ आपज्जनक स्थल

पाश्चात्य भाष्यकारों ने अथर्ववेद के सम्बन्ध में जितनी भ्रान्तियां फैलायी हैं, उतनी कदाचित् ही किसी के विषय में। इन्होंने पहला तो प्रयास इस बात का किंया कि यह सिद्ध करें के वेद केवल तीन ही हैं और अथर्ववेद तो वेद ही नहीं है। दूसरा प्रयास इस बात के दिखाने का हुआ कि अन्य तीन वेदों की अपेक्षा अथर्ववेद बहुत ही अर्वाचीन है। और तीसरा प्रयास इस वेद के मन्त्रों में क्या है, ग्रीफिथ के शब्दों में सुनिये–

"They consist principally of prayers, formulasAnd charms for protectionAgainst evil spirits of all sorts and kinds, against sorcerers and sorceresses, diseases, snakes, and other noxious creatures, of benedictions and imprecations, invocations of magical herbs, prayers for children and long life, for general and special protection and prosperity, success in love trade and gambling together with formulas to be employed in all kinds of domestic occurrences,"

ग्रीफिथ महोदय आगे लिखते हैं –

"In this strange collection of heterogenous material there is

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

much that is obscure, much that is unintelligible, much that is intolerably tedious, and not a little that is offensive and disgusting to European taste."

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में तो अथर्ववेद में न केवल असंगत स्थल ही हैं प्रत्युत बहुत से ऐसे भी स्थल हैं जिनका न तो कुछ तात्पर्य ही समझ में आता है अथवा जो बहुत दुरूह हैं। यही नहीं, बहुत से स्थल तो बर्बर और अश्लील भी हैं।

इन सब आक्षेपों का निराकरण करना तो हमें यहां अभीष्ट नहीं है। हम केवल उन्हीं स्थलों का पर्य्यालोचन करना चाहते हैं जिनमें इन लोगों को अश्लीलता दिखाई पड़ती है। ऐसे स्थल अनेक हैं, जिनमें कुछ की सूची यहां दी जाती है।

1. अथर्ववेद काण्ड 1, सूक्त 11, मन्त्र 3–6
2. काण्ड 4, सूक्त 4, मन्त्र 3–8
3. काण्ड 6, सूक्त 72, मन्त्र 1–3
4. काण्ड 6, सूक्त 101, मन्त्र 1–3
5. काण्ड 6, सूक्त 138, मन्त्र 4–5
6. काण्ड 7, सूक्त 35, मन्त्र 2–3
7. काण्ड 7, सूक्त 10, मन्त्र 3
8. काण्ड 20, सूक्त 126, मन्त्र 16–17
9. काण्ड 20, सूक्त 136, मन्त्र 1–16

प्रथम काण्ड के सूक्त 11 के विषय में ग्रीफिथ लिखते हैं कि –

"The hymn is a charm to be used at child birth. The details given in stanzas 3-6 are strictly obstetric and not presentable in English: see appendix."

अर्थात् सम्पूर्ण सूक्त सन्तान जन्म के समय पर प्रयोग करने के मन्तर–जन्तर है। इसके मन्त्र 3–6 तक बहुत ही अश्लील हैं जिनका अनुवाद अंग्रेजी में नहीं दिया जा सकता है। परिशिष्ट में इनका अनुवाद लेटिन में दिया गया है। चौथे काण्ड का 5वां सूक्त–

The hymn is a charm to restore virile power.'

इसके 3–7 वें मंत्र तक का अनुवाद भी लेटिन में दिया है।

छठे काण्ड का 5 वें सूक्त–

'A woman's imprecation on her unfaithful lover.'

इसके भी 4–5 मन्त्रों का अनुवाद अश्लीलता के कारण परिशिष्ठ में लेटिन में दिया है।

ऊपर दिये गये अन्य स्थल भी इसी प्रकार अश्लील समझे गये और उनके अनुवाद ग्रीफिथ ने परिशिष्ट में ही दिये हैं।

गर्भधान की प्रक्रिया अश्लील नहीं है

सब मनुष्यों के हित के लिए परमात्मा ने अथर्ववेद द्वारा गर्भाधान की प्रक्रियाओं का एक प्रकार से विस्तृत वर्णन दिया है। गर्भाधान का महत्व समाज शास्त्र में कितना अधिक है इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। वेद में इसकी प्रक्रियाओं का अति पवित्र भावनाओं से वर्णन दिया गया है। अथर्ववेद तो दाम्पत्य जीवन का अमूल्य भंडार है। वेद की इन गर्भाधान सम्बन्धी ऋचाओं में अश्लीलता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावनाएं आरोपित करना अत्याचार ही तो है। हम कुछ मन्त्र यहां देते हैं।

पहली प्रक्रिया–

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह
प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना
ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि।।

अथर्व0 14/2/31

अर्थात् हे वधू ! तू शुभ चित्त वाली होकर **(तल्पं)** सेज पर **(आरोह)** चढ़। **(अस्मै पत्ये प्रजां जनय)** इस पति के लिए संतान उत्पन्न कर। इंद्राणी के समान उत्तम बुद्धियुक्त होकर ज्योतियुक्त उषाओं में ही सचेत होकर प्रति दिन जागा कर।

इस मन्त्र में गर्भाधान की पहली प्रक्रिया बताई गई है कि पति– पत्नी पुत्र प्राप्ति के लिए प्रसन्न मन से एक शय्या पर सोवे। और तत्पश्चात्–

दूसरी प्रक्रिया–

देवा अग्रेन्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः। सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या संभवेह।। 14/2/32

अर्थात् **(अग्रेदेवाः)** पूर्वकाल में भी विद्वान्गण **(पत्नीः निअपद्यन्त)** अपनी पत्नियों के साथ एक ही सेज पर सोते आये हैं और **(तन्वः तनूभिः समस्पृशन्त)** अपने शरीर को अपनी पत्निओं के शरीर के साथ स्पर्श कराते आये हैं। हे **(नारि)** पत्नी, तू **(सूर्या इव)** सूर्य के समान **(महित्वा)** ऐश्वर्य से **(विश्वरूपा)** विश्वरूप होकर**(प्रजावती)** सन्तानवती होकर **(इह पत्यासंभव)** इस लोक में पति के साथ मिलकर सन्तान उत्पन्न कर।

तीसरी प्रक्रिया–

तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः।। 14/2/38

हे **(पूषन्)** पते! **(तां शिवतमां ऐरयस्व)** उस कल्याण कारिणी प्रियतमा को प्राप्त कर **(यस्यां मनुष्याः बीजं वपन्ति)**जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं, **(या उशती नः ऊरू विश्रयति)** जो प्रेम करती हुई हमारे लिए अपनी जंघाएं खोल कर धर दे, **(यस्यां उशन्तः शेपः प्रहरेम)** और प्रेम करते हुए जिसमें हम अपनी प्रजननेन्द्रिय को प्रवेश कर दें।

चौथी प्रक्रिया–

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः। प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु। 14/2/39

अर्थात् हे पुरुष, तू अपनी पत्नी को **(उरुम् आरोह)** अपनी जंघा पर चढ़ा ले, **(हस्तं उपधत्स्व)** हाथ को उसके सिर होने के समान लगा दे। **(सुमनस्यमानः जायाम् परिष्वजस्व)** प्रसन्न चित्त होकर स्त्री का आलिंगन कर। इस प्रकार तुम दोनों **(इह मोदमानौ प्रजां कृण्वाथम्)** प्रसन्न होते हुए सन्तान उत्पन्न करो। **(सविता वां दीर्घम् आयुः कृणोतु)** सृष्टिकर्ता परमात्मा तुम दोनों को दीर्घायु करे।

इस प्रकार इन चारों मंत्रों में गर्भाधान की प्रक्रिया बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर दी गई है। इस प्रकार का वर्णन हमारे यहां कभी अश्लील नहीं समझा जाता था, प्रत्युत गर्भाधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार के अन्दर विधियों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाता था। अन्य एक वर्णन इस प्रकार है –

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्।
गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना।।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ꣳ शुक्रमन्धस,
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधुसवाहा।।

अर्थात् लिंगेन्द्रिय को योनि में प्रविष्ट करता हुआ वीर्य और मूत्र को पृथक् पृथक् छोड़ता है। जरायु से ढका हुआ गर्भ जन्म होने से (उल्वम्) गर्भ के ढकने वाले चमड़े को छोड़ता है। ऋत द्वारा पवित्र और सत्य की गई इस इन्द्रिय को और वीर्य को जो जीव की इन्द्रिय है– यह पय, अमृत, और मधु के समान कल्याण कर हो।

प्राच्य और पाश्चात्य सभी कामशास्त्रों में जनता के हित के लिए इस प्रकार के विवरण दिये जाते हैं जो सर्वथा श्लील और परम उपयोगी हैं। गर्भाधान की प्रक्रियाओं को सभ्य संसार बहुत ही पवित्र भावनाओं से देखता है। **प्रसव विद्या सर्वथा श्लील हैं।**

जिस प्रकार गर्भाधान की प्रक्रिया सर्वथा श्लील मानी जाती है उसी प्रकार से प्रसव–सम्बन्धी प्रक्रियायें भी श्लील माननी चाहिए। प्रसव में साफल्य प्राप्त करना वस्तुतः माता को एक नया जन्म देना है, और अज्ञानवश इस अवसर पर ऐसी भूलें हो जाया करती हैं जिससे बच्चा और जच्चा दोनों की जान के लाले पड़ जाया करते हैं। अतः प्रसव प्रक्रियाओं का जानना तो गर्भाधान से भी अधिक महत्त्व का है। अथर्ववेद में इस सम्बन्ध में भी जनता के लाभार्थ अच्छा उपदेश दिया गया है। प्रथम कांड के 11 वें सूक्त का तो यही विषय है। इसका हम सूक्ष्म उल्लेख यहां देते हैं–

सिस्रतां नार्यृतप्रजाता विपर्वाणि जिहतां सूतवा उ।।1.11.1

नारी ऋतप्रजाता **(ठीक प्रकार प्रसव करने** वाली) होकर (**सिस्रतां**) बालक को जने। और स्त्री के शरीर के (**पर्वाणि**) सन्धिस्थल (**सूतवा विजिहतां**) प्रसव के लिए ढीले हो जावें।

आगे की प्रक्रियायें जिन्हें ग्रीफिथ महोदय ने अश्लील घोषित कर दिया है, कितनी स्वाभाविक, आवश्यक और उपादेय हैं। हम यहां व्हिटनी महोदय का अनुवाद भी दे देते हैं जो उनके Harvard Oriental Seriesवाले अथर्ववेद में प्रकाशित हैं।

सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज।।

1.11.3

Let Pushan (?) unclose [her or it]; we make the yoni go apart; do thou susana loosen, do thou biskala let go.

हे (**सूषा**) सुख से प्रसव करने वाली स्त्री! (**विऊर्णोतु**) अपने गर्भ को जब बाहर करे तो हम (**योनिं विहापयामसि**) योनि को विस्तृत कर दे या खोल कर फैला दें जिससे प्रसव सरलता से हो हे सृषणे! (**त्वं श्रथय**) तु अपने अंग को ढीला कर दे। हे (**विष्कले**) गर्भाशय गत नाड़ी! (**त्वं अवसृज**) तू बालक को नीचे आने दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मंत्र में सफल– प्रसव का कितना सुन्दर उल्लेख है जिसे धातृ–विद्याविद् अवश्य सराहेगा।

गर्भाशय गत बालक कहीं मार्ग में अड़ न जाय उसका विवरण इस प्रकार है–

नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम्।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम्।।

1.11.4

Not as it were stuck (ahata) in the flesh, not in the fat, not as it were in the marrows, let the spotted slimy (?) after birth come down; for the dog to eat let the after birth descend.

जरायु न तो मांस में, न पीव में और न मज्जा में कहीं अटके। यह जरायु श्वेतवर्ण का सेवार के समान रहता है। कुत्तों का खाद्य यह जरायु आसानी से नीचे आ जावे।

वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम्।।1.11.5

I split apart thy urinator, apart the yoni; apart the two groins apart both the mother and the child apart the boy from the after birth; let after birth descend.

हे गर्भिणी ! मैं तेरे मूत्रद्वार को खोलता हूं और योनि को चौड़ा करता हूं और (**गवीनिके**) योनि के पासों पर लगी दो नाड़ियां जो प्रसव में बाधा डालती हैं (उनको भी अलग करता हूं)। माता को और पुत्र को, तथा जरायु से आवेष्टित पुत्र को (पृथक् करता हूं)। वह जरायु सरलता से नीचे आ जावे।

इस स्थल पर टीका टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं है। योनि में से जरायु–आवेष्टित बालक को और तदुपरान्त जरायु में से शिशु को सावधानी से पृथक् करने का यहां आदेश है। समस्त प्रक्रिया आवश्यक और श्लील है। इनसे अधिक श्लील और शब्द हो ही क्या सकते हैं यदि इन प्रक्रियाओं का वर्णन अभीष्ट हो।

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पताव जरायु पद्यताम्।।1.11.6

As the wind, as the mind, as fly the birds, so do thou, O ten months [child], fly along with the after birth, let the after birth descend.

जैसे वायु, जैसे मन अथवा जैसे पक्षी स्वभावतः बहुत चलते या उड़ते हैं (उनको कोई कष्ट नहीं होता) उसी प्रकार हे तू दशमासीय शिशु, जरायु के साथ नीचे आ। जरायु भी नीचे आवे।

यदि गर्भ में दश मास तक शिशु सावधानी से पुष्ट होता रहा हो, तो वह स्वयं स्वाभाविक रूप से प्रसव हो जायेगा और इसमें माता और शिशु दोनों को ही किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत न होगा।

हम नहीं समझते कि इन मंत्रों में कौन सी ऐसी बात है कि ग्रीफिथ को कहना पड़ा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

– "The details given in stanzas 3-6 are strictly obsteric and not presentable in english". आखिर व्हिटनी साहेब ने तो ग्रीफिथ की उसी सुकुमार भाषा में इन मंत्रों का रूपान्तर कर दिया, जिनमें हमें तो अश्लीलता दिखाई नहीं पड़ी। अंग्रेजी भाषा में तो ऐसा अश्लील साहित्य भी विद्यमान है जिसे सभी घृणित समझेंगे, और उसके नमूने प्रस्तुत करके हम पाठकों की पवित्र भावनाओं को कुत्सित नहीं करना चाहते हैं। किसी वर्णन में योनि, जरायु, गर्भ, मेहन, लिंग अथवा योनि का संकोच–प्रसार आदि शब्द देख कर ही अश्लीलता की घोषणा कर देना अनुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। पाश्चात्त्य शल्य,वैद्यक आदि ग्रन्थों में गर्भाधान और प्रसव सम्बन्धी बातों का इसी प्रकार स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जिसे अध्यापक–वर्ग निस्संकोच छात्र और छात्राओं दोनों को पढ़ाते हैं। वहां कोई अश्लीलता का दोष आरोपित नहीं करता है। वैदिक संस्कृति में तो जहां प्रत्येक प्रक्रिया का विधान दिया जाता है, वहां ईश्वर से उसकी सफलता की प्रार्थना भी की जाती है। हमारी यह आस्तिक वृत्ति रही सही अश्लीलता को भी – यदि कहीं मनुष्य की दूषित मनोवृत्ति अथवा दुर्बलता के कारण आ भी जावे– भस्मीभूत कर देती है।

ओषधि द्वारा नपुंसकता का निवारण

(For Recovery of virility with a plant)

ग्रीफिथ महोदय को अथर्ववेद के चौथे काण्ड के चौथे सूक्त के भी कुछ मन्त्र अश्लील प्रतीत हुए जिनमें ओषधि द्वारा नपुंसकता निवारण का कुछ उल्लेख किया गया है। इस सूक्त के पहले मंत्र में इस ओषधि के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन है–

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे।
तां त्वा वयं खनामस् स्योषधिं शेपहर्षणीम्।।

4.4.1

शब्द सरल और स्पष्ट हैं, जिस तुझको **(मृतभ्रजे)** हतवीर्य्य वरुण के लिए गन्धर्व खोदकर प्राप्त करते हैं, उस तुझ **(शेपहर्षणीम्)** प्रजननेन्द्रिय को बल देने वाली ओषधि को हम खोदकर प्राप्त करें।

यह कहना तो कठिन है कि यह ओषधि क्या है। पर सायण के शब्दों में इसका नाम कपित्थक है जिसे Feronia Elephantum कहते हैं। गन्धर्व से तात्पर्य यहां कुशल वैद्य से है जो इस ओषधि के प्रयोग का आदेश देते हैं। आगे के दूसरे मंत्र में इस ओषधि का नाम वृषा दिया हुआ है। वीर्योत्पादक वृषा ओषधियों का वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में है।

नपुंसकता के रोग से समाज में अनेक व्यक्ति ग्रसित रहते हैं। संस्कारवश कभी कभी विद्वान् (वरुण) और प्रतिष्ठित व्यक्ति भी इसका दुख भोगा करते हैं, अतः ओषधियों द्वारा इसके निवारण का अदेश वेद मंत्र में स्पष्ट दिया है।

हम यहां इसी सूक्त के 6 मंत्र व्हिटनी और सायण के अनुवाद सहित देंगे। M. Bloomfield ने Sacred Books of the East Series में प्रकाशित अथर्ववेद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकलन में 31–32 पृष्ठ पर भी इन मंत्रों का अर्थ दिया है। केवल ग्रीफिथ महोदय ने अश्लील समझ कर अंग्रेजी में इसका अनुवाद नहीं दिया।

यथा॑स्म ते वि॒रोह॑तो॒ऽभित॑प्तमि॒वान॑ति।
तत॑स्ते॒ शुष्म॑वत्तरमि॒यं कृ॑णो॒त्वोष॑धिः।।

4.4.3

As forsooth of the growing up *(?vi-ruh)* it breathes as if heated *(?adhitap)*- more full of energy than that let this herb make for thee.

3. हे वीर्यकाम पुरुष ते तव विरोहितः पुत्रपौत्रादि रूपेण विरोहणस्य निमित्तं पुंव्यंजनम् अभितप्तं फण्यङ्गमिव यथा स्म येन प्रकारेण खलु अनति चेष्टते ततः तेनैव प्रकारेण इयम् ओषधिः ते तव पुव्यंजनं शुष्मवत्तरम् अतिशयित वीर्य युक्तं कृणोतु करोतु।।

व्हिटनी महोदय ने इस मंत्र को "altogether obscure probably corrupt" माना है। अस्तु, इससे हमें यहां तात्पर्य नहीं।

"(**विरोहतः ते**) विशेष प्रकार से पुष्ट शरीर होने वाले तेरे शरीर में (**यथा**) जिस प्रकार (**अभितप्तम् इव**) काम प्रवृत्ति से अभितप्त के समान (**अनतिस्म**) चेष्टा करने लग जाय (**ततः**) तभी (**इयम् ओषधिः**) यह ओषधि (**ते**) तेरे शरीर को (**शुष्मवत् तरम्**) और भी अधिक बल युक्त करेगी। अर्थात् प्रथम ओषधि सेवन से शरीर केवल वीर्य के उत्पन्न हो जाने पर उसे नष्ट न करे प्रत्युत और अधिक ओषधि–सेवन से और अधिक पुष्ट करे।" (जयदेव)

उच्छुष्मौष॑धीनां॒ सार॑ ऋष॒भाणा॑म्।
सं पुं॒सामि॑न्द्र॒ वृष्ण्य॑म॒स्मिन् धे॑हि तनूवशिन्।।

4.4.4

Up, the energies *(cusma)* of herbs,the essences of *(sara)* of bulls; the virility *(vrsnya)* of men *(pums)* do thou put together in him; O indra! self controller.

4. ओषधीनाम् अन्यासां वीर्ययुक्तानां वीरुधाम् इयम् ओषधिः शुष्मा वीर्यरूपा ऋषभाणाम् सेचनसमर्थानाम् वीर्यवतां सारा सारभूता। तादृशी ओषधिः इमं पुरुषं उत ईरयतु वीर्ययुक्तं करोतु। ....हे इन्द्र संपूषाम् सम्यक् पोषयित्रीणाम् ओषधीनां सम्बन्धि यद वृष्ण्यं वीर्यम् अस्ति तद् अस्मिन् पुरुषे तनूवशम् शरीराधीनं कृत्वा धेहि धारय।.....

ऋषभों की ओषधियों में से यह (**शुष्मा**) बल देने वाली ओषधि अधिक सार वाली है। शरीर को वश में रखने वाले शरीरवेत्ता इन्द्र (**वैद्य**) हत वीर्य पुरुष में (**पुंसां वृष्ण्यम्**) वीर्यवान् पुरुषों का सा बल (**संधेहि**) धारण करा।

इस मन्त्र में कदाचित् 'ऋषभाणाम् सार' शब्द अश्लीलता का बोधक हो। इसका साधारण अर्थ बैलों का सार हुआ जिसका तात्पर्य केवल यह है कि यह ओषधि इतनी बल प्रदा है कि रोगी को बैलों का सा बल प्राप्त हो जाता है अथवा बैल भी जिस ओषधि से अपने वीर्य की पुष्टि करते हैं। सेवन तो यहां वृष्ण्य ओषधि का ही करना है जो खोद कर निकाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है जिसका उल्लेख पहले मन्त्र में आ चुका है।

आजकल तो पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र में अवश्य बैलों के Serum, vaccine और Hormone prepartions अनेक रोगों में प्रयुक्त होते हैं। इनके रुधिर और वीर्य से मनुष्यों के रोग निवारण करने का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इस दृष्टि से आजकल पद्धतियां अधिक अश्लील हैं। पशुओं की हिंसा तो होती ही है, उसका कहना क्या? वृद्धावस्था में बन्दरों के अण्डकोषों के बल पर किंचित् काल का यौवन प्राप्त कर लेना (re-juvenation) आजकल के विज्ञान की पराकाष्ठा ही तो समझी जाती है। वैदिक साहित्य पर आक्षेप करने वालों को अपने यहां की बीभत्स प्रथाओं का विचार कर लेना चाहिए। संभवतः ग्रीफिथ महोदय के समय में re-juvenation और Hormonic transformation की विद्या का प्रचार नहीं था, अन्यथा वे वेदों पर आक्षेप करने का साहस न करते। संभवतः वे इन विद्याओं का मूल भी इन्हीं मन्त्रों में पाते। पर हां, उक्त मन्त्र में तो ओषधि प्रयोग का आदेश है। इस ओषधि की व्याख्या निम्न मन्त्रों में स्पष्ट है।

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम्।।

4.4.5

Of the waters the first born sap, like wise of the forest trees; also soma's brother art thou; also virility art thou of the stage.

5. **हे कपित्थमक मूलत्वम् अपाम् मथ्यमानानां प्रथमजः प्रथमम् उत्पन्नो रसः अमृतात्मकस्त्वम् असि। अथो अपि च वनस्पतीनाम् समान जातीयानां वृक्षाणां सारभूतोऽसि (उत अपि च) सोमस्य ओषधीनाम् अधिपतेः अमृतमयस्य देवस्य भ्राता सहजोऽसि। अमृतमथन काले सहोत्पन्नत्वात् उत अपि च (आर्षम्) ऋषीणाम् अंगिरः प्रभृतीनां सबन्धि वृष्ण्यम् मन्त्र प्रभावजनितं वीर्यम् असि।।**

हे ओषधि ! तू (**अपां प्रथमजः रसः**) जल का अद्वितीय रस है (**अथ वनस्पतीनाम्**) और वनस्पतिओं का भी (**उत सोमस्य भ्राता**) तू सोम का भाई है। (**उत आर्शम् वृष्ण्यम् असि**) तू ओज देने वाली और वीर्य को पुष्ट करने वाली है।

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः।।

4.4.6

Now agni! now Savitar! now Goddes Sarawati! now Brahmanaspati! make his member taut like a bow.

6. **हे अग्ने अद्य इदानीम् अस्य वीर्यकामस्य पसः पुंव्यञ्जनं वीर्य प्रदानेन धनुरिव आतनय आततम् ऊर्ध्वायतं कुरु। अद्यसवितरित्यादिकम् एवं योज्यम् सविता सर्वस्य प्रेरको देवः। देवी देवता रूपा सरस्वती। '''''' पसः शब्दस्य लिंगवाचित्वम् "आहतं गम पसो निज ल्गुलीति धाणिका"(तैति० सं० 7,4,19,3) इत्यादि मन्त्रन्तर प्रसिद्धम्।**

हे अग्नि, सविता, सरस्वती, ब्रह्मणस्पति परमात्मन् (**ओषधि–सेवन पर**) इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्यहत पुरुष के (पसः) लिंगेन्द्रिय को (धनुरिव आतनय) धनुष के समान तान दो।

ग्रीफिथ महोदय को सम्भवतः 'धनुरिव तानया पसः' शब्दों से विशेष घृणा प्रतीत होती है, और वे इन शब्दों को महाअश्लील समझते हैं। वीर्यवान् पुरुष का लक्षण ही यह है कि उसकी प्रजननेन्द्रि दो क्रियाओं में समर्थ हो। एक का नाम erection और दूसरे का नाम ejaculation है। erection से तात्पर्य वही है जो मंत्र में 'धनुरिव तानया पासः' शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। इस प्रक्रिया में लिंगेन्द्रिय उत्तेजित होते ही दृढ, प्रस्तारित, मोटी और खड़ी हो जाती है। जिस व्यक्ति की इन्द्रिय में यह लक्षण न हों उसे चेतना विहीन नपुंसक समझा जा सकता है। इस प्रकार 'पस' का वितान वीर्यवान् का पहला लक्षण है। और दूसरी प्रक्रिया वीर्यप्रक्षेपण है जिसे ejaculation कहते हैं। वीर्यवान् व्यक्ति में कामोत्तेजना होने पर पहले तो इन्द्रिय का वितान होगा और फिर वीर्यप्रक्षेपण। जिन ओषधियों का यहां उल्लेख है वे न केवल वीर्य को ही पुष्ट करती हैं, प्रत्युत पहले प्रजननेन्द्रिय के वितान में सहायक भी होती हैं। जिस प्रकार बलपूर्वक खींची गई धनुष की ज्या दृढ और तनी हुई होती हैं, उसी प्रकार की दृढ़ता पुरुष की इन्द्रिय में भी होनी आवश्यक है। जितनी ही इसमें दृढ़ता होगी उतनी ही वीर्य प्रक्षेपण में सफलता होगी।

पस वितान erection के सम्बन्ध में प्रसिद्ध शरीर विज्ञान वेत्ता W. H. Howell के ये वाक्य इस विषय की सारगर्भिता को स्पष्ट कर देंगे–

"In the sexual life of the male, the act of erection of the penis during coitus offeres a most striking physical phenomenon. During this act the penis becom hard and erect owimg this act of erection is therefore due essentially to a vascular dilatation of the small arteries, whereby the cavernous spaces become filled with blood under considerable pressure. The cavernous tissues are distended to the limits permitted by their though, fibrous wall............"

"The dilatation of the arteries of the penis during erection is normally a reflex act, eggected through a center in the lumbar cord: this center mayt be acted upon by impulses descending from the brain as in the case of erotic sensations, or by afferent impulses arising in some part of the urethra or prostrate gland, and especially from the glans penis... ... ... Stimulations of these latter fiber leads also to erotic sensations and

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

eventually to the completion of the sexual orgasm. This latter act brings about the forcible ejection of the sperm through the urethra. it is initiated by contractions of the musculature of the vasa deferentia, ejaculatory duct, the seminal vesicles, and the prostrate gland which force the spermatozoa together with the secretion of the vesicles and prostrate gland, into the urethra whence they are expelled in the culminating stage of the orgasm by the orgasm by the rythmical contractions of the ischioscavernosus and bulbo-cavernosus muscles together with the constrictor urethrae,"

-W. H. Howell's Text Book of Physiology 1931, p. p. 1044-46

हमने इतना बड़ा यह स्थल यहां इस लिए दिया है कि उससे पता चल जायेगा कि पस–वितान, और वीर्य प्रक्षेपण कितने महत्व के हैं, और इसका विस्तृत विवरण देना कभी अश्लील नहीं माना जा सकता जब तक कि मनोवृत्ति ही दूषित न हो। यह तो अन्याय ही होगा कि वेद की भाषा में दिया गया विवरण तो अश्लील घोषित कर दिया जाय पर अंग्रेजी में हावेल महोदय का अति–विस्तृत विवरण विज्ञान के शब्दों में श्लील ही माना जाय अतः 'धनुरिवा तानया पसः' शब्द अत्यन्त श्लील और सर्वथा उपयुक्त हैं, और ग्रीफिथ महोदय की धारणा अनुचित है। इसी प्रतान या वितान का आगे भी वर्णन है।

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमु स्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा।।

4.4.7

I make thy member taut, like a bow- string on a bow mount *(Kram)* as it were a stage a doe unrelaxingly always (?).

7. हे वीर्यकाम ते त्वदीयं पुंव्यंजनम् अहम् आ तनोमि मन्त्र प्रभावेन आततं वीर्ययुक्तं करोमि। तत्र दृष्टान्तः। धन्वनि धनुषि अध्यारोपितां ज्यामिव मौर्वीमिव। तस्मात् त्वम् ऋष इव सेचनसमर्थो वृषभ इव रोहितम् अनु पुंव्यंजनम् अनु वल्गुयता नृत्यता मनसा सदा सर्वदा क्रमस्य भार्याम् आक्रमस्व"।।

मैं (ओषधि उपचार द्वारा) तेरी लिंगेन्द्रिय को धनुष की डोरी के समान तानता हूं। तू चढ़जा (सदा अनवग्लायता) निरन्तर प्रसन्न चित्त होकर (अर्श इव रोहित) जैसे शिकारी रोहित मृग पर। अर्थात् इस ओषधि के सेवन से न केवल तेरे लिंग में वितान शक्ति (erection) ही आजायेगी, अब तू प्रत्युत गर्भाधान (ejaculation) के लिए भी पूर्णतः समर्थ हो जायेगा और सन्तानोत्पत्ति कर सकेगा।

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च। अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.4.8

Of the horse, of the mule, of the he goat and of the ram also of the bull what vigours there are them thou put in him – O self controller.

8. अश्वः प्रसिद्धः। अश्वतरस्तु अश्वगर्दभयोः सांकर्येण उत्पन्नो जाति विशेषः, अजः छागः। पेत्वो मेषः। ऋषभः गो जातिः सेक्ता पुमान् अथ शब्दः चार्थे। एतेषां अश्वादीनां ये वाजाः यानि वीर्य्याणि सन्ति तान् वाजान् हे ओषधे तनूवशम् तन्वाः शरीरस्य वशोयथा भवति तथा अस्मिन् वीर्यकामे पुंव्यंजनवा धेहि स्थापय।।

हे तनूवशिन्, शरीर विज्ञानवेत्ता वैद्य, तू उसमें वह वीर्य धारण करा जो उस घोड़े, खच्चर, बकरे, मेढ़े, या बैल का वीर्य प्राप्त है। अर्थात् ओषधि द्वारा तू उसे सर्वथा वीर्यवान् बना दे।

सभी व्यक्ति उस ओषधि के सेवन से अश्व या बैल के समान वीर्यवान् नहीं हो सकते। यह तो अपनी अपनी शारीरिक अवस्था पर निर्भर रहेगा। ओषधि तो सहायक उपचार मात्र है। किसी में बकरे या मेंढे का सा ही बल आवेगा और कोई तो इतने हतवीर्य होंगे कि वे ओषधि सेवल पर खच्चर ही बनें रहेंगे अर्थात् जो सन्तानोत्पति के लिए असमर्थ ही रहेंगे। अस्तु इस प्रकार की भिन्नता तो रहेगी ही।

लिंगेन्द्रिय की दृढ़ता और नपुंसकता के दूर करने का उल्लेख अथर्ववेद के 6 काण्ड में भी आया है। **शेपोऽर्कः** देवता है।

यथासितः प्रथयते वशां अनुवपूंषि
कृण्वन्नसुरस्य मायया।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु।। 6.72.1

As the black snake spreads himself at pleasure making wondrous forms *(vapus)* by the *(asuras)* magic *(maya)* so let the ark suddenly make thy member altogether correspondent *(Samsamaka)* limb with limb.

जिस प्रकार (असुरस्य मायया) असुर की माया से अथवा मन की लीला से (असितः) काला सर्प या बन्धन रहित आत्मा (वपूंषि कृण्वन्) अनेक रूपों को रचता हुआ (वशान अनु प्रथयते) अपने वशीभूत अंगों को फैलाता है। (एवा) उसी प्रकार यह (अर्कः) अर्क (सहसा) शीघ्रता से या स्वाभाविक रूप से (ते शेपः) तेरे लिंग को (अंगेनागं सं समकं कृणोतु) अंग अंग के योग्य यथोचित अनुपात या आकार का कर दे। अर्थात् जितना दृढ़ होना और विस्तृत होना आवश्यक है उतना हो जाय।

यहां उपचार अर्क द्वारा किया गया है जो सायण या व्हिटनी के मत में किसी पौधे की छाल से बना हुआ रेशमी धागा है–

"A fine sort of silky flax is in some parts prepared from the bark of the younge shoots"

संभवतः यह ओषधि विशेष हो।

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम्।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः।।
6.72.2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

As the member of the tayadar is made big by the wind – as great as the member of the parasvant so great let thy member grow.

जैसे वायुद्वारा (प्राणबल द्वारा) पुरुष का लिंग स्थूल किया जाकर (तायादरं) सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाता है, और (यावत्) जितना (परस्वतः) पूर्णता प्राप्त पुरुष का (पसः) लिंग होना चाहिए (ते पसा वर्धतां) उतना ही तेरा लिंग वृद्धि को प्राप्त हो।

संभवतः 'तायादर' और 'परस्वान्' कोई पशु विशेष हों।

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत्।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः।।

6.72.3

As much of a limb as is that of the parasvant that of the elephant and that of the ass-as great as of the vigorous (vajin) horse, so great let they member grow.

तेरा लिंग उतना बढे जितना पारस्वन्, हाथी, गधा या वीर्यवान् घोड़े का।

तात्पर्य यह है कि गर्भाधान प्रक्रिया के लिए यह पूर्ण समर्थ हो।

इसी काण्ड के 101 वें सूक्त में भी इसी प्रकार शेप–प्रथन या लिंग वृद्धि का वर्णन दिया गया है–

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च।
यथांग वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि।।

6.101.1

Play thou the bull, blow, increase and spread. let thy member increase limb by limb, with it smile the woman.

[Ark wood or pomegranate rind mustard oil is the remedy.]

हे वीर्य्यवान् पुरुष **(वृषायस्व)** आलिंगन कर **(श्वसिहि)** प्राण का बल लगा **(वर्धस्व)** बढ़ **(प्रथयस्व च)** और फैला **(यथांगं वर्धतां शेपः)** जिससे तेरा लिंग भी फैल कर पुष्ट हो। **(तेन)** उस लिंग से **(योषितम्)** पत्नी को **(इज्जहि)** प्रसन्न कर।

मानसिक विचारों से लेकर वीर्य्य प्रक्षेप तक जितनी प्रक्रियायें होती हैं, उनका सूक्ष्म रूप से यहां सभी वर्णन आ गया है। हावेल का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है, उसका सम्पूर्ण सार तत्व इस मंत्र में निहित है।

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः।।

6.101.2

Where with they in vigorate one who is lean where with they incite *(hi)* one who is ill- with that o Brahmanaspati, make thou his member taut like a bow.

उस ओषधि से जिससे वे दुर्बल को बल देते और बीमार को उत्तेजित करते हैं, हे ब्रह्मणस्पते, तू उसके लिंग को भी धनुष के समान तान कर दृढ कर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमास्वर्श इव रोहित मन वग्लायता सदा।।

6.101.3

इसकी व्याख्या अभी पहले 4.4.7 में भी जा चुकी है। इस प्रकार नपुंसकता दूर करने का विधान और ओषधि द्वारा लिंगेन्द्रिय को पुष्ट और गर्भाधान के योग्य बनाने का विवरण अथर्ववेद में है। इसमें अश्लीलता की बात ही क्या है।

नपुंसकता उत्पन्न करना

अभी हम इसका उल्लेख कर आये हैं कि वेद में नंपुसंकता निवारण का आदेश कितने स्पष्ट शब्दों में है, और सामान्यतः वीर्यहीन व्यक्ति समाज के किसी योग्य नहीं समझा जा सकता है। अब हम यहां उन आपदधर्म परिस्थितियों का निर्देश करेंगे जिनमें व्यक्तियों के पुरुषत्वहीन कर देने में ही समाज एवं व्यक्तियों का भी लाभ है। मनुष्यों की नपुंसकता से अधिक उपयोगी पशुओं की नपुंसकता है।

नपुंसक कर देने की विधि को अंग्रेजी में कैस्ट्रेशन कहते हैं। हमारे अण्डकोषों से न केवल वीर्य बाहर की ओर ही प्रक्षिप्त होता है, प्रत्युत इससे एक प्रकार का आन्तरीय द्रव भी स्रवित हुआ करता है। यह द्रव रुधिर के साथ मिलकर शरीर के अन्य अंगों में पहुंचता है और इसके कारण व्यक्ति में पुरुषत्व के अन्य चिन्हों का विकास होता है जैसे मोछों और दाढ़ियों का निकलना,शरीर के अन्य भागों में भी केशों का बढ़ना गले के स्वर में परिवर्तन होना, और वक्ष स्थल का नियमित होना। यदि शल्योपचार द्वारा ये आन्तरीय द्रव निसर्जन करने वाली ग्रन्थियां निकाल ली जायं तो फिर मनुष्य में पुरुषत्व के लक्षण नष्ट होने लगेंगे। दाढ़ी, मोंछ न निकलेंगी, गले के स्वर में नारी सुलभ कोमलता आ जावेगी और वक्षस्थल पर स्तन भाग प्रौढ होने लगेंगे। इसी आंतरिक द्रव को स्त्री के रुधिर में प्रविष्ट करा देने का प्रभाव भी मनोरंजक है। स्त्री के मोछों का निकलना कुछ कुछ आरम्भ हो जाता है और आकृति में पुरुष की सी भयंकरता उसमें आ जाती है, और धीरे धीरे वह स्त्री गार्हस्थ्य धर्म के अयोग्य हो जाती है। इस प्रकार लिंग विपर्यय हो जाता है।

हावेल ने कास्ट्रेशन के सम्बन्ध में लिखा है :–

"That the reproductive glands have an internal secretion seems to be demonstrated by the effect of castration in modifying the subsequent development of sex charcteristics. The castrated animal develops in to a netural type which in the bird approaches that normal male, but in the mammals resembles rather the appearance of the female. Since this effect of castration is not obtained when a reproductive gland has been previously grafted in some other region of the body, we may infer that an interal controls the development of the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

so-called secondary sex charcteristics."

"It has been a question in the case of the testes whether the supposed internal secretion is furnished by the cells lining the seminferous tubules or by the interstitial cells which lie out side the tubules in the stroma of the gland. Most observers have come to the concludion that the secretion is derived from the interstitial cells."

(Text Book of Physiology, p, 918)

आरम्भ में तो सम्भवतः वीर्य्य और यह आन्तरिक द्रव एक ही होता होगा पर कालान्तर में वीर्य्य प्रणालियों में पृथक् बह कर इसके एक अंश का नाम वीर्य हो जाता है और दूसरा द्रव वीर्य–प्रणालियों के बाहर स्थित छोटे छोटे कोष्ठों में आकर रुधिर के संयोग से पुरुषत्व के गौण लक्षणों का विकास करता है। मनुष्य की प्रजनन ग्रन्थियों का शल्य विच्छेद करने से नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है। चिड़ियों की नपुंसकता में पुरुषत्व के कुछ बाह्य चिन्ह प्रकट होने लगते हैं पर सस्तन प्राणियों में पुरुष नपुंसक होने पर स्त्रीत्व से निकाल कर किसी अन्य स्थान पर लगा दी जायं तो लिंगत्व के चिन्हों में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।

कृत्रिम विधि से शल्योपचार आदि द्वारा नपुंसकत्व उत्पन्न करना सरल बात हो गई है। अब प्रश्न यह है कि समाज में नपुंसकों की कोई उपयोगिता भी हैं, अथवा वे कौन सी आपद परिस्थितयां हैं जिनमें नपुंसकत्व ही अधिक हितकर है। नपुंसकत्व सम्बन्धी विचार मुनष्यों की ही दृष्टि से नहीं, प्रत्युत पशुओं की दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए।

नपुंसकों का उपयोग

अति प्राचीन काल से यह प्रथा चली आई है, और यूनान में तो अभी कुछ शताब्दियों पूर्व तक थी कि औरतों की निगरानी का कार्य नपुंसकों को सौंपा जाता था। इन्हें बहुधा Chamberlain अर्थात् bed chamber के निरीक्षक कहा जाता था। राजा महाराजाओं के हरम में तो इनका बहुत ही विश्वसनीय स्थान था, और वहां रह कर ये नपुंसक राजाओं और शासकों के बड़े स्नेह पात्र बन जाते थे और उनसे अति गुप्त एवं विश्वसनीय कामों में सहायता ली जाती थी, और उन्हें बड़े बड़े ओहदे तक दे दिये जाते थे। मिश्र देश में eunuch या नपुंसक शब्द 'राज्य सभासद' का पर्यायवाची शब्द तक हो गया है। चाहें वे सभासद कृत्रिमतः नपुंसक किये गये हों या नहीं, इतिहास से यह सिद्ध है कि नपुंसकत्व का यह अर्थ कभी नहीं है कि नपुंसक सदा साहस, बुद्धि, पराक्रम में कम ही हो। हेरोडोटस के लेख से स्पष्ट है कि नपुंसकों ने बड़ी राज्य भक्ति और योग्यता प्रदर्शित की और उन्हें सर्वोच्च पदों तक पहुंचा दिया गया। जुस्टीनियन के आधिपत्य में प्रसिद्ध सेनापति नार्सीस – Narses- नपुंसक था। मायसिया के अटार्निया का गवर्नर हरमियस भी नपुंसक था, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरस्तू ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है, और लोगों में उसके प्रति बहुत ही श्रद्धा का भाव था। सार्वजनिक सेवा में नपुंसकों का मूल्यवान् स्थान पारस, भारत और चीन के इतिहास से पता चल जावेगा। बाद के रोमन महाराजाओं के राज्य में तो नपुंसक अति उच्च अधिकारवान पदों पर नियुक्त किये जाते थे। मुसलमान हरमों के लिए तो नपुंसक दासों का मूल्य साधारण दासों की अपेक्षा कहीं अधिक लगाया जाता था क्योंकि नपुंसकता उत्पन्न करने में कभी–कभी दासों की मृत्यु तक हो जाती थी। उत्तरी मध्य अफ्रीका के बैरमी आदि प्रान्तों से ये नपुंसक विशेषतया लाये जाते थे। इटली में बालकों को नपुंसक इसलिये बनाया जाता था कि उनका कण्ठ स्वर मधुर सुरीला बना रहे और वे प्रौढ़ावस्था में भी गवैयों (Suprano singers) का काम कर सकें। यद्यपि यह प्रथा राज्य नियम द्वारा दण्डनीय मानी गई है, पर इस प्रकार के सोप्रानी (soprani) गवैये सदा ही प्राप्त होते रहे। इटली में जनता की ओर से प्रतिवाद होने के कारण इन नपुंसक गवैयों की प्रथा तो उठ गई। पर पोप–लिओ 13वें के समय से पूर्व तक पोप की संगीत और रास–मण्डली में वे नपुंसक गवैये सदा वर्तमान रहे। इस लिओ ने बड़ी कठोरता से इन नपुंसकों को निकाल कर पोपों की धार्मिकता की लाज रखी।

इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी व्यक्ति रहे हैं जिन्होंने अपनी काम–वासनाओं को नष्ट करके पाप और आकर्षण से बचने के लिए स्वतः अपनी वीर्य–ग्रन्थियों का विच्छेद कराया। ईसाइयत के आरम्भ काल में इस प्रकार की सन्यासवृत्ति वाले बहुत से व्यक्ति हुए। इन विधियों का आजकल ईसाइयों ने बहुत विरोध अवश्य किया है, पर ये प्रथायें अभी तक लुप्त नहीं हुई हैं। रूस में इसी प्रकार का एक गुप्त संप्रदाय है जिसे स्कोप्ज़ी (Skopzi) कहते हैं।

बाइबिल में नपुंसकों का स्थान

हम ऊपर लिख चुके हैं कि बहुत से धार्मिक ईसाई जो स्वभावतः वासनाओं से शुद्ध और पवित्र नहीं रह सकते थे। कृत्रिम विधियों से नपुंसक बन जाते थ।। उनकी इस प्रथा का समर्थन बाइबिल के निम्न वचनों में पाया जाता है –

For there are some eunuchs, which were so born from their mother's womb: and there are some eunuchs which were made eunuch of men and there be eunuchs, which have made themselves eunuch for the kingdom of heaven's sake. He that is able to receive it, let him receive it.

(St. Matt. XIX,12)

अर्थात् कुछ नपुंसक तो ऐसे हैं जो मां के पेट से ही ऐसे पैदा हुए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ नपुंसक ऐसे हैं जिन्हें मनुष्यों ने नपुंसक बना दिया है (शल्यादि उपायों से)। और कुछ नपुंसक ऐसे भी हैं जिन्होंने स्वर्ग के साम्राज्य की प्राप्ति के लिए स्वयं अपने को नपुंसक बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया है। वह जो इसको प्राप्त कर सकता है, उसे यह प्राप्त होने दो।

इस प्रकार जन्मतः नपुंसकों के अतिरिक्त कृत्रिम उपायों द्वारा नपुंसक बनाने का आदेश ईसाई धर्म में भी दिया हुआ है। स्वर्ग की प्राप्ति के लिए नपुंसक बनना अर्थात् काम वासनाओं को विनष्ट करने के लिए नपुंसकता धारण करना तो ईसाई धर्म में अति आदरणीय समझा गया है।

अथर्ववेद में नपुंसक बनाने का आदेश –

अथर्ववेद के छठे काण्ड के 138 वें सूक्त में शत्रुओं को नपुंसक कर देने का विधान है।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे।
इमं मे अद्य पुरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि।।1।।
क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ।।2।।

अर्थात हे ओषधे, तू सब लताओं में श्रेष्ठतम सुनी जाती है। आज तू इस मेरे पुरुष को नपुंसक और स्त्री वस्त्र पहनने योग्य कर दे। इसे नपुंसक कर, स्त्री वस्त्रों के योग्य कर और कुरीर आभूषण धारण करने वाला कर। इसके दोनों अण्ड–कोषों को इन्द्र (वैद्य) पत्थरों से तोड़ दे।

इस प्रकार इन दोनों मंत्रों में पुरुष को नपुंसक करने के दो उपाय बताये गये हैं। एक तो ओषधि पान द्वार जिससे पुरुषत्व क्षीण हो जाता है और दूसरे शल्य विधानों द्वारा, पत्थर आदि से अण्डकोषों को तोड़कर। यह कृत्रिम बाह्य विधि है।

क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम्। कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि।।3।।

हे क्लीब! तुझको क्लीब कर देता हूं। हे बधिया, तुझे बधिया करता हूं। हे अरस (वीर्य रस रहित) तुझे अरस करता हूं। इसके रिर पर कुरीर और कुम्ब आभूषण (स्त्रियों के) धर देते हैं।

पशुओं के वध्रि (बधिया) करने की प्रथा अब भी प्रचलित है।ग्रीफिथ ने निम्न दो मंत्रों को अश्लील बताया है।

ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम्।
ते ते भिनद्मि शम्यया मुष्या अधि मुष्कयोः।।4।।

"The two god made tubes that (are) thine, in which stands thy virility, those i split for thee with a peg ; on you woman's loins *(muska)*.

(व्हिटनी)

ये तेरी जो देव प्रदत्त दो नाड़ियें हैं जिसमें वीर्य रहता है तेरे उन दोनों अण्डकोषों के ऊपर की नाड़ियों को (मुष्कों को) शमी से (लकड़ी के दण्ड से) मैं तोड़ देता हूं।

मालूम नहीं, इस मंत्र में अश्लीलता या बर्बरता कहां से आ गई। नपुंसक बनाने के लिए अण्डकोषों को संयुक्त करने वाली दोनों नाड़ियों का छेदन तो किया ही जायेगा और हो ही क्या सकता है। आजकल भी तो अण्डकोषों के शल्योपचार में (नपुंसकता के लिए ही नहीं, प्रत्युत अनेक रोगों में) गुप्तेन्द्रियों का छेदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जाता है, और इन विधियों का वर्णन कोई अश्लील नहीं मानता है।

यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना।
एवा भिनद्मि ते शेपो मुष्या अधि मुष्कयोः ।। 5 ।।

As women split reeds, with a stone fore cushion, so do split thy member on your woman's loins

जैसे स्त्रियां पत्थर से चटाई बनाने के लिए नरकुल को फाड़ती हैं, उसी प्रकार तेरे अण्डकोशों के ऊपर लिंगेन्द्रिय का भेदन कर डालूं।

व्हिटनी ने 'अधिमुष्कयोः' शब्द का अर्थ woman's loins करके अर्थ अस्पष्ट कर दिये हैं। मुष्क का अर्थ यहां अण्डकोष ही समझना चाहिए जैसा कि हमने ऊपर अर्थ किया है। ऐसा करने में न अनौचित्य है और न अश्लीलता।

दास को निस्तेज करने का उल्लेख अथर्ववेद के 7वें काण्ड के 90 वें सूक्त में भी आया है–

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम्।
ओजो दासस्य दम्भय ।। 1 ।।

इससे दास को अपिवृश्च (काट डालने) और उसके ओज को दम्भ करने का आदेश है। इसी सूक्त का तीसरा मंत्र ग्रीफिथ को अश्लील लगा है:–

यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः।
अवस्थस्य क्दीवतः शंकुरस्य नितोदिनः।
यदाततमव तत्तनु यदुत्ततं नि तत्तनु ।। 3 ।।

That the member may go off, and may be importent *(anavayas)* toward women, of the depending inciting (?) peg- like inthrusting one what is atretched that thou unstretch ; what is stretched up, that thou stretch down.

अर्थात् तेरे शेप (लिंगेन्द्रिय) दूर हो जाय, स्त्रियों के प्रति यह निश्चेष्ट हो जाय। (अवस्थस्य) नीचे दर्जे के (क्रnhor%) उत्तेजित (शांकुरस्य) कील के समान (नितोदिनः) प्रविष्ट होने वाला। जो फैला हुआ है उसे सिकोड़ ले, जो ऊपर उठा हुआ है, उसे तू नीचे कर ले।

इसमें व्यभिचारी और दुराचारी की कामोत्तेजना के ह्रास करने का उल्लेख है। उत्तेजित अवस्था में लिंगेन्द्रिय तन कर दृढ हो जाती है, और शान्त होने पर यह फिर अपनी स्वस्थ अवस्था में आती है। स्त्रीषु अनावयाः असत् अर्थात् इस कामुक की ऐसी अवस्था हो जाय की अब इसकी पहुंच व्यभिचारार्थ स्त्रियों तक न हो सके।

इस मंत्र के सम्बन्ध में कौशिक ने यह लिखा है कि 'बाधकु धनुर्विश्यति आशयेऽश्मानं प्रहरति' अर्थात् व्यभिचारी के प्रति धनुष फेंके या उसके कामुक स्थल पर पत्थर से ठोंके। तात्पर्य यह है कि उसकी वीर्यता को नष्ट कर दे।

इन मंत्रों में तो केवल व्यभिचारी के हत वीर्य कर देने का आदेश है। बाइबिल में पत्थरों से प्राणान्त तक कर देने का विधान है। 'अश्मानं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहरति का उदाहरण देखिये– व्यभिचारी स्त्री के लिए –

Then they shall bring out the damsel to the door of her father's house, and the men of her city shall stone her with stones that she die."

(Deuteronomy, XXII,21)

"If a man be found lying with a woman married to an husband , then they shall both of them die, both the man that lay with the woman and the woman." – XXII,22

अस्तु, इन मंत्रों में केवल अश्लीलता इसी बात की है कि इसमें शेप आदिशब्द आ गये हैं। इन शब्दों का प्रयोग मात्र किसी स्थल को अश्लील नहीं बना सकता है। क्या इन शब्दों के प्रयोग से ही बाइबिल की निम्न पंक्तियां अश्लील घोषित कर दी जावेंगी–

He that is wounded in the stones, or hath his privy member cut off, shall not enter into the congregation of the lord. (Deutero. XXIII,1)

अर्थात् जिसके अण्डकोष क्षत हों या जिसने अपनी गुप्तेन्द्रिय कटा दी हो वह ईश्वर की सभा में न घुस पावेगा।

पति–पत्नी सम्बन्धी निम्न पंक्तियां भी क्या अश्लील हैं –

Therefore shall a man leave his father and his mother and shall cleave into his wife they shall be one flesh.

And they were both naked, the man and his wife and were not ashamed. (Genesis II, 24,25)

मनुष्य को चाहिए कि वह माता और पिता को छोड़ दे, और अपनी पत्नी से चिपट कर लग जाय और दोनों एक शरीर हो जाय। और वे दोनों नग्न थे, पुरुष और पत्नी तो भी लज्जित न थे।

अस्तु, अथर्ववेद के निम्न दो मन्त्रों को भी ग्रीफिथ ने अश्लील निर्धारित किया है–

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम्।।

7.35.2

These hundred venis that are thine and the thousand tubes – of them all of thine, I have covered the opening with a stone.- Whitney

परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वां प्रजाभि भून्मोत सूनुः। अस्वं त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं ते कृणोमि।। (7.35.3)

The upper part of thy womb, I make the lower let there not be progeny thee, nor birth; i make thee barren (asu) without

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

progeny; I make a stone thy cover.

सायण के आधार पर व्हिटनी ने इन दोनों मंत्रों को सौत के लिए प्रयुक्त किया है, जिसकी योनिगत समस्त नाड़ियों और धमनियों को पत्थर से ढकने के लिए कहा गया है, जिससे वह सन्तान प्रजनन के अयोग्य हो जाये। इस सूक्त के प्रथम मंत्र में 'सपत्नान्' शब्द पड़ा है जिसके कारण कदाचित् ऐसा किया गया है वैसे तो इस सूक्त का देवता 'जातवेद' है, और इसमें राष्ट्र का वर्णन है–

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व
प्रत्य जातान् जातवेदोनुदस्व।
इदं राष्ट्र पिपृहि सौभगाय
विश्व एनमनु मदन्तु देवाः।। 7.35.1

अर्थात् हे जातवेद राजन्! (अन्यान् सपत्नान् सहसा प्रसहस्व) अन्य सपत्न राष्ट्रों को सहसा दबा और (अजातान् प्रनुदस्व) अजात शत्रुओं को दूर कर। (सौभगाय राष्ट्रं पिपृहि) ऐश्वर्य के लिए राष्ट्र का पालन कर (एनं) इस राजा को (विश्वेदेवाः अनुमन्तु) समस्त विद्वान् आशीर्वाद दें।

इस प्रकार यह सूक्त राष्ट्र परक है। जातवेद और राष्ट्र दोनों शब्द इस अभिप्राय के सूचक हैं। शत्रु राज्यों का नाम सपत्न राष्ट्र है। इस दृष्टि से अन्य दो मंत्रों के अर्थ इस प्रकार होंगे–

हे राजन्! **(इमा)** ये **(ते)** तेरी **(या)** जो **(शतम् हिराः)** सौ नाड़ियां **(उत)** और **(सहस्रं धमनीः)** हजारों धमनियां हैं **(तासां सर्वासाम् बिलम् अहं)** इन सब के छिद्र को मैं **(अश्मना अप्यधाम्)** पत्थर से पुष्ट करता हूं। जिस प्रकार शरीर में अनेक छोटी बड़ी नाड़ियां होती हैं उसी प्रकार राष्ट्र के शरीर की रक्षा के लिए अनेक सेनायें जिनमें सहस्रों सैनिक होते हैं नियुक्त की जाती हैं। और इन सेनाओं को पत्थर के समान कठोर एवं दृढ नियमों द्वारा पुष्ट किया जाता है। यह तो सभी जानते हैं कि सैनिकों को नियम में रखने के लिए बड़ी दृढता की आवश्यकता होती है, और इनके लिए कड़े कड़े अनुशासन निकाले जाते हैं। इसी लिए मंत्र में (अश्मना अप्यधाम्) शब्द रखे गये हैं। नाड़ी–चक्र और सेना के व्यूह चक्रों की समानता तो साहित्य में प्रचलित ही है, और इसलिए इस मंत्र में **हिराः** और **धमनीः** शब्दों का तात्पर्य भी सैनिक व्यूहों से है।

ये मंत्र राजा–प्रजा के द्योतक ही हैं इसका स्पष्टीकरण तीसरे मंत्र में है–

हे राजन्! **(ते योनेः परम् अवरम् कृणोमि)** तेरे राज्य के परमशत्रु को नीचा करता हूं। **(त्वा मा प्रज उत मा सूनुः अभि भूत)** न तो प्रजा और न पुत्र तेरा तिरस्कार करें। **(त्वा) अस्वं अप्रजसम् कृणोमि)** तुझे मैं स्वत्व रहित और सन्तान रहित करता हूं। **(ते अपिधानं अश्मानं कृणोमि)** तेरे ऊपरी आवरण (कवच या राज्यपरिकोट) को पत्थर का करता हूं।

इस मंत्र में राज्य के शत्रुओं के दमन का आदेश है। इसके अतिरिक्त राजा को दो भय और होते हैं एक तो प्रजा की ओर से दूसरे पुत्रों की ओर से। भारतीय इतिहास में मुगल सम्राटों की अवस्था पुत्र–भय को स्पष्ट कर देगी ये पुत्र राजा के घर में ही कलह उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देते हैं। इसलिए जहां प्रजा से राजा को निर्भय किया गया है वहां पुत्रों से भी। एक और विशेष बात है जो बड़े महत्त्व की है। विशाल सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी राजा को 'अस्व' किया जाता है अर्थात् इस राष्ट्र की सम्पत्ति में उसका निजी स्वत्व कुछ नहीं होता है, उसे इस धन और ऐश्वर्य से निस्पृह होकर रहना चाहिए, और इसी प्रकार उसकी सन्तान होते हुए भी वह असन्तान ही समझा जाता है। अपने वीर्य से उत्पन्न सन्तान को विशेष पक्षपात से न देखना चाहिए। उसकी सन्तान तो प्रजा का ही अंग और प्रजा की ही सम्पति है।

इस प्रकार यह सूक्त राष्ट्र धर्म के उच्च आदर्शों का समर्थक है। योनि, सपत्न, हिराः और धमनी देखकर ही अश्लीलता न घोषित करनी चाहिए।

अतः इन मंत्रों में सौत को बंध्या कर देने का आदेश नहीं है। जैसा कि सायण, व्हिटनी या ग्रीफिथ ने समझा है।

अंगछेदन का राजकीय विधान

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि आपद परिस्थितियों में नपुंसक बना देने का विधान वेद मंत्रों में हैं। इतिहास द्वारा नपुंसक की उपयोगिता का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

1. व्यभिचारी व्यक्ति जो अपनी कुवृत्तियों को छोड़ने में असमर्थ हों और बार बार आदेश करने पर भी जिनकी अवस्था सुधरती न प्रतीत होती हो, और जिनके कारण समाज में दूषित वातावरण फैलता जाता हो उनको नपुंसक बना देने का राज्य नियम होना चाहिए। मनुस्मृति में लिखा है–

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान् नृन्महीपतिः।
उद्वेजन करैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्।।

8.352

पर–स्त्री–संभोग में प्रवृत्त पुरुषों को डराने वाले दण्ड देकर और अंग भंग करके राजा देश से निकाल दे। अंग छेदन का क्या तात्पर्य है यह एक पूर्व–श्लोक से स्पष्ट हो जायगा–

उपस्थमु दरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पंचमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च।।

8.125

दण्ड के दश स्थान ये हैं– लिंग, उदर, जिह्वा, हाथ, पैर, नेत्र, नाक, कान, धन और समस्त देह।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्।।

8.126

अनुबन्ध (प्रकरण) देखकर और देशकाल का विधान कर के, सामर्थ्य एवं अपराध का ध्यान रखकर दण्डनीयों को दण्ड दे।

इससे स्पष्ट है कि कामुक इन्द्रियों द्वारा व्यभिचार करने वाले कामातुरों को वीर्याहत कर देने का अनुशासन 'मनुस्मृति' में है।

एक और स्थल पर ऐसे ही दण्ड का विधान है–

अवनिष्ठीवतो दर्पादद्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।
अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्।।

मनु। 8.282।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकारी नीच व्यक्ति यदि उच्च के ऊपर थूके तो उसके दोनों ओष्ठों का और यदि उस पर मूत्र डाले तो लिंगेन्द्रिय का, और यदि पादे तो उसकी गुदा का छेदन करे।

दण्ड रूप इन इन्द्रियों के छेदन का विधान इन स्मार्त ग्रन्थों में कभी अश्लील नहीं समझा जाता है। यदि समाज के उपकार की दृष्टि से किसी अति कामातुर व्यक्ति को नपुंसक कर दिया जाय जो कुछ अनुचित नहीं है।

2. विशेष छूत वाले रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को वीर्याहत कर देना चाहिए जिससे वे सन्तान कर्म के अयोग्य हो जायं। कोढ़ के रोगियों के समान व्यक्तियों के लिए तो यह परमावश्यक है। ऐसे रोगियों को तो विवाह करने की आज्ञा भी न होनी चाहिए।

3. नपुंसकता की उपयोगिता पशुओं में भी समाज के हितार्थ ग्राह्य है। पशुओं को बधिया बनाकर समाज के उपयोग का बनाया जा सकता है। बैलों का उदाहरण स्पष्ट है। इनकी वीर्य ग्रन्थियों का छेदन करना राज्य नियम के विरुद्ध नहीं माना जाता है।

हां, स्त्रीत्व लाने के लिए अथवा बलात्कार कामवासनाओं के रोकने के लिए नपुंसकत्व धारण करना अधिक श्लाघ्य नहीं है, पर यह तो व्यक्ति, देश और काल पर निर्भर है और इसके लिए कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता है। शत्रुओं को नपुंसक बना कर राज्य में रखना उचित और अनुचित समयानुसार दोनों ही हो सकता है। बहुत ही खतरनाक शत्रुओं को तो प्राण–दण्ड ही दे दिया जाता है, उनसे कम को आजन्म कारावास, फिर कुछ को नपुंसक बना कर छोड़ भी दिया जा सकता है अथवा उन्हें दास बनाकर रख लिया जा सकता है। ये तो राज्य की कूटनीतियां हैं। अधिक से अधिक जनता का जिससे अधिक से अधिक कल्याण हो वही करना चाहिए।

उपसंहार

अथर्ववेद के इन स्थलों का विवरण देकर हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि–

1. ग्रीफिथ महोदय की यह अहम्मन्यता निरर्थक है कि ऐसे अश्लील भाव अंग्रेजी भाषा में प्रकट नहीं किये जा सकते। कम से कम व्हिटनी के अंग्रेजी अनुवादों द्वारा अंग्रेजी साहित्य पर न तो कोई अश्लील धब्बा ही आया और न लजीली अंग्रेजी भाषा की सुकुमारता में ही कोई अन्तर पड़ा।
2. गर्भाधान से लेकर लिंगेन्द्रिय की पुष्टि तक का उल्लेख प्राच्य और पाश्चात्य सभी वैद्यक ग्रन्थों में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में है ओर उन्हें कोई भी अश्लील नहीं समझता है। मनुष्यों के हितार्थ ऐसे वर्णनों का अथर्ववेद में होना बड़ा ही आवश्यक था क्योंकि गार्हस्थ्य धर्म का इस वेद में बहुत ही सुन्दर प्रतिपादन है। इन स्थलों को अश्लील मानना अश्लीलता की भावनाओं को न समझना ही कहा जावेगा।
3. अथर्ववेद के इन मंत्रों में अनाचार व्यभिचार का कहीं भी प्रतिपादन नहीं किया गया है।
4. लिंग, योनि आदि शब्दों का प्रयोग सर्वथा श्लील भावों के लिए किया गया है। गार्हस्थ्य जीवन की कामुक प्रत्युत आवश्यक कृतियों का वर्णन अत्यन्त पवित्रता के साथ किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (130-140)Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद के कौशिककृत विनियोगों पर एक दृष्टि

पं. रामनाथ वेदालङ्कार

अथर्ववेद के सम्बन्ध में दुर्भाग्य से यह धारण बद्धमूल हो चुकी है कि यह जादू– टोनों का वेद है। भारतीय और पाश्चात्त्य दोनों ही क्षेत्रों के विद्वानों के मुख से यही बात सुनने को मिलती है। प्रो0 मैकडानल ने अपने ग्रंथ 'संस्कृत लिटरेचर' में तथा एम0 विन्तरनित्स ने 'हिस्टरी ऑफ इंडियन लिटरेचर' में ऐसे ही भाव प्रकट किये हैं। इसके प्रभाव से दासगुप्ता, सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, पं0 बलदेव उपाध्याय आदि अनेक भारतीय विद्वान् भी अंछूते नहीं रहे हैं। सबके मुख से और सबकी लेखनी से अथर्ववेद के जादू–टोने की बात सुनते पढ़ते वेद को गरिमामय गम्भीर ज्ञान की पवित्र पुस्तक मानने वाले भी इस जादू टोने की बात से प्रभावित हो रहे हैं। जब विश्वविद्यालयों में यही पढ़ाया जाता है, पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों में यही लिखा मिलता है, तब अपरिपक्व मस्तिष्क इससे प्रभावित क्यों न हो। यही कारण है कि एम0 ए0 तथा पी–एच0 डी0 के परीक्षार्थी भी जबरदस्ती अथर्ववेद को जादूटोने का वेद सिद्ध करने में लगे हैं। एक परीक्षक के रूप में मेरा यह अनुभव कह रहा है।

एक विश्वविद्यालय की शोध– समिति में विशेषज्ञ के रूप में मैं बुलाया गया था,जिसमें शोधार्थियों की रूपरेखाएं परखी जाती हैं। उसमें शोध का एक विषय अथर्ववेद पर भी था। विषय–सूची में अधिकतर मारण–उच्चाटन, कृत्या– अभिचार, जादू–टोने आदि की ही बातें थीं। मैंने उस पर आपत्ति उठायी कि क्या अथर्ववेद पर यही पृष्ठभूमि छात्र को शोध के लिए देना अथर्ववेद और छात्र दोनों के प्रति अन्याय नहीं है। एक अन्य विशेषज्ञ ने उस पर टिप्पणी की कि आप अथर्ववेद में इन बातों को नहीं मानते हैं, पर वस्तुतः है तो अथर्ववेद में यही सब। अन्त में एक तीसरे विशेषज्ञ ने मेरे साथ सहमत हो जाने से उस रूपरेखा में संशोधन करने की बात मान ली गई।

यदि अथर्ववेद में जादू–टोना होने की बात मिथ्या है, तो इस मिथ्या प्रपंच को प्रचलित करने का दोषी कौन है ? प्रायः इसका दोष विदेशी वेद विचारकों को दे दिया जाता है। हम उनका नाम ले –लेकर उनके प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते है। पर मौलिक अपराध तो उसी भारतीय मस्तिष्क का है जो एक ओर तो वेदों को ईश्वरीय वाणी के रूप में पूजता है और दूसरी ओर ऐसी भ्रान्त धारणाओं को जन्म देता है। वैदिक ऋचाओं को रहस्यमयज्ञान के अजस्र स्रोत मानने वाले योगी श्री अरविन्द ने अपनी 'वेदरहस्य' पुस्तक में लिखा है कि 'यह मेरा सौभाग्य था कि मैंने वेद का सायण– भाष्य पहले नहीं पढ़ा था। अन्यथा संभव है मैं उसी प्रवाह में बह जाता और वेदों में जिस आध्यात्मिक तत्त्व के दर्शन मैंने किये हैं उसे न कर पाता''। और वास्तव में मूल दोष सायण का भी नहीं है, उसका दोष इतना ही है कि उसने वेदों पर स्वतंत्र विचार न कर पुराने विनियोगों को, चाहे वे तर्कसंगत थे चाहे अतर्कसंगत, उसी रूप में स्वीकार कर लिया। श्री अरविंद के शब्दों में ''सायण ने पुरानी मिथ्या धारणाओं पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी, जो कई शताब्दियों तक नहीं टूट सकती थी।''

यहां हम अरविन्द की बात कर रहे है। अथर्ववेदविषयक समस्त भ्रान्तियों का प्रमुख जन्मदाता है कौशिक, जिन्होंने अपने कौशिकसूत्र में अनेक विनियोग ऐसे किये हैं, जिनसे अथर्ववेद का एक भ्रान्त चित्र पाठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संमुख उपस्थित होता है। सायण ने अथर्ववेद –भाष्य के अपने उपोद्घात में कौशिकसूत्र, वैतानसूत्र, शान्तिकल्प, आंगिरसकल्प तथा अथर्वपरिशिष्ट में प्रतिपादित प्रमुख अथर्ववेदीय विषयों का परिगणंन किया है तथा लिखा है कि इतर सूत्रों का उपजीव्य होने के कारण कौशिकसूत्र ही सबसे प्रधान है। कौशिक सूत्र ने जो विनियोग दिये हैं उनमें से अधिकांश जादू–टोने या मन्त्र –तन्त्र की कल्पना से ओत– प्रोत हैं। क्योंकि सायण भाष्य के उपजीव्य ये ही हैं अतः सायण का इस प्रचार में बहुत बड़ा हाथ है। भाष्यारम्भ करते हुए सायण ने स्वयं लिखा है–

शाखायाः शौनकीयायाः पूर्वोक्तेष्वेव कर्मसु।
विनियोगाभिधानेन संहितार्थः प्रकाश्यते।।

अर्थात् कौशिकसूत्र आदि में प्रोक्त कर्मों में ही विनियोग दिखला कर मैं अथर्ववेद की शौनकीय संहिता का अर्थ प्रकाशित करूंगा।

यदि सायण कौशिक के प्रचारक न बन कर स्वतन्त्र रूप से अपना भाष्य करते तो संभवतः अथर्ववेद के जादू–टोने का वेद होने की आंधी इतनी जोर से न फैलती। कौशिक का प्रचार सायण ने किया और उसी प्रचार को आगे बढ़ाया पाश्चात्त्य विचारकों ने तथा उनका अविवेकपूर्ण अनुकरण करने वाले भारतीयों ने। जो पाठक कौशिक के विनियोगों को बिना देखे अपनी बुद्धि से मूल अथर्ववेद को पढ़ेगा उसके मन में कौशिककृत विधि–विधान कभी नहीं आ सकते, यह कौशिकीय विनियोगों के काल्पनिक तथा स्वेच्छाप्रसूत होने में प्रबल युक्ति है। वस्तुतः विनियोगकार अपने विनियोगों के लिए स्वयं उत्तरदायी होता है, वेद पर उसका उत्तरदायित्व नहीं है।

इतनी भूमिका के पश्चात् अब हम कतिपय मन्त्र–तन्त्र–मूलक कौशिकीय विनियोगों का दिग्दर्शन करायेंगे तथा यह भी देखेंगे कि जिस सूक्त या मन्त्र पर वे विनियोग लिखे हैं उस सूक्त या मन्त्र से क्या वे प्रमाणित होते हैं। उन विनियोगों पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य सामने आ जाएगा कि चाहे राज्याभिषेक, सेना–प्रोत्साहन, शत्रुविजय आदि राजकर्मसम्बन्धी सूक्त हों, चाहे ऐश्वर्यवृद्धिपरक सूक्त हों, चाहे गोसमृद्धिविषयक सूक्त हों, चाहे चिकित्साप्रतिपादक सूक्त हों, चाहे नारीसौभाग्यसूचक सूक्त हों, चाहे वृष्टि, वाणिज्य, कृमिविनाश, आयुष्य, आदि के सूक्त हों, सर्वत्र कौशिक मन्त्र–तन्त्र की बात अपनी ओर से कल्पित कर लेता है।

1. **'अमूर्या यन्ति'** अथर्व0 1.17 चार मंत्रों का सूक्त है। इसमें स्त्रियों के आर्तव का आधिक्य, नाड़ियों से रक्तस्राव, पथरी के कारण रक्तस्राव आदि के निरोध का वर्णन है। कौशिक का विनियोग इस प्रकार है – शस्त्रघात आदि से उत्पन्न रुधिर–प्रवाह तथा स्त्री के रजोधर्म के अतिप्रवाह की निवृत्ति के लिए पांच पर्वों वाले दण्ड से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुधिरवहनस्थान को अभिमन्त्रित करे, व्रण के मुख पर गली की धूल, रेत आदि प्रक्षिप्त करे, सूखी कीचड़ या खेत की क्यारी की माटी बांधे और पिलाए।[1] मन्त्रों में यह प्रक्रिया कहीं वर्णित नहीं हुई है। वैद्यगण उत्कृष्ट ओषधियों के द्वारा रक्त प्रवाह को रोकने का इससे अच्छा विनियोग कर सकते हैं, जिसमें अभिमन्त्रित करने की कोई बात न हो। निश्चय ही उनका प्रयोग अधिक सफल होगा।

2. **'वेनस्तत् पश्यत्'** अथर्व0 2.1 पांच मंत्रों का सूक्त है, जिसमें ब्रह्म की महिमा वर्णित की गई है और यह कहा गया है कि मेधावी और दीप्तप्रज्ञ मनुष्य ही उसका दर्शन कर सकता है तथा वेदज्ञ एवं वाणी पर अधिकार रखने वाला व्यक्ति ही उसका प्रवचन करने में समर्थ होता है। कौशिक ने इसका विनियोग 'मनोवांछित फल सिद्ध होगा या असिद्ध' इसका पता लगाने में किया है– '' पांच पर्वों वाला वेणुदण्ड, काम्पील वृक्ष की शाखा या रथयुग को इस सूक्त के मंत्रों से अभिमन्त्रित करके, अभीष्ट कार्य को मन में सोचकर, समतल प्रदेश में ऊंचा खड़ा करके छोड़ दे। यदि वे वेणुदण्ड आदि सोची हुई दिशा में गिरें तो कार्यसिद्ध जाने। बाण को धनुष पर सन्धान करके इस सूक्त से अभिमन्त्रित कर अग्नि में छोड़ दें, यदि ज्वाला दक्षिण दिशा में जाए तो इष्टसिद्धि होगी। जुए के पासों को अभिमंत्रित कर फेंके, अभीष्ट संख्या आये तो कार्यसिद्धि जाने। हाथों की दो अंगुलियां अभिमंत्रित कर कार्य को सोचे, उद्दिष्ट अंगुलि का स्पर्श होने पर अभिलषित सिद्धि समझे।

इसी प्रकार खोये हुए द्रव्य का पता लगाने तथा विवाह से पूर्व कुमारी के सौभाग्यादि की परीक्षा में भी इस सूक्त का विनियोग कौशिक ने किया है। पानी का घड़ा, हल या जुए के पासों को नवीन वस्त्र में लपेट कर संपातित तथा अभिमंत्रित कर जिनका रजोदर्शन प्रारंभ नहीं हुआ है ऐसी दो कुमारियों को कहे कि इसे ले जाओ। वे जिस दिशा में ले जाएं उसी दिशा में खोया हुआ द्रव्य मिलेगा, ऐसा जाने। विवाह से पूर्व कुमारी के सौभाग्यादि लक्षणों ज्ञान के लिए आकृतिलोष्ठ (क्षेत्र मृत्तिका), वल्मीकलोष्ठ, चतुष्पथलोष्ठ और श्मशानलोष्ठ इन चार प्रकार की मृत्तिकाओं को इस सूक्त से अभिमंत्रित कर कुमारी को कहे कि इनमें से किसी एक को उठा लो। यदि वह आकृतिलोष्ठ या वल्मीकलोष्ठ को उठाये तो उसका कल्याण होगा, चतुष्पथलोष्ठ को उठाये तो वह बहुचारिणी होगी, श्मशानलोष्ठ को उठाये तो उसकी मृत्यु हो जाएगी ऐसा जाने। दूसरी यह विधि भी कर सकते हैं कि कुमारी की अंजलि में जल भरकर इस सूक्त से अभिमंत्रित कर उसे कहें कि इच्छानुसार किसी दिशा में इसे फेंक दे यदि वह पूर्व दिशा में फेंके तो समझें कि उसका कल्याण होगा।[2]

सूक्त का प्रतिपाद्य विषय प्रारंभ में हम बता चुके हैं। उससे इन विनियोगों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। सायण ने भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशिकसूत्र को उद्धृत करते हुए सूक्त के आरम्भ में ये विनियोग दिये तो हैं किन्तु मन्त्रार्थ में इनका कोई उपायोग नहीं किया है।

3. **यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः'** अथर्व0 2.15 छः मंत्रों का सूक्त है। इसमें मनुष्य अपने प्राण को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि जैसे द्यौ और पृथिवी,सूर्य और चन्द्र, ब्रह्म और क्षत्र, सत्य और अनृत, भूत ओर भव्य भयभीत नहीं होते, अतएव विनाश को प्राप्त नहीं करते, वैसे ही हे मेरे प्राण, तू भी भयभीत मत हो। कैसा सुन्दर आत्मोद्बोधन है। इस सूक्त का विनियोग यही हो सकता है कि जब हम किसी संकटपूर्ण कार्य को करने लगें तब इस सूक्त का पाठ करते हुए अपने अन्दर शक्ति संचय करें। किन्तु कौशिक ने इसका विनियोग किया है कि जिसे दीर्घायुष्य की कामना हो वह इस सूक्त से स्थालीपाक ओदन को शान्त्युदक से संप्रेक्षित तथा अभिमंत्रित कर खा ले [3] जिसकी कोई चर्चा सूक्त में नहीं है। यदि कौशिक यह कहता है कि दीर्घायुष्य के लिए इस सूक्त का अर्थज्ञानपूर्वक पाठ करता हुआ अपने प्राण को निर्भय और सबल बनाये तब तो संगत हो सकता था।

4. **'एह यन्तु पशवो'** अथर्व0 2.26 पांच मन्त्रों का सूक्त है। इसमें गोपालन और गौओं के ... घी आदि से स्वयं तथा परिवार के अन्य सदस्यों पुत्र, पत्नी आदि के पुष्टि प्राप्त करने का वर्णन है। तदनुसार ही इसका विनियोग होना चाहिए। परन्तु कौशिक कहते है कि जिसे गो–पुष्टि की कामना हो वह बछड़े की लार से मिश्रित ताजा दूध इस सूक्त से अभिमन्त्रित करके पी ले, गौ को अभिमंत्रित करके दान करे तथा जलपात्र को अभिमंत्रित करके गोष्ठ के मध्य में ले जाए [4]। पर इन विधियों से गो–पुष्टि कैसे सम्भव है? गो– पुष्टि तो गो–सेवा से ही हो सकती है।

5. **'संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्य बलम्'** अथर्व0 3.19 आठ मन्त्रों का सूक्त है। इसमें शक्तिसंचय करने, शस्त्रास्त्र का बल बढ़ाने, अपने वीरों को उदबोधन देने एवं शत्रु –विजय करने का वीरतापूर्ण वर्णन है। इसके कौशिक– प्रोक्त विनियोगों में से एक यह है कि जब शत्रुसेना को उदवेल्लित करना हो तब इस सूक्त से घृत की आहुति देकर श्वेत पैरों वाली बकरी या भेड़ को अभिमन्त्रित करके शत्रुसेना के प्रति छोड़ दें 5। सूक्त का वीरसरपूर्ण एक मन्त्र इस प्रकार है–

उद्धर्षन्तां मघवन्वाजिनान्युदवीराणां जयतामेतु घोषः। पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्। देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया। अथर्व0 3.19.6

अर्थात् हे राजन्, आपकी सेना के गजारोही, अश्वारोही, रथारोही, पदाति सब सैनिकों के बल हर्षित हों। विजय लाभ करते हुए वीरों के सिंहनाद आकाश में गूंजे। पृथक् –पृथक् दलों के झण्डे आकाश में लहरायें। विजयसूचक 'उल्लुलुलु' के घोष ऊपर उठें। ज्येष्ठ सेनापति सहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देदीप्यमान, मरने –मारने के लिए तैयार सैनिक सेना बांध कर चलें। इसका भला अभिमंत्रित बकरी को शत्रुसेना के प्रति छोड़ने से क्या सम्बन्ध है ?

6. **'सहृदयं सांमनुस्यविद्वेषं कृणोमि वः'** अथर्व0 3.30 सात मन्त्रों का सुप्रसिद्ध सूक्त है। इसमें यह भावना व्यक्त की गई है कि परिवार में सौहार्द, सांमनस्य, अविद्वेष, पारस्परिक प्रीति, प्रेम--व्यवहार, मिल कर खान– पान करना, मिलकर अग्निहोत्र करना आदि होना चाहिए। इसके विनियोग में कौशिक लिखते हैं कि इस सूक्त द्वारा सांमनस्य कर्म में ग्राम के मध्य संपातित जलकुम्भ और सुराकुम्भ को घुमाएं, त्रिवर्षवत्सिका गौ के मांस खण्डों का तथा संपातित अन्न का भोग और संपातित सुरा का पान करायें [6]। क्या इन क्रियाओं को करने से परस्पर सांमनस्य उत्पन्न हो जाएगा? वस्तुतः सांमनस्य तो तब उत्पन्न हो सकता है, जब परिवार के सदस्य प्रतिदिन अर्थबोधपूर्वक इन मन्त्रों का पाठ करते हुए अपने अन्दर पारस्परिक सौहार्द की भावना जागरित करें।

7. **'य आत्मदा बलदा'** अथर्व0 4.2 सूक्त में आठ मन्त्र हैं, जिनमें देव परमेश्वर की महिमा वर्णित की गई है कि वह आत्मिक शक्ति ओर शारीरिक बल के दाता है, उत्तम प्रकाशक है, जड़ चेतन जगत् का राजा है, और पृथिवी का धर्ता, लोकलोकान्तरों का निर्माता तथा सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है, उसी की पूजा करनी योग्य है। परन्तु कौशिक ने इसका विनियोग बन्ध्या गौ का वध करके उसे शान्ति प्राप्त कराने तथा उसके अंगों का होम करने में किया है। इस सूक्त का जप करके उसके लिए शान्त्युदक छोड़े। यदि काटी हुई उस गौ का अचानक गर्भ दीख जाए तो उस गर्भ को अंजलि में लेकर इस सूक्त से अग्नि में आहुति दें। [7] देखिए, सूक्त के साथ कैसा अत्याचार किया गया है।

8. **'समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः'** अथर्व0 4.15 वृष्टिसूक्त नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें सोलह मन्त्र हैं। दिशाएं बादलों से उमड़ पडें, प्रचुर वर्षा हो, मेंढक प्रसन्नता से बोलने लगें, ओषधियां लहलहा उठें आदि प्रार्थना इन मन्त्रों में की गयी है। यह आतप से व्याकुल मनुष्यों की भावाभिव्यक्ति है। कौशिक विनियोग करते हैं कि जिसे वर्षा की कामना हो वह मरुतों अथवा मन्त्रोक्त देवताओं के प्रति आज्यहोम करे। काश, दिविधुवक तथा वेतस ओषधियों को एक पात्र में रखकर संपातित तथा अभिमंत्रित कर जल में अधोमुख ले जाए और उन्हें प्रवाहित कर दें। कुत्ते ओर मेंढ़े के सिर को इस सूक्त से अभिमंत्रित कर पानी में फेंक दे। मानव के केश और पुराने जूतों को बांस के अग्रभाग में बांध कर खड़ा करें। तुषासहित कच्चे मृत्पात्र पर अभिमंत्रित जल छिड़क कर तीन पैरों वाले छीकें में रखकर पानी में फेंक दें।[8] वर्षा की कामना होने पर वृष्टियज्ञ करना तो वैदिक है, शेष सब मन्त्र तन्त्र की बातें कपोल कल्पित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. **त्वया मन्यो सुरथमारुजन्तो** ' अथर्व0 4.31 तथा 'यस्ते मन्योऽविधद् वज्रसायक' अथर्व0 4.32 दोनों मन्युसूक्त हैं जिनमें प्रत्येक में सात– सात मन्त्र हैं। इनमें मन्यु के मूर्व रूप सेनानी को शत्रुविजय के के लिए उद्‌बोधन दिया गया है। इन पर कौशिक के कुछ विनियोग इस प्रकार हैं– स्वसेना और परसेना के मध्य में खड़ा होकर दोनों सेनाओं की ओर देखता हुआ इनका जप करे। भंग और मूंज के पाशों को अथवा कच्चे पात्रों को इन सूक्तों से संपातित और अभिमंत्रित करके शत्रुसेना के संचारस्थलों में फेंक दे। जय–पराजय विज्ञान के लिए शरतृणों को दोनों सेनाओं के मध्य में रखकर इन सूक्तों से अभिमंत्रित कर आंगिरस अग्नि से जलाए। जिस सेना में धुआं पहुंचे उसका पराजय होगा, यह जाने।[9]

10 '**ऋधङ् मन्त्रो योनिं**' अथर्व0 5.1 तथा '**तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्**' अथर्व0 5.2 दोनों नौ– नौ मन्त्रों के सूक्त हैं, जिनमें जीवात्मा के शरीर–धारण संसार क्षेत्र में अवतरण, मर्यादा – पालन आदि का वर्णन है। इन पर कौशिककृत विनियोगों में से कतिपय निम्नलिखित हैं– पुष्टिकर्मों में इन सूक्तों से मिश्रित धान्य और भुने–पिसे सत्तू को बकरी के रक्त ओर दधिघृत–मधु–उदक रूप रस में मिला कर अभिमंत्रित कर खालें पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण काल में एक – एक चमस खाए। पुष्टिकर्मों में ही ऋतुमती स्त्री के रक्त को दधि–मधु आदि रसों में मिश्रित कर संपातित एवं अभिमंत्रित कर प्रादेशिनी और मध्यमा अंगुलियों से खाये।[10]

11 ' **ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु**' अथर्व0 5.3 सूक्त में 12 मन्त्र हैं। अग्नि नाम से सेनानी को सम्बोधन कर कहा गया है कि तू शत्रुओं को पराजित करके हमारी रक्षा कर, जिससे हमारे मनोरथ पूर्ण हों और हमारा राष्ट्र उत्कर्ष की चरम सीमा को प्राप्त कर सके। बाद के मन्त्रों में सोम, इन्द्र, सविता आदि से रक्षा की प्रार्थना की गई है। इस सूक्त पर कौशिकसूत्र का एक विनियोग यह है – यदि पिता चाहे कि दायभाग के बंटवारे में कोई कलह उपस्थित न हो तो वह विभाग करते समय तेली की रस्सी को अभिमंत्रित कर हाथ में पकड़ ले।[11]

12. '**ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्**' अथर्व0 5.6 सूक्त में 14 मन्त्र हैं। प्रथम ब्रह्म का वर्णन कर यह प्रार्थना की गई है कि तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों वाले सोम और रुद्र शत्रु की हिंसा कर हमें सुखी करें। अग्नि को सम्बोधन कर कहा गया है कि जो आंख से,मन से, विचार से संकल्प से, हमें पापी बनाना चाहें उन्हें तू अपने शस्त्र से निहत्था कर दे। अन्त में इन्द्र की शरण जाने का संकल्प व्यक्त किया गया है। इस पर कौशिक के कुछ विनियोग इस प्रकार हैं– रोगी निरोग हो जाएगा या नहीं यह जानने के लिए तीन स्नायु रज्जुओं को इस सूक्त से अभिमन्त्रित कर अंगारों पर रख दें। यदि वे ऊपर चली जाय तो समझे कि रोगी जीवित रहेगा।[12] संग्राम में किसका जय या पराजय होगा, यह जानना हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन स्नायु रज्जुओं को इस सूक्त से अभिमंत्रित कर लें। फिर एक रज्जु अपनी सेना है, दूसरी मध्य की रज्जु मृत्यु है, तीसरी रज्जु शत्रु सेना है, यह मन में सोचकर उन्हें आंगारों पर रख दें। जिसके ऊपर मृत्यु–रज्जु चली जाए, उसका पराजय होगा। जो मृत्यु–रज्जु के ऊपर चढ़ जाएगी, उसकी जीत होगी। जो सामने की ओर चली जाएगी उसकी भी विजय होगी।[13] इसी प्रकार स्त्री के प्रसवदोष में और सूतिकारोग में इस सूक्त से भात को अभिमंत्रित कर खिलाए तथा मथे हुए सत्तु को अभिमंत्रित कर पिलाए।[14]

14. **'एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे'** अर्थ0 5.15 तथा ' **यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि'** अथर्व0 5.16 दोनों 11–11 मन्त्रों के सूक्त हैं। प्रथम सूक्त में ऋतजाता, ऋतावरी मधुला ओषधि को सम्बोधन कर कहा है कि यदि एक और दस, दो और बीस, तीन और तीस, चार और चालीस, पांच और पचास, छह और साठ, सात और सत्तर, आठ और अस्सी, नौ और नब्बे, दस और सौ, सौ और एक हजार व्याधियां या दुर्वक्ता मुझे हानि पहुंचाने आयें, तो भी तू मुझे मधु प्रदान कर। द्वितीय सूक्त में रोगादि को ललकार कर कहा गया है कि चाहे तू अकेला आता है;या दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह के साथ आता है, तो भी तू हमें छोड़ दे, अब तू निर्बल हो गया है। इस पर कौशिक विनियोग करते हैं– गौओं के रोगोपशमन, पोषण तथा प्रजनन के कर्मो में लवण युक्त या अकेले जल को प्रथम सूक्त से अभिमंत्रित कर गौओं को पिला दें। 15 दुष्ट वक्ता का मुख स्तम्भन करना हो तो खलतुलपर्णी को मधु में बिलोए हुए सत्तुओं पर जर्जर करके उक्त दोनों सूक्तों से अभिमंत्रित कर पिला दें। किसी का शाप लगा हो तो उसकी चिकित्सा के लिए द्वितीय सूक्त से गृहद्वार को अभिमंत्रित कर बन्द करें।

14. **'नैतां ते देवा अददुस्तुभ्य ' नृपते अत्तवे'** अथर्व0 5.18 और **'अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्'** अथर्व0 5.19 ये दोनों ब्रह्मगवीसूक्त नाम से प्रसिद्ध हैं। जो राजा ब्राह्मण की गौ को खाता है वह स्वयं नष्ट हो जाता है तथा उसका राज्य तेजोविहीन हो जाता है, यह इन सूक्तों में प्रतिपादित किया गया है। विद्वान् व्याख्याकारों ने यहां गौ का अर्थ वाणी लिया है। ब्रह्मवित् ज्ञानी ब्राह्मण की वाणी या परामर्श की उपेक्षा करने का उक्त दुष्परिणाम राजा को भोगना पड़ता है। यह तात्पर्य है। यदि गौ का अर्थ यहां गाय पशु अभिप्रेत होता तो केवल ब्राह्मण की ही गाय को खाने का निषेध क्यों किया गया, गाय तो किसी भी वर्ण की क्यों न हो, अवध्य तथा अभक्ष्य है। कौशिक ने दोनों सूक्तों का विनियोग अभिचार कर्म में किया है। यदि कोई ब्राह्मण की गौ को हरे, मारे, काटे, पकाए, या खाए तो ब्रह्मचारी उस विद्वेषी का मन में ध्यान करके इन सूक्तों को जपे,तीन बार कहे कि वह मर जाए, बाहर रात्रिव्रतपूर्वक रहे, द्वादशरात्र व्यतीत होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दूसरे दिन जब सूर्य उदित होगा तब शत्रु मरा मिलेगा।[17] यहां यह अभिचारकर्म कौशिक का स्वाविष्कृत है।

15. **'सिहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या'** अथर्व0 6.38 चार मन्त्रों का सूक्त है। इसमें यह कामना की गयी है कि जो तेजस्विता सिंह, व्याघ्र, सर्प, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, हाथी, चीता, सुवर्ण, जल, गौ, पुरुष आदि में है, वह तेजस्विता ब्रह्मवर्चस् के साथ हमें भी प्राप्त हो। इससे अगला **'यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं' अथर्व0 6.39** आदि तीन मंत्रों का सूक्त है, जिसमें यशस्विता की प्रार्थना की गयी है। इन दोनों सूक्तों पर कौशिक का विनियोग है कि जिसे वर्चःप्राप्ति की इच्छा हो वह स्नातक, सिंह, व्याघ्र, बकरा, मेंढा, वृषभ और राजा इन सातों के नाभि–लोमों को लाक्षा से सान कर और ऊपर सुवर्ण चढ़ा कर इन सूक्तों से अभिमंत्रित कर बांध ले, तथा पलाश आदि दस शान्त वृक्षों के खण्डों से बनी हुई मणि को भी लाक्षा और हिरण्य से वेष्टित कर संपातित और अभिमंत्रित करके बांधे।[18] वस्तुतः तो सूक्त में भावना का बल है कि सिंह, व्याघ्र, आदि में जो अपने–अपने प्रकार का तेजस्विता का गुण है उसे हम अपने अन्दर धारण करें। नाभि लोमों को ही बांधना है तो अन्य प्राणियों के नाभि लोम प्राप्त हों भी जायें, किन्तु सिंह, व्याघ्र, और राजा के कैसे सुलभ हो सकेंगे? फिर सूक्त तो सांप, ब्राह्मण, हाथी, चीता, गाय और घोड़े का भी नाम आया है, इन प्राणियों के भी लोम या अन्य कोई शरीरावयव मणि बनाने में क्यों नहीं लिए गये?

16. **'अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः'** अथर्व0 6.42 आदि तीन मंत्रों का मन्युशमन–सूक्त है। अपने प्रति क्रोध करने वाले मनुष्य को सम्बोधन कर कहते हैं– जैसे धनुष से प्रत्यंचा को उतार देते हैं, वैसे ही मैं तेरे मन से क्रोध को उतार देता हूं, तेरे क्रोध को मैं भारी पत्थर से कुचल देता हूं, तेरे क्रोध को मैं एड़ी और पंजे से रगड़ देता हूं, जिससे भविष्य में हम दोनों मित्र के समान रहें। पत्थर से कुचलना, एड़ी–पंजे से रगड़ना ये भाषा के मुहावरे हैं जो भावना की तीव्रता को व्यक्त करते हैं। किन्तु कौशिक निम्न विनियोग प्रदर्शित करते हैं– स्त्री का पुरुष के प्रति या पुरुष का स्त्री के प्रति क्रोध हो तो कुपित की ओर देखते हुए पत्थर को अभिमंत्रित कर हाथ में पकड़ **'सखायाविव सवावहा'** इस द्वितीय ऋचा को जपते हुए पत्थर को भूमि पर फेंक दे, फिर **'अभि तिष्ठामि ते मन्युं'** इस तृतीय ऋचा को जपते हुए उस पत्थर के ऊपर थूके। फिर उस कुपित पुरुष या स्त्री की छाया में सूक्त की तीनों ऋचाओं से धनुष को अभिमन्त्रित कर उस पर डोरी चढ़ाएं।[19] यहां विचारने योग्य है कि जिस कुपित पुरुष या स्त्री के प्रति ये क्रियाएं करने लगेंगे उसका क्रोध उतरेगा या और अधिक बढ़ जाएगा। फिर मन्त्र में तो धनुष से डोरी उतारने की उपमा दी गई है, पर विनियोग में धनुष पर डोरी चढ़ायी जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17. **'अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभिरक्षतु'** अथर्व0 6.79 तीन मंत्रों का सूक्त है, जिसमें **'नभसस्पति संस्फान '** देव से यह कामना प्रकट की गई है कि वह हमारे घरों में धान्य की अपार समृद्धि ला दे। संस्फान शब्द 'ओस्फायी वृद्धौ' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है समृद्धि लाने वाला। 'नभसस्पति' से सायण ने प्रथम मंत्र में अग्नि, द्वितीय मंत्र में वायु और तृतीय मन्त्र में सूर्य गृहीत किया है। इसका अर्थ पर्जन्य भी कर सकते हैं। हम वृष्टियज्ञ आदि से इन प्राकृतिक शक्तियों को अनुकूल करें, जिससे प्रचुर वर्षा होकर प्रभूत सस्य– सम्पत्ति उत्पन्न हो, यह अभिप्राय है। इस पर कौशिक का विनियोग इस प्रकार है– जिसे धान्यवृद्धि की इच्छा हो वह एक पत्थर पर जल छिड़क कर इस सूक्त से उसे अभिमन्त्रित कर जिसमें धान्य भरा जाता है उस कोठे के ऊपर उस पत्थर को रख कर एक–एक मन्त्र बोलता हुआ क्रमशः बोलता हुआ क्रमशः तीन धान्यमुष्टियां उसके ऊपर धरे।[20] पाठक स्वयं देखें कि क्या इस विधि से धान्य समृद्धि हो सकेगी।

18. **'अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत्'** अथर्व0 6.80 तीन मंत्रों का सूक्त है। इसमें 'दिव्य श्वा' के तेज से और हवि से रोग– निवारण (अरिष्टताति) का वर्णन है। यह दिव्य श्वा साधारण कुत्ता नहीं, किन्तु द्युलोकवर्ती सूर्य है। तृतीय मंत्र में इस दिव्य श्वा का परिचय इस रूप में दिया गया है कि जलों में तेरा जन्म है, द्युलोक में तेरा घर है, समुद्र, बादल और पृथिवी में तेरी महिमा है– **अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम्।** अब इस पर कौशिक का विनियोग देखिए– यदि कोई अंग कौए, कबूतर, बाज आदि पक्षी से विक्षत हो जाए तो कुत्ते के पैर के नीचे की मिट्टी लेकर उसे इस सूक्त से अभिमन्त्रित कर विक्षत अंग पर उसका लेप कर दें।[21]

19. **'अग्ने जातान् प्रणुदा मे सपत्नान्'** अथर्व0 7.34 तथा **' प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व'** अथर्व0 7.35 क्रमशः एक एवं तीन मंत्रों के सूक्त हैं। दो मंत्रों में अग्नि (अग्रणी राजा या सेनानी) को कहा गया है कि तू उत्पन्न शत्रुओं को नष्ट कर दे तथा जो अनुत्पन्न अर्थात् अभी गर्भ में है उन्हें भी नष्ट कर दे; जो सेना लेकर हमारे राज्य पर आक्रमण करें उन्हें पददलित कर दे; इस प्रकार अपने राज्य को तू समुन्नत एवं परिपूर्ण कर। अन्तिम दो मंत्रों में शत्रु–नारी को कहा गया है कि तुझे मैं गर्भ–धारण के अयोग्य कर दूंगा। इस पर कौशिक का विनियोग द्रष्टव्य है– शत्रु को निःसन्तान करने के लिए खच्चरी के मूत्र में पत्थर घिस कर इन सूक्तों के मन्त्रों से अभिमंत्रित कर भात के साथ एक स्त्री को खिला दे तथा वही मूत्र उसके आभूषणों पर लेप करे और उस स्त्री के सिर की मांग (सीमन्त) की ओर देखे।[22] विचारणीय है कि यह खच्चरी या अश्वतरी के मूत्र का विनियोग कहां से आ गया। सायण ने इस विनियोग का मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदानुमोदित सिद्ध करने के लिए ही संभवतः **'अस्वं त्वाप्रजसं कृणोमि'** अथर्व0 7.36.3 की व्याख्या में 'अस्वं' के स्थान पर 'आश्वां' पाठ मान लिया है और अश्वतरी (खच्चरी) अर्थ कर लिया है तथा यह आशय लिया है कि जैसे अश्वतरी मादा–सदृश अंग रखते हुए भी सन्तानहीन होती है, वैसे ही शत्रु–नारी भी सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाए। किन्तु मूल पाठ 'अस्वं' ही है, जिसका अर्थ होता है प्रसवयोग्यरहित – ***न सूते इति असूः, ताम् अस्वम्।*** 'आश्वां ' पाठ मानें तो आश्वा का अर्थ घोड़ी होता है, खच्चरी नहीं, और घोड़ी सुप्रसवा होने का प्रतीक है, न कि अप्रसवा होने का।

20. **'नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे'** अथर्व0 7.116 दो मंत्रों का सूक्त है, जिसमें उष्णज्वर, शीतज्वर, दो दिन छोड़ कर आने वाला ज्वर आदि ज्वरों को दूर से ही नमस्कार करते हुए यह भावना व्यक्त की गयी है कि हम इन्हें निश्चय ही नष्ट कर देंगे। इस पर कौशिककृत विनियोग यह है– सब ज्वरों को दूर करने के लिए ज्वरग्रस्त की शय्या के नीचे सिरकियों से कसे हुए एक मेंढ़क को नीले –लाल दो सूत्रों से बांध कर रख दे और ज्वरग्रस्त के ऊपर इस सूक्त की दोनों ऋचाओं के द्वारा अभिमंत्रित जल के छींटे दे। कह सकते हैं कि मेंढक में ज्वर के चले जाने का संकेत मंत्र में भी आया है– **यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः (मन्त्र 2)**। पर यहां मण्डूक शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अभिप्राय मण्डूकपर्णी आदि किसी ओषधि से है। यदि मेंढक में ज्वर को हरने की क्षमता होती तो वर्षा ऋतु में,जबकि आस–पास मेंढ़क ही मेंढक रहते हैं, यह रोग न फैलता। कौशिक ने मंत्र में मण्डूक शब्द देखकर उपर्युक्त टोटके का अविष्कार कर लिया है।

इस प्रकार के टोटके कौशिकसूत्र में भरे पड़े हैं, जिनका मन्त्रार्थ के साथ कोई संबन्ध नहीं है। अनेक विनियोग मारण, उच्चाटन, वशीकरण, कृत्यानिर्हरण, अभिचार, मणि–बन्धन आद परक भीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कौशिक एक तांत्रिक था, जिसने अथर्ववेद का उपयोग अपनी तंत्रविद्या के प्रचार के लिए किया। परवर्ती सायण आदि विद्वान बिना देखे–भाले उसी का अन्धानुकरण करते रहे।

वस्तुतः पूर्वकृत विनियोगों का वेद के साथ कोई नित्य संबन्ध नहीं है। कौशिक ने भी एक –एक सूक्त पर कई– कई विनियोग लिखे हैं तथा इतर आचार्यों ने उनसे भिन्न स्वतंत्र ही विनियोग दिखाये हैं। अतः स्वामी दयानन्द की परख –कसौटी के अनुसार वे ही विनियोग मान्य हैं जो युक्तिसिद्ध एवं वेदादिप्रमाणानुकूल हों तथा मंत्रार्थ से संपुष्ट होते हों।

पाद–टिप्पणियां

1. कौ0 सू026.9–12
2. कौ0 सू037.3–12
3. कौ0 सू054.11
4. कौ0 सू019.14–17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. कौ0 सू014.22
6. कौ0 सू012.5–6
7. कौ0 सू044.1–4, 45.1
8. कौ0 सू041.1–7
9. कौ0 सू014.26–31
10. कौ0 सू022.1–5
11. कौ0 सू038.26
12. कौ0 सू015.12–14
13. कौ0 सू015.15–18
14. कौ0 सू028.15–16
15. कौ0 सू019.1
16. कौ0 सू029.15 –17
17. कौ0 सू048.13–22
18. कौ0 सू013.3–5
19. कौ0 सू036.28–31
20. कौ0 सू021.7
21. कौ0 सू031.18 –19
22. कौ0 सू036.33–34

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (141-161) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्व–आलोचन

श्री पण्डित जयदेव शर्मा विद्यालंकार(मीमांसातीर्थ)

अथर्ववेद अर्वाचीन है ?

जगत् प्रसिद्ध चारों वेदों में चतुर्थ वेद अथर्ववेद है। बहुत से विद्वानों को इस अथर्ववेद के वेद होने में संदेह है। उनकी सम्मति में यह वेद तीन के बाद बना है। वे युक्ति देते हैं कि प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से स्थानों पर केवल तीन वेदों का वर्णन आया है। जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में **"त्रयो वेदा अजायन्त।"** तैत्तिरीय ब्राह्मण में **वेदैरशून्यस्त्रिभिरिति सूर्यः।' 'यम् ऋषयस्त्रयीविदो विदुः ऋचः सामानि यजूंषि।'** इत्यादि। परन्तु उनका इस प्रकार से उद्धरणमात्र को युक्ति रूप से देना असंगत है क्योंकि उन्हीं ग्रन्थों में चारों वेदों का उल्लेख भी है। जैसे मुण्डक उपनिषत् में –**'तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्प'** इत्यादि। बृहदारण्यक (शतपथ) में– ' **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः'** इति।

तीन और चार संख्या की विषमता का समाधान यही है कि 'वेदत्रयी' शब्द के प्रयोग के दो अभिप्राय हैं, एक तो यज्ञ का कर्मकाण्ड प्रथम तीन वेदों से लिया गया और चतुर्थ वेद के ज्ञाता ब्रह्मा का यज्ञ में कोई कर्म विधान नहीं है। वह केवल साक्षी मात्र मौन होकर रहता है अतः यज्ञ कर्म के सम्बन्ध में तीन वेदों का ही उल्लेख किया जाता है। तीन वेदों के कहने का दूसरा अभिप्राय है कि जैमनीय मीमांसा के अनुसार वेद की रचना तीन प्रकार की है, प्रथम 'ऋक्' जिनमें चरणों की व्यवस्था है। द्वितीय साम अर्थात् गीति या गायन प्रकार और तीसरी 'यजुः' अर्थात् गद्यबन्ध। परन्तु, क्योंकि ऋग्वेद का ज्ञाता होता, यजुर्वेद का ज्ञाता अध्वर्यु, साम का ज्ञाता उद्गाता और अथर्ववेद का ज्ञाता ब्रह्मा, चारों ही ऋत्विक् रूप में यज्ञ करते हैं इसलिए ब्रह्मा–सम्बन्धी ब्रह्मवेद या अथर्ववेद को हम वेदों की गणना में से बाहर नहीं निकाल सकते और न कोई ऐसा समय दिखला सकते हैं कि जिसमें बने ग्रन्थों में तीन वेदों का वर्णन हो और चौथे का कहीं उल्लेख न हो। जिन तैत्तिरीय आदि याजुष शाखा के ग्रन्थों में तीन वेदों का उल्लेख है उनमें ही अथर्वाङ्गिराविद्' ब्रह्मा को वरण करने और उसके वेद को भी स्वीकार किया गया है। जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ के दो भाग बतलाये हैं एक वाणी और दूसरा मन। वाणी अर्थात् त्रयी विद्या से आधा यज्ञ और मन से शेष आधा यज्ञ ब्रह्मा द्वारा सम्पादित होता है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के मन्त्रों में भी जैमिनीय प्रोक्त वेद के तीनों रूप ऋक्, साम, यजुः, पादव्यवस्था, गान और गद्य उपलब्ध होते हैं। अतः उसकी वेदता में कोई सन्देह नहीं है। जिनको फिर भी सन्देह हो उनकी निवृति के लिए इतना लिखना पर्याप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि चारों वेदों की परमात्मा या 'यज्ञ' प्रजापति से उत्पत्ति हुई, इसका निदर्शक वेद का निम्नलिखित मन्त्र प्रमाण है–

तस्मा॑द् य॒ज्ञात् स॑र्व॒हु॒तः ऋ॒चः सामा॑नि जज्ञिरे। छन्दो॑ ह जज्ञि॒रे तस्मा॒द् यजु॒स्तस्मा॑द अजायत।। ऋ0 10.7.8, यजु0 31.7, अथर्व0 17.6.13

इसी का अनुवाद करने हारा 'स्कम्भ' – ब्रह्मा–विषयक मन्त्र यह है–

यस्मा॒दृचो॑ अ॒पात॑क्षन् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षन्।
सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुख॑म्।
स्कु॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑द॒व सः।।

अथर्व010. 7.20

उपरोक्त दोनों मन्त्रों में चारों वेदों का नाम लिखा प्राप्त होता है। जब वेद के ही भीतर चारों वेदों का नाम उल्लेख है तब उनके व्याख्यानरूप ब्राह्मण ग्रन्थ जो अत्यन्त अर्वाचीन ग्रन्थ हैं उनमें लिखे त्रयी शब्द से भ्रम में पड़ना ठीक नहीं है। वेद ने अथर्व–वेद का ग्रहण 'छन्दस्' और 'अथर्वाङ्गिरस' दोनों नामों से किया है। जिन पाश्चात्यों के मत में त्रयी शब्द से केवल ऋक्, यजु, साम संहिताएं ली जाती हैं और अथर्व अर्वाचीन मान लिया गया है वे बहुत ही भ्रम में हैं। क्योंकि प्राचीन किसी भी ग्रन्थ में वे वैसा नहीं दिखा सकते और उनको ध्यान में रखना चाहिए कि त्रयी नाम केवल तीन प्रकार की रचना भेद से हैं। कोई कहते हैं कि पाणिनि ने अथर्व का नाम नहीं लिखा इसलिए अथर्ववेद अर्वाचीन है। यह भी उनका भ्रम है। जिस प्रकार शाकलादि शाखाओं का नाम ऋग्वेद प्रसिद्ध है उसी प्रकार शौनकादि संहिताओं का नाम अथर्ववेद प्रसिद्ध है। पाणिनि ने **'शकलाद्वा'** (पा0 4.3.128) और **'शौनकादिभ्यश्छन्दसि'** (पा0 4.3.105) दोनों ही सूत्रों में ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों की शाखाओं का उल्लेख किया है। बल्कि अथर्ववेद पर प्रसिद्ध कौशिक सूत्र का भी पाणिनी को ज्ञान था जैसा **'काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः'** (पा0 4.3.103) इस सूत्र से विदित होता है। उसको अथर्ववेद का भी ज्ञान था इसका पता **'आथर्वणिकस्येकलोपश्च'**(पा0 4.3.133) इस सूत्र से पता लगता है। वहां **'आथर्वणिकानां धर्म आग्नेयो आथर्वणः'** ऐसा 'आथर्वण' शब्द सिद्ध किया है। इससे भी पूर्व निरुक्तकार यास्क तक ने अथर्ववेद के मन्त्रों के प्रतीक दिये हैं जैसे – **'शतं जीव शरदो वर्धमानः'** (नि013.4.7) **'एक पादं नोत्खिदति'** (नि012.3.10) अथर्व0 11.6.1 इसी प्रकार अथर्व और अंगिरा ऋषि प्रोक्त अथर्व के मन्त्र चारों वेदों में स्थल–स्थल पर आये हैं।

वर्तमान की चारों वेद संहिताएं यज्ञ काण्ड के चार मुख्य स्कन्धरूप चार ऋत्विजों के निमित्त संहिताएं हैं, जैसे ऐतरेय ब्रा0 (5.33) में लिखा है **ऋचा एव हौत्रं क्रियते, यजुषा आध्वर्यवं, साम्ना औदगात्रं अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते त्रय्या विद्यया इति ब्रूयात्।'** अर्थात् होता का कार्य ऋग्वेद से, अध्वर्यु का कार्य यजुर्वेद से उदगात का कार्य सामवेद से और ब्रह्मा का कार्य तीनों से किया जाता है। गोपथ ब्राह्मण में और भी सपष्ट किया जाता है कि 'अथर्वागिरेभिर्ब्रह्मत्वम्' अर्थात् ब्रह्मा का कार्य अथर्वाङ्गिरस वेद से किया जाता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार चतुष्पाद् यज्ञ का निष्पादन करने के लिए संहिताएं चार प्रकार की प्रतीत होती हैं। इसके अतिरिक्त कर्मकाण्डप्रोक्त यज्ञ भी परम पुरुष का कर्ममय स्वरूप है। जब कर्मकाण्ड के एक चरण को करने के लिए ब्रह्मा और उसकी संहिता ब्रह्मवेद आवश्यक है तब यह यज्ञ जिस परम पुरुष का प्रतिनिधि है उसका वर्णन करने के लिए ब्रह्मवेद की आवश्यकता है। जब परमेश्वर स्वयं प्रकाश है तो उसका वर्णन करने के लिए भी अपौरुषेयसंहिताओं की ही आवश्यकता है। ऋषिगण तो उन संहिताओं के द्रष्टा, प्रयोक्ता और व्याख्याता मात्र हैं और जिन महानुभावों को यह संदेह हो कि परमात्मा का प्रतिनिधि यज्ञ भी अथर्ववेद के बाद की कल्पना होगी उनको ऋग्वेद के नीचे लिखे मन्त्र का मनन करना चाहिए।

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मयं वाचः परमं व्योमः।।

अथर्व0 9.10.14

इस मन्त्र में विशाल यज्ञ का वर्णन यज्ञ को प्रतिनिधि रूप दर्शाते हुए किया है और ब्रह्मा को समस्त वाणी वेदवाणी का 'व्योम' –रक्षा स्थान बतलाया है, इसी प्रकार प्रजापति के महान् महिमा रूप ओदन के वर्णन में –

ऋचा कुम्भी अधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता।। 14।।
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा।। 15।।

अथर्व0 11.3.14,15

चारों वेदों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। यहां ब्रह्मा शब्द से ब्रह्मवेद का ग्रहण है, ऋग् से ऋग्वेद का आर्त्विज्य (ऋतु+यज्+य) से यजुर्वेद और साम से सामवेद का ग्रहण है। इसी प्रकार अथर्ववेद का वर्णन आप अथर्व0 11.6,13,14 में भी पाएंगे।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के ऋषियों पर दृष्टि डालिये तो वेन भार्गव (ऋ0 9.85) भृगु वारुणि (9.56) विरूप आंगिरस (ऋ0 8.6) च्यवन भार्गव (10.19) कवि भार्गव (ऋ0 9. 47–49) अष्टांद्रष्ट्र वेरूप (ऋ0 10.111) नभः प्रभेदन वैरूप (10.112) मूर्धन्वान् आंगिरस (10. 88) वृहद्दिव आथर्वण (10.120) वरुण आंगिरस (5.15) प्रभूवस् आंगिरस (ऋ0 5. 35–36) हिरण्यस्तूप आंगिरस (ऋ0 1.1. 31–35) सव्य आंगिरस (1.1.51–57) सोमाहुति भार्गव (1.2.5–3) आंगिरस आसंग की पत्नी शश्वती (ऋ0 8.1.34) इत्यादि अन्यान्य अथर्वा और अंगिरा गोत्रों के विद्वान् ऋग्वेद के ऋषि हुए हैं। यदि योरोपीयन विद्वानों का मत मान लें कि ये ऋषि ऋचाओं के कर्ता हैं, द्रष्टा नहीं तब तो अथर्वा और अंगिरा और उनके वंशजों के बनाये अथर्ववेद की सत्ता ऋग्वेद के निर्माणकाल में ही सिद्ध हो जाती है। फलतः योरोपीयन लोगों का अथर्ववेद को ऋग्वेद के बाद का मानना उनके अपने मन्तव्य के अनुसार भी ठीक नहीं बैठता। हमारे मन्तव्य के अनुसार तो वे चारों वेद परमेश्वर के ज्ञान हैं और नित्य हैं, उनके मन्त्रों का साक्षात्कार ऋषियों ने किया है और उनके नाम मन्त्रों के साथ आदरार्थ जुड़े हैं।

बहुत सों का यह विचार है कि अथर्ववेद को बाद में अन्य वेदों से संग्रहीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए मान लेते हैं कि उसमें अन्य वेदों के मन्त्र भी आये हैं, यदि संग्रह नहीं तो वे मन्त्र ज्यों के त्यों कैसे हैं। इसका उत्तर यह है कि ऐसे मन्त्र भिन्न–भिन्न प्रकरणों में कहीं तो उस प्रकारण के विशेषार्थ के द्योतक होते हैं। और कहीं प्रकरण की दृष्टि से भिन्नार्थ के प्रतिपादक हो जाते हैं। अतः यह पुनरुक्ति नहीं और न ही इस प्रकार एक वेद के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे दूसरे वेद से लिए गये हैं।

अथर्ववेदसंहिता

हमारे पास जो अथर्ववेद संहिताएं उपलब्ध हैं वे निम्नलिखित हैं–

1.लीथो की छपी अथर्ववेद मूल संहिता।
2. अजमेर वैदिक यन्त्रालय में मुद्रित अथर्ववेद संहिता।
3. निर्णय सागर बम्बई से प्रकाशित अथर्ववेद संहिता जिसका सम्पादन श्री पंडित शंकर पाण्डुरंग, एम0 ए0 ने सायण भाष्य सहित किया है।
4. श्री क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी द्वारा मुद्रित निज भाषा भाष्य सहित।
5. इन संहिताओं के अतिरिक्त अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित पण्डित ह्विटनी कृत अथर्ववेद का आंग्ल भाषानुवाद और उस पर पण्डित लैन्मन कृत विशेष टिप्पणी भी उपलब्ध है।
6. पं0 ग्रिफिथकृत आंग्लभाषानुवाद और उनकी उस पर स्वरचित टिप्पणियां भी उपलब्ध हैं।

योरोपीयन विद्वानों ने अथर्ववेद संहिता के परिमाण पर बड़ी– बड़ी उलझी हुई शंकाएं उठाई हैं।

ह्विटनी के अनुवाद की भूमिका के लेखक पं0 लैन्मन ने लिखा है कि प्रथम 18 काण्ड तो अथर्ववेद संहिता के मूल हैं और 19वां, 20वां काण्ड पीछे से लिया गया है। आपकी युक्ति है कि–

1. 20वां काण्ड केवल ऋग्वेद से संग्रह किया गया है और अथर्ववेद से उसका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। इसका प्रयोजन अनुमान से कल्पना किया जा सकता है।
2. 19वां काण्ड यह तो साफ परिशिष्ट है। युक्ति यही कि इसका पाठ बहुत बिगड़ा हुआ है और पदपाठ भी इसका नवीन प्रतीत होता है।
3. 1 से 18 काण्डों तक तो प्रपाठकों का क्रम मिलता है आगे प्रपाठक क्रम नहीं है।
4. पुरानी अनुक्रमणिका 18 काण्ड तक ही मिलती है।
5. कौशिक सूत्रों में 19वें और 20वें काण्ड के विनियोग नहीं लिखे।
6. पंचपटलिका और उसके भाष्यकार ने भी अथर्ववेद का वर्णन 1 से 18 तक ही किया है।
7. पैप्पलाद शाखा में 19वें काण्ड के मन्त्र तो बहुत से उपलब्ध होते हैं परन्तु 20वें काण्ड का कुछ भी उपलब्ध नहीं होता।

इसके अतिरिक्त पण्डित ग्रिफिथ महाशय ने तो ऋग्वेदादि तीनों वेदों का परिशिष्ट अथर्ववेद को माना है। साथ 19,20 दोनों काण्डों को परिशिष्ट या अर्वाचीन कहने में आपने एक और युक्ति दी है अर्थात्–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. अथर्व प्रातिशाख्य में उनका वर्णन नहीं है। योरोपीयन विद्वानों ने अथर्ववेद के परिमाण पर जो इतना विवाद उठाया है ऐसा विवाद भारतीय विद्वानों ने कभी भी नहीं किया।इन सबके दादागुरु आचार्य सायण ने भी अथर्ववेद शौनकीय शाखा के भाष्य करने के पूर्व इस प्रकार से 19,20 काण्डों को परिशिष्ट नहीं माना। संक्षेप से हम उपरोक्त युक्तियों पर विचार करते हैं।

1. 20वां काण्ड ऋग्वेद से संग्रह किया गया है और इसका शेष अथर्ववेद से कोई सम्बन्ध नहीं क्या अच्छी युक्ति है। क्या 8वें काण्ड के सूक्तों में ऋग्वेद से संग्रह किया नहीं प्रतीत हुआ ? और इसी प्रकार पूर्व के काण्डों में भी कितने ही सूक्त संगृहीत किये जा सकते हैं। तो फिर 18 वें को अथर्ववेद का मानना और 20वें को पीछे का बनाया मानना हास्यजनक प्रतीत होता है। रही सम्बन्ध की बात पं० ह्विटनी ने हमें पूर्व 18 काण्डों तक में भी किसी एक सूक्त का दूसरे सूक्त से सम्बन्ध नहीं दर्शाया। फिर 20वें पर यह दोष देना एक बालबुद्धि का परिचय कराता है।

2. 19 वें काण्ड के पाठ का बिगड़ा होना दूसरी युक्ति है। इसका उत्तर यह है कि यह तो अपनी-अपनी मति के परिणाम हैं। पाश्चात्यों को जो पाठ बिगड़ा हुआ दिखाई देता है हमें तो वह वैसा नहीं दिखाई देता, वैदिक दृष्टि से वह विशुद्ध रूप ही है। लेखकों के प्रमाद से या व्याख्याता के पद -विपरिणाम से पुस्तकों में पाठ भेद हो भी जाया करते हैं, परन्तु वे मन्त्र संहिताओं में भी इसमें कोई परिपुष्ट प्रमाण नहीं।

3. प्रपाठक क्रम का न मिलना भी कोई 19,20 काण्डों के परिशिष्ट होने में कारण नहीं, क्योंकि प्रपाठक क्रम सार्वत्रिक और सर्वसंमत नहीं। अथर्व में तो काण्ड, अनुवाक, सूक्त और ऋचा इतने ही प्रायिक विभाग हैं। किसी पाठशील आचार्य ने प्रपाठक क्रम भी इसी प्रकार पीछे से बना दिया है जैसे सामवेद में अध्याय क्रम पीछे से लगाया गया है। यदि हस्तलिपियों की विस्तृत कथा लिखें तो विदित हो जायेगा कि बहुत कम हस्तलिपियां पूर्ण संहिता की प्राप्त हुई है। बहुतों में स्वर आदि ग्रन्थ के एक खंड में अंकित हैं दूसरे खंड में नहीं। फलतः अभी तक योरोपीयनों के हाथ में प्रपाठक क्रम से विभक्त 19,20 काण्ड नहीं मिले यह ठीक है परन्तु इससे अथर्ववेद में ये दो काण्ड नहीं हैं यह सिद्ध नहीं होता।

4. पुरानी अनुक्रमणी 18 काण्ड की मिलती है यह भी कोई युक्ति नहीं, क्योंकि बृहत्सर्वानुक्रमणी 20 काण्ड की भी मिलती है। वस्तुतः यह भी खण्डित ग्रन्थ से ही पं० लैन्मन को भ्रम हुआ है।

5. कौशिक सूत्र में विनियोग नहीं लिखे, अतः 19,20 काण्ड भी प्रक्षिप्त नहीं हो सकते। कारण, जिनके विनियोग नहीं उनको वह लिखता भी क्यों ? उनका पाठमात्र ही प्रयोजन है।

6. पंचपटलिका और उसके टीकाकार का केवल 18 काण्डों का उल्लेख भी अथर्ववेद के 19,20 काण्डों को परिशिष्ट नहीं बना सकता। दूसरा 17,18 काण्डों में पंचपटलिकाकार ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगा पीछा कर दिया है। इससे प्रतीत होता है कि यह पंचपटलिका शौनकीय संहिता की नहीं,प्रत्युत किसी और 18 काण्डों वाली अथर्वशाखा की है।

7. पैप्पलाद शाखा में 20 वां काण्ड उपलब्ध नहीं होता अतः वह भी परिशिष्ट सिद्ध नहीं होता। क्योंकि पैप्पलाद में 19वें काण्ड के बहुत से मन्त्र उपलब्ध होते हैं, तिस पर 19वें काण्ड को परिशिष्ट मानने का भ्रम तो पैप्पलाद ने काट दिया और जब लैन्मन महोदय ने स्वयं देख लिया है कि पैप्पलाद शाखा में 18वां काण्ड नहीं है तो 18 वां काण्ड भी परिशिष्ट क्यों नहीं माना। पं0 लैन्मन ने इस बात को लिख कर भी हल्की भाषा में टालना चाहा है।

8. पं0 ग्रिफिथ की प्रातिशाख्य वाली युक्ति भी संगत नहीं। क्योंकि वह तो व्याकरण का ग्रन्थ है। उसमें कोई उदाहरण 19,20 काण्डों में से नहीं आये इसलिए वे परिशिष्ट हैं, यह कितनी असंगत युक्ति है। यदि व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण देते हुए किसी ग्रन्थ भाग में से कोई उदाहरण न आवे तो क्या उसका वह भाग परिशिष्ट हो जाएगा? समझ में नहीं आता ! क्या प्रातिशाख्य में अथर्ववेद के सभी मन्त्र उदाहरण के रूप में धर दिये हैं ? क्या सभी सूक्तों में से मन्त्र प्रतीक आये हैं? नहीं। तो वे मंत्र और सूक्त परिशिष्ट क्यों नहीं माने जाते?

बस इस प्रकार से 19,20 काण्डों के सम्बन्ध में योरोपीयन विद्वानों के सभी तर्क संक्षेप से आलोचित कर दिये हैं।

आदि मन्त्र

व्याकरण महाभाष्यकार मुनि पतंजलि ने पस्पशाह्निक में (**"वैदिकाः खल्वपि 'शन्नो देवीरभिष्टय'। इषे त्वोर्जेत्वा।' अग्निमीळे पुरोहितम्। "अग्न आयाहि वीतये" इति पातंजलमहाभाष्ये।**) अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र '**शं नो देवीरभिष्टय**" माना है। परन्तु वर्तमान उपलब्ध अथर्ववेदसंहिताओं में प्रथम मन्त्र '**ये त्रिषप्ताः**' है। इसका समाधान यह है कि आदि मन्त्र 'ये त्रिषप्ताः' यही है। परन्तु अथर्ववेदियों में मंगल के रूप में प्रथम 'शं नो देवी' मन्त्र का पठ मात्र कर लिया जाता था। जैसा कि ह्विटनी और पं0 शंकरपांडुरंग, एम0 ए0 संग्रहीत हस्तलिपियों में से कई में पाया जाता है। हमने इसी रीति से आदि में 'शं नो देवी' मन्त्र पढ़ दिया है। दूसरे पैप्पलाद शाखा का प्रथम मन्त्र भी 'शं नो देवी' मन्त्र है और शाखाओं के ग्रन्थ सर्वथा ही प्राप्त नहीं हुए।

अथर्ववेद के शाखावेद

चरणव्यूह परिशिष्ट में अथर्ववेद का शाखा–भेद इस प्रकार लिखा है–

तत्र ब्रह्मवेदस्य नवभेदा भवन्ति। तद्यथा पैप्पलादाः। स्तौदाः। मोदाः। शौनकीयाः। जाजलाः। जलदाः। ब्रह्मवेदाः। दवदर्शा। चरणवैद्याश्च इति।।1।। तेषामध्यायानाम् ऋचो द्वादशसहस्राणि अशीति त्रिशतानि च। पर्यायिक द्विसहस्राण्यन्यांश्चैवाचिकान् बहून्। इति।।2।। एतद्ग्राम्यारण्यकानि षट् सहस्राणि भवन्ति।।3।।

ब्रह्मवेद के 9 भेद होते हैं– पैप्पलाद, स्तौद, मोद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवेद, देवदर्श और चारणवैद्य। उन सबके अध्यायों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12380 ऋचाएं, 2000 पर्याय सूक्त और अन्य भी बहुत से आचिक ऋग्गव हैं। ये ग्राम्य और आरण्यक मिलकर छः सहस्र होते हैं। विष्णुपुराण में–

अथर्वणामथो वक्ष्यं संहितानां समुच्चयम्। अथर्ववेदं स मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः।।1।। शिष्यमध्यापयामास कबन्धं मोपि तं द्विधा। कृत्चां तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्त्वान्।।2।। देवदशंसय शिष्यास्तु मेधो।[1] ब्रह्म वलिस्तथा। शौल्कायनिः पिप्पलादस्ताथाऽन्यो द्विजसत्तमः।।3।। पथ्यस्यापि त्रयः शिष्याःकृता यैद्विज सहिताः। जाबालिः।[2] कुमुदादिश्च तृतीयः शौनको द्विजः (शब्दकल्पद्रुमोद्धृतविष्णुपुराणोद्धरणे।)

शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेका तु बभ्रवे। द्वितीयां संहितां प्रदात्। सैन्धवाय[3] च संज्ञिने। सैंधवान्।[4] मुञ्जिकेशश्च द्वेधा भिन्नास्त्रिधा पुनः।।5।।

अथर्ववेद की शाखाओं के विषय में यह लिखा है कि – वेदव्यास के शिष्य सुमन्तु ने कबन्ध को पढ़ाया। उसने पुनः दो संहिताएं करके एक 'देवदर्श' को और दूसरी 'पथ्य' को दी। देवदर्श के चार शिष्य थे – मेध, ब्रह्मबलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद ! पथ्य के तीन शिष्य थे – जाबालि, कुमुदादि और शौनक। शौनक ने दो संहिताएं बना कर बभ्रु और सैन्धव का दीं, सैन्धव ने मुंजिकेश को दी। इस प्रकार वह दो संहिताएं भी तीन भेद में फट गयीं।

वाचस्पत्य बृहदभिधान में इन नौ शाखाओं का एक और भी रूप लिखा है। " अथर्ववेदस्य नव शाखाः। पैप्पलादा, शौनकी, दामादो, औप्ता ब्रह्मदा प्रशशौनकी (?), देवदर्शी, शरणविद्या चेति ; तेषामध्ययनं द्वादशैव सहस्राणि भवन्ति। कल्पे कल्पे पंचशतानि भवन्ति।"

उक्त कोष में ही अन्यत्र लिखा है– **अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति। पैप्पला, दानता, प्रदान्ताः स्नाता, स्नौताः, ब्रह्मदालाः, शौनकी, देवदर्शती, चरणविद्याश्च (दाता, प्रदाता, औप्ता, ब्रह्मदीवशी, वेदशी (?) (इति भाष्येन मतान्तरम्) तेषामध्ययनं पंचकल्पानि भवन्ति, नक्षत्रकल्पो, विधानकल्प, संहिताकल्पः, आंगिरसकल्पः, शान्तिकल्पश्चेति।'**

उक्त कोश में ही हेमाद्रिक अवतरण दिया है –

**अथो अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति।
पिप्पलादाः वर्त्मदाश्च भूतायनाःकातयस्तथा।
जज्वला ब्रह्मवेदाश्च शौनकी कनस्वी तथा।
वेद ऋषिः चौरविद्या तेषामध्ययनं शृणु।।'**

इन सब शाखा नामों की तुलना अगली सारणी में कीजिए।

।	अथर्व0 परि0	वि0 पु0	वाच0 1	वाच0 2	हेमाद्रि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1	पैप्लादा	पिप्पलादः	पैप्पलादा	पैप्पलाः	पिप्पलादाः
2	स्तौदा?				
3	मोदाः	मेधः मोदः, मौद्गः ?	दामोदा		
4	शौनकीयाः	शौनकः	शौनकी	शौनकी	शौनकी
5	जाजलाः	जाबालिः			जज्वला
6	जलदाः				
7	ब्रह्मवदाः	ब्रह्मबलिः	ब्रह्मदा	ब्रह्मदीवर्शी? ब्रह्मदीवर्शी?	वेदऋषि?
8	देवदर्शाः	देवदर्शः	देवदर्शी	देवदर्शती, वेदशी?	चौरविद्या? वर्त्तमदाः
9	चारणवैद्याः	कुमुदादिः बभ्रुः सैन्धवः सैन्धवायनः	चारणविद्या औप्ताः ?	चारणविद्या औप्ता ? दाता, दांता, प्रदाता, प्रदांता स्नौता? स्नाता?	भूतायनाः कातयः? कनस्वी?

उपरोक्त सारणी में स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब लेखक तुक लगा कर लिखने वाले हैं। इनमें से एक ने भी नव शाखाओं को नहीं देखा। इनमें पैप्पलाद और शौनकीय शाखाएं सर्वत्र समान हैं। शेषों के शुद्ध नाम भी नहीं मिलते। विष्णुपुराण की 'कुमुदादि' जलद शाखा प्रतीत होती है। वाचस्पेत्य प्रोक्त 'औप्त' 'स्तौद' शाखा है। हमारी सम्मति में ' ओप्त' ओर स्तौद या तौद तीनों नाम अशुद्ध प्रतीत होते हैं। यह स्नौत नाम से भी कहा गया है। कदाचित् यह शुद्ध शब्द श्रौत या स्नौत है। उपरिलिखित वर्त्मदाः, भूतायनाः, कातयः, कनस्वी इन 4 का पता ही नहीं चलता, ये क्या हैं।

इन सबका अध्ययन प्रमाण 1200 श्लोक परिमाण बतलाया है। चरण– व्यूह परिशिष्ट में इनका परिमाण 12380 बतलाया है। वाचस्पत्य के उद्धरण में **"कल्पे कल्पे पंचशतानि भवन्ति "** लिख दिया है। इसने पांचों कल्पों में 1500 और 9वीं शाखाओं में 12000 ऋचा का बोध होता है। परन्तु ये सब अभी जुबानी बातें हैं। इस प्रकार नपे नपाये ग्रन्थों का अब अभाव है।

वर्तमान अथर्ववेद में 5977 मन्त्र विद्यमान हैं। इस संहिता को भी पूर्वोक्त पांच कल्पों में संहिता कल्प के नाम से लिखा है। अभी ये सभी बातें अगले खोज करने वालों के लिए हम यहां ही छोड़ते है।

पांच उपवेद

अथर्ववेद के पांच उपवेदों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण (1.10) में किया है। सर्प वेद, पिशाचवेद, असुर वेद, इतिहास वेद और पुराण वेद ये पांच अथर्ववेद के उपवेद कहे हैं, उन उपवेदों के नियम में शतपथ ब्राह्मण (13.4.3. 6–13) में लिखा है– 1. वरुण आदित्य राजा की प्रजाएं गन्धर्व हैं। वे ये ही नवयुवा पुरुष हैं, उनके लिए अथर्वन् वेद हैं। 2. वैष्णव सोम राजा की प्रजा अप्सरायें है। वे सुन्दर स्त्रियां हैं। उनके लिए आंगिरस वेद है। 3. अर्बुद काद्रवेय राजा की प्रजाएं सर्प हैं, वे ये सर्प और सर्पविद्या जानने वाले हैं, उनके लिए 'सर्पविद्या वेद ' है। 4. कुबेर वैश्रवण राजा की सेनाएं रक्षः' हैं वे ये सेलग लोग हैं। उनके लिए 'देवजनविद्या वेद'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 5. असित धान्व राजा की प्रजा असुर हैं, वे ये कुसीदी (सूदखोर) है। उनका वेद माया वेद है। 6. मत्स्य मांसद राजा की प्रजा उदकचर हैं। वे ये मत्स्य और मत्स्यघाती जीव हैं उनका इतिहास वेद हे। 7. वैपश्यत राजा की प्रजा वयस् है। ये वे वायुविद्या के ज्ञाता हैं, उनके वेद पुराणवेद हैं।

इस शतपथ के उद्धरण में इन वेदों को इन–इन प्रजाओं का उपदेश करने का विधान भी किया है। अतः उस समय इन वेदों की पृथक् सत्ता प्रतीत होती है। नवयुवकों, स्त्रियों, सर्प, चिकित्सकों, पर्वत–निवासियों, व्यापारियों, समुद्रवासियों और वायुविहरण करने हारों के लिए उनके उपयोग के भिन्न– भिन्न वेद थे और वे गोपथ के मत से अथर्ववेद के उपवेद माने जाते थे।

इसके अतिरिक्त, महर्षि दयानन्द ने आयुर्वेद को अर्थववेद का उपवेद माना है। चरण व्यूह के मत से अथर्ववेद के उपवेद शस्त्र शास्त्र माने हैं। हेमाद्रि ने तन्त्रों को अथर्ववेद का उपवेद माना है।

हमारी अपनी सम्मति है कि शस्त्र शास्त्र, तन्त्र आदि का समावेश गोपथ प्रोक्त पांचों वेदों,उपवेदों में आ जाता है। इसलिए उनको पृथक् नहीं कहा गया। उक्त सभी विद्याओं के मूल सूक्त अथर्ववेद में हैं, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है। कौन सी विद्या किस स्थान पर कही गई है इसके लिए पाठक लोग अथर्ववेद की विषय सूची से ही देख सकेंगे और सुगमता से उस विषय को पा सकेंगे। इसी प्रसंग में हम महर्षि दयानन्द के इस सिद्धान्त को दोहराना चाहते हैं कि शाखा ग्रन्थ भी व्याख्या ग्रन्थ है। कदाचित् नव शाखाभेद विषयभेद से ही हों। जहां तक हमारा अनुमान है चारण–वैद्य शाखा में शायद चरक– विद्या या आयुर्वेद का विज्ञान हों देवदर्श शाखा में भौतिक विज्ञान हो, ब्रह्मवेद शाखा में ब्रह्मज्ञान, 'जलद' शाखा में जल विज्ञान, जाजल या जज्वलि में अग्नि विज्ञान हो। शौनक शाखा में विशेष रूप से व्यापक ब्रह्म की शक्ति का प्रदर्शन किया हो, मोद या मेध शाखा में आयु और बुद्धि वर्धन के उपाय दर्शाए हों, पैप्पलाद में ब्रह्म और जीव के कर्तव्यों का विशेष विधान हो। जब तक इन शाखाओं के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थ आदि उपलब्ध नहीं होते या प्रचलित कल्प ग्रन्थों से अतिरिक्त कोई रहस्य–ग्रन्थ नहीं प्राप्त होते तब तक हम इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। तन्त्रों में विद्युज्जिह्व तन्त्र, रसार्णव तन्त्र आदि बड़े विज्ञानपूर्ण ग्रन्थ हैं। सर्पवेद या विष विज्ञान (तक्षक –विद्या) भी कम रहस्य का विज्ञान नहीं है। असुर–वेद या माया–वेद अर्थवेद मालूम होता है। समुद्र यात्रियों और वायु विहारियों के लिए इतिहास और पुराणवेद का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि जैसी जैसी घटनाएं घटें उनसे इनको अपने कार्य के लिए विज्ञान का संग्रह करना चाहिए। शस्त्रास्त्र विद्या धनुर्वेद है।

अथर्ववेद के भाष्य और अनुवाद

हमारे सामने पं. ह्विटनी और पं0 ग्रीफिथ के अंग्रेजी अनुवादों के अतिरिक्त शंकरपांडुरंग सम्पादित सायण भाष्य और श्री क्षेमकरण त्रिवेदी रचित भाषाभाष्य उपस्थित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सभी भाष्यकार हमारे लिए आदर के पात्र हैं। हमने अपने तुच्छ श्रम से अथर्ववेद के रहस्यों को स्पष्ट करने का यत्न किया है। योरोप के अनुवादकों पर तो सायण के विचारों और कौशिकसूत्रों का गहरा रंग है। जिन काण्डों पर सायण का भाष्य प्राप्त नहीं है उन स्थलों पर प्रायः कौशिक सूत्र के विनियोग देखकर तदनुसार शब्दों और वाक्यों का अर्थ कर दिया है। इस प्रकार वेदमन्त्रों में से उत्कृष्ट अर्थ निकलता है या अबुद्धिपूर्वक ऊटपटांग अर्थ निकलता है इसकी सर्वथा परवाह नहीं की गई और जहां वाक्य समझ में नहीं आया वहां प्रश्नार्थक चिन्ह ? और उस पर 'अस्पष्ट' इत्यादि टिप्पणियां लगा दी हैं। तो भी शब्दार्थ रचना पूर्ण करने के लिए अर्थ अवश्य कर दिया है। उनके इस तरह के अनुवादों से वेदों का गौरव कम हो गया है और अनुवादों को पढ़ने वालों के चित्त में वेद के उल्टे सीधे अर्थ बैठ जाने पर फिर सत्यार्थ की प्रतीति होनी ही असम्भव हो जाती है।

उनसे बढ़ कर सायण–भाष्य है। सायणाचार्य भाष्यकारों में से एक प्रौढ़ भाष्यकार हैं। वे वैदिक–साहित्य के अगाध सागर है। परन्तु अथर्ववेद का भाष्य करते समय कौशिक सूत्र के विनियोगों में सायण के हृदय पर भारी शृंखलाएं बांध दी हैं। इसलिए सायण किसी स्थान पर स्वतन्त्र वेद–भाष्य न कर सके, प्रत्युत उत्तम–उत्तम सूक्तों का भी ऐसा अनर्थकारी अर्थ कर दिया गया है जिससे वेद की शिष्टता में भी संदेह होने लग जाता है। और इसी कारण सायण को बहुत से स्थलों पर अन्धविश्वास और अज्ञानपूर्ण अर्थ करने पड़ गये हैं जैसे अभीवर्त मणि आदि जड़ पदार्थों पर शत्रुनाश, राष्ट्रवृद्धि करने आदि के विशेषणों का लगा देना (अथर्व0 1.29 सू0) स्त्रियों के दुर्भगाकरण आदि (अथर्व. 1. 14) दुष्टाचारियों के अश्लील कार्यों का मन्त्रों में से अर्थ निकाल देना, ऊटपटांग कार्य से बड़े– बड़े रोगों को दूर भगाने की चेष्टा करने परक अर्थ (अथर्व0 1.22) करना आदि–आदि, कौशिक सूत्रोक्त विनियोगों के वशीभूत होकर सायणाचार्य के लिए अनर्थों का अच्छा नमूना है। हमने अपने भाष्य में स्थान–स्थान पर सायणकृत अर्थों की त्रुटियां दर्शाई हैं। इसी प्रकार विनियोगों के चक्र में योरोपीयन अनुवादक भी पड़े हुए हैं।

वर्तमान समय में श्री पं. क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी ने जो अथर्ववेद का भाष्य रचा है वह स्वतन्त्र और अन्यों की अपेक्षा अधिक गम्भीर और युक्तिपूर्ण है। परन्तु लेखन शैली कई स्थानों पर प्रति शब्दानुवाद करते हुए इतनी अस्पष्ट हो जाती है कि नीचे लिखे भावार्थ और शब्दों में भारी अन्तर आ जाता है। और बहुत से अस्पष्ट स्थलों पर व्याकरण के बल पर अर्थ कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि वेद के ऊपर पं. क्षेमकरणजी का किया श्रम अवश्य प्रशंसनीय है।

अथर्ववेद में जादू टोना

कौशिक सूत्रों के विनियोगों ने ही योरोपीयन विद्वानों और सबसे प्रथम सायण, तदनुसारी अन्य विद्वानों और सर्वसाधारण जनता तक के बीच में यह जबर्दस्त भ्रम फैला दिया है कि अथर्ववेद में 'जादू टोना' बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक है। परन्तु इस स्थल पर हमें आश्चर्य से कहना पड़ता है कि हमें समस्त अथर्ववेद में किसी स्थान पर भी जादू–टोना प्राप्त नहीं हुआ। भ्रमनिवारण के लिए हम कुछ दिग्दर्शन कराते है।

1. प्रथम कांड के प्रथम सूक्त का विनियोग 'मेधा–जनन' कर्मों में किया गया है। कौशिक ने मेधाजनन कर्म बहुत से गिनाये हैं जैसे गूलर, ढाक, वट आदि की समिधाओं का आधान करना, धान, जौ,तिलों की आहुति देना, खीर, भात आदि पुष्टिप्रद पदार्थ खाना, उपाध्याय को भिक्षा देना, सोते हुए उपाध्याय के कान में सूक्त का जप करना, घी मिले धान्यों का होम करना, तिल धान की आहुति कर शेषों का खाना, तोता मैना आद की जिह्वा का बन्धन और उनको खिलाना इत्यादि। उन कार्यों को करते हुए **'ये त्रिषप्ताः'** इत्यादि सूक्त को जपना चाहिए। इसी प्रकार उपनयन के दिन विद्यार्थी इसका जप करें। ग्राम सम्पत्ति की इच्छा से इस सूक्त से समिदाधान करें। समस्त सम्पत्ति चाहने वाले इस सूक्त से अपने बायें हाथ से रक्त निकाल उससे दधि, घी, मधु, जल मिलाकर खावें। युद्ध से शत्रु के हाथियों को भगा देने के लिए इसीं सूक्त से उचित उपाय करें। पुष्टिकर्म, तेजःप्राप्ति पुत्र प्राप्ति आदि सभी कार्य इस सूक्त के करने लिखे गये हैं।

परन्तु पाठक देख सकते हैं कि सूक्त के चारों मन्त्रों में कहीं भी उक्त कार्यों का उल्लेख नहीं है। सारे सूक्त में प्रथम में बल प्रार्थना, द्वितीय में ज्ञान प्रार्थना और तृतीय में विद्यावृद्धि की प्रार्थना की गई है। परन्तु कल्पकार ने बुद्धिवर्धक बल और वीर्य से सम्बन्ध सभी कार्यों से इस सूक्त का सम्बन्ध कर दिया है। कल्पकार क्योंकि केवल क्रिया मात्र का निर्देश करता है और क्रिया और फल से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दर्शाता क्योंकि क्रिया और फल का सम्बन्ध दर्शाना उसका कार्य नहीं, वह रहस्य होने से आचार्य का कर्त्तव्य है। अतः सर्व साधारण के सामने यह एक जादू के समान प्रतीत होता है और लोग उस कर्म को अन्धविश्वास से अदृष्ट द्वारा फलजनक मान लेते हैं। और कोई मन्त्र का बल या कोई मन्त्रोक्त देवता का प्रसाद मान लेते हैं। ये विनियोग इस प्रकार से बड़ा अनर्थ फैलाने वाले हुए हैं। कल्पकार कौशिक ने जितने कर्म मेधाजनन या बुद्धि–उत्पादक बतलाये हैं उनमें कितनी सत्यता है यह हमारा यहां विषय न होने से इस प्रसंग में हम कुछ नहीं कहते, तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि कौशिक सूत्रोक्त विधान अपने मूल में एक सत्य रखते हैं। वह सत्य सर्वत्र एक–सा नहीं है, प्रत्युत भिन्न–भिन्न प्रकार का है। कल्पों का रहस्यों के सहित ज्ञान करने से उन तत्त्वों का पता लग सकता है। जैसे इसी स्थान पर देखिए – वेद में 'वाचस्पति' और 'वसोष्पति' आचार्य और परमेश्वर से शरीर में बलों की और श्रुत या वेदोपदेश को धारण करने की प्रार्थना की है। प्रथम सूक्त के चार मन्त्रों में विचार या दृढ़ संकल्प किया है। पर उसको प्राप्त कैसे करें यह प्रश्न उठता है। कल्पकार उसका उपाय दर्शाते हैं। जैसे – 1. विद्यार्थी गूलर, वट, ढाक की समिधाएं अग्नि में रखें अर्थात् जिस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि में काष्ठ रखने से शीघ्र जल कर प्रकाशित होता है उसी तरह वह भी गुरु रूप अग्नि के संग से ज्ञानवान् हो जाय। 2. धान, जौ, तिलों की आहुति दे, अर्थात् जिस प्रकार ये पदार्थ अग्नि में पड़ कर अधिक गन्ध देतेऔर शुद्ध करते हैं उसी प्रकार आचार्य के संग से तुम भी अधिक गुण प्राप्त करो। 3. खीर आदि पुष्टिकारक पदार्थ बुद्धि और बल को बढ़ाते ही हैं। 4. तोता मैना आदि की जिह्वा का बन्धन और उनको खिलाना। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन जन्तुओं को अन्य वनैले जीवों के संग न रख कर बार-बार एक ही पाठ पढ़ावे और शेष समय उनका मुंह बांधे रखने से वे अच्छा पढ़ जाते हैं इसी प्रकार विद्यार्थी अपनी जिह्वा को वश करें और व्यर्थवाद न करके वेदाध्ययन का अभ्यास करें तो उनकी बुद्धि और वाणी बढ़ेगी। 5. सम्पत्ति आदि प्राप्त करने के लिए भी बुद्धि चाहिए, युद्धादि विजय और शत्रुओं के हाथी आदि के लिए बुद्धि और बल के अद्भुत प्रयोगों की आवश्यकता है। उस अवसर पर यदि ईश्वर से बल की प्रार्थना करें तो क्या असम्भव बात है। इस प्रकार कल्प ग्रन्थ सार्थक होता है। परन्तु कल्पोक्त विनियोग वेद के अर्थो के नियामक हैं ऐसा नहीं माना जा सकता, प्रत्युत वेद मन्त्र का अपना स्वतन्त्र अर्थ रह कर भी कल्पोक्त क्रिया साधनों को अपने साथ गौण रूप से जोड़े रख सकता है।

2. 'भगम् अस्या वर्चः' (कां0 1. सू0 14) इस सूक्त को कौशिक सूक्त ने स्त्री या पुरुष के दौर्भाग्य करने के लिए उनकी भोगी हुई दातुन, गेंद, माला, केश आदि को गाड़ते हुए पढ़ने का विनियोग लिखा है। यहां कौशिक का भूत आचार्य सायण पर बड़ी प्रबलता से चढ़ गया है। खेंच तान कर सूक्त के चारों मंत्रों का अर्थ उधर ही लगाया है। पं0 ग्रीफिथ और ह्विटनी भी उधर ही बह गये हैं। इस अवसर पर हमें हर्ष से कहना पड़ता है कि पं0 वेबर, लुडविग और जिम्मर आदि महोदयों ने स्वतन्त्र होकर इस सूक्त को विवाहपरक लगाया है। इस सूक्त की वास्तविक शोभा भी विवाहपरक अर्थों में ही है। जो मेरे अथर्वभाषा भाष्य में देखने से विदित होगी। वेद जैसे पवित्र धर्म ग्रन्थ से स्त्री के दौर्भाग्य करने की घृणित शिक्षा प्राप्त ही नहीं हो सकती। स्थानाभाव से हम यहां वेद के प्रत्येक शब्द पर किये अनर्थों को खोल कर नहीं बतला सकते। इसके लिए एक विशाल ग्रन्थ चाहिए।

3. 'ये अमावस्यां रात्रिम्' (अथर्व0 1.16) सूक्त को कौशिक ने शत्रु को मारने के लिए सीसे के चूर्ण से मिला अन्न खिला देने के लिए विनियुक्त किया है। इस सूक्त में भी पिशाची के सन्तानों और 'अत्रि','यातु' आदि नामों से सायण ने रक्षः पिशाच आदि लिये हैं। पं0 ग्रीफिथ ने भी 'पिशाच' शब्द (Impus and Goblins)से भूत, प्रेत के लिए हैं। 'सीस' शब्द से पं0 ह्विटनी महोदय ने सीसे का ताबीज लिया है। पं0 ग्रीफिथ ने 'सीस' शब्द से सीसे का टुकड़ा ले लिया है और मन्त्र के अर्थ कर दिये हैं। यह बतलाने का यत्न नहीं किया कि अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवों का सीसे से क्या सम्बन्ध है, वह सीसा जत्थे-जत्थे बनाकर आक्रमण करने वाले यातुधानों को कैसे बेधेगा। कौशिक ने तीन उपाय शत्रु के नाश के बतलाये हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो शत्रुओं को बांध कर सीसे का चूर्ण उनको खिला-खिला कर मारे, दूसरे उनको लोहे की बेड़ियां पहना दे, तीसरे बांस की छड़ी (बेंत) से ठोके। परन्तु इन तीन कार्यों का मन्त्र-गत वाक्यों से सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः देखा जाय तो सीसे की गोलियां बना कर, बारूद देकर अग्नि के बल से दुष्ट शत्रुओं का मुकाबला करने का वेद ने उपदेश किया है।

4. 'अनु सूर्यमुदयताम्0' (अथर्व0 1.22) इस सूक्त में हृद्रोग और कामला की चिकित्सा का उपदेश किया है। परन्तु कौशिक सूत्रों में इस सूक्त को पढ कर उक्त रोगों के नाश के लिए लाल बैल के रोम से मिले जलपान करने, लाल गोचर्म का ताबीज बांधने और हल्दी से रंगे पीले भात रोगी को खिला कर, उसके जूठे भातों से रोगी को लेप लगाकर चारपाई पर बैठाकर, नीचे तोते, खुटबढ़ई और हरी चिड़ियाओं की बाई टांग में रस्सी बांधना आदि लिया है। उसी को लक्ष्य में रखकर सूक्त के मन्त्रों का अर्थ कर दिया है और किसी भी पंडितवर ने उस क्रिया का और तोतों आदि का हरिमा पांडुरोग दूर करने के कार्य से सम्बन्ध दर्शाने की चेष्टा नहीं की। इसका कारण यह है कि उन पर कौशिक सूत्रों का प्रभाव रहा है। वे सभी वेद में विद्यमान आयुर्वेद के तत्त्व को नहीं जान सके। कल्पकार ने तो कामला रोग की शान्ति के कुछ उपायों का जो उसके समय में किये जाते होंगे संग्रह कर दिया ओर सूक्त का विनियोग भर दर्शा दिया है पर सूक्त के रहस्य को तो दर्शाया नहीं। परन्तु इन भाष्यकारों नें बादरायण सम्बन्ध में उसमें तोतों और खुटबढ़इयों पर रोग चिपटाने का अर्थ निकाल लिया। जो आयुर्वेद का गूढ़ ज्ञान प्रस्तुत पुस्तक में दर्शाने का यत्न किया गया है कि सूर्य की किरणों से और शुक्र आदि वृक्षौषधियों से किस प्रकार ये रोग नष्ट होते है। इसी प्रकार 23,24 सूक्तों में भी चिकित्सा का रहस्य दर्शाया गया है। 25 में ज्वर की चिकित्सा और निदान कहा गया है।

अपने भाष्य की विशेषताएं दर्शाने के लिए हमने दृष्टान्त के रूप में 4-5 सूक्त उठाकर रखे हैं। वस्तुतः हमारा प्रायिक मतभेद तो सभी सूक्तों के अर्थों से न्यूनाधिक रूप में है। खास कर जब कि योरोप के विद्वान् देवता वाचक शब्दों से केवल देवता भर मानते हैं और मन्त्रों को बुद्धिपूर्वक वाक्य न मान कर आजकल के नजरंबन्दी, जादूगरी या शोबदाबाजी के खेल करने वालों और ओझा झाड़ फूंकी करने वालों के अण्ट सण्ट जन्तर मन्तर के समान मान बैठे हैं।

विनियोग

तब प्रश्न यह उठता है कि वे विनियोग किस प्रयोजन से हैं। कौशिक सूत्र, वैतान सूत्र, शान्तिकल्प आदि नाना कल्प ग्रन्थों में सूक्तों के पाठ जप आदि का विनियोग किस प्रयोजन का है ? उसका उत्तर यही है कि विद्वानों ने वेदविद्या की रक्षा के लिए वैयक्तिक,सामाजिक और राष्ट्रीय विशाल कार्यों तक में विनियोगों द्वारा पद्धतियां रची हैं। परन्तु उन विनियोगों के होने से क्या वेदमन्त्र के तत्त्वार्थ में भेद थोड़े ही आ सकता है ? इसी कारण एक - एक सूक्त के बीस-बीस विनियोग भी हैं जैसा हमने प्रथम सूक्त पर विवाद करते हुए अपनी इस भूमिका में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शाया है। कौशिक सूत्र या सायण भाष्य में भी यह बात देखी जा सकती है। परन्तु तो भी वेदमन्त्र का एक ही सत्यार्थ है। कल्पकार कौशिक आदि ने अपने काल के लोक प्रचलित विनियोगों को संग्रह कर लिया है। प्राचीन ग्रन्थ लुप्त हो जाने पर फिर तो नवीन गढ़न्त की परम्परा सी चल पड़ी। बाद में विनियोगों की तो इतनी अन्ध परम्परा चल पड़ी है कि एक –एक शब्द का साम्य देखकर भी मंत्र विनियुक्त होने लगे। जैसे श्रावणी कर्म में दधि सत्तु खाने के समय **'दधिक्राव्णोरकारिषम्0'** इस मन्त्र का पाठ गृहय सूत्रों में और कर्म काण्ड समुच्चयों में चल पड़ा। यदि पौराणिक विनियोगों को ले तो और भी हास्य होता है। पं0 ह्विटनी आदि ने स्वयं स्थान–स्थान पर लिख दिया है कि यहां विनियोग असंगत, अबुद्धिपूर्वक है।

इसके अतिरिक्त योरोप के विद्वानों के चित्त में यह कभी बैठता ही नहीं कि सामान्य रूप से या विशेष रूप से अथर्ववेद के मन्त्र किसी प्राचीन आर्षकाल में विशाल लोकसमाज के ज्ञानप्रद गुरु, पथदर्शक, कानून, आचार और रहस्य विद्या के मूलसूत्र भी हो सकते हैं। इसी कारण उनको वेद के काल की सभ्यता को परम उच्च सभ्यता स्वीकार करने में भी संकोच होता है। हमारा विचार है कि एक काल में वेद परम मान्य ग्रन्थ,सर्वोपरि कानून और प्रभुग्रन्थ थे और अपने काल के बाद में भी जनता के मनों और ऋषि मुनियों और बड़े–बड़े दिमागों के आचार्यो पर 'श्रुति' या वेद का प्रभुत्व रहा है और उसी का यह फल हुआ कि यद्यपि कालक्रम से लोगों के आचार विचार और साधन में भी परिवर्तन हो गये तो भी वेद महामान्य ही बने रहे। अब हम पाठकों के ज्ञापनार्थ संक्षेप से इस खण्ड के अन्तर्गत काण्डों में से ही वेदप्रतिपादित कुछ विषयों का दिग्दर्शन कराते हैं।

कुछ विषयों का दिग्दर्शन

1. गृहस्थ प्रकरण

वर्तमान के पाश्चात्त्य प्रभावों में पले दिमागों का यह एक विचार है कि प्राचीन आर्षकाल में विवाह बन्धन नहीं था। स्त्रियां उच्छृंखल रूप से जिस किसी के साथ हो लेती थीं और कोई समाजहित के लिए विवाह का कानून नहीं था। विवाह का बन्धन बाद में चला है। इसकी पुष्टि में वे प्रायः महाभारत में लिखी उद्दालक की माता की कथा कह दिया करते हैं। परन्तु हमें प्रतीत होता है कि कथाएं विवाह–बन्धन के अभाव की सूचक नहीं प्रत्युत किसी उच्छृंखल माथे की मनगढ़न्त हैं। क्योंकि वेद में हमें दृढ़ विवाह बन्धन, स्वयंवर, उत्तम सन्तान उत्पत्ति और परस्पर की प्रतिज्ञाएं आदि के वे सब कानून उपलब्ध होते हैं जो एक उत्तम जनसमाज की व्यवस्था के लिए आवश्यक हैं जैसे – पिता कन्या को उत्तम,संयमी युवा पुरुष के हाथ दान करे जिससे कि वह कुलपालिका बने। **'एषा ते कुलपा राजन् ताम् उ ते परि ददमसि'**(1.14.3)। यह कन्या तेरी स्त्री बन कर रहे– **'एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम'** (1।14।2) वह विवाह बन्धन का गठजोड़ा, कन्या के माता पिता या भाई के घर में बंधे। **'सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः।'** (1.14.2) कन्या पति को स्वयं वरण करे और पति भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्या को वरे, दोनों का परस्पर अभिलाषा से विवाह हो **एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्'** (2.30.5) अर्थात् यह स्त्री–पति अपने रक्षक पतिदेव को प्राप्त करना चाहती है और मैं पुरुष सन्तानोत्पत्ति करने वाली स्त्री को पाना चाहता हुआ यहां यज्ञमण्डप में आता हूं। पत्नी पति को इतना चाहे कि पति को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास न जावे और पति भी उससे ऐसा प्रेम करे कि वह दूसरे को मन में न रखे। **'एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो। यथा मत् न अपगा असः'** (2.30.1) पति पत्नी एक दूसरे का वहन करें, अर्थात् विवाह करें दोनों की धन सम्पति एक हो, धर्म,कर्म, ऐश्वर्य सब एक हों वे एक हों, वे एक होकर रहें और प्रेम से एक दूसरे को चाहते हुए रहें। **'सं चेन्नयाथः अश्विनौ, कामिना सं च वक्षथः। सं वां भगासो अग्मत। सम् चित्तानि। सम् उ व्रता।।** (2.30.2) विवाह को नियत करने के लिए प्रथम एक विद्वान् ब्राह्मण कन्या के घर आवे वह सब वरों से उत्तम वर के गुण बतलावे ताकि कन्या उसे अपना पति चुन सके। **'आ नो अग्ने सुमतिं सम्भलो गमद् इमां कुमारीं सह नो भगेन।'** (2.36.1) स्त्री पति को प्राप्त करे, उत्पादन में (सोम) समर्थ पति उसको सफल मनोरथ को, वह रानी बनकर उत्तम पुत्र जने, स्त्री पति को प्राप्त करके शोभा प्राप्त करे। **'इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। सुवाना पुत्रान् महिषी भवति गत्वा पतिं सुभगा विराजतु।।'** (2.36.3) विवाह यदि केवल पति पत्नी के परस्पर प्रेम से रहने भर का आपस का समझौता हो तो वह कोई प्रबल–दमन न होने से टूट भी सकता है। परन्तु नहीं। वेद की दृष्टि में विवाह करना सामाजिक सुव्यवस्था का कार्य है जिस पर राज–नियम भी होना आवश्यक है। वेद में राजा का यह कर्तव्य बतलाया है कि वह पति पत्नी के बन्धन को दृढ़ करे। **'सं जास्पत्यं सुयममाकृणुष्व।'** (7.73.10) हे राजन् ! दम्पति के सम्बन्ध को तू खूब दृढ़ बना।

वेद इस गृहस्थ का उत्तम परिणाम पुत्रोत्पत्ति बतलाता है। स्त्री को बराबर चिरंजीव पुत्रों की माता बनाने का उपदेश है– **'भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्'।** (3.23.3)स्त्री पुत्रों को प्राप्त करे, पुत्र उसको सुखकारी हों और वह पुत्रों को सुखकारी हो। **'विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यः तुभ्यं शम् असत् शम् उ तस्मै त्वं भव'**(3.23.5) यदि स्त्री बंध्या हो तो उसके बांझपन को दूर करे।

'येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत्त्वत्'(3.23.1)

यदि गर्भ गिर जाय तो औषधियों से उसकी रक्षा करें–

'तास्त्वां पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्तु ओषधयः।(3.23.6)

गृहस्थ बसा कर स्त्री घर का पालन करे वह घर के सब पुरुषों और पशुओं का पालन करे और वह उन्हें पुष्ट करे। **'शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा'** (3.28.3) **पशून् यमिनि पोषय** (3.28.4) क्या गृहस्थ के इन नमूनों को देखकर कोई कह सकता है कि ये आदर्श जंगलियों के हैं ? हां, वर्तमान सभ्यता के अभिमानी लोग अपने पर जरा आंख डालें तो उनको योरोप में होने वाले घोर व्यभिचार और विलासिता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए शर्म अनुभव करनी चाहिए। हमें गर्व है कि इन पापों की शिक्षा वेदों में नहीं है।

2. कृषि, व्यापार, विज्ञान आदि

सभ्यता का दूसरा दृश्य वेदोपदिष्ट कृषि, व्यापार, व्यवसाय, उद्योग और वेतन आदि के नियमों में दिखाई देता है। संक्षेप में (1) वणिग् व्यापार में बड़े धनाढ्य लोग प्रवृत हों। **इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि।** मार्ग में चोर लुटेरों का दमन करके व्यापार को अभय कर दिया जाय। **नुदन् अरातिं परिपन्थिनं मृगं'** (3.15.1) अपना माल बेचकर दूसरे देशों से धन लावें। **'यथा क्रीत्वा धनमाहराणि'** (3.15.2) व्यापारियों के लिए राजा रास्तों में पड़ावों का उत्तम प्रबन्ध करे। **इमामग्ने शरणिं मीमृषः नो यमध्वानमागाम दूरं।'** हम क्रय–विक्रय के ऐसे दर नियत करें जिससे हमें लाभ हो। **'शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।'** (3.15.4) सौदा परस्पर की सलांह से पटा लें – **'इदं हव्यं संविदानौ जुषेथाम्।'** व्यापार और उससे पाया नफा सबको सुखकर हो, उससे किसी को कष्ट न हो। **'शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च।'** जिस धन से हम व्यापार करें वह धन बराबर बढ़े, पूंजी कमती न हो। **येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।** और राजा घूसखोर अधिकारियों को व्यापारों में बाधक न होने दे। **अग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध'।** प्रत्युत राजा उनको स्वयं नौकरी दे।

जब समस्त सभ्यताभिमानी योरोप जंगली होकर केवल मछली और जंगली जानवरों के शिकार पर जीवन बिताता था उससे भी कितने युग पूर्व वेद में कृषि के वैज्ञानिक उपदेश हैं– **'सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।** '(3.17.1) विद्वान् लोग हलों को चलावे और जोड़े के बैलों को जोतें। **युनक्त सीरा वियुगा तनोत। कृते यौनौ वपतेह बीजम्'** (3.17.2) हल जोतो और जोड़े खोल दो और फिर हल से जुती भूमि में बीज बो दो।' **विराजः श्नुष्टिः सभरा असत्'** तब खूब गाढ़ी अन्न की फसल हो और **नेदीयः इत् सृण्यः पक्वमा यवन्** पके धान को दरातियों हंसुओं से काट लो। कृषि से ही सब पदार्थ प्राप्त हैं। **'उदिद् वपतु गामविम्0'** (3.17.3)

मांसभक्षी संसार को सिवाय मांस से अपना पेट भरने के कुछ नहीं आता। परन्तु वेद धान्य और पुष्टिकारक औषधियों के संग्रह का उपदेश करता है। **'पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः। अथो पयस्वतीनामा भरेह सहस्रशः।।**('अथर्व. 3.24.1) औषधियां पुष्टि करती हैं, मेरा वचन पुष्टिकारक है, मैं हजारों पुष्टिकारक औषधियों का संग्रह करूं। अन्न उत्पन्न करने के लिए राजा हजारों श्रमी लगावे और फसलें कटावें तो संसार भर के खाने का अन्न उत्पन्न करने के लिए राजा हजारों श्रमी लगावे और फसलें कटावे तो संसार भर के खाने का अन्न पा सकते हैं। **'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर। कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।।'** (3.24.5) लोकोपकार के लिए जंगल के जन्तुओं का पालन करने का भी उपदेश किया है। **'सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः सं उ पूरुषः।'** (1.26.5)

हम गो, दुग्ध, धान्य एकत्र करें, वीरों को उत्पन्न करें, स्त्रियों को घर पर ला कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसें। आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्। आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्।। (2.26.5)

इन सब उन्नतियों के होते हुए उनको व्यवस्थित करने के लिए प्राचीन आर्ष काल में विज्ञान की उन्नति भी पर्याप्त रूप में थी। उदाहरण के तौर पर वेद ने जलों का **'उदक'** नाम इसलिए बतलाया है कि देव–विद्वान् पुरुष बहते हुए जलों को भी ऊपर की भूमियों पर पहुंचा देता है। **'एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।'**

जलों के भीतर भी दो गुण हैं अग्नि और सोम। क्या यह तेजाब बनाने वाली हाइड्रोजन और ओषजन दो तत्त्वों की सूचना तो नहीं है।

'अग्नीषोमौ बिभ्रत्यापः इत्ताः ' (3.13.5) जलों को जहां वैज्ञानिक विद्वान् प्रयोग में लाता है। वहां वे बलपूर्वक काम करते हैं।

'इहेत्थमेत शक्वरीः यत्रेदं वेशयामि वः। (3.13.7)

विद्युत् के विषय में वेद ने लिखा है कि विद्वान् लोग बिजली को शत्रुओं के ऊपर शस्त्र के रूप में फेंक कर प्रयोग करते हैं।

यां त्वां देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्।' (1.13.4)

बन्दूकों को बनाने के विषय में वेद ने लिखा है कि दुष्टों के नाश के लिए सीसे की गोली बनाकर अग्नि–बारूद से मारें। **'तं त्वा सीसेन विध्यामः।'** (1.16.4) इसी प्रकार और भी वैज्ञानिक बातों को लिखा है।

3. आयुर्वेद

आयुर्वेद तो अथर्ववेद का उपवेद है, इस सम्बन्ध में वेद में बहुत विज्ञान उपलब्ध होता है। जैसे आरोग्यता प्राप्त करने के लिए शिरोभाग खांसी और शरीर के नस–नस में बैठे क्षय को दूर करने के लिए रोगी जंगल और पर्वत के वायु का सेवन करे।

'वनस्पतीन् सचतां पर्वतांश्च' (1.12.3)

शरीर में रोग बाल्यकाल से ही दूर करने चाहिए, खुली वायु वाले रोशनीदार मकान होने चाहिए। (2.10.4,5) प्रकाश और शुद्ध वायु से राजयक्ष्मा तक का नाश हो जाता है। (2.10.8) रोगकारी जन्तुओं का नाश करने का वेद ने बड़ी स्पष्टता से उपदेश किया है।

'तयां संपिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा।'
(2.31.1)

आंतो, पीठ, त्वचा आदि में फैलने वाले रोग–कीटों को भी नाश करे (2.31.4)। रोगकारी कीट जल, भोजन, पर्वत, वन और पशुओं में भी पकते हैं। वे हमारे शरीर में घुस जाते हैं, उनको भी नाश करें। (2.31.5) इसी प्रकार इन रोग–कीटों की पसेलियों को जड़ मल से नष्ट करें उनके विष के अंगों को नष्ट कर दें (2.23. 2–6)। देह के सभी अंगों में से यक्ष्मा को दूर करे। (2.23.1)

महारोगों के नाश करने वाली औषधियों का वर्णन करते हुए पृश्निपर्णी नामक औषधि से नाना प्रकार के घृणाजनक रोग दूर करने का उपदेश किया है। (2.25.1–5) ज्वर को नाश करने के लिए 'कूठ' औषधि का भी वर्णन किया गया। इसी से शिरो रोग चक्षु का भी उपाय बतलाया है (5.4.1–10) नपुंसकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दूर करने के लिए वृष्य औषधियों का प्रयोग दर्शाया है (4.4.1–8)विष की चिकित्सा के लिए 'ब्राह्मण' नामक अपूर्व औषधियों का प्रयोग है और भी नाना प्रकार के विषों की चिकित्सा (4/7/1–7) के लिए 'प्रक्री' नामक औषधि का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त ऐसे–ऐसे प्रयोग भी दर्शाये हैं जिनमें पूर्ण सर्पविद्या का विधान किया है जैसे आंख की ज्योति से सर्प के विष को रोकने और बीसियों सर्पो के विषों को रोकने वाले प्रबल प्रतिविषों के प्रयोग करने का दिग्दर्शन कराया है (5.13.1–11)। इसके अतिरिक्त प्रसवविद्या का भी वेद ने उपदेश किया है। (1.11.1–6)

4. राजनीति और राष्ट्रपालन

प्रजा के पालन और उसमें सुख शान्ति के स्थापन के लिए राजा का स्थापन, उत्तम राजा के गुणों का वर्णन, दुष्टों का दमन, दण्डविधान, राजसभा, पर राष्ट्र–विजय आदि का बराबर उपदेश किया है। उसको हम विस्तार से क्या दिखायें, विषय सूची से ही इन विषयों को प्रस्तुत भाष्य में पा सकेंगे। तो भी एक दो बातों पर पाठकों का ध्यान खेंचता हूं। (1) वरुण वह राजा है जो प्रजा को दुष्टों से बचाता है और जिसको प्रजाएं स्वयं अपना राजा वरुण करती हैं। वह राजप्रबन्ध के लिए और दुष्टों का पता लगाने के लिए गुप्तचर विभाग रखे। उसके स्पर्श (स्पाईज) सर्वत्र विचरें। सत्यवादी को वे न पकड़ें प्रत्युत असत्य वादियों को पकड़ लें (4.6.6,7)। राजा अपराधी को जब दण्ड दे तो नियम पूर्वक अपराधी के मां,बाप, वंश और कुल का नाम और दण्ड की धारा लिखकर दण्डकर्ता अधिकारी के हाथ सौंपे (4.16.9)। इस प्रकार की व्यवस्थित शासन प्रणाली का उपदेश वेद ने किया है। हत्याकारी पुरुषों के लिए यही विधान किया गया है कि अपने किये का वे वही दण्ड पावें जैसा वे औरों से करते हैं (2.24.9–8) अपामार्ग विधान में कण्टक शोधन प्रकरण को बड़ी खूबी से रखा है (4.17–19)। लोगों को गुप्त हिंसाकारी प्रयोगों से मारने वालों का दण्ड विधान करते हुए वेद ने कृत्या–प्रतिहरण सूक्त में दुष्टों का विस्तार से वर्णन किया है। गुप्त हिंसा के प्रयोगों को ही वेद ने 'कृत्या' शब्द से कहा। उनको दण्ड देने के लिए 'कृत्या' का उन पर ही प्रयोग करने का उपदेश किया है, अर्थात् राजा उनको भी उसी दण्ड से दण्डित करे। परन्तु भोले लोग उसको टोना या लोटा आदि चलाने की कोई जादू की तदबीर समझ लेते हैं। इसका विवरण कुछ अपामार्ग –विधान में और (4.19) में और विशेष रूप से (5.31.1–12) में किया है।

5. सदाचार

हम आर्यगण वेद के दर्शाये आचार को आदर्श सभ्यता स्वीकार करते हैं और विकासवाद के प्रबल प्रभाव में पले योरोपियन लोग अभी उसको प्रारम्भिक जंगली सभ्यता बतलाना चाहते है। परन्तु अब हम संक्षेप से बतलाते हैं कि आदर्श वैदिक सदाचार की क्या शिक्षा है। 'मनुष्य सदा अपने को सर्वप्रिय बनाने का यत्न करें और मधुर वचन कहे उसका घर में आना, जाना और बोलना आंखो से देखना तक भी मधुर प्रतीत हो (1.34.3,4) गृहस्थ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष ऐसी प्रेममय चक्षु से अपनी पत्नी को देखें कि पत्नी प्रेम की मधुरता के वश होकर दूसरे के पास जाने की इच्छा तक न करें। (1.34.3,5) परस्पर एक दूसरे के प्रति एकहृदय,एकचित्त, द्वेष रहित होकर रहें, एक दूसरे के प्रति इतना प्रेम करें जैसे गाय अपने बछड़े से प्रेम करती है। उसी प्रेम से एक दूसरे के पास जाया आया करें। पुत्र सदा पिता की आज्ञा पालन करे, माता का सम्मान करे। पति–पत्नी एक दूसरे को शान्तिदायक वचन बोलें, भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से प्रेम करे,सब एक चित्त होकर एक कार्य में लगे और कल्याण और सुखदायी वचन बोला करें। जिस वेदज्ञान के अनुकूल चलकर विद्वान् परस्पर नहीं लड़ते और द्वेष नहीं करते ऐसे वेदज्ञान का समस्त पुरुष श्रवण करें। बड़े छोटे सब एक कार्य में लग कर ऐसे बंधे कि एक दूसरे का साथ न छोड़ें। समस्त प्रजा के लोग आपस में सुन्दर मनोहर बातें बोला करें। सबका पीना, खाना एक हो, समान हो, सब मिलकर परमेश्वर की उपासना करें। (3.30.1–7) इसके अतिरिक्त वेद यह भी शिक्षा देता है कि प्रत्येक आदमी अपने को हर प्रकार के पाप कार्य से मुक्त रखे (3.31.1–11) उसके लिए मनुष्य अपनी भावना को दृढ़ करे और पाप न करने का संकल्प करे, साथ ही पाप से मुक्त होने के लिए वह परम उपास्य परमेश्वर की उपासना करे (4.23–27) मनुष्य अपनी आत्मशक्ति और सहिष्णुता को इतना प्रबल करे कि यदि उससे दस गुना अपवाद भी हो तो सब को वह दबा सके (5.15.1–11)।

3. परमेश्वर

मैक्समूलर, मैकडोनल आदि योरोपियनों का अधिक विचार ऐसा है कि वेद में बहुत से देवताओं की उपासना का विधान है और उन पर विकासवाद का भी प्रभाव है कि एक परम ईश्वर की सत्ता के चरम सत्य को पूर्व ऋषियों ने क्रम से जाना है जो बाद में उपनिषदों और दर्शन–ग्रन्थों में विकसित हुआ है। परन्तु उनका यह विचार नितान्त असत्य भ्रममूलक और वेद को न समझने के कारण है। ऋषियों ने वेद ग्रन्थों में यह साक्षात् किया है कि **'प्रजापते न त्वदेतानि अन्यो विश्वा रूपाणि जातनि परिभूर्जजान**। (अथर्व0 7.80.3) 'हे प्रजा के पालक परमेश्वर ! तुझसे दूसरा कोई भी इन उत्पन्न पदार्थों के ऊपर मालिक नहीं है। वह परमात्मा की शक्ति सृष्टि के आदि मध्य और अन्त में भी सदा पूर्ण रहती है, अतः समस्त दिव्य तेजोमय पदार्थ उसके ही आश्रय में रहते हैं'। (अथर्व0 7.80.2)। 'परमात्मा तो जीवों के आत्माओं में बसा एक ऐसा परमपूज्य तत्त्व है जिसको राजा, रंक, बलवान् और निर्बल सभी उसके महान् ऐश्वर्यमय रूप का अनुभव करके चाहते हैं कि हम उसकी उपासना किया करें। (3.16.2)। वह परमात्मा सत्यरूप में आराधना करने योग्य होने से 'सत्यराधः' है ऐश्वर्यवान् भजन करने योग्य होने से 'भग' है। उसकी हम प्रातः सूर्योदय काल में अवश्य उपासना करें (3. 16.4)हम उसी के भजन से स्वयं ऐश्वर्यवान् हो सकते हैं, वह हमारे हरेक कार्य में प्रथम उपास्य है। (3.16.5) वह सबको शरीर देता है वह दो पाये चौपाये सबका प्रभु है (4.2.1) वह अपनी महत्ता से समस्त जगत् का राजा है जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय लेना अमृत और परे रहना मृत्यु है (4.2.2)। जो जमीन आसमान को थामे हुए है, जिसके भय से यह पृथ्वी विचलित नहीं होती वह समस्त लोकों का रचयिता है। हम सब उसकी उपासना करें। समस्त उच्च, हिमाच्छादित पर्वत जिसकी महिमा के नमूने हैं, समुद्र में पृथ्वी का खड़ा रहना जिसका आश्चर्यजनक कार्य है। ये दिशाएं जिसकी बाहू के समान फैली हैं, उसकी हम उपासना करें। (4.2.4,5)

उस महान् शक्ति परमेश्वर के विषय में अथर्ववेद में बड़े आश्चर्यजनक वर्णन हैं जिनके एक एक अंश उपनिषदों का रूप धारण कर रहे हैं। केन सूक्त का एकांश केनोपनिषद् है। स्कम्भ सूक्त पढ़कर तो विस्मय होता है। वरुण, सर्वव्यापक का वर्णन देखिये वह सबसे महान् परमात्मा, सर्वव्यापक होकर इतने पास से देखता है कि उससे कोई चोरी नहीं कर सकता। वह पास बैठकर बात करने में तीसरा है, चलते, छुपते और हिंसा करते पुरुष पर भी उसकी आंख रहती हैं उसकी महान् कोख में बड़े समुद्र छिपे हैं तो भी वह महान् इतना सूक्ष्म है कि वह पानी के छोटे से छोटे बूंद में भी छुपा है यह भूमि, आकाश और उसमें स्थित दूर और पास के सब लोक उसी के शासन में हैं। काई आकाश लांघ कर भी चला जाय तो परमेश्वर के पास से छूट नहीं सकता। उसने तो मनुष्यों की झपकें तक गिन रखी हैं। उसके फन्दे सत्यवादी को अभय दान करते हैं और असत्यवादी को जकड़ लेते हैं। वह सब जनों, देशों और विद्वानों के प्रति समान भाव से रहकर भी प्रत्येक व्यक्ति पर भी खास तौर पर शासन करता है (4.15.1–9)। इसके अतिरिक्त वह समस्त संसार को उठाने वाला है। वह जमीन, आसमान, अन्तरिक्ष और छहों दिशाओं को उठाकर समस्त संसार में व्यापक है। वह ऐश्वर्यवान् तीनों लोकों और तीनों कालों का स्वामी है। समस्त देव दिव्य शक्तियों का वस्तुतः वहीं स्वयं कार्य करता है। जिससे वड़ा कोई दाता नहीं, जिससे बड़ा कोई लेने वाला नहीं, वह सबसे बढ कर सबका पोषक, सबका कर्ता, तेजोमय है। वह अपने रुचिर रूप होने से इन्द्र, विश्वधारक होने से अग्नि, पालक होने से प्रजापति सर्वोच्च उच्च होने से परमेष्ठी है। हे लोगो ! उसी सर्वहितकारी परम पुरुष की शरण में जाओ उसने सबको थामा है, उसने सबको धारण किया है। जो उस प्रभु की प्रातः, सायं और मध्य दिन में भी उपासना करते हैं, उससे बल प्राप्त करते हैं, वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते(4.11.1–12)। इसी प्रभु को वेद ने अनड्वान् कहा है। जिससे भ्रम में पड़कर यवनों ने पृथ्वी को बैल के सींगों पर मान रखा है और अलंकारप्रिय भक्तों ने शिव और बैल की कल्पना की है। शिवपुराणकार ने रहस्य ठीक खोल दिया है।

वृषो धर्म इति प्रोक्तः तमारूढस्तो वृषा।

धारण शक्ति= धर्म 'वृष' है उसका स्वामी 'वृषी' महादेव है।

इन सब विषयों के साथ सदाचार, शिक्षा, आत्मज्ञांन, ईश्वरोपासना, आयु, तेज, बल की प्रार्थना, तपस्या, इन्द्रियजय, पापपरित्याग, मोक्षमार्ग, मुक्तिसाधना आदि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी अनेक प्रकरणों को दर्शाया है, जिनसे मनुष्य का जीवन उन्नत, ज्ञानमय और सुप्रसन्न हो सकता है और जिनको आधार में रखकर उपनिषद् और दर्शनग्रन्थ प्रवृत हुए हैं। योरोपियन लोग जिनको अर्वाचीन विकास कहना चाहते हैं वे वेद के ही प्राचीन यथार्थ तत्त्व हैं। दर्शन तो उनकी रक्षा और व्याख्या करने वाले हैं। जिनको हम यहां विस्तारभय से नहीं दर्शाते।

ब्राह्मण ग्रन्थ और गृह्य सूत्र

हमें इस वेदभाष्य में सबसे अधिक सहायता ब्राह्मण ग्रन्थ और उनके आरण्यक भागों और उपनिषदों से प्राप्त हुई है। हमने प्रायः भाष्य में स्थान–स्थान पर ब्राह्मणों द्वारा प्रदर्शित प्राचीन वैदिक परिभाषाओं को खोजने का यत्न किया है और कहीं–कहीं प्राचीन गृह्यसूत्रों में भी कोई मन्त्र किसी सूक्त का आ जाने पर उसके विनियोग से मन्त्रार्थ की दिशा जानने में सहाय्य प्राप्त हुआ है। जिसको हमने स्थान–स्थान पर दर्शाया है। हिरण्यकेशीय मानव गृह्यसूत्र में हमें स्थल प्राप्त हुए है।

अन्य संहिताएं

अथर्ववेद के मन्त्रों के अन्य संहिताओं में आये पाठान्तरों के देखने से अथर्ववेद के मन्त्रों के अर्थो पर बड़ा प्रकाश पड़ता है और स्पष्ट विदित होता है कि पैप्पलाद आदि शाखाएं किसी प्रकार मूल मन्त्र के कठिन पदों को परिवर्तित करके रखती हैं। महर्षि दयानन्द का यह कथन कि शाखा संहिताएं मूल संहिता की व्याख्याएं हैं, पाठक लोग पाठान्तरों पर ध्यानपूर्वक दृष्टि डालकर सहज ही जान सकेंगे। पैप्पलाद संहिता के बहुत से स्थल इतने विकृत और व्याकरण के नियमों से विपरीत हैं कि उनको मूल वेद मानना ही असम्भव है। प्रत्युत उनकी संगति भी मूल वेद की तुलना से ही लग सकती है।

उपसंहार

इस प्रकार हमने अपने भाष्य की दिशा पर्याप्त रूप से दिखा दी है। यद्यपि अथर्ववेद के सम्बन्ध में अभी बहुत से विषयों पर बहुत सा कथन करना आवश्यक है तो भी उसका इस छोटी सी भूमिका में उल्लेख करना,असम्भव एवं अप्रासंगिक जान पडता है। मेरा विचार है कि अथर्व–आलोचन नामक एक पृथक् पुस्तक निर्माण करके अथर्ववेद के सम्बन्ध के सभी विवादपूर्ण विषयों को उसमें स्पष्ट किया जाय। अन्त में पाठकों से नम्र निवेदन करता हूं कि अथर्ववेद के बहुत से गम्भीर रहस्यों के कितने ही अंशों में अभी मैं बहुत न्यून समझ सका हूं। प्राचीन ग्रन्थों के सर्वथा अभाव होने से हम लोग अथर्ववेद के वास्तविक तत्त्व को जानने में असमर्थ हैं। मैं चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में और भी गहरा अनुसंधान हो। (अथर्ववेद भाषा भाष्य की भूमिका से उद्धृत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (162-167) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद का राहु–केतु आख्यान और उसका निहितार्थ

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार

कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आख्यान

सूर्य–चन्द्र से राहु केतु की शत्रुता या उनको हानि पहुंचाने की प्रवृत्ति का ज्ञान सर्वप्रथम स्पष्टरूप में वाल्मीकि–रामायण में वर्णित हुआ है। वहां बताया गया है कि एक ग्रह है, जो सूर्य और चन्द्रमा को समय–समय पर ग्रस लेता है। इसके अतिरिक्त दो अन्य काण्डों के उल्लेखों से भी इसी शत्रुता का ज्ञान होता है। वहां उदास मुख को राहुग्रस्त चन्द्र के समान बताया है।[1] उत्तरकाण्ड में आता है कि राहु सूर्य को ग्रहण लगाना चाहता था तो हनुमान् उस पर झपटा। राहु भयभीत होकर वहां से भागा और इन्द्र –शरण में आया। इसने इन्द्र को बताया कि एक दूसरे राहु के रूप में हनुमान् पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया। इन्द्र द्वारा राहु के कहने पर हनुमान् पर वज्रप्रहार करने से वायु इन्द्र से कुपित हो गया।[2] इसके पश्चात् इनकी शत्रुता का वर्णन समुद्रमंथन प्रसंग में महाभारत में आता है।

'महाभारत' में समुद्रमंथन की घटना का वर्णन हो चुकने के उपरान्त जब मोहिनी रूपधारी विष्णु द्वारा अमृत पिलाने का प्रसंग उपस्थित होता है, तब इस आख्यान का उल्लेख हुआ है।[3] विष्णु केवल देवताओं को ही अमृत पिलाये जा रहे थे। और दानव उनके इस अन्याय को टुकुर–टुकुर ताक रहे थे। राहु नामक एक दानव से यह न देखा गया, उसने माया शक्ति से देवता का रूप बनाया और देवताओं में आ मिला। विष्णु ने उसे भी अमृत दे दिया ओर उसे पीने भी लगा। किन्तु अमृत अभी उसके कण्ठ तक ही पहुंचा था कि सूर्य और चन्द्रमा की शिकायत पर विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से उस दानव का सिर काट दिया। चूंकि अमृत की बूंदें धड़ तक नहीं पहुंची थी, इसलिए धड़ तो मृत होकर पृथ्वी पर आ गिरा, किन्तु अमृत पी लेने के कारण राहु का सिर अमर हो गया। वह भयंकर सिर सूर्य और चन्द्रमा से उसी दिन से वैर मानने लगा और इसलिए वह आज भी दोनों पर ग्रहण लगाता है।

हिन्दी–काव्यों में चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु का आख्यान

हिन्दी काव्यों में इस आख्यान को स्वतन्त्र रूप में या पुराणों की पद्धति से तो कहीं वर्णित नहीं किया है, हां, इनकी प्राकृतिक प्रक्रिया का आलंकारिक रूप में बहुत्र उल्लेख हुआ है। राहु–केतु को आसुरी प्रवृत्ति का तथा चन्द्र–सूर्य को दैवी प्रवृत्ति का प्रतीक माना गया है।

ज्ञानदीप[4] में चन्द्रमा पर राहु की कुदृष्टि पड़ने का उल्लेख हुआ है। चन्द्र को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रसने की राहु की प्रवृत्ति को पद्मावत[5] विद्यापति की पदावली[6] में अनुचित माना है। सूरसागर में,[7] किसी नारी का राक्षस के हाथ में पड़ना, चन्द्रमा का राहु के वश में होने के समान माना है। इसी प्रकार राहु द्वारा ग्रहण लगाने की निन्दा का वर्णन, रामचरित मानस[8] में लगभग दस स्थलों पर हुआ है।

कबीर ने राहु–केतु द्वारा भानु–शशि को ग्रसे जाने को कर्मो की गति ओर विधि का ऐसा विधान माना है, जिसे टाला नहीं जा सकता। ऐसा भाव उनके कई पदों में आया है।[9]

हिन्दी के अन्य अनेक काव्यों में राहु–केतु द्वारा चन्द्र और सूर्य को ग्रसित किये जाने का आलंकारिक रूप में उल्लेख है। ''द्रौपदी''[10] में उदाहरण के रूप में, 'रुक्मिणी–परिणय'[11] में राहु द्वारा अकारण सूर्य को ग्रसने पर विभावना–रूप में, तथा रुक्मिणी की मांग का वर्णन करते हुए चन्द्र को ग्रसित करने के इच्छुक राहु को रोकने के लिए उत्प्रेक्षा के रूप में[12] और कृष्ण–शिशुपाल युद्ध में कटे हुए सिरों के लिए उपमान के रूप में[13] 'ब्रजचन्द्र विनोद'[14] में होनी की प्रबलता को प्रदर्शित करने के लिए अर्थान्तरन्यास के रूप में, 'देवकी'[15] में कृष्ण रूपी चन्द्र को राहुरूपी कंस से वसुदेव द्वारा बचाये जाने पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार के रूप में राहु और केतु का उल्लेख हुआ है।

इनके अतिरिक्त 'सेनापति कर्ण'[16] में संदेहालंकार के साथ–साथ कुरुकुलीय भीष्म के लिए सूर्य और शिखण्डी के लिए राहु का रूपक प्रस्तुत किया गया है। 'सुवर्णा' [17] में भी राहु का रूपकालंकार में उल्लेख है। 'कृष्णायन'[18] और 'द्वारका[19] प्रवेश' में काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग करके कवियों ने वर्णित किया है कि चन्द्रग्रहण का कारण चन्द्र की मृदुता है। कृष्ण चन्द्र हैं, और यवनेश राहु हैं। 'पुरुषोत्तम'[20] में रुक्मिणी को शिंशुपाल द्वारा पीड़ित करने की समानता राहु के दृष्टान्त से प्रदर्शित की है। 'उषाहरण'[21] में रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों के द्वारा राहु का वर्णन है। 'रश्मिरथी'[22] में द्रोणाचार्य द्वारा आपत्ति के प्रतीकरूप में राहु का स्मरण है।

चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु के आख्यान का स्रोत एवं विकास

वेदों एवं वैदिक साहित्य में चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु आख्यान–

प्राकृतिक दृश्यों एवं पदार्थों का मानवीकरण करके किसी संदेश या स्थिति को प्रस्तुत करना वेदों की अपनी प्रमुख शैली है। यह आख्यान भी उसी कोटि के अन्तर्गत आता है। इसका मूल स्रोत अथर्ववेद के एक मन्त्र में पाया जाता है। जहां राहु–केतु के प्रभाव से ''शम्'' की कामना की गयी है। इस वर्णनशैली से यह संकेत मिलता है कि वेद में इन्हें अशुभ और आसुरी प्रवृत्ति के गृह का स्वरूप प्रदान किया गया है। परवर्ती काल में यही राहु–केतु, मानवीकरण होते–होते दो असुर ही बन गये, जो उज्ज्वल, पवित्र, जनहितकर सूर्य–चन्द्र सदृश देवों को ग्रसते रहते हैं, हानि पहुंचाते रहते हैं। इनके इस स्वरूप को यथावत् ग्रहण कर परवर्ती साहित्य में इनका आलंकारिक रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पर्याप्त वर्णन किया गया है। इस आख्यान का मूलस्रोत रूप मन्त्र निम्न है–

शं नो ग्रहांश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।।

–अथर्व0 19.9.10

अर्थात्– चन्द्रमा से सम्बद्ध ग्रह, आदित्य के साथ राहु, मृत्युरूप धूमकेतु, विनाशकारी और तीक्ष्ण तेज वाले ग्रह हमारे लिए शान्तिदायक–कल्याणकारक हों।

वैदिक साहित्य में चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु का आख्यान–

ऋग्वेद में ''स्वर्भानु'' नामक एक असुर का निर्देश प्राप्त होता है, जो सूर्य के प्रकाश को रोक लेता है।[23] इसने सूर्य को अन्धकार से आवृत्त कर लिया, तब सारी सृष्टि दीन–हीन अवस्था को प्राप्त हो गयी। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार, सामवेद के मन्त्रगान ने इस ग्रहण को दूर किया।[24] साथ ही अत्रि, सोम और रुद्र द्वारा भी इस ग्रहण से सूर्य को मुक्त कराने का उल्लेख है।[25] ऐसा समझा जाता है कि स्वर्भानु ने ही परवर्ती साहित्य में राहु–केतु का रूप धारण कर लिया। भागवत में इसे चन्दार्कप्रमर्दन तथा ब्रह्मकाण्ड में इसे स्वर्भानु नाम से ही पुकारा गया है।[26] कौशिक सूत्र में भी राहु का आसुरी रूप प्रदर्शित है।[27]

लौकिक संस्कृत–काव्यों में चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु आख्यान

लौकिक काव्यों में आते –आते राहु–केतु का प्राकृतिक स्वरूप मानवीय स्वरूप से मिश्रित हो चुका है और पुराणों में तो इन्हें ग्रहों की अपेक्षा असुर या दैत्यविशेष के रूप में अधिक प्रस्तुत किया गया है। पुराणों में राहु–केतु को दनु और कश्यप का पुत्र माना है। विष्णुधर्म पुराण में ब्रह्मा के प्रतप्त दीर्घ निःश्वास से धूमकेतु की उत्पत्ति कही है। अन्यत्र इसे कश्यप और सिंह का पुत्र कहा है।[28] भागवत एवं ब्रह्माण्ड में इसे विप्रचित्ति एवं सिंहिका का पुत्र कहा गया हैं।[29] यद्यपि यौगिक दृष्टि से इन्हें प्रजापति और प्रकृति, सूर्य और पृथिवी भी माना गया है, अतः पुराणों के इस वर्णन को इन्हीं अर्थों का बोधक मानने में कोई आपत्ति उपस्थित नहीं होती। पुराणों की शैली ही इस प्रकार की है कि वे इनका वर्णन मानव घटना के सदृश करते हैं, अतः इनमें व्यक्तित्त्व का आभास प्रमुखता से होने लगता है।

वाल्मीकि – रामायण और महाभारत में वर्णित राहु केतु की घटनाएं आख्यान के प्रारम्भ में उदधृत की जा चुकी हैं। उनमें स्पष्टतः इन ग्रहों को मानवों से सम्बद्ध कर दिया गया है। कहीं–कहीं इन प्राकृतिक पदार्थों का केवल मानवीकरण ही है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण''[30] में चन्द्रमा के राहु ग्रस्त होने का कारण देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा द्वारा चन्द्रमा को दिया गया शाप बताया है। कथा इस प्रकार है– भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को गुरु–पत्नी तारा मन्दाकिनी नदी में स्नान कर रही थी। वहीं से चन्द्रमा ने उसका हरण कर लिया। तारा ने उसको बहुत समझाया कि ब्राह्मणी और गुरुपत्नी होने के नाते मैं तुम्हारी माता–तुल्य हूं, गुरुपत्नी--गमन से सौ ब्रह्म–हत्या का पाप लगता है। किन्तु चन्द्रमा ने उसे नहीं छोड़ा। जब वह उसे भोगने को उद्यत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, तब तारा ने उसे शाप दिया कि तुम कलङ्की यक्ष्मा से पीड़ित तथा राहुग्रस्त होओगे। चन्द्रमा ने रोती हुई तारा को गोदी में बिठाकर नाना नदी, नद तथा पर्वतों में रमण किया।

परन्तु ''ब्रह्मवैवर्त पुराण'' में सूर्य के राहु ग्रस्त होने का कारण जमदग्नि ऋषि द्वारा उसका शापित होना बताया गया है। कथा इस प्रकार है– '' एक समय परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि रेणुका के साथ नर्मदा तट पर दिन में सहवास कर रहे थे। यह देख,सूर्य ने कहा कि ऋषि! आप ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं, वेदों के ज्ञाता हैं, आप धर्म का त्याग क्यों कर रहे है? क्योंकि दिन में मैथुन को शास्त्रों में वर्जित माना है। सूर्य के टोकने पर जमदग्नि ने मैथुन तो त्याग दिया पर सूर्य पर बहुत रुष्ट हुए और कहने लगे कि मेरे आगे पाण्डित्य और शास्त्र–ज्ञान बघारनेवाला तू कौन है? जमदग्नि के क्रुद्ध होकर सूर्य को शाप दिया कि चूंकि तुमने हमारा रस–भंग किया, अतः तुम राहु–ग्रस्त होओगे। सूर्य ने भी जमदग्नि ने शाप दिया कि क्षत्रिय के शस्त्र से तुम्हारा मरण होगा। दोनों का कलह देख ब्रह्मा ने बीच–बचाव किया और सूर्य से कहा कि न्यून एवं अधिक वर्ष में ही तुम राहु–ग्रस्त होओगे और वह ग्रहण कहीं दिखाई देगा और कहीं नहीं। जमदग्नि को ब्रह्मा ने बताया कि तुम्हारी मृत्यु कार्त्तवीर्यार्जुन से होगी, तुम्हारा पुत्र 21 बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करेगा।

''ब्रह्मवैवर्त पुराण'' की इस कथा में नवीनता यह है कि यहां अमृत पीते समय राहु की शिकायत विष्णु से करने की घटना को लेकर राहु और सूर्य में वैर–भाव का उल्लेख नहीं होकर उसका कारण जमदग्नि का शाप बताया गया है। यह काल्पनिक आख्यान विचित्र अतिरंजना से भरपूर है।

'पद्मपुराण' में आता है कि समुद्रमन्थन के बाद राहु को छल से अमृतपान करते हुए देख सूर्यचन्द्र ने इनकी विष्णु को शिकायत की। विष्णु ने राहु का सिर काट डाला। इसके सिर से केतु की उत्पत्ति हुई एवं राहु सिरविहीन अवस्था में विचरण करने लगा। विष्णु के डर से ये दोनों वहां से तो भाग खड़े हुए, किन्तु सूर्य–चन्द्र के प्रति इनका प्रतिशोध भाव बना रहा।[31] इसी कारण आज भी ये उनको ग्रसते हैं, जिसे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के नाम से व्यवहृत किया जाता है।[32] 'पद्मपुराण' में राहु का व्यक्ति के रूप में कई स्थलों पर उल्लेख हुआ है। यह जलंधर राक्षस का दूत बनकर शंकर के पास गया। ब्रह्मा की सभा में भी यह बैठा रहता है। इसकी पुत्री सुप्रभा या प्रभा है।[33] 'मत्स्यपुराण' में भी उक्त कथा वर्णित है।[34] इसी प्रकार समुद्र मन्थन की घटना जिन पुराणों में वर्णित हुई है, प्रायः सर्वत्र इनकी पारस्परिक शत्रुता का उल्लेख आ ही जाता है। ब्रह्माण्ड, वायु, विष्णु पुराणों में यह सन्दर्भ आया है।[35]

भर्तृहरिशतक 2/34 में भी राहु–केतु द्वारा चन्द्र–सूर्य को सताये जाने का कथन है। याज्ञ0 स्मृति और मनुस्मृति में इनके ग्रहण समय को ''राहुसूतक'' कहकर अशुभ माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[36] मुद्राराक्षस में केतु द्वारा चन्द्रमण्डल को ग्रसने का वर्णन है।[37]

स्वरूपविवेचन एवं निष्कर्ष

चन्द्र–सूर्य और राहु–केतु सम्बन्धी आख्यान का कितना ही मानवीकृत रूप हमें भारतीय साहित्य में दिखाई देता हो, किन्तु उसका प्राकृतिक स्वरूप लुप्त नहीं हुआ है। इन नामों के ग्रहों के कारण वह अन्ततः अपने प्राकृतिक स्वरूप का संकेत दे जाता है।

यह आख्यान इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि वेदों में प्राकृतिक पदार्थों–दृश्यों या ब्रह्माण्डीय विद्याओं के वर्णन के साथ–साथ व्यावहारिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षाएं आलंकारिक शैली में द्री गयी हैं। ऐसा ही अन्य आख्यानों में समझना चाहिए।

यहां राहु–केतु प्राकृतिक ग्रह होते हुए भी आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं, जो दैवी शक्तियों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष एवं वैमनस्य की भावना रखकर उन्हें हानि पहुंचाने का प्रयास रखते हैं। सूर्य और चन्द्र देव हैं। स्वच्छ, उज्ज्वल स्वरूप हैं और प्रकाश, जीवन एवं नैरोग्य प्रदान कर आकाशमण्डल में इनके सामने से परिभ्रमण करते हुए गुजरते हैं, तो उनके सामने आने से इनका उतना भाग अदृश्य हो जाता है। मानो ये उनके उतने भाग को ग्रस्त कर लेते हैं। जन–व्यवहार की भाषा में प्रकृति के इसी परिवर्तन दृश्य का नाम सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण है। राहु सौरमण्डल का आठवां ग्रह है और वैज्ञानिक अनुसन्धानों के अनुसार एक सौर मण्डल में कई –कई पुच्छल तारे भी होते हैं। कभी कोई पुच्छल तारा परिभ्रमण करता हुआ चन्द्र–सूर्य के समक्ष आ जाता है तो कभी कोई। इस प्रकार ग्रहों के गतिशील होने के कारण यह क्रम चलता रहता है। इसी ग्रहज्ञान का पूर्वोक्त आख्यान में वर्णन है।

आख्यान से प्राप्त शिक्षा

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सूर्य–चन्द्र दिव्यगुण और हितकारी गुणप्रधान होने से ''देवों '' के प्रतीक हैं और राहु–केतु असुरों–दैत्यों के प्रतीक हैं। असुरों का यह स्वभाव है कि वे श्रेष्ठजनों की श्रेष्ठता को सहन नहीं कर पाते और अकारण ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य की भावना रखकर हानि पहुंचाने प्रयास करते हैं। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहियें और ऐसे उपाय करने चाहिए कि उनसे स्वयं को सुरक्षित रखें तथा उनके कुप्रयासों को सफल न होने दें। यह भी कि हमें अपने अन्दर इस प्रकार की आसुरी प्रवृत्तियां नहीं पनपने देनी चाहियें, क्योंकि वे लोकविक्रुष्ट, और व्यक्ति तथा समाज के लिए अहितकर हैं।

इस प्रकार इनके माध्यम से इस आख्यान में लोकहितकारी दैवी शक्ति और लोक–अहितकारी आसुरी शक्ति का यथार्थ चित्रण हुआ है।

पादटिप्पणियां

1. वा0 रा0 अयो0 114.3;सुन्दर0 1.170
2. वा0 रा0 7.35 सर्ग
3. आदिपर्व 17.18 तथा 19 सर्ग
4. छन्द 37
5. पद्मावत 84.4
6. विद्या0 पदा0 111.6; 113.6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. सूरसागर 9.76.519
8. 1.4.3, 1.56.5; 1.170.10 ; 1.238.10; 1.150. 1; 1.281.6; 2.208.1–4,3.28.6; 6.22.10
9. 'राहु–केतु औ भानु–चन्द्रमा विधि संजोग परी। कर्म गति टारे नाहीं टरी।' पद्यसंकलन पृ0 5; अन्य पद 14.3:165.6
10. पृ0 29 और पृ0 37
11. पृ0 121
12. पृ0 214
13. पृ0 131–132
14. पृ0 9,पूर्वार्द्ध और पृ0 431 उत्तरार्द्ध।
15. पृ0 37 'अन्ततः वसुदेव?/तुममें/सुप्तपिता जागा/और तुमने /चांद को/ राहु की/सर्वग्रासी/बाहों से /दूर ले जाने का/ निश्चय किया।
16. पृ0 20 –नारी है कि नर / राहु वह बोलो सखे? कुरुकुल रवि का''?
17. पृ0 35 और पृ0 70
18. 2/187,द्वारका प्रसाद शर्मा
19. पृ0 57
20. पृ0 157
21. पृ0 21–'इन्द्र ललाट दियौ पिय बिन्दु, सजे शिर सिन्दुर लाल सुहाई। पानिप चन्द्र चढ़ो लखि राहु, मनो रसना अभिलागि बढ़ाई।
22. पृ0 8
23. ऋ0 5.20.5–9; 5.40
24.पं0 ब्रा0 4.5.2; 6.13
25. पं0 ब्रा0 6.6.8; शत0 5.3.2.2
26. भाग0 5.23.6; ब्रह्माण्ड 3.6.23
27. कौ0 सू0 100
28. विष्णु धर्म0 1.106 पद्म सृ0 40
29. भाग0 6.6.37;18.13; ब्रह्माण्ड 3.6.18–20, महा0 आदि0 65.31
30. ब्रह्मवै0 पु0 उत्तर अ0 79–81
31. पद्म ब्र0 10
32. पद्म उ0 10; सृ0 6 ; विष्णु 1.21; 1.90 ; 80–111; ब्रह्माण्ड 3.6.23 महा0 सभा0 11. 29
33. मत्स्य 128.65; 93.10;127.11; अन्यत्र 1. 9;249–251 अ0
34. ब्रह्माण्ड 2.23.90 ; 24.136–139; वायु0 52. 37.82; 111.5; 23.90; विष्णु0 2.12.23
35. याज्ञ0 स्मृति 1.146; मनु0 4.110
36.मुद्राराक्षस 1.6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (168-184) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद और मांस : भक्ष्याभक्ष्य के सन्दर्भ में

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वेदों के अनेक स्थलों पर पशुहिंसा के निषेध तथा पशुरक्षा के विधान का भाव पाया जाता है।[1] इनमें कतिपय ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें मासांहारी को दण्ड देने का विधान किया गया है। यद्यपि वेदों के अनेक सुभाषित ऐसे है जिनमें मांसभोजन न करना चाहिये-ऐसा स्पष्ट उल्लेख है, फिर भी निम्न याजुष मन्त्रांश इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं-**लाजीञ्छाचीन् यव्ये गव्यं एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते** (२३/८) अर्थात् लाजाओं को, सत्तुओं को, जौं से बने पदार्थों को, गौ के दूध, दही, मक्खन तथा इसके दूध के बने अन्य पदार्थों को, (एतत् अन्नम्) इस तथा इस प्रकार के अन्य अन्न को अर्थात् वानस्पतिक तथा दूध और इसके विकार रूपी अन्न को हे देवो! खाया करो। हे गृहस्थी! तू भी ऐसे ही अन्न का सेवन किया कर।' कृषि कर्म में गाय के महत्त्व को समझते हुए उसे अघ्न्या, अदिति और माता कहा गया है तथा भोग्य के रूप में गौ मांस ही नहीं अपितु पशु मांस का भी सर्वथा निषेध है-**यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने: तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।**[2] वेदों में तो गौ का काटना, उसके मांस को खाना और गौओं की संख्या को कम करके उनके दूध में क्षति पहुँचाना, वेदविरुद्ध दर्शाया गया है-**क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते। क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्विषम्**[3] फिर भी वेदों में मांसाहार की विधि है या निषेध इस सम्बन्ध में विद्वानों में प्रायः विवाद चला आया है, और अब भी है। यदि वेदों में भक्ष्याभक्ष्य को, विशेष रूप से मांसाहार को आधार बनाकर चिन्तन किया जाता है तो निम्न निर्देशों पर विचार करना आवश्यक है-१-वेदों में मांस को राक्षस-भोजन कहा है, २-वेदों में मांस भक्षण का निषेध है, ३-वेदों में क्षुधा की निवृत्ति के लिये जौ आदि अन्नों का विधान है, मांस का नहीं, ४-भक्ष्य (भोज्य) पदार्थों की प्रार्थनाओं तथा सूची में मांस का परिगणन नहीं किया गया है, ५-वैदिक प्रार्थनाओं में, यद्यपि गौ आदि पशुओं की प्राप्ति के लिये प्रार्थनायें है, तथापि उनकी प्राप्ति (भोजन के सम्बन्ध में) उनके दूध आदि के लिये है, न कि उनके मांस के लिये, ६-वेदों की रहस्यात्मक और प्रतीकात्मक वर्णन-शैली में मांस शब्द का अर्थ, ७-उक्त रहस्यात्मक शैली में अश्व, ऋषभ, वृषभ, गोघ्न, अतिथिग्व, उक्षा, अज, धेनु, गौ, अघ्न्या आदि शब्दों के अर्थ। इन उपर्युक्त निर्देशों पर विचार करते हुए विषय को स्पष्ट किया जाता है। जैसे-

वेदों में मांस को राक्षस भोजन कहा है- इस कथन को प्रमाणित करने के लिये वेदों में पठित क्रव्याद, पिशाच, असुतृप, गर्भाद, अण्डाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांसाद आदि राक्षसों के कतिपय नामों पर विचार किया जाता है-**क्रव्याद**-यह नाम राक्षसों का है। क्रव्याद=क्रव्य+अद। 'क्रव्य' शब्द कृवि धातु से बनता है जिसका अर्थ है 'हिंसा'। यथा **कृवि हिंसायाम्**। अत: क्रव्य शब्द का अर्थ है-'हिंसा से प्राप्त मांस।' 'अद' का अर्थ है 'खाने वाले या खाने वाला'। अत: क्रव्याद का अर्थ है 'हिंसा से प्राप्त मांस को खाने वाले'। वेदों में 'क्रव्याद' यह नाम राक्षसों का है। अत: वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सभी मांस भक्षक राक्षस हैं-यह सिद्ध हुआ। **पिशाच**-यह नाम राक्षसों का है। पिशाच शब्द=पिशित का अर्थ मांस और अश का अर्थ खाने वाले[4]। अत: पिशाच का अर्थ मांस के खाने वाले। अत: पिशाच शब्द भी यह सिद्ध कर रहा है कि वैदिक सिद्धान्त के अनुसार मांस भक्षक राक्षस हैं। **असुतृप**-यह नाम राक्षसों का है। असुतृप=असु+तृप। असु का अर्थ है प्राण या जीवन और तृप का अर्थ तृप्त होने वाले। अत: असुतृप का अर्थ है दूसरों के प्राणों पर तृप्त होने वाले अर्थात् जो दूसरों का जीवन हरण कर, उनके मांस द्वारा अपनी तृप्ति करते हैं वे असुतृप हैं। असुतृप शब्द से यही सिद्ध होता है कि वे मनुष्य जो कि दूसरों के मांस से अपनी तृप्ति करते हैं, वास्तव में, राक्षस कोटि के ही हैं। असुर शब्द का भी लौकिक दृष्टि से यही अर्थ है। असु का अर्थ है प्राण और 'र' का अर्थ रमण करने वाले अर्थात् जो दूसरों के प्राणों पर रमण करे वे असुर हैं। **गर्भाद**-ये नाम भी राक्षसों का है। गर्भाद का अर्थ गर्भ के खाने वाले। गर्भ के दो अर्थ हैं-(i)-वह जीवन तत्त्व जिससे कि बच्चे का शरीर बनता है। (ii)-नवजात शिशु अथवा छोटे-छोटे पशु-पक्षी। पहले अर्थ में अण्डों को खाने वाले गर्भाद हैं। क्योंकि अण्डे में बच्चे के शरीर को बनाने वाला जीवन तत्त्व रहता है, जिसे कि लोग खा जाते हैं। दूसरे अर्थ में नवजात या छोटें-छोटे पशु-पक्षियों के खाने वाले गर्भाद हैं। इस श्रेणी में वे लोग शामिल होते हैं, जो कि चूजों को खाते हैं, या उनका सत निकालकर खाते हैं। इस प्रकार के सभी लोग, वैदिक दृष्टि में, पूर्ण राक्षस हैं। **अण्डाद**-यह नाम भी राक्षसों का है। अण्ड का अर्थ है-अण्डे और अद का अर्थ है खाने वाले। अत: अण्डाद का अर्थ है अण्डों के खाने वाले। वर्त्तमान समय में, अण्डों के खाने का बहुत प्रचलन है। वेदों की दृष्टि में, अण्डों के खाने वाले राक्षस नाम से पुकारे जाने के योग्य है। **मांसाद**-यह नाम भी राक्षसों का है। मांसाद का अर्थ मांस खाने वाले। यह शब्द अत्यन्त स्पष्ट है जो कि मांस के खाने का निषेध कर रहा है।

उपर्युक्त इन राक्षसों को वेदों में कठोर दण्ड देने का विधान है। यथा इनके सिर काट देने; इन्हें जला देना; घर, धन तथा परिवार से इन्हें वियुक्त कर देना; इन्हें भूखा मारना; इत्यादि। अत: जो वेद, मांसभक्षकों के लिये इतने कठोर दण्डों का विधान करता है, और जो इन्हें घृणित राक्षस नाम से पुकारता है-वह अतिथि यज्ञ, श्राद्ध, पशु यज्ञ और साधारण भोजन में मांस के प्रयोग की आज्ञा देगा, यह बात समझ में नहीं आ सकती। वेद में मांस भक्षण का निषेध है-इस कथन की प्रामणिकता के लिये, यहाँ कतिपय मन्त्र प्रस्तुत किये जाते हैं। यथा-

(क) **व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथोतिलम्। एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितरं मातरं च॥[5]

अर्थात् हे दाँतों की दोनों पङ्क्तियों! चावल खाओ, जौ खाओ, उड़द खाओ और तिल खाओ। यह अन्न ही तुम्हारा नियत हिस्सा है। इसके भक्षण से तुम्हें रमणीय फल मिलेगा। उन्हें मत मारो जो माता-पिता बनने की योग्यता रखते हैं, अर्थात् पितृशक्ति और मातृशक्ति से सम्पन्न पशुओं की हिंसा न करो।'

इस मन्त्र में दाँतों को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे दाँतों! (i)-प्रभु ने, तुम्हारे खाने के लिये धान आदि अन्न ही नियत किया है, मांस नहीं। (ii)-इस धान आदि अन्न के खाने से ही तुम्हें उत्तम फल मिल सकता है। क्योंकि अन्न भक्षियों के दाँत शीघ्र नहीं बिगड़ते और मांस भक्षियों के शीघ्र बिगड़ जाते हैं। (iii)-तुम पिता और माता की हिंसा न करो अर्थात् तुम पितृशक्ति या मातृशक्ति से सम्पन्न किसी भी प्राणी का विलोप न करो। मांसभक्षी, पशुपक्षियों की हत्या द्वारा, संसार में पितृशक्ति और मातृशक्ति का विलोप करते हैं। इस मन्त्र में दाँतो के प्रति कहा है कि तुम मांसभक्षण द्वारा पितृशक्ति और मातृशक्ति की हिंसा न करो। **स्वधिते मैनं हिंसीः, मञ्चाः क्रोशन्ति, कुन्ताः प्रविशन्ति**-की तरह यहाँ भी लक्षणा है। दाँतों को सम्बोधन से तात्पर्य मनुष्यों से है।[6] अतः यह मन्त्र मांसभक्षण (अभक्ष्य) का स्पष्ट निषेधक है।

(ख) उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ। अन्यत्र वां घोरं तन्वः१ परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च॥[7]

अर्थात् हे सुखदायक तथा सुमङ्गल दाँतों! तुम्हारा छेदन-भेदन रूपी घोर कर्म, शरीरों अर्थात् प्राणियों से अन्यत्र (धान, जौ आदि में) हो, तुम पितृशक्ति और मातृशक्ति की हिंसा न करो।'

इस मन्त्र में दाँतों के प्रति स्पष्ट आज्ञा है कि तुम्हारा छेदन-भेदन तथा चबाना-पीसना आदि घोर कर्म, प्राणि देहों अर्थात् मांस में न हो; अपितु उससे अन्यत्र अर्थात् धान, जौ आदि वनस्पति चीजों में हो। तथा यह भी आज्ञा दी है कि तुम पितृशक्ति और मातृशक्ति की हिंसा न करो। मांसभक्षण द्वारा इन शक्तियों की हिंसा होती है। अतः इस वर्णन द्वारा, मांस के भक्षण का निषेध किया गया है।

(ग) य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः। गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥ (अथर्व० ८.६.२३)

अर्थात् जो आम[8] मांस (कच्चे, घर में पक्के तथा गौ के मांस) को खाते हैं, जो पौरुषेय[9] क्रवि (पितृशक्ति और मातृशक्ति से प्राप्त मांस) को खाते हैं, जो गर्भों[10] (अण्डों तथा नवजात या छोटे-छोटे पशु पक्षियों) को खाते हैं-इस प्रकार केशवों[11] (जिनका देह श्मशान-कब्रस्तान बना हुआ है) का, हम यहाँ से नाश करते हैं।'

इस मन्त्र में कच्चे, घर में पके तथा गौ के मांस के खाने वालों; पितृशक्ति और मातृशक्ति की हिंसा करने वालों; अण्डों तथा नवजात या छोटे-छोटे पशु पक्षियों के खाने वालों के नाश करने की आज्ञा दी है।

(घ) क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति

(यजु० ३०.१८)

अर्थात् गौ काटी जा रही हो और उस समय जो गौ मांस की भिक्षा के लिये वहां उपस्थित हो, उसे क्षुधा का दण्ड देना चाहिये अर्थात् उसे भूखा रहने की सजा देनी चाहिये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मन्त्र यजुर्वेद के ३०वें अध्याय का है। कर्मकाण्ड के अनुसार इस अध्याय का सम्बन्ध पुरुषमेध के साथ है, इसमें एक पूर्ण राष्ट्र का तथा यत्किंचित् दण्डनीति का वर्णन है। इसी दण्डनीति के सिलसिले में क्षुधादण्ड का भी विधान है। इसी ३०वें अध्याय के निम्नलिखित प्रमाण के आधार पर यह प्रतीत होता है कि गोघाती को प्राणदण्ड देना चाहिये, यह राजकीय धर्म है। यथा-**अन्तकाय गोघातम्** (यजु ३०.१८) इसलिये गोघाती को प्राण दण्ड और जो स्वयं गोघाती तो नहीं, परन्तु गौ को कटती हुई देखकर मांस की भिक्षा के लिये आ उपस्थित होता है, उसे क्षुधा दण्ड देना चाहिये, यहां यह अभिप्राय है। परन्तु उस मनुष्य को-जो कि गौ का घात तो नहीं करता, और न गौ का मांस ही खाता है, परन्तु चर्मकार होने के कारण गौ का चमड़ा उतारना चाहता है-कोई दण्ड न मिलना चाहिये।

वेदों में, क्षुधा की निवृत्ति के लिये धान आदि, अन्नों तथा दुग्ध आदि पदार्थों का ही विधान है, मांस का नहीं-इसके स्पष्टीकरण के लिये, निम्नलिखित मन्त्रों पर विचार किया जाता है। यथा-

(ङ) **गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे। वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टा सो वृजनीभिर्जयेम॥** (अथर्व ७.५०.७)

अर्थात् हे पुरुहूत (इन्द्र) प्रभो! हम सब दुर्व्यवहार की उत्पादक अमति (कुबुद्धि और बुद्धि की न्यूनता) को, गौओं के दूध आदि के सेवन से दूर करें। हम सब जौ आदि अन्नों के द्वारा क्षुधा को दूर करें। इस प्रकार हम सब रोग रहित हों। तथा हम सब सेनाओं के द्वारा, राजाओं के खजानों को जीतें या लूटें।'

इस मन्त्र में चार निर्देश हैं। (i)-पहला निर्देश यह है कि गौ के दूध आदि पदार्थ अमति अर्थात् कुमति के नाशक तथा सद्बुद्धि के वर्धक हैं। (ii)-दूसरा निर्देश है कि **विश्वे** अर्थात् हम सब, अपनी क्षुधा की निवृत्ति जौ आदि अन्नों द्वारा करें। इस निर्देश में **विश्वे** शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिये। **विश्वे** का अर्थ है-सब (all)। अतः इस निर्देश द्वारा सभी मनुष्यों के प्रति यह वैदिक आज्ञा है कि वे, अपनी क्षुधा की निवृत्ति, जौ आदि के अन्नों द्वारा ही करें, मांस द्वारा नहीं। (iii)-तीसरा निर्देश यह है कि इस प्रकार गौ के दूध आदि सात्त्विक पदार्थों तथा जौ आदि अन्नों के सेवन से हम सब रोगरहित हों। सम्भव है कि शाकभोजी तथा दुग्धाहारियों में रोगों की सम्भावना कम हो। (iv)-चौथा यह निर्देश है कि हम सब सेनाओं के द्वारा, राजाओं के खजानों को लूटे। वैदिक सिद्धान्त यह है कि राजा लोग, प्रजा से प्राप्त धन को अपना न समझे। अपितु प्रजा का ही समझे। अतः उस धन को प्रजा की भलाई में लगाये, न कि अपने भोग विलास में। परन्तु जो राजा इससे उल्टा चलता अर्थात् प्रजा से प्राप्त धन को प्रजा की भलाई में नहीं लगता अपितु उसे अपने भोग विलास की सामग्री समझने लगाता है, उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये। ऐसी अवस्था में वैदिक प्रजा को पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी सेनाओं द्वारा राजा पर आक्रमण करे, और उसके कोष को लूट ले।

यहां प्रश्न हो सकता है कि इस अमति और क्षुधा की निवृत्ति के प्रकरण में, इस राष्ट्रिय सिद्धान्त का वर्णन क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि आर्थिक और राष्ट्रिय समस्या सर्वथा ही भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। आर्थिक समस्या कई बार और प्रायः ही, राष्ट्रिय विप्लवों को उत्पन्न कर देती है। 'जिस राष्ट्र में, दुग्ध आदि पौष्टिक और बुद्धिवर्धक पदार्थ, तथा क्षुधा के निवारक अन्न दुर्लभ हो जायें, वहां राष्ट्र विप्लव कर राजकीय खजानों को लूट लेना चाहिये' इस सिद्धान्त को दर्शाने के लिये ही, ऊपर के मन्त्र में आर्थिक और राष्ट्रिय निर्देशों का वर्णन साथ-साथ हुआ है।

(च) गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्। वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम॥ (अथर्व० २०.१७.१०)

अर्थात् हे पुरुहूत प्रभो! हम दुर्व्यवहार की उत्पादक (अमति तथा बुद्धि की न्यूनता) को गौओं के दूध आदि के सेवन से दूर करें। हम जौ आदि अन्नों के द्वारा सब प्रकार की क्षुधा को दूर करें। तथा हम अपने बल द्वारा राजाओं के खजानों को जीतें या लूटें।'

इस मन्त्र का भाव भी, लगभग, पूर्व मन्त्र के भाव के सदृश ही है। मुख्य विशेषता केवल यही है कि इस मन्त्र में, सब प्रकार की क्षुधा की निवृत्ति के लिये जौ आदि अन्नों का विधान है। वह क्षुधा चाहे पेट की हो, या रसना इन्द्रिय की हो।

(छ) प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते। यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते॥

(अथर्व० ११.४.१३)

अर्थात् वास्तव में, धान और जौ, प्राण और अपान रूप (जीवनरूप अर्थात् जीवन के प्रधान साधन) हैं, बैल भी प्राणरूप हैं (चूंकि बैल के कारण ही कृषि तथा गौओं की वृद्धि होती है और कृषि तथा गौएं प्राण को अन्न देती हैं); जौ में प्राण तथा धान में अपान स्थित है।'

इस मन्त्र में कृष्यन्न तथा गव्यान्न के ही सेवन की ओर निर्देश किया है-

(ज) लाजीञ्छाचीन् यव्ये गव्यं एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते॥ (यजु० २३.८)

अर्थात् हे देवो! तुम लाजाओं, सत्तुओं, जौ के बने पदार्थों तथा गौ से उत्पन्न दूध आदि पदार्थों को खाओ। हे प्रजापते! अर्थात् सन्तान के रक्षक गृहस्थी सज्जन! तू भी इन्हीं अन्नों का सेवन कर।'

इस मन्त्र में देवों (अर्थात् जो अपने को सात्त्विक बनाना चाहें, या अपने में दिव्य गुण लाना चाहें) और गृहस्थियों को स्पष्ट आज्ञा है कि वे कृषि से पैदा हुए अन्न तथा गौ से पैदा हुए दूध आदि का ही सेवन करें।

'भोज्य पदार्थों की वैदिक प्रार्थनाओं अथवा सूचि में, मांस का परिगणन नहीं किया' इस कथन की प्रामाणिकता के लिये हमें वेदों के वे स्थल पढ़ने चाहियें जहाँ कि भोज्य पदार्थों की प्रार्थनाएं की गई हैं या अकस्मात् जहाँ कहीं भोज्य पदार्थों के परिगणन का प्रसंग आ गया है। उन स्थलों के पठन से यह परिणाम अवश्य निकलेगा कि इन प्रार्थनाओं, या प्रसंगोपात्त सूचियों में मांस का परिगणन नहीं है। यदि वैदिक ऋषि मांसलोलुप होते तो, इन प्रार्थनाओं या सूचियों में, मांस का परिगणन भी अवश्य होता। इस निश्चय के लिये यजुर्वेद के १८ वें अध्याय तथा वेदों के अन्य ऐसे स्थलों को देखना आवश्यक है। इस लेख में भी, प्रसंगवश जो मन्त्र उपस्थित किये हैं, उनमें भी कही-कहीं भोज्य पदार्थ गिनाये गये हैं, परन्तु मांस का परिगणन इनमें भी नहीं। यजुर्वेद के निम्न मन्त्र में धान, जौ, तिल, उड़द, मसूर आदि अन्नों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धि की कामना यज्ञ द्वारा की गयी है-

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।। (यजु० १८.१२)

'वैदिक प्रार्थनाओं में यद्यपि गौ आदि पशुओं की प्राप्ति के लिये प्रार्थनाएं हैं, तथापि उनकी प्राप्ति (भोजन के सम्बन्ध में) उनके दूध आदि के लिये है, न कि उनके मांस के लिये'-इस कथन की प्रामाणिकता में निम्नलिखित मन्त्र पर अवश्य विचार करना चाहिये जैसे-

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्। पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्।।

(अथर्व० १९.३१.५)

अर्थात् मैंने दोपाये चौपाये पशुओं तथा धान्य को खूब एकत्र किया है। आज्ञाकारी महान् प्रभु में, पशुओं का तो दूध और औषधियों का सार भूत उत्तम अन्न मेरे (भोजन के लिये) नियत किया है।'

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि 'आज्ञाकारी महान् प्रभु ने पशुओं का दूध ही, मेरे लिये नियत किया है (मांस नहीं)'। अतः वैदिक प्रार्थनाओं में, जहाँ कहीं भी, गौ आदि दूध देने वाले पशुओं का वर्णन है, वहां वह वर्णन, उनके दूध के लिये ही जानना चाहिये मांस के लिये नहीं। इस प्रकार भेड़ का वर्णन उसकी ऊन के लिये भी उत्पन्न हो सकता है।

पुल्लिंग पशुओं की प्रार्थना पशु सन्तति के बढ़ाने के लिये भी हो सकती है। इसी प्रकार सर्वत्र, यथा शक्य, उपपादन करना चाहिये।

'वेदों की रहस्यात्मक वर्णन शैली में, मांस शब्द, पशु मांस से भिन्न अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त है' इस कथन की पुष्टि के लिये, निम्नलिखित निर्देशों पर अवश्य विचार करना चाहिये। यथा:-

(i) अनेक वैदिक तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि, यज्ञ में या यज्ञ से अन्यत्र व्यवहार-कार्य में भी, निरपराधी पशु की हत्या नहीं करनी चाहिये। वेद में तो यह भी लिखा है कि पशु, परमात्मा के प्रिय प्राणरूप हैं। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि वेद में मांस के खाने वाले को राक्षस नाम से पुकारा है। अतः वह वेद जो कि पशुओं पर परम कृपालु है, और जो मांस-भक्षक को राक्षस कहता है, पशुओं के मांस के भक्षण की आज्ञा देगा। यह मानना तर्क सिद्ध प्रतीत नहीं होता। तो भी वेदों में कतिपय ऐसे स्थल अवश्य मिलते हैं, जहाँ मांस के भक्षण या उसके यज्ञ में डालने का आभास प्रतीत होता है। जैसे-

(i) अपूपवान्मांसवांश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ।।

(अथर्व० १८.४.२०)

(ii) ये ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते। ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः।।

(अथर्व०१८.४.४२)

(iii) स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपाहरति। यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे।।

(अथर्व० कां०९, सू०६, पर्याय ४, मं० ७,८)

(iv) एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात्।।

(अथर्व०९.६/पर्याय३.९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन और ऐसे ही अन्य मन्त्रों में मांस के वर्णन का समाधान क्या है?

आस्तिक लोग, जो कि समग्र वेद को सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी मानते हैं, वेदों में इस प्रकार परस्पर विरोध के प्रश्न को एकदम उपेक्षित नहीं कर सकते। इसका कोई न कोई समाधान उन्हें सोचना ही पड़ेगा। जब कि वैशेषिक दर्शनकार जैसे तत्त्ववेत्ता और वैज्ञानिक भी वेदों के सम्बन्ध में लिखते हैं कि **'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'** अर्थात् वैदिक वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक है, तब हमारे लिये और भी आवश्यक हो जाता है कि हम भासमान इस परस्पर विरोध का कोई समाधान ढूँढ़े।

परन्तु प्रश्न यह है कि उपस्थित मांस की समस्या को हल कैसे किया जाये? इसका समाधान, सम्भवतः, इस कल्पना में मिल जाये कि 'जब वेदों के विधिवाक्यों में पशुहिंसा तथा मांस-भक्षण के स्पष्ट निषेध मिलते हैं, तब वेदों के ऐसे स्थलों में, जिनमें कि मांसभक्षण के आधार की यत्किंचित् सम्भावना प्रतीत होती है, इससे जानने की कोशिश की जाय कि, सम्भवतः वेदों की रहस्यात्मक वर्णन शैली में, पशुमांस के अतिरिक्त मांस शब्द का कोई अन्य अप्रसिद्ध अर्थ भी हो।'

(ii) बृहदारण्यक उपनिषद् अ०३, ब्रा० ९, कण्डि० २८ में पुरुष और वृक्ष में पूर्ण समानता दर्शाई है। जैसे-

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा।
तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका बहिः।।
त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः।
तस्मात्तदातृण्णात्प्रैति दासो वृक्षादिवाहतात्।।
मांसान्यस्य शकराणि किनाटं स्नाव तत्स्थिरम्।
अस्थीन्यन्तरतो दारुणि मज्जा मज्जोपमा कृता।।

अर्थात् जैसे बड़ा वृक्ष होता है पुरुष भी वैसा ही है, यह सर्वथा सत्य है। वृक्ष के पत्ते ही रोम हैं, बाहर की छाल ही त्वचा है। आहत होने पर मनुष्य की त्वचा से रुधिर निकलता है, और वृक्ष की त्वचा से गोंद का रस। वृक्ष के शकर (गूदा?) मांस रूप हैं, सूक्ष्म-सूक्ष्म तन्तु सम शिराएं स्नावा हैं, अन्दर की दारु अस्थि, तथा दारु में रहने वाला स्नेह पदार्थ मज्जा हैं।'

इस प्रकार, इस वर्णन में स्पष्ट दर्शाया है कि रोम, त्वचा, रुधिर, मांस, स्नावा, अस्थि तथा मज्जा आदि शरीरावयववाची पद, वृक्षों के भिन्न-भिन्न अवयवों के भी वाचक है।

अतः वेदों में, भोजन के सम्बन्ध में, मांस शब्द के केवल दर्शनमात्र से पशुमांस की कल्पना कर लेना न्यायानुमोदित तथा युक्ति सिद्ध प्रतीत नहीं होता।

(iii) अथर्ववेद ४.१२.१-७ के मन्त्रों में, रोहिणी औषधी का वर्णन है। इस औषधि के वर्णन में कहा है कि यह टूटी फूटी हड्डी को, जले हुए मांस, त्वचा तथा मज्जा को पुनः पूर्वावस्थित कर देती है। इसी वर्णन क्रम में, रोहिणी के भिन्न-भिन्न अवयवों को **'मज्जा परुः चर्म, असृक्, मांस, लोम तथा अस्थि'** आदि नामों द्वारा निर्दिष्ट किया है। अतः प्रतीत होता है कि वैदिक परिभाषा में मांस, अस्थि आदि नाम औषधि जगत् के भिन्न-भिन्न अवयवों में भी प्रयुक्त होते हैं, केवल एकमात्र पशु या जङ्गम प्राणी जगत् में ही इनका प्रयोग सीमित नहीं। अतः भोजन के सम्बन्ध में, वेदो में, यदि मांस आदि शब्द प्रयुक्त हों, तो इन के उचित अर्थों के चुनाव में, बुद्धिमत्ता तथा व्यापक दृष्टि से काम लेना चाहिये। अथर्ववेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११.३ में धान के परिप्रेक्ष्य में मांस शब्द के विषय में आता है कि **अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः** (११.३.५), **श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम्** (११.३.७) अर्थात् चावल के कण अश्व हैं, चावल गौ हैं, भूसी मशक है, चावलों का श्याम भाग मांस और लाल भाग रुधिर है।'

रोहिणी औषधि के सम्बन्ध में तीन मन्त्र यहां उपस्थित किये जाते हैं, जिनके पठन से उपर्युक्त वक्तव्य की सत्यता प्रतीत हो सकेगी। जैसे-

सं ते मज्ज्ञा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु॥
मज्ज्ञा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु॥
लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम्।
असृक् ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे॥ ३-५॥

अर्थात् हे रोगी! रोहणी (लाख, लाक्षा) की मज्ज्ञा=मज्जा (marrow) द्वारा तेरी मज्जा का संधान हो, रोहणी ओषधि के चर्म के द्वारा तेरा चर्म रोपित हो, स्वस्थ हो। रोहणी के असृक् तथा अस्थि द्वारा तेरा रक्त तथा तेरी हड्डी स्वस्थ हो। तथा रोहणी के मांस अर्थात् गुदे द्वारा तेरा मांस बढ़े।' इस प्रकार मन्त्र में रोहणी ओषधि (जिससे कि लाख बनती है) की मज्जा, चर्म, असृक् अर्थात् रक्त, हड्डी और मांस का वर्णन है। आप्टे के अनुसार मज्जा का अर्थ है-The pith of plants, तथा The marrow of the bones & flesh.अतः उपर्युक्त मन्त्र में मांस का अर्थ 'फल का गूदा' प्रतीत होता है।

(iv) ब्राह्मण ग्रन्थ के आधार पर यह दर्शाया जा सकता है कि, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में, धान और जौ की पीठी के तथा इस पीठी के भिन्न-भिन्न अवयवों के भी, मांस, अस्थि, रुधिर, तथा त्वचा आदि नाम हैं, यथा- '**यदा पिष्टान्यथ लोमानि भवन्ति; यदाप आनयत्यथ त्वग्भवति; यदा संयौत्यथ मांसं भवति, सन्तत इव हि स तर्हि भवति, सन्ततमिव हि मांसम् यदाशृतोऽथास्थि भवति दारुण इव हि स तर्हि भवति, दारुणमित्यस्थि; अथ यदु द्वासयिष्यन्नभि धारयति तं मज्ञानं दधात्येषो स सम्पद्याहुः पांक्तः पशुरिति॥** शतपथब्राह्मण १,२,३,८॥

अर्थात् व्रीहि (धान) और यव (जौ) की पीठी के दाने लोम रूप हैं, पानी डालने से इस पीठी पर जो पिप्पड़ी बन जाती है वह त्वचा रूप है, जल और पीठी के मिलाने पर पीठी मांस-रूप है, चूंकि जल के मिलाने पर वह पीठी फैल सी जाती है, और मांस भी फैला हुआ ही होता है; जब पीठी पकाई जाती है तब वह अस्थि (हड्डी) रूप है, उस समय वह कठोर हो जाती और अस्थि भी कठोर ही होती है। जब पीठी को अङ्गारों पर से उतार कर उस पर घी डालते हैं तब अस्थिरूप पीठी में मज्जा पैदा होती है। इस प्रकार इसी पीठी में पांचों पशुओं की श्री है।'

इससे भी प्रतीत होता है कि वेद में, यत्र तत्र, भोजन के सम्बन्ध में भी पठित मांस आदि शब्द, आवश्यक नहीं कि प्राणि पशु के ही भिन्न-भिन्न अवयवों के वाचक हों।

(v) चरक संहिता आदि वैद्यक ग्रन्थों में, केसर को रुधिर, खजूर के गूदे को मांस, बेर की गुठली को अस्थि, तथा पके आम के गूदे, रस और गुठली को क्रम से, मांस, मज्ञा, तथा अस्थि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामों से पुकारा है।

(vi) आप्टे कोष में भी, मांस शब्द के अर्थों में 'फल का गूदा (fleshy part of a fruit)' अर्थ दिया है। अत एव इन्टरनेट की Agniveer website पर मांस की परिभाषा देते हुए लिखा गया है कि **'मीट को मांस इसलिये कहा जाता है क्योंकि वह गूदेदार होता है, इसी से केवल मांस शब्द के प्रयोग को देखकर ही मीट नहीं समझा जा सकता।'**

अत: उपर्युक्त मन्त्रों, जिनमें द्व्यर्थक शब्दों से मांसभक्षण आदि का आभास या भ्रम प्रतीत होता है, का पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय के अनुसार अर्थ इस प्रकार है-

(i) प्राजापत्ययाजी के जीवन-यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् भी इस घर में पूड़ों समेत और मांस (फल का गूदा) समेत चावल, जौ आदि विद्यमान रहें। तथा अतिथिदेवों में जो आप आहुतियों के पश्चात् यज्ञशेष का भाग ग्रहण करने वाले इस भूमण्डल पर जीवित हो, और लोकोपकार करने वाले और लोकों को सत्पथ में चलाने वाले हो, उन आपका अतिथियज्ञ द्वारा हम सत्कार कर सकें। (अथर्व० १८।४।२०)

(ii) हे पितृवर्ग! आप में से प्रत्येक के प्रति इस मठे को, 'जिस ओदन को, जिस फल के गूदे को आपका पुत्र मैं आपके पालनार्थ भेंट करता हूँ, वे सब भेटें आपके धारण-पोषण करने वाली सात्त्विक हों, मधुर हों, तथा घृतपूर्ण हों। (अथर्व०१८/४/४२)

(iii) 'जो अतिथिपति इस प्रकार अतिथियज्ञ के महत्त्व को जानता है, और मांस (फल का गूदा) को सींचकर, डालकर उपहार रूप में अन्न प्रदान करता है वह उत्तम प्रकार से समृद्ध हुए द्वादशाहयज्ञ द्वारा यजन करके जितना फल प्राप्त करता या स्वाधिकार में कर लेता है उतना फल इस अतिथियज्ञ द्वारा प्राप्त करता या स्वाधिकार में कर लेता है। (अथर्व० कां०९, सू०६, पर्याय ४, मं० ७,८)

(iv) निश्चय से यह पनीर अधिक स्वादु है जो कि गो सम्बन्धी है, दूध या मांस (आमिक्षा) अथवा दूध और मांस (आमिक्षा) उसे ही श्रोत्रिय, अतिथि से पहले न खाये। (अथर्व०९/६/पर्याय३/९)

उपर्युक्त पहले दो मन्त्र अट्ठारहवें काण्ड से सम्बन्धित हैं। आचार्य सायण के अनुसार इनका पितृमेध प्रकरण में विनियोग है। इन दो मन्त्रों से प्रेत को मांसदान तृप्त करने के लिये किया जाता है। उपर्युक्त में से तृतीय और चतुर्थ मन्त्र में अतिथि का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है। विनियोग भाष्यकार आचार्य सायण ने यहाँ **मांसम्** का अर्थ प्राणिमांस ही अर्थ किया है जो कि किसी भी प्रकार संगत नहीं बैठता है। इन मन्त्रों में **मांसवान्** और **मांसम्** पदों का अर्थ पशुहिंसाजन्य मांस ही हो, यह सर्वदा उचित नहीं। इस विषय में एक तर्क यह भी हो सकता है कि **मांसवान्** आदि पदों में मांस यदि रूढ़िगत अर्थ वाला है तो यह निश्चित करना पड़ेगा कि किसका मांस, पशुओं में गौ, अश्व आदि का या किसी और का? अथर्ववेद में तो पाँच पशुओं में मनुष्य की भी गणना होती है-**तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः** (११.२.९)। मांसभोजियों को तो मनुष्य के मांस का भोजन अत्यधिक स्वादिष्ट लगता है। अत: परप्राणी हिंसा से भी बचा जायेगा। अपने प्रिय अतिथि को अपने प्रिय शरीर का ही मांस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोसना चाहिये, यदि उपर्युक्त स्थल पर रूढ़िगत मांस (Meat, flesh eating) अर्थ लेते हैं तो। ऐसा वे करेंगे नहीं। अत: पूर्वापरप्रसंग और उक्त तर्क के आधार पर यह सिद्ध होता है कि **मांसवान्** पद का अर्थ यहाँ **फलों का गूदा** ही है।

पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत मांसभक्षण के पोषक उपर्युक्त चार मन्त्रों में प्रयुक्त मांस शब्द के उल्लेख से पहले तत्तत् सूक्तों के बाद वाले मन्त्रों में अपूप, क्षीर, दधि, द्रप्स, घृत, अन्न, मधु, रस आदि पदार्थों के चरु का विधान है। जो निश्चय ही शाकाहारी पदार्थ हैं। शाकाहारी पदार्थों के साथ अशाकाहारी पदार्थों का मेल कदापि उचित प्रतीत नहीं होता। अत: यहाँ उक्त स्थलों में मांस का अथ **फलों का गूदा** ही उचित प्रतीत होता है। अत: इन कतिपय प्रमाणों और तर्कों से यह अवश्य सिद्ध होता है कि, वेदों में पठित मांस आदि शब्द, आवश्यक नहीं कि प्राणी पशुओं के ही अवयवों के सूचक हों। क्योंकि मांस हिंसा से प्राप्त होता है, इस प्रकार हिंसा तथा अहिंसा सम्बन्धी पूर्वोक्त परस्पर विरोध का भी परिहार हो सकता है। अथर्व०१०/९ सूक्त के निम्नलिखित मन्त्र भी विद्वानों के लिये गोमांस भक्ष्य प्रसंग में विचारणीय रहे हैं-

(i) **यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते। प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम्॥ ४॥**

(ii) **ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः। ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने॥ ७॥**

(iii) **घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति। पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने॥ ११॥**

उक्त तीनों मन्त्र अथर्व०१०.९ सूक्त में आये हैं। इस सूक्त का याज्ञिक विनियोग सायणाचार्य के शब्दों में इस प्रकार है-'**आघायताम्** यह सूक्त आहुत्यर्थ गोवध में विनियुक्त होता है। वह वध्या गौ शतौदना कहलाती है। उसके वध से उसके मांस की आहुति से जो यजन होता है वह अग्निष्टोम और अतिरात्र से भी श्रेष्ठ है। यह कर्ममार्ग में प्रवृत्त कराने वाला प्रशंसापरक वचन है। जो मारी जाती है उसके प्रति तू हन्ताओं से मत डर, तू देवी हो जावेगी, स्वर्ग में देवता तेरी रक्षा करेंगे-इत्यादि प्रोत्साहन वचन हैं। जो तुझे हनन करता है, पचन करता है, जो आहुति देता है, वह उत्तम स्वर्ग को जाता है, इत्यादि गोभिल वचन के द्वारा गोमेध की प्रशंसा भी की है।'

आचार्य सायण ने वध्या गौ को शतौदना माना है और इसी के अनुसार उपर्युक्त मन्त्रों का अर्थ किया है। जैसे-जो शतौदना का पचन करता है, वह कामपूरक रूप से समर्थ होता है और ऋत्विज् इससे प्रसन्न होकर यथायोग्य रीति से चले जाते हैं (मन्त्र ४)। हे देवि! जो तेरा पचन करने वाले हैं और जो तेरा शमन करने वाले प्राणी हैं वे सब तेरी रक्षा करेंगे, तू इनसे न डर (मन्त्र ७)। हे शतौदने देवि! हे सुभगा देवि! तू घृत का प्रोक्षण करती हुई देवताओं को प्राप्त होगी, तू पक्ता का हिंसन न कर, स्वर्ग को जा (मन्त्र ११)। सायणेतर दयानन्दीय विचारधारा के भाष्यकारों ने उक्त सूक्त में अन्नदात्री पारमेश्वरी माता का वर्णन शतौदना (गौ) के रूप में माना है। क्योंकि गौ भी सैकड़ों प्रकार के ओदनादि भोज्य पदार्थ देती है। जैसे-दूध, दधि, घृत; तथा बैलों द्वारा कृष्यन्न। इसी प्रकार यह पारमेश्वरी माता भी, यदि इसकी कृपा न हो तो हमें ये भोज्य पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते, हमें सैकड़ों प्रकार के ओदनादि भोज्य पदार्थों को प्रदान करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अथर्ववेद के उपर्युक्त १०.९ सूक्त के उद्धृत मन्त्र सातवें और ग्यारहवें में **पचति**, **पक्तारः** और **पक्तारम्** का अर्थ 'ध्यान द्वारा परिपक्व करता है', 'ध्यानाभ्यास द्वारा तेरा परिपाक करने वाले को' ये अर्थ करते हुए पं० विश्वनाथ विद्यालंकार ने पूरे मन्त्रों का अर्थ अपने भाष्य में इस प्रकार किया है- जो ध्यानयज्ञ करने वाला पारमेश्वरी माता (शतौदना) को परिपक्व करता है, वह कामना को पूर्ण करने वाले ध्यानयज्ञ द्वारा सामर्थ्य वाला हो जाता है, और इसके ध्यानयज्ञ के अर्थात् अध्यात्मगुरु प्रसन्न होकर जहाँ-जहाँ जाना चाहिये चले जाते हैं (मन्त्र ४)। हे पारमेश्वरी मातृदेवते! जो जन तुझे शान्त करते हैं और जो तुझे ध्यानाभ्यास से परिपक्व करते हैं वे सब तेरी रक्षा करेंगे, इनसे तू भयभीत न हो। हे सैकड़ों ओदनादि भोज्य पदार्थों को देने वाली पारमेश्वरी मातः! (मन्त्र ७)। घृतादि पदार्थों का सिंचन अर्थात् प्रदान करती हुई उत्तम भगों वाली पारमेश्वरी मातारूपी देवता दिव्य गुणों वाले व्यक्तियों को प्राप्त होती है। हे अहन्तव्ये अत्याज्ये मातः! ध्यानाभ्यास द्वारा तेरा परिपाक करने वाले को तू निज आश्रय से वंचित न कर। हे नानाविध अन्नों को देने वाली! उपासक के मस्तिष्क में तू प्राप्त हो (मन्त्र ११)

उपर्युक्त तीनों मन्त्रों में सायणादि विनियोक्ता भाष्यकारों ने शतौदना को लोकप्रसिद्ध गाय मानते हुए **पचति**, **पक्तारः**, **पक्तारम्** इन पदों का लोकप्रसिद्ध सामान्य अर्थ 'अग्नि पर पकाना' और **मा हिंसीः** का अर्थ 'हिंसन न कर' किया है। जो कि मूल वैदिक अभिप्राय से बिल्कुल दूर है। जैसे 'परिपक्व बुद्धि' पद में परिपाक का अर्थ 'अग्नि पर पकाना' नहीं होता वैसे ही पचति आदि उक्त पदों के विषय में भी जानना चाहिये। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मारी गयी, काटी गयी और अग्नि पर भूनी गयी और द्युलोक में पहुँची हुई शतौदना के जब अंग ही न रहे तब वह दिविषद्, अन्तरिक्षसद् तथा भूमिष्ठ देवों को आमिक्षा आदि कैसे दे सकती है? जो कि इस अथर्ववेदीय सूक्त के अन्य मन्त्रों में इंगित है। वैदिक दर्शनानुसार वेद में मन्त्र-रचना बुद्धिपूर्वक हुई है तब मन्त्रार्थ बुद्धिसंगत ही होने चाहियें, बुद्धि विपरीत नहीं। विशेषतया तब जब कि वेदों को परमेश्वरीय रचना माना जाता है।

वेदों की रहस्यात्मक वर्णन शैली में, जिस प्रकार मांस आदि शब्दों के गूदा और चावलों का श्याम भाग आदि अर्थ सम्भव हैं। इसी प्रकार अश्व आदि शब्दों के भी, पशु भिन्न अन्य अर्थ भी सम्भव हैं। जिनके कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं। यथा-(a) अश्व=तण्डुल के कण[12]; सूर्य, अश्वपर्णी या असगन्धा औषधि, एक नक्षत्र[13] आदि, (b)अज या छाग=तीन वर्ष या सातवर्ष के पुराने धान[14]; राशिचक्र में मेषराशि[15]; अजानामक औषधि[16] आदि, (c) धेनु=धाना[17]; पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिशाएं आदि (d) वत्स=तिल[18] (e) वृषभ=ओदन[19], बादल, ऋषभ औषधि आदि, (f) गौ=तण्डुल[20]; शमीवृक्ष[21], रश्मि, चन्द्रमा, दूध, चर्म, धनुष की डोरी आदि (निरुक्त अ०२, पा०२, खं०१-३, (g) उक्षा=सोम औषधि[22] आदि।

यहां परिचय मात्र के लिये कतिपय उदाहरण दिये हैं। इसी प्रकार पशुवाचक अन्य शब्दों के भी सर्वसाधारण में अप्रसिद्ध अर्थ, वैदिक तथा संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में मिलते हैं।[23]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वेदों के अध्ययन करने वाले के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह, मन्त्रों के अर्थ करते समय, परस्पर विरोधी वर्णनों पर विशेष ध्यान दे और विरोध के समाधान के लिये वेदों के रहस्यार्थों की खोज करे। क्योंकि द्व्यर्थक शब्दों से जो भ्रम हो सकता है उसका निराकरण वेदों तथा अन्य ग्रन्थों ने स्वयं कर दिया है। वेदेतर लौकिक साहित्य में भी द्व्यर्थक शब्दों से भ्रम पैदा होता है जिसका निराकरण भी पूर्वापर प्रसंग के आधार पर किया जाता है। जैसे कि निम्नलिखित कतिपय उद्धरणों में देखा जा सकता है-

(i) **गोमांसं भक्षयेन्नित्यं, पिबेदमरवारुणीम्। कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातका:।।**

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि। गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्।। (हठयोगप्रदीपिका)

(ii) **मातरं पितरं हत्वा राजानौ द्वौ च क्षत्रियौ। राष्ट्रं सानुचरं हत्वा अनघो याति ब्राह्मण:।।**[24] (धम्मपद के वचन का संस्कृत रूपान्तर)

(iii) **कुमारिका पादघातेन तत्क्षणं म्रियते फणि:।**[25] (वैद्यकग्रन्थ)

वैदिक और संस्कृत भाषा को एक समझ कर संस्कृतभाषा के आधार पर पूर्णत: वैदिकभाषा को नहीं समझा जा सकता, इन दोनों भाषाओं में महान् अन्तर है। उपर्युक्त वैदिक और लौकिक उद्धरण इस बात के प्रबल प्रभाण हैं।

उपर्युक्त मांसभक्षण विषय की आलोचना के सम्बन्ध में अन्य निम्नलिखित कतिपय तर्क दिये जाते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि वेदों में मांस मनुष्य का भोजन नहीं है-

प्राकृतिक दृष्टि से मनुष्य शाकाहारी है, मांसाहारी नहीं ऐसा वैदिक संहिताओं में पदे पदे दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि मांस भोजी जीवों के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध निकलती है जिसको सूंघकर दूसरे प्राणी उसको देखते ही भागने लगते हैं, जैसे शेर, भेडिया, चीता आदि को देखकर दूसरे प्राणियों का भागना। यदि मनुष्य मांस भोजी जीव होता तो मनुष्य को देखकर दूसरे प्राणियों को भाग जाना चाहिए था। परन्तु लोक में ऐसा देखने में नहीं आता इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य का भोजन मांस नहीं है। वेद परमात्मा की सार्थक वाणी है अत: अव्यावहारिक और अप्राकृतिक वर्णन वेद में नहीं हो सकते।[26]

चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से भी मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। क्योंकि मनुष्य की अन्तड़ियां ३३ फुट लम्बी तथा घुमावदार हैं, जबकि मांसाहारी जीवों की अन्तड़ियां उनके शरीर की लम्बाई से केवल ३ गुना अधिक हैं, घुमाव तनिक नहीं और सीधी थैली-सी हैं ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए, चूंकि मांस जल्दी सड़ता है, अत: बैक्टीरिया द्वारा रक्त प्रवाह में मांस के सड़ने से जहर घुल जाने से पूर्व ही उसे पचाना और बाहर निकाला जाना आवश्यक होता है। इसलिये परमात्मा ने उसकी आंतें छोटी बनाई ताकि मांस सड़ने से पूर्व ही पच जाये और बाहर निकल जाये। परन्तु उसके विरुद्ध गैर-मांसाहारी अर्थात् शाकाहारी प्राणी जल्दी सड़ने वाला भोजन नहीं खाते, इसलिये उनका पाचन तन्त्र अधिक लम्बा, घुमावदार होता है-जो शाकाहारी भोजन को धीरे-धीरे पचाने के लिये है। इसलिए भली प्रकार से समझना चाहिये कि मानव का शरीर मांस खाने के लिये अनुकूल कदापि नहीं हैं और हमारे द्वारा मांस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना अप्राकृतिक तथा खतरनाक दोनों है।[27] वेदों में मानव शरीर संरचना की दृष्टि से ही भोज्य पदार्थों का वर्णन है। फल, शाक-सब्जी, कन्दमूल (Fruits & Vegitables-vegitarion food) दुग्ध, अन्नादि ऐसे भोज्य पदार्थ हैं जो कि मानव शरीर संरचना की दृष्टि से भोजन के लिये उपयुक्त हैं।

अथर्ववेद में राजा के राज्याभिषेक प्रकरण में कहा है कि वही मनुष्य राजा बनने के योग्य है जो प्रजाओं को दुग्ध आदि से पालन करने में समर्थ हो-**भूतो भूतेषु पयः आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव** (अथर्व०४.८.१)। इसमें कहीं भी मांसभक्षण से प्रजा का पालन करना नहीं लिखा। यदि मांस भोज्य होता तो इस बात का उल्लेख अवश्य होना चाहिये था। ऐसा चारों वेदों में कहीं भी उल्लेख नहीं है।

ऋग्वेद के अतिवृष्टि निरोधक मन्त्र में आता है-**'ओषधिरजीजनत् भोजनाय'** अर्थात् हे मेघ! तुम खूब बरसे, भोजन के लिये पर्याप्त मात्रा में ओषधियाँ (अन्नादि) उत्पन्न हो गये हैं, अब बस करो तुम।' यदि मनुष्य का स्वाभाविक भोजन शाकाहार अन्नादि न होता तो उक्त मन्त्र में **ओषधिः** पद का प्रयोग न होकर किसी और मांसादि पद का प्रयोग होना चाहिये था।

पशुवध कर उसका मांसाहार करना वैदिक नहीं है जो भी मन्त्र मांसभक्षण के पोषण में दिये जाते हैं, उनकी परीक्षा करने से मांसभक्षण की पुष्टि नहीं होती। वेदों में ऐसा एक भी मन्त्र नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि मैं पशुमांस की हवि देने के लिये और उसको खाने के लिये इन पशुओं का पालन-पोषण करता हूँ! इसके विपरीत जैसा कि इस शोधनिबन्ध में पूर्वोल्लिखित है कि भोज्य के रूप में गोमांस ही नहीं अपितु किसी भी प्रकार के मांस का सर्वथा निषेध प्राप्त होता है। अथर्ववेद के **भूमिसूक्त** में तो यह लिखा है कि पृथिवी पर मरणधर्मा मनुष्य का अन्न ही धारण-पोषण करने वाला है, उसके सेवन से ही मनुष्य जीवित रहते हैं-**भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः** (१२.१.२२)। इस मन्त्र में मनुष्य जीवन को धारण करने की शक्ति अन्न में **स्वधा** पद के द्वारा बतायी गयी है। यजुर्वेद में गोदुग्ध से प्राप्त घी से शरीरों की वृद्धि होती है-**घृतेन तन्वं वर्धस्व**-ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। यदि मांस से शरीरवृद्धि अपेक्षित होती तो **मांसेन तन्वं वर्धस्व** का प्रयोग होना चाहिये था। इन सभी तर्कों से यह सिद्ध होता है कि मांसभक्षण वेदानुमोदित नहीं है। मांसभक्षण तो वैदिक अपराध है, क्योंकि इसमें पशुहिंसा पायी जाती है, जिससे सर्वभूत मैत्रीसिद्धान्त की क्षति होती है।

वेदों में अनेक भक्ष्य पदार्थों का वर्णन है जो कि कृष्यन्न और गौ से पैदा हुए दूध एवं उससे निर्मित पदार्थ (अधिगव) ही हैं, ऐसा ऊपर प्रसंगानुरूप वर्णन किया गया है। फिर भी कतिपय भक्ष्य पदार्थ इस प्रकार है जिनमें कहीं भी मांस का उल्लेख नहीं है-गौ का दूध, घी, धान्य, अन्न (१२ प्रकार के अन्न-यजु०१८/१२), ओदन, पूड़ा (अपूपवान्), सत्तू, दही, दही की लस्सी, शहद तथा मधुर वस्तुयें, नानाविध रस, शुद्ध जल, मठा (मन्थम्), आमिक्षा=पनीर, क्षीर, फल का गूदा, चरु, गौ दुग्ध से बने बहुत से पदार्थ आदि।

निघण्टु में भोजन (भुज्) धन नामों में पठित है। परन्तु ऋग्वेद में यह बहुत बार सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से भोज्य पदार्थ (Food) के रूप में आया है। ऋग्वेद १/१८७ **अन्न**देवताक सूक्त में अन्न को **पितु** कहा है। आचार्य सायण ने इसका अर्थ**पालकमन्नम्** किया है। वेदों में अन्न को **कीलालम्** और **भरद्वाज** इन दो विशेषणों से भी अभिहित किया गया है। शरीर और शरीरावयवों को जीवात्मा के साथ बांधे रखने में पर्याप्त होने से अन्न **कीलाल** है[28] तथा भरण-पोषणकारी होने से अन्न भरद्वाज कहलाता है।[29] इन दोनों नामों की सार्थकता ऋग्वेदोक्त **पितु**[30] नाम में स्पष्ट रूप से घटती है। यह विशेषता मांस में नहीं है। वेद परमात्मा की सार्थक वाणी हैं। अत: उसमें असार्थक, अप्रासंगिक (पूर्वापर प्रसंगविरुद्ध) और वदतोव्याघातयुक्त बातें नहीं हैं।

यजुर्वेद ११/८३ में परमात्मा को **अन्नपति** कहा है, और उससे अन्न देने की प्रार्थना की गयी है, मांस देने की नहीं। वैदिक साहित्य में भोजन (अन्न) से विनिर्मित शरीर (The Physical or grassbody, made of food) को अन्नमयकोश के नाम से कहा गया है। अत एव मनुष्य के षोडश संस्कारों में अन्नप्राशन संस्कार[31] का विधान है। शरीर के लिये अन्न महत्त्वपूर्ण पदार्थ है इसलिये प्रथम बार अन्नग्रहण करने के अवसर पर शिशु का यह संस्कार किया जाता है। जिसमें घृतमिश्रित ओदन[32] और दधि, मधु, घृतमिश्रित अन्न का निर्देश है। पूरे प्रकरण में कुत्रापि मांस का संकेत तक नहीं है। प्राण का सम्बन्ध अन्न के साथ है इसलिये **'ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय-इदं न मम'** मन्त्र से बच्चे को खिलाये जाने वाले शाकाहारी पदार्थ की आहुति भी डालने का निर्देश मिलता है। यदि मांस अभिप्सित और आवश्यक वस्तु होती, तो **'ओं प्राणेन मांसमशीय स्वाहा'** यह मन्त्र होना चाहिये था। ऐसा नहीं है। अत: वैदिक परम्परा में मांस भोज्य नहीं है। वैदिक ऋषि इस बात को जानते थे कि अन्न पर ही जीवन आधारित है। इसलिये वेद में मांस की दूर-दूर तक भी भोजन के लिये कल्पना ही नहीं है। यदि होती तो उसकी सयुक्तिक प्रसंगोपात चर्चा अवश्य होती। जीवन के उक्त महत्त्वपूर्ण संस्कार में तो अवश्य होती और उसका नाम **मांसप्राशन** संस्कार होता। इसीलिये वेदारम्भ संस्कार में मांसभक्षण न करने का ब्रह्मचारी को स्पष्ट निर्देश दिया गया है।[33] यदि मांसभक्षण इष्ट होता तो उसका निषेध क्योंकर किया जाता ?डॉ० शशि तिवारी ने अपने निबन्ध 'The Vegitarion food in the Rigveda' में ऋग्वेद के आधार पर मांसाहार का प्रत्याख्यान करते हुए शाकाहारी भोजन का ही वर्णन किया है कि ऋग्वैदिक लोग विशुद्ध शाकाहारी (Pure vegitarion) थे। इस शाकाहारी भोजन में फल, सब्जियों के अन्तर्गत बिल्व, खर्जूर, आमलक, उर्वारुक, बिस[34] का जहाँ उल्लेख किया गया है वहीं दूध और अन्न से निर्मित विविध प्रकार के अग्रलिखित शाकाहारी व्यंजनों का विवेचन भी प्रस्तुत किया है-पायस, घी, दही, पुरोडाश, पक्ति, धाना, करम्भ, सक्तु, अपूप (Sweet cake) क्षीरोदन, दध्योदन, मुद्गोदन, गवाशिर, यवाशिर आदि।[35] अथर्ववेद में धानों के प्रकार (varity) के प्रसंग में लिखा है कि हरिणी, श्येनी, रस्या, कृष्णा और रोहिणी नामक धान होते हैं[36]। वेद में ऐसे ही भिन्न-भिन्न रूपों वाले धान आदि अन्नों को अनेक प्रकार से पकाये जाने पर खाने का विधान है-**यदन्नमद्मि बहुधा विरूपम्** (अथर्व०६.७१.१)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वेदों में मांस की झलक तो मिलती है, परन्तु पूर्वापर प्रसंग, तर्कशक्ति और वैदिक रहस्यवाद से इस झलक का वास्तविक रूप प्रकट होता है। वेदों में मांस शब्द जहाँ प्राणी मांस के अर्थ में (**मांसं मांसेन रोहतु**) अत्यल्प उपचार के प्रसंग में आया है वहीं भोजन के प्रसंग में फल के गूदे, आमिक्षा (पनीर) और चावल के श्याम भाग के अर्थ में भी आया है। यह हमने यथाप्रसंग स्पष्ट किया है। अत: मांसभक्षण से सम्बन्धित तथाकथित वेदों के उन-उन स्थलों की परीक्षा करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि कभी तत्तत् मन्त्रों/मन्त्रांशों के गलत अर्थों के आधार पर उनमें मांसभक्षण का आभास प्रतीत होने पर यदि कुछ लोग इस देश में श्रुति के नाम पर मांसभक्षण करते भी रहे हैं तो उसे वेदानुमोदित नहीं कहा जा सकता। अत एव महाभारतकार ने लिखा है कि मद्यमांसादि का प्रचार तो धूर्तों ने किया है। वेदों में यह कहीं भी पठित नहीं है-

सुरा मत्स्या: पशोर्मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तै: प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥

---

१. कतिपय पशुरक्षाप्रतिपादक मन्त्रों के साथ-साथ पशुहिंसानिषेधक वाक्य इस प्रकार हैं-यजमानस्य पशून् पाहि (यजु०१.१), ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे (यजु०११.८३), द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वन (यजु०१२.९५), द्विपादव, चतुष्पात् पाहि (यजु०१४.८), यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं..... असत् (यजु०१६.४), शमसद् द्विपदे चतुष्पदे (यजु०१६.४८), यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। त्वं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा (अथर्व०१.१६.४), गां मा हिंसीरदितिं विराजम् (यजु०१३.४३), मा गामनागामदितिं वधिष्ट (ऋ०८.१०१.१५)।

२. ऋग्वेद १०.८७.१६

३. अथर्व०५.१९.५

४. पिशितं मांसं भोजनार्थमचति याचते इति भ्वादिः (प्रो०विश्वनाथकृत अथर्ववेदभाष्यम् ४.२०.७)

५. अथर्व० ६.१४०.२

६. मन्त्रों में अचेतन दाँतों में चेतन धर्मों का केवल उपचार मात्र ही हुआ है। वेदों में औपचारिक वर्णन बहुत्र हैं। यथा-चेतनवद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्यप्येवं स्तूयन्ते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्यन्तानि (निरु०७.२.७)

७. अथर्व० ६.४०.३

८. आम मांस के तीन अर्थ हैं-(क) कच्चा मांस, इसके लिये देखो वाचस्पत्यकोष। यथा-आम्यते ईषत् पच्यते, आ+अम; ईषत् पक्वे, पाकरहिते (ख) घर में पका मांस। अमा=घर; निघ०अ०३,खं०४। अत: आम=घर सम्बन्धी, अर्थात् घर में पका हुआ (ग) गौ का मांस। इस अर्थ के लिये **आम** शब्द पर आप्टे कोश द्रष्टव्य है।

९. पुरुष शब्द से यहाँ पुरुष और स्त्री दोनों का ग्रहण है। 'पिता मात्रा' सूत्र के आधार पर एकशेष मानना चाहिये। अत: पौरुषेय का अर्थ हुआ 'पुरुष और स्त्री की हिंसा से प्राप्त'। इसलिये पौरुषेयक्रवि=पुरुष और स्त्री की हिंसा से प्राप्त मांस। मांस के प्राप्त करने में या तो पितृशक्ति की हिंसा होगी या मातृशक्ति की। क्योंकि संसार में प्राणी या तो पितृशक्तिसम्पन्न है या मातृशक्तिसम्पन्न।

१०. गर्भ=उत्पादन का जीवनतत्त्व, तथा नवजात या छोटे छोटे पशु-पक्षी

११ क=देह, और शव=मुर्दा। 'के' सप्तमी विभक्ति का एकवचन है। अत: केशवा:=वे मनुष्य जिनके शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् पेट में मुर्दे निवास करते हैं। 'क' का अर्थ शरीर है। इसके लिये द्रष्टव्य हैं वाचस्पत्य तथा आप्टे कोश।

१२ . अश्वाः कणाः गार्वस्तण्डुला मशकास्तुषाः (अथर्व०११.३/पर्याय०१.०५)

१३. द्रष्टव्य, सम्बन्धित ज्योतिष ग्रन्थ।

१४ प्रो० विश्वनाथ वेदोपाध्याय, वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा, अजमेध प्रकरण।

१५ द्रष्टव्य, सम्बन्धित ज्योतिष ग्रन्थ।

१६. द्रष्टव्य, सम्बन्धित आयुर्वेद के ग्रन्थ।

१७. धानाः धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत्। तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति॥ अथर्व०१८.४.३२

१८ देखो, पाद टिप्पणी संख्या १३

१९ वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ। सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्॥ अथर्व०११.१.३५

२० देखो, पादटिप्पणी संख्या ७

२१ ऋग्वेद १०.३१.१० पर सायण भाष्य।

२२ ऋग्वेद १०/२८/१८ पर सायण भाष्य।

२३ पशुवाचक कतिपय अन्य शब्दों के वैद्यक प्रसिद्ध अर्थ इस प्रकार हैं, जिनका कि वेदों के स्वाध्याय काल में स्मरण रखना आवश्यक है। जैसे-अश्व=अश्वगन्धा, ऋषभ=ऋषभक कन्द, श्वान=कुकुरमुत्ता, वराह=वराही कन्द, काक=काकमाची, अज=अजमोद, मत्स्य=मत्स्याक्षी, लोम=जटामांसी, महिष=महिषाक्ष गुग्गुल, मेष=चकवड़, मेषपर्णी, मातुल=धतूरा, मृग=सहदेवी बूटी, पशु=मोथरा, कुमारी=घृतकुमारी, रुधिर=केशर, पेश=जटामांसी, हद=दारचीनी। सृष्टि के आदि में वेद और लोक की भाषा एक ही थी इसलिये वेद और लोक में समागत एक से शब्दों को देखकर भ्रान्ति होने लगती है। जबकि लोक में शब्द रूढ़ि होते हैं और वेद में यौगिक (शब्द के सभी अर्थों का आधार धातु)।

२४ मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये। रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो॥ अर्थात् मातरं पितरं=तृष्णा और अहंकार, राजानो द्वे=शरीर को नित्य मानना तथा पुनर्जन्म को न मानना, इन दोनों मिथ्या दृष्टियों और रट्ठं सानुचरम्=विषयों सहित चक्षु आदि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके ब्राह्मण दुःख से रहित होकर अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

२५ शाब्दिक अर्थ-कुमारी के पैर के आघात से साँप तत्काल मर जाता है। क्या यह संभव है? नहीं, वास्तविक अर्थ-घीकुंवार (ग्वारपाठा) के रस में डालकर उसकी जड़ की आग में सीसे को पकाया जाये तो वह शीघ्र भस्म बन जाता है।

२६ If we were a natural meateater species than would not he mute animals run away at our sight like they do when they see lion, tiger, cheeta, leopard etc....Is this not the simplest and strongest argument telling us loudly that we are doing something grossly unnatural when we like an animal for our food can there be a doubt that who is move natural: a humanbeing or an animal. "Meet Eating" by Dr. Harishchandra (परोपकारी में प्रकाशित उक्त उद्धरण)

२७. आर्यजगत्, ६ दिसम्बर से १२ दिसम्बर २००९, पृ०११ पर सुभाषचन्द गुप्ता का लेख- *क्या आप जानते हैं?*

२८ . कीलालम्=अन्ननाम, निघं०२.७। कील बन्धने (भ्वादिः)+अलम्=पर्याप्तम् (अथर्ववेदभाष्यम् ४.२६.६, प्रो०विश्वनाथ) जीवन का प्रारम्भ तब होता है जब आत्मा प्राणधारण करता है। प्राणधारण करने से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह (आत्मा) जीवात्मा संज्ञावाला होता है (जीव प्राणने)। प्राण का सम्बन्ध अन्न के साथ है। ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि (अथर्व० प्राणसूक्त)। अतः आत्मा का सम्बन्ध अन्न के साथ है। एतदर्थ वेद में अन्न की कीलाल संज्ञा है, जो कि शरीर और शरीरांगों को आत्मा के साथ जोड़कर रखता है।

२९. भरद्वाज=भरत्, डुभृञ् धारणपोषणयोः (जुहोत्यादिः), भृञ् भरणे (भ्वादिः), वाजः अन्नम्, बलं वा, निघं०२.७,२.९

३० पा रक्षणे (to protect) पा पाने (to drink), प्याय वृद्धौ (to increase)।

३१ संस्कारविधि, स्वामी दयानन्द, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-६, अगस्त १९९७, १०वां संस्करण,संपा०राजवीर शास्त्री, पृ०६९।

३२इसके भक्षण से शरीर निर्मित होता है, अथर्व०४.१४.७

३३ संस्कारविधि, स्वामी दयानन्द, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-६, अगस्त १९९७, १०वां संस्करण,संपा०राजवीर शास्त्री।

३४ अथर्व०४.३४ में कुमुदम्=कमलडोड़ा, मुलाली=कन्दमूल का भी वर्णन है।

३५ जर्नल ऑफ ओरियेण्टल इन्स्टीट्यूट एम०एस०यूनिवर्सिटी बडौदा, वाल्यूम्-४६ नं०३-४, पृ०२४३

३६ एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते (अथर्व०१८.४.३४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (185-187) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

क्या अथर्ववेद में सती प्रथा, पिण्डदान आदि का वर्णन है?

(प्रो0 विश्वनाथकृत वेदभाष्य के आधार पर समाधान)

दिनेशचन्द्र शास्त्री, प्रो0 एवम् अध्यक्ष वेदविभाग,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शौनकीय अथर्ववेद संहिता का 18वां काण्ड अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें 4 सूक्त, 4 अनुवाक और प्रत्येक अनुवाक में 6,6,7,9 कुल 28 सूक्त और कुल 283 मन्त्र हैं। इस प्रकार कलेवर की दृष्टि से छोटा होने पर भी यह काण्ड विषय की दृष्टि से बहुत गम्भीर है। चतुर्वेद भाष्यकार आचार्य सायण ने इस काण्ड में यम और पितृमेध का वर्णन माना है। उनके अनुसार 'यम' भयानक मृत्यु का देवता है। उन्होंने यम लोक की पृथक् कल्पना की है। प्रो0 विश्वनाथ के अनुसार यम कोई भयानक मृत्यु का देवता नहीं, अपितु सारी सृष्टि क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाला जगनियामक परमेश्वर है, शिष्यों को यम नियमों का पालन कराने वाला, नियन्त्रण में रखने वाला नियामक आचार्य' है। सायण के अनुसार 'पितर' स्वर्गोपलब्ध पिता, पितामह और प्रपितामह आदि पूर्वज होते हैं। जबकि प्रो0 विश्वनाथ के अनुसार 'पितर' केवल पूर्वज ही नहीं अपितु प्रसंगानुसार जनक–जननी, उपनयनकर्ता, गुरु, अन्नदाता, भयत्राता, बुजुर्ग आदि भी हैं। इस काण्ड के भाष्य में भाष्यकारों की कतिपय अन्य मान्यतायें इस प्रकार है–

1. यम यमी संवाद

सायण के आनुसार प्रथम अनुवाक के प्रथम सूक्त में–

"अधा कृणुस्व सुविदं सुभन्द्राय"[1]

मन्त्र तक दिवस्कान् की सन्तान यम और यमी के संयोगार्थ संवाद का वर्णन किया गया है। इनमें यमी ने मिथुनभाव के लिए अपने भाई यम से अनेक प्रकार से प्रार्थना की है और उसने स्वभगिनीगमन के अत्यन्त अनुचित होने से अनेक प्रकार की युक्तियों द्वारा उसने निषेध किया है। प्रो0 विश्वनाथ के अनुसार उन पर निर्दिष्ट मन्त्रों में यमी यम अन्य दृष्टि जोड़िया बहन और भाई के संवाद पर प्रश्नोत्तर की रीति से यह बताया है कि ये दोनों बहन भाई होकर परस्पर विवाह कभी न करें ; किन्तु बहिन भाई से अन्य पुरुष के साथ और भाई बहिन से अन्य दूसरी स्त्री के साथ विवाह करें।

2. सती प्रथा (सहमरण)

आचार्य सायण के अनुसार तृतीय अनुवाक के प्रथम सूक्त के प्रारम्भिक मन्त्रों में सतीप्रथा अर्थात् सहमरण का वर्णन है। इस प्रसंग में इन्होंनें 'पतिलोक' का स्वर्गलोक अर्थ किया हैं और 'पुराण धर्म' से स्मृति पुराणादि में प्रोक्त धर्म का ग्रहण किया है। प्रो0 विश्वनाथ के अनुसार उपर्युक्त मन्त्रों में नियोग विधान का उपदेश है। इन्होंनें 'पतिलोक' का पतिगृह और 'पुराण धर्म' का 'सनातन (वैदिक) धर्म अर्थ किया है।

3. पिण्डदान

आचार्य सायण के अनुसार चतुर्थ अनुवाक के अष्टम सूक्त के 75 से 77 मन्त्रों में पितरों को पिण्डदान का वर्णन है। प्रो0 विश्वनाथ के अनुसार इन मन्त्रों में पितरों अर्थात् माता, पिता,विद्याप्रदाता, गुरु, अन्नदाता आदि के सत्कार का उपदेश है। सम्बन्धित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त मन्त्रों के व्याख्यान में पिता, पितामह और प्रपितामह के सम्बन्ध को ही तार्किक दृष्टि से पितृमेध में स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है– " पितृयज्ञ, श्राद्ध तथा पितृमेध में इन्हीं तीन का अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह का सम्बन्ध होता है। प्रपितामह के पिता आदि का नहीं। 100 वर्षों की आयु की दृष्टि से श्राद्धकर्ता पुत्र के लिए इन्हीं तीन का जीवित रहना अधिक सम्भावित है। पञ्चमहायज्ञों में पितृयज्ञ है। ये यज्ञ विवाहित पुरुष को करने होते हैं 24 वर्षों की आयु में स्नातक बनकर 25वें वर्ष में विवाह द्वारा सन्तानोत्पादन करके ब्रह्मचारी की सन्तान हो जाने के समय इसके पिता की आयु 50 वर्षों की, पितामह की 75 वर्षों की तथा प्रपितामह की 100 वर्षों की सम्भावित है। इससे प्रतीत होता है कि पितृयज्ञ आदि में इन तीनों के ही जीवित होने के कारण इन्हीं तीन का यजन अर्थात् सत्कार होता है।[2] उपर्युक्त कतिपय मान्यतायें वेद के स्वरूप को प्रभावित करती हैं। प्रो0 विश्वनाथ का भाष्य तर्काधारित सर्वमान्य और बुद्धिगम्य है। इससे यह ज्ञात होता है कि इनके भाष्य में कितना स्वारस्य है और कर्मकाण्डिक अर्थ कितना खोखला है।

क्या अथर्ववेद में बच्चों की सी बातों के सदृश तुच्छ वर्णन हैं ?

अथर्ववेद का 15वां काण्ड अति रहस्यमय है। इस काण्ड के सम्बन्ध में अथर्ववेद के अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले विलियम ड्विट ह्विटनी लिखते हैं कि –

"In spite of its purility and the surface-obscurity, the book is not unworthy of a searching investigation"

अर्थात् इस काण्ड में बच्चों की–सी बातों के सदृश तुच्छ वर्णनों तथा दूसरे आपाततः दुर्बोध होते हुए भी, काण्ड अनुसन्धान के अयोग्य नहीं। परन्तु अनुक्रमणिका में इस काण्ड के आरम्भ में लिखा है – अध्यात्मन् ! इस कथन से प्रेरित होकर प्रो0 विश्वनाथ को इस 15 वें काण्ड से मन्त्रों का गहरा अध्ययन कर परिणाम रूप में बच्चों के बुद्धिगम्य अर्थों के करने में सफलता असीम प्राप्त हुई है।

वे लिखते हैं [3] – 15 वें काण्ड में दो अनुवाक हैं। और 18 सूक्त तथा इनका देवता है – व्रात्य। अथर्ववेद काण्ड 19 सूक्त 23, मन्त्र 25 वें में इनसे अनुवाकों को 'व्रात्याभ्यां स्वाहा' द्वारा सूचित किया है। काण्ड 15 वें में 18 सूक्त, 01 और 15–18 में व्रात्य –परमेश्वर का वर्णन है। 18 वें सूक्त में परमेश्वर के विराट् स्वरूप का वर्णन हुआ है। सूक्त 2–7 में व्रात्य – सन्यासी का कथानक रूप में वर्णन हुआ है, जो कि प्रकृति रूप अर्थवाद में हुआ है। यह काल्पनिक है, किसी विशेष व्यक्ति रूप सन्यासी का वर्णन नहीं। इस वर्णन में प्राची आदि दिशाओं में संन्यासी की यात्रा का –सा वर्णन हुआ है, जो कि 'मनसा परिक्रमा' के मन्त्रों के सदृश केवल मानसिक परिक्रमारूप है। सूक्त 3 में व्रात्य संन्यासी की आसन्दी अर्थात् विश्रामकुर्सी का वर्णन हुआ है, जिसके निर्माण में वस्तुओं और वेदों को अवयव रूप में वर्णित किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि संन्यासी की यात्रा तथा आसन्दी कल्पनामय ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। – इसी प्रकार सूक्त 6 और 7 के वर्णन भी केवल कल्पनामय है – यह इनमें वर्णित विषयों द्वारा स्पष्ट है। सूक्त 8 और 9 में व्रात्य राजन्य का वर्णन हुआ है। सूक्त 10 से 14 तक में व्रात्य अतिथि का, तथा 14 वें में विशेष रूप से व्रात्य अतिथि ''*आत्मादि न होगी* ''का वर्णन हुआ है। इस काण्ड के अन्य प्रतिपाद्यों के विषय में तर्क –सम्मत विवेचना करते हुए प्रो0 विश्वनाथ ने लिखा है –

'सूक्त 6 के 11 वें और 12 वें मन्त्रों में 'इतिहास, पुराण गाथा और नाराशंसी' पद पठित हैं, मन्त्रों में **'य एवं वेद'** द्वारा फल प्राप्तियों का वर्णन हुआ है, अर्थात् इस द्वारा यह दर्शाया है कि जो व्यक्ति– ''इस प्रकार जानता है''– वह अमुक–अमुक फलों को प्राप्त कर लेता है। वैदिक सिद्धान्तानुसार ज्ञान का पर्यवसान कर्म में होता है। यथा '*आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थकामतदर्थानाम्*'. (मीमांसा), अर्थात् वेद, क्रिया अर्थात् आचरण के लिए हैं, अतः आचरण रहित ज्ञान, अनर्थक है। इसलिए मन्त्रार्थो में **'य एवं वेद'** के अर्थ किये हैं कि ''जो इस प्रकार जानता तथा तदनुसार आचरण करता है।''[4]

इस प्रकार प्रो0 विश्वनाथ के भाष्य में पाश्चात्त्य विचारकों की कल्पनाजन्य एवं अतथ्य अनर्गल बातों का तार्किक रूप में समाधान किया गया है।

पादटिप्पणियां

1. अथर्व0 18.1.6
2.पृ0 147
3.देखो, अथर्ववेद 15 वां काण्ड पृ0 सं0 6, अनुच्छेद –एक–प्रो0 विश्वनाथ कृत।
4. अथर्ववेद भाष्य काण्ड 13 वें की भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (188-200) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

त्रयी में अथर्ववेद भी है

लेखक – डॉ0 ज्वलन्तकुमार शास्त्री

राजा रणञ्जय सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमेठी (उ0 प्र0)

वेद चार हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।[1]

वेदत्रयी का अभिप्राय – वैदिक ग्रन्थों में 'त्रयो वेदाः' या 'वेदत्रयी' परक प्रमाणों के उपलब्ध होने से कतिपय विद्वानों का यह मत है कि प्रारम्भ में केवल तीन वेद थे, अथर्ववेद नहीं था। अथर्ववेद का वेदत्व बाद में स्वीकृत हुआ। परन्तु यह मत दोष पूर्ण है, क्योंकि जिन ग्रन्थों में त्रयीपरक[2] वेद का उल्लेख हुआ है, उन्हीं ग्रन्थों में चार वेदों का उल्लेख है। साक्षात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के प्रमाण की प्रथम टिप्पणी में द्रष्टव्य हैं। इसके अतिरिक्त निरुक्त, महाभाष्य तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रमाण भी उद्धृत हैं। इस प्रसंग में कतिपय अन्य ग्रन्थों के प्रमाण[3] भी उल्लेखनीय हैं। अतः 'त्रयी' का तात्पर्य भिन्न है। ऋग्–यजुः–साम रूप त्रिविध मन्त्रों को दृष्टि में रखकर वेद को त्रयी कहा जाता है –पद्य रचना ऋचा, गानमयी रचना साम तथा गद्यात्मक रचना यजुष्। चूंकि गद्य, पद्य और गान के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रकार की रचना नहीं होती, इसलिए ऋग्वेद–संहिता, यजुर्वेद–संहिता, सामवेद–संहिता या अथर्ववेद की संहिताओं में ऋक्, यजुष् और साम अतिरिक्त दूसरी किसी विधा में कोई मन्त्र दिखाई नहीं देता। पद्य,गद्य और गान के अतिरिक्त अन्य रचना कभी भी नहीं रची गई, आज भी नहीं लिखी जाती। इसलिए महर्षि जैमिनि का कथन है–

तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।[4]

गीतिषु सामाख्या।[5]

शेषे यजुः शब्दः।।[6]

'सर्वानुक्रमणी' की वृत्ति भूमिका (वेदार्थ दीपिका) में आचार्य षड्गुरुशिष्य ने भी इस विचार को श्लोकबद्ध किया है–

विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते।
ऋग्यजुसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये।।
ऋक् पादबद्धो गीतस्तु साम गद्यं यजुर्मन्त्रः।
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते।।

अर्थात् विनियोज्य मन्त्र तीन प्रकार के हैं– वे वेदचतुष्टयी में ऋक्, यजुष् और सामन् इसी रूप में प्राप्त होते हैं। पादबद्ध मन्त्र ऋक्, गीतात्मक साम और गद्यात्मक मन्त्र यजुष् हैं। चारों वेदों में इन्हीं तीन प्रकार के मन्त्र विनियुक्त हैं।

त्रयी विद्या का तात्पर्य–

दूसरी बात यह है कि 'त्रयी' पद विद्या का विशेषण है, अतः स्त्रीलिंग है। **'त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि'** यह शतपथ ब्राह्मण 4.6.7.1की उक्ति इसमें साक्षात् प्रमाण है। छान्दोग्य ब्राह्मण 1.17.10 में **'एतां त्रयी विद्याम्'** तथा महाभारत शान्तिपर्व अध्याय– 235 में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'त्रयीविद्यामवेक्षेत' का उल्लेख है। इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं–

1. पहले 'वेद' शब्द विद्या का ही दूसरा पर्याय था[7] और मुख्य रूप से इसका प्रयोग मन्त्रों के लिए होता रहा है।[8]

2. त्रयी विद्या का अभिप्राय तो ज्ञान, कर्म और उपासना है। ज्ञान, कर्म और उपासना का ही वर्णन चारों वेदों में आता है, इसलिए चारों वेद त्रयी–विद्या कहलाते हैं, तीन ही नहीं। महाभारत में लिखा है कि –

त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तमथाङ्गतः।
ऋक् सामवर्णाक्षरतां यजुषोऽथर्वणस्तथा।।[9]

अर्थात् ऋग्यजुसाम और अथर्व में ही त्रयी विद्या है।[10]

त्रयी में मन्त्र भाग की ही अन्तर्भुक्ति

इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि मन्त्र–भाग ही मूलतः 'त्रयी' के रूप में मान्य है, न कि ब्राह्मण भाग। इसमें निम्न श्रुति प्रमाण हैं–

'अहे बुध्नीय मन्त्रं मे गोपाय यमृषयस्त्रैविदा विदुः' तथा **'ऋचः सामानि यजूंषि'**[11] 'अधिकरणमाला' के प्रणेता माधवाचार्य ने इन वचनों की व्याख्या इस प्रकार से की है– "त्रिविद् का तात्पर्य है, तीन वेदों के ज्ञाता। त्रिविदों के सम्बन्ध में अध्ययन करने वाले 'त्रैविद' कहलाये। उन त्रिविदों ने जिस मन्त्र–भाग को ऋगादि भेदों से त्रिविध कहा, उसकी रक्षा करनी चाहिए।[12]

वेदत्रय में अथर्ववेद भी

इस दृष्टि से 'त्रयी' में अथर्ववेद का अन्तर्भाव अवश्य होता है। वस्तुतः अथर्ववेद में ऋगादि के अतिरिक्त अन्य मन्त्र नहीं हैं। अतः अथर्ववेद को वेद से पृथक् करने का कोई भी संकेत वैदिक ग्रन्थों में नहीं मिलता, अपितु वेदनामों की गणना में अथर्ववेद का नाम वैदिक ग्रन्थों में सर्वत्र मिलता है। अतः अथर्व का वेदत्व संशयातीत है। 'अथर्ववेदभाष्यभूमिका' में सायण ने इस विषय में पुष्कल विचार किया है।

अथर्ववेद की शाखाएं

आथर्वण परिशिष्ट, चरणव्यूह, प्रपञ्चहृदय, महाभाष्य[13] और कूर्मपुराण[14] में अथर्ववेद की 9 शाखाएं कही गई हैं। षड्गुरुशिष्यकृत सर्वानुक्रमणी वृत्ति में 9 और मतान्तर में 50 संख्या कही गई है। मुक्तिकोपनिषद् में भी 50 संख्या है। अहिर्बुध्न्य संहिता[15] में 5 ही शाखाएं कही गई हैं।[16] सर्वानुक्रमणिकावृत्ति में षड्गुरुशिष्य ने अथर्ववेद की शाखा संख्या में विकल्प का भी उल्लेख किया है–

"नवधाऽथर्वणोऽन्ये तु प्राहुः पञ्चदशाध्वकम्।"

अर्थात् कुछ विद्वानों के अनुसार अथर्ववेद की 15 शाखाएं हैं।

आथर्वण चरणव्यूह के अनुसार अथर्ववेद की नौ शाखाएं निम्नलिखित हैं– पैप्पलादाः, स्तौदाः, शौनकीयाः, जाजलाः, देवदर्शाः, चारणविद्याः, मौदाः, जलदाः और ब्रह्मवदाः। अन्य अनेक प्राचीन ग्रन्थों में भी अथर्ववेद की नौ शाखाओं के नाम दिये गये हैं, जो चरणव्यूह के नामों से कुछ भिन्न हैं। पुराणों के अनुसार व्यास का एक मुख्य शिष्य सुमन्तु था, जिसके शिष्य पथ्य और देवदर्श थे। पथ्य के तीन शिष्य हुए– जाजलि, कुमुद और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शौनक। देवदर्श के चार शिष्य थे– मोद, ब्रह्मबल, पिप्पलाद और शौष्कायनि या शौल्कायनि। इन्हीं शिष्यों द्वारा अथर्ववेद की विविध शाखाओं का विकास तथा प्रसार किया गया और विविध शाखाओं के जो नाम प्रसिद्ध हुए, वे इसी गुरु–शिष्य परम्परा के आचार्यो के नामों के साथ सम्बद्ध हो गये।

वर्तमान समय में जिसे अथर्ववेद के रूप में स्वीकार किया जाता है, वह शौनक शाखा की संहिता है। इसमें 20 काण्ड, 731 सूक्त और 5987 मन्त्र हैं। इनमें से 20 प्रतिशत मन्त्र ऐसे हैं,जो ऋग्वेद में भी विद्यमान है। अथर्ववेद के कुन्तापसूक्तों (20.127–136 सूक्त तक) के 147 मन्त्र घटाकर 5830 मन्त्रसंख्या ही अथर्ववेद की माननी चाहिए। अथर्ववेद का प्रसिद्ध ब्राह्मण गन्थ गोपथ शौनक शाखा का ही ब्राह्मण है। पिप्पलाद शाखा का जो अथर्ववेद इस समय उपलब्ध है, इसमें शौनकीय अथर्ववेद की तुलना में ब्राह्मणभाग अधिक है। साथ ही शाखाओं के अथर्ववेदोंमें अनेक पाठ भेदों की भी सत्ता है। अथर्ववेद की जिन अन्य सात शाखाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है,उनकी संहिताएं इस समय उपलब्ध नहीं हैं यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में उनकी सत्ता के निर्देश अवश्य विद्यमान हैं।

शाखागत अन्तर का कारण

यद्यपि एक वेद की बहुत–सी शाखाएं हैं, फिर भी उनमें से किसी एक शाखा के अध्ययन से ही एक वेद का स्वाध्याय हो जाता है, क्योंकि एक वेद की सभी शाखाओं में संहिता प्रायः एक ही है। कुछ मन्त्रों के न्यूनाधिक्य, पाठान्तर, उच्चारण भेद और अनुष्ठान विधि के पार्थक्य से उसके स्वरूप में कोई मौलिक अन्तर नहीं आता। इसीलिए सायणाचार्य सदृश भाष्यकारों ने यद्यपि प्रत्येक वेद की एक–एक शाखा पर ही अपना भाष्य रचा है-तथापि उन्होंने अपने को सर्ववेदव्याख्याता की दृष्टि से कृतकृत्य समझा है।

शाखागत पाठभेद

शाखागत पाठ भेद पर विचार करते हुए पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी लिखते हैं–''काल, देश, व्यक्ति तथा अध्ययन–अध्यापन में उच्चारणगत अन्तर से पाठ भेद हो गये। मन्त्रों की संख्या में भी न्यूनाधिक्य हुआ। सभी आचार्यो की प्रकृति एक सदृश न थी, फिर उनके समक्ष देश–काल की अपेक्षाएं और अनुरोध भी भिन्न थे, इस कारण अनुष्ठानों और कार्यो में पृथक्ता होनी स्वाभाविक थी। अतः मूल संहिता एक होने पर भी उसकी अनेक शाखाएं हो गईं।[17]'' इसीलिए महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं– वेदमन्त्र नहीं रचे जाते क्योंकि वेदमंत्र नित्य हैं, उनके अर्थ नित्य हैं, किन्तु उनमें जो वर्णो की आनुपूर्वीयता है, वह शाखाभेद के कारण अनित्य है और उसी भेद के कारण काठक, कालापक, मौदक और पैप्पलाद आदि शाखाएं कही जाती हैं।[18]

शाखा संख्या में मतभेद

शाखा संख्या में मतभेद के कारणों का निर्देश करते हुए डॉ0 रामशंकर भट्टाचार्य का निम्नलिखित कथन समीचीन और युक्तियुक्त है– ''ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न देश–काल और आचार्य–सम्प्रदायों में प्रणीत होने के कारण शाखा संख्या में मतभेद उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है, जो सर्वथा न्याय्य है। किसी भी वेद की शाखाएं एक साथ नहीं बनी हैं, अतः जिस काल में जितनी शाखाएं बनी थीं, तत्कालीन आचार्य ने उतनी शाखाओं की संख्या ही कही है। इसी प्रकार जिन आचार्यों को जितनी शाखाओं की सत्ता ज्ञात थी, वे उतनी संख्या ही कहते हैं, चाहे प्रकृत शाखासंख्या ज्ञात संख्या से अधिक हो। जहां आचार्यों को द्विविध शाखासंख्या ज्ञात थी, वहां दोनों प्रकार की संख्याएं ही कही गई हैं।[19]

संहिता और शाखा–तत्त्व

निष्कर्ष रूप में शाखा–तत्त्व पर पं0 सत्यव्रत सामश्रमी का 'ऐतरेयालोचन' में व्यक्त विचार मननीय है–''तत्त्वतो नहि वेदशाखावृक्षशाखेव नापि नदीशाखेव प्रत्युताध्येतृभेदात् सम्प्रदायभेदजन्याध्ययन विशषरूपैव।''

अर्थात् वास्तव में वेद की शाखाएं न तो वृक्षों की शाखाओं की भांति हैं और न नदी शाखाओं की भांति हैं, प्रत्युत वे पठन–पाठन भेद से सम्प्रदायजन्य अध्ययन का ही विशेषरूप हैं।

'छन्दांसि जज्ञिरे' एक समीक्षा

1. छन्दस् पद के सन्दर्भ में करपात्री मत–

स्वामी करपात्री ने दयानन्द मतखण्डनम् शीर्ष से महर्षि दयानन्द द्वारा वेदों के ईश्वर–कर्तृत्वसाधक यजुर्वेद के 31 वें अध्याय के 7वें[20] मन्त्र का महर्षिकृत अर्थ की आलोचना में लिखा है – ''ऋचः सामानि और यजुः ये पद मन्त्रवाचक ही हैं, ऋग्वेदादि के बोधक नहीं, क्योंकि ऐसा अर्थ करने में कोई प्रमाण नहीं।... छन्दांसि इस पद का अर्थ अथर्ववेद करना निराधार है[21] महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के इस मन्त्रगत 'ऋचः सामानि छन्दांसि तथा यजुष्' पद का क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेद अर्थ किया है जो मन्त्रान्तभूत पद से स्पष्ट ही है। विशेषः 'छन्दांसि' पद का ' अथर्ववेद' अर्थ के प्रमाणार्थ महर्षि ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में लिखा है– ''वेदों में सब मन्त्र गायत्री आदि छन्दों से युक्त ही हैं। फिर 'छन्दांसि' इस पद के कहने से चौथा जो अथर्ववेद है, उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है। ''[22] महर्षि के उक्त वचन का खण्डन करते हुए करपात्रीजी लिखते हैं– ''यह कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि छन्दस् पद का अर्थ वेद होता है, 'छन्दांसि जज्ञिरे' इतना कहने से ही सभी वेदों की उत्पत्ति सिद्ध हो सकती है, ऐसी परिस्थिति में 'ऋचः, सामानि, यजुः' इत्यादि पदों की व्यर्थता निश्चित हो जाएगी। यदि विशेषणरूप से ऋगादि की उत्पत्ति बतलाने के लिए इनकी सार्थकता मानी जाए, तो अलग से गायत्री प्रभृति छन्दों की उत्पत्ति की सिद्धि के लिए 'छन्दांसि ' यह पद भी सार्थक है। अथर्व मन्त्रों का इन तीन में ही समावेश होता है, फिर उसमें पृथक् उपदेश की योग्यता नहीं है। अतः छन्दः पद का अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थ ही ठीक है।''[23]

2. 'छन्दस्' शब्द से ब्राह्मण का ग्रहण नहीं–

मैं अपने इस लेख में **'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका'** के उक्त आलोच्य प्रसंग की समीक्षा करते हुए करपात्री जी के मत की आलोचना करूंगा–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'छन्दस्' पद वैदिक साहित्य में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पुनरपि मुख्यतः इसका अर्थ मन्त्र, गायत्र्यादि छन्द तथा अथर्ववेद है। ये तीनों अर्थ प्रकरणानुसार संगत होते हैं। यजुर्वेद के जिस मन्त्र की चर्चा चल रही है उसमें ऋग्, यजुष्, साम के सन्निधान में पठित छन्दः शब्द का अर्थ अथर्ववेद ही है, 'ब्राह्मण' नहीं। छन्दस् पद का 'ब्राह्मण' अर्थ नहीं हो सकता। यह बात दूसरी है कि **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**''[24] की परिभाषा के प्रचलन के बाद यद्यपि परवर्ती साहित्य में वेद, आम्नाय, श्रुति, छन्दस् इत्यादि शब्द मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग के लिए भी व्यवहृत हुए हैं। तथापि मुख्य रूप से मन्त्र भाग ही 'छन्द' हैं। इसीलिए यास्क ने निरुक्त के आरम्भ में मन्त्र के लिए ही 'छन्दः' शब्द की योजना की है–''छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य समाम्नाताः''। क्योंकि निघण्टु में मन्त्रों से ही पद उद्धृत किए गये हैं, ब्राह्मण भाग से नहीं। दुर्गाचार्य ने इंसी दृष्टि से कहा था– **'छन्दांसि–छादनात्–मन्त्राः छन्दोमयाः, नाच्छन्दसि वागुच्चरति।'** अर्थात् मन्त्र छन्दोमय है-- छन्द के अभाव में वाणी उच्चरित नहीं होती। पाणिनि के सूत्रों में पठित 'छन्दस्' पद के उदाहरणों में यद्यपि वैयाकरणों ने 'ब्राह्मण भाग' के भी प्रमाण दिये हैं जिनके बल पर करपात्री समुदाय ने अपने इस पोथे[25] में बहुत उछल–कूद मचाया है, तथापि सौकर्य एवं लाघव की दृष्टि से संहिता और ब्राह्मण दोनों के लिए ही सामान्य रूप से छन्दः शब्द के प्रयोक्ता महर्षि पाणिनि के अनुसार भी छन्द का व्यवहार प्रमुख रूप से मन्त्रों के लिए ही है। क्योंकि 'छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' (अष्टा0 4.2.66) इत्यादि स्थलों पर 'छन्दः' से मन्त्र (संहिता भाग) और ब्राह्मण दोनों का ग्रहण पाणिनि को इष्ट नहीं, अन्यथा 'ब्राह्मण' के पृथक् से उल्लेख की आवश्यकता ही न थी। मन्त्र अर्थ में ही 'छन्दः' शब्द का प्रयोग वेद की संहिताओं में भी हुआ है 'ब्राह्मण' अर्थ में नहीं।

दि॒वो नु मां बृ॑ह॒तो अ॒न्तरि॑क्षाद॒पां स्तो॒को अ॒भ्यप॑प्त॒द्रसे॑न। समि॑न्द्रि॒येण॒ पय॑सा॒हम॑ग्ने॒ छन्दो॑भिर्य॒ज्ञैः सु॒कृतां॑ कृ॒तेन॑।।

अथर्व0 6.124.1

अथर्ववेद के इस मन्त्र में 'छन्दः' शब्द मन्त्ररूपी वेद अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[26] तैत्तिरीय आरण्यक में– 'यश्छन्दसामृषभो विश्वरूप........भूर्भुवः सुवश्छंद ओम्' (तै0 सं0 10.6) लिखित उक्त प्रसंग पर सायण ने भाष्य किया है –' यः प्रणवः वेदानां मध्ये ऋषभः श्रेष्ठः', अर्थात् वेदों के मध्य प्रणव (ओंकार) सर्वश्रेष्ठ है। यहां स्पष्ट ही 'छन्दसाम्' का अर्थ सायण ने 'वेदानाम्' किया है इसी प्रकार 'छान्दोग्य ब्राह्मण' में भी कहा गया है कि मृत्यु से डरकर देवतागण त्रयीविद्या में प्रविष्ट हो गये, उन्होंने अपने को छन्दों से आवृत कर लिया, यही छन्दों का स्वरूप (छन्दस्त्व) है–

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते छन्दोभिश्छादयन् यदेभिरच्छादयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ।छा0 ब्रा0 – 3.4.2

शतपथ ब्राह्मण में भी यही बात दुहरायी गई है। रचना त्रैविध्य[27] के कारण ही चारों वेदों को 'त्रयी विद्या' से अभिहित किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यजुर्वेद के उक्त मन्त्र में छन्दः शब्द से वेद अर्थ ही होना चाहिए, ब्राह्मण नहीं। क्योंकि किसी भी ऋचा में 'छन्दः' शब्द का ब्राह्मण अर्थ किसी भाष्यकार ने नहीं किया। सायणाचार्य ने भी नहीं। अतः 'छन्द' पद का वेद अर्थ होने की स्थिति में तथा पुरुष सूक्त के उक्त मन्त्र में ऋग्, यजुष्, साम के सन्निधान में छन्दः के उल्लिखित होने से इसका अर्थ चतुर्थ वेद–अथर्ववेद (आथर्वण चतुर्थम्[28]) ही होगा, ब्राह्मण नहीं। इसलिए महर्षि दयानन्द द्वारा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उल्लिखित चौथा जो अथर्ववेद है उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है– यह वाक्य समीचीन शास्त्रीय तथा प्रामाणिक है। स्वामी करपात्री जी यदि वैदिक साहित्य से भली–भांति अभिज्ञ होते तो यह न लिखते कि 'छन्दांसि' इत्यस्याथर्ववेद इत्यपि निर्मूलोऽर्थः .... अतश्छन्दः पदस्य ब्राह्मणग्रन्थवाचकत्वमेव युक्ततरम्।।[29] उनका यह कथन प्रमाणों के अभाव में प्रलाप मात्र है। यहां लक्ष्य करने की बात यह है कि आचार्य महीधर और उव्वट यजुर्वेद के इस मन्त्र (31.7) के 'छन्दांसि' पद का 'गायत्री आदि का छन्द' अर्थ करते हैं– 'छन्दांसि गायत्र्यादीनि जज्ञिरे'। माध्यन्दिन शुक्लयजुर्वेद पर सायण का भाष्य नहीं है। यह मन्त्र ऋग्वेद (10.90.9) तथा अथर्ववेद (19.6.13) में किञ्चिद् पाठभेद के साथ आता है। त्रग्वेद के उक्त स्थल का भाष्य करते हुए सायणाचार्य– 'छन्दांसि गायत्र्यादि', अर्थात् छन्दांसि' पद का गायत्री आदि छन्द' तथा अथर्ववेद भाष्य (१९.६.१३) में 'छन्दांसि च ऋगाद्यधिष्ठानानि जज्ञिरे' अर्थात्–' ऋगादि के अधिष्ठानभूत छंद' अर्थ करते है। करपात्री जी इन तीनों आचार्यों के भाष्यों को ही परम्परागत यथार्थ तथा प्रामाणिक मानते हैं। विशेषतः अपने इस मोटे पोथे में उन्होंने अनेकत्र सायणाचार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। अतः ये अपने आचार्यों के अर्थों की ही वकालत करते तो ज्यादा अच्छा रहता। किन्तु उन्होंने–'छन्दः पद का अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थ ही ठीक है' (पृ0 485) यह लिखकर अपने आचार्यों का ही प्रत्याख्यान कर दिया। विद्वान् पाठक यहां देखें कि करपात्री जी 'दयानन्दमतखण्डनम्' शीर्षक से स्वामी जी के वेदार्थ का खण्डन करने की चेष्टा में सायणाचार्यादि के अर्थों का ही खण्डन कर गए। वस्तुतः करपात्री जी के ऊपर तो ब्राह्मण ग्रन्थों को यथा–तथा वेदसिद्ध करने का भूत सवार है। 'वेदार्थ–पारिजात' में भी इसी विषय पर अधिकांशतया लिखा गया है। आर्यसमाज द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद होने के लिए मन्त्र का प्रमाण मांगे जाने पर वे कहीं [30]अथर्ववेद में उल्लिखित 'ब्रह्म' शब्द को खींचतान कर उसका अर्थ 'ब्राह्मण'[31] कर देते हैं तो कहीं 'छन्दस्' पद का 'ब्राह्मण अर्थ'[32] करने को सूझती है।

3. 'छन्दांसि' पद से अथर्ववेद का ग्रहण ही उचित है–

(प्रमाण–क) ऊपर हमने छन्दः पद का 'ब्राह्मण' अर्थ के अनौचित्य को सविस्तार प्रतिपादित किया है। अब हम महर्षि दयानन्दकृत 'छन्दांसि' पद का 'अथर्ववेद' अर्थ किए जाने के कारणों पर विस्तृत रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण–पुरस्सर विचार–विमर्श करते हैं सायणाचार्य से भी प्राचीन एक ऋग्वेद के भाष्यकार हैं–'भट्टगोविन्द'। उनका काल 1250–1350 विक्रम संवत्[33] तक है। ऋग्वेद के 'अष्टमाष्टक' पर उनका भाष्य 'श्रुतिविकास' नाम से 'सरस्वती भवन पुस्तकालय' वाराणसी में सुरक्षित है। यह भाष्य अभी तक अप्रकाशित है। इन पंक्तियों के लेखक का शोध कार्य इसी वेदभाष्य का सम्पादन तथा समीक्षापरक है। 10 वें मण्डल के 90 वें सूक्त पर भट्टगोविन्द का भाष्य हस्तलेख के 25 वें तथा 26वें सांक एवं निरंक पृष्ठ के खो जाने से उपलब्ध नहीं है। पुनरपि 'श्रुतिविकास' में 10 वें मण्डल के 144 वें सूक्त के 5वें, छठे तथा 9 वें मन्त्रान्तर्गत 'छन्दांसि' एवं 'छन्दसां पद का क्रमशः 'छन्दोयुक्तान् मन्त्रान्' तथा छन्दोयुक्तानां मन्त्राणाम्'[34] अर्थ किया गया है। यहां यह ध्यातव्य है कि इन सभी स्थलों पर सायणाचार्य ने पूर्ववत् 'गायत्र्यादिछन्द' अर्थ ही किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 10 वें मण्डल के 90 वें सूक्तान्तर्गत 'छन्दस्' पद हो या अन्यत्र सभी स्थानों पर आचार्य सायण सामान्यतया 'गायत्र्यादिछन्द' अर्थ ही करते है। जबकि गायत्र्यादि छन्दों का प्रकरण ही यहां नहीं है। **'प्रकरणशः मन्त्राः निर्वक्तव्याः'** यास्क के इस वचन के अनुसार मन्त्रों का तथा मन्त्रान्तर्भूत पदों का भी प्रकरणानुसार अर्थ ही करना चाहिए, 'पद' का प्रकरण से हटकर स्वतन्त्र अर्थ सामान्यतया नहीं किया जाना चाहिए– **'नैक–पदानि निर्ब्रूयात्'** (निरुक्त)। अतः ऋक्, साम, यजुष् के सन्निधि में पठित 'छन्दांसि' पद से 'गायत्र्यादि छन्द' अर्थ नहीं लिया जा सकता। चाहे वैदिक साहित्य में अन्यत्र छन्दस् पद का गायत्री आदि छन्द अर्थ ही क्यों न हो। फिर भट्टगोविन्द ने जो 'छन्दोयुक्त मन्त्र' अर्थ किया है इससे भली–भांति स्पष्ट है कि ऋक्, यजुः, सामवेद के साथ आये 'छन्दः' पद से 'छन्दोयुक्त मन्त्र' अर्थ का तात्पर्य परिशेष न्याय से 'अथर्ववेद ही होगा। अतः यहां 'गायत्री आदि छन्द' या 'ब्राह्मण' अर्थ होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। 'छन्दांसि' पद का अथर्ववेद अर्थ होने की स्थिति में 'ऋचः सामानि और यजुः पद मन्त्रवाचक ही हैं ऋग्वेद आदि के बोधक[35] नहीं', स्वामी करपात्री जी का यह कथन भी निरस्त हो जाता है। ऋग्वेद –सायणभाष्य के हिन्दी भाषान्तरकार श्री पं0 रामगोविन्द त्रिवेदी के निम्न लेख– 'सर्वात्मक पुरुष (परमेश्वर) के संकल्प रूप होने से युक्त मानस यज्ञ से ऋग्वेदादि प्रकट हुए[36] से भी पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि सायणाचार्य ने भी प्रकृत मन्त्र के 'ऋचः' 'सामानि' तथा 'यजुष्' पदों को ऋग्वेदादि का बोधक ही माना है। ऋक्, साम, यजुः इन त्रिविध मीमांसा सम्मत मन्त्रपदवाचक नहीं।

''अलग से गायत्री प्रभृति छन्दों की उत्पत्ति की सिद्धि के लिए 'छन्दांसि' यह भी सार्थक है।[37] ''श्री करपात्री जी का यह कथन भी अविचारितरमणीय है, क्योंकि प्रक्रमभंग तथा भट्टगोविन्द कृत 'छन्दोयुक्त मन्त्र' अर्थ– इन दो हेतुओं का प्रबल प्रामाण्य महर्षि दयानन्द के अर्थ की पुष्टि करता है। अतः 'वेदों में सब मन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्री आदि छन्दों से युक्त ही हैं। फिर 'छन्दांसि' इस पद के कहने से चौथा जो अथर्ववेद है, उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है।[38] महर्षि का यह कथन भी उत्पन्न हो जाता है।

(प्रमाण–ख) स्वामी करपात्री जी को भली–भांति तोष हो जाय इसके निमित्त 'छन्दः' पद का अथर्ववेद अर्थ होने में अन्य भी अनेक प्रमाण हम उपस्थित करते हैं– ऋग्वेद (9.113.6) में लिखा है कि '**यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३॑ वाचं॒ वद॑न्**' अर्थात् जहां यज्ञ में ब्रह्मा छन्दवाणी बोलता है। यज्ञ में ब्रह्मा अथर्ववेद से ही नियुक्त होता है। क्योंकि गोपथ 'ब्राह्मण के पूर्वार्द्ध में कहा गया है– '**तस्माद् ऋग्विदमिव होतारं वृणीष्व, यजुर्विदमध्वर्युम्, सामविदमुद्गातारं अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्**'[39] अर्थात् ऋग्वेदज्ञ को होता बनाओ, यजुर्वेदज्ञ को अध्वर्यु, सामवेदज्ञ को उद्गाता और अथर्ववेदी को ब्रह्ता। इसी स्थल पर गोपथकार ने पुनः लिखा है– **प्रजापतिर्यज्ञमतनुत, स ऋचैव होत्रमकरोत् यजुषाध्वर्यवम्, साम्नोद्गात्रम्, अथर्वाङ्गिरोभिः ब्रह्मत्वम्**'। अर्थात् प्रजापति ने यज्ञ का विस्तार किया, उन्होंने ऋग्वेद से 'होता' का कार्य सम्पन्न किया, यजुर्वेद से 'अध्वर्यु' का, सामवेद से 'उद्गाता' का तथा अथर्ववेद से 'ब्रह्मा'। इसलिए पूर्वाक्त अथर्ववेद(15.6.8) में लिखित– '**तमृच॑श्च॒ सामा॑नि च॒ यजूं॑षि च॒ ब्रह्म॑ च**' इस मन्त्र में 'ब्रह्म' पद का अर्थ 'अथर्ववेद' है, क्योंकि यज्ञ अथर्ववेदविद् ही ब्रह्मा होता है। यही बात गोपथ ब्राह्मण में इस तरह लिखी है कि –'चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः। यहां स्पष्टतः तीनों वेदों के साथ ब्रह्मवेद का तात्पर्य अथर्ववेद बता दिया गया है। इसका यह 'ब्रह्मवेद' नाम इसलिए पड़ा है कि यज्ञ का अधिष्ठाता 'ब्रह्मा' इसी वेद के साथ नियुक्त होता हैं यही बात ऋग्वेद के पूर्वोक्त '**यत्र॑ ब्र॒ह्मा प॑वमान छन्द॒स्यां॒३॑ वाचं॒ वद॑न्**' (9.113.6) मन्त्र में कह दी गई है ऋचा कहती है कि ब्रह्मा छन्दवाणी बोलता है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा अपने अथर्ववेद को पढ़ता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि 'छन्द' अथर्ववेद ही है और उसी को 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं। (प्रमाण–ग) पुराणों में यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट कर दिया गया है। हरिवंशपुराण में लिखा है–

ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांस्याथर्वणानि च।
चत्वारस्त्वखिला वेदाः सरहस्यास्सविस्तराः।।

यहां ऋग्, यजुः, साम के साथ' छन्दांसि अथर्वणानि' कहा गया है जिससे यह निर्विवाद समझना चाहिए कि अथर्ववेद का ही नाम छन्दवेद है।

(प्रमाण–घ) यही नहीं, किन्तु पारसी धर्म के प्राचीन धर्मग्रन्थ 'गाथा' में भी अथर्ववेद को 'छन्द' ही कहा गया है। प्रो0 मार्टिन हॉग लिखते हैं– ''पारसियों के पुराने साहित्य 'गाथा' में महात्मा जरथुश्त्र एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं, अथर्वा की प्रशंसा करते हैं और उसी अंगिरा की प्रशंसा करते हैं जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में वर्णन है।'' 'गाथा' के जिस श्लोक में अंगिरा का वर्णन आता है, वह यह है–

स्पेन्तेम अतथ्वा मज्दा में गही अहुरा
ह्मत मा वोहु पइरि–जसत् मनंगहा
दक्षत् उष्या तुष्ना मइतिश वहिश्ता
नो इत् ना पोउरुश् द्रेगवतो ख्यात् चिक्श्नुषो
अत् तो वीस्पेंग अंग्रेंग उषाउना आदरे

–(गाथा, य0 18.12)

अर्थात् हे अहुरमज्द! मैंने तुझे आबादी करने वाला जाना। जब सन्देश तेरा लानेवाला अंगिरा मेरे पास आया, तो उसने जाहिर किया कि सन्तोष अच्छी चीज है। एक पूर्ण मनुष्य कभी भी पापी को राजी नहीं रख, सकता, क्योंकि वह सत्य ही का पक्ष करता है। इस श्लोक में 'अंग्रेंग' अंगिरा के लिए आया है। अंगिरा 'अथर्व' का ही वाचक है, क्योंकि अथर्ववेद में लिखा है कि **'अथर्वाङ्गिरसो मुखम्'**, अर्थात् अथर्व–अंगिरा विराट् का मुख है। इस वाक्य में अथर्व और अंगिरा द्वारा परमात्मा का सन्देश अपने पास आना बतलाते हैं, वह अथर्ववेद ही है। अथर्ववेद छन्दोवेद कहलाता है, इसलिए पारसी–धर्म का उपदेश जिस साहित्य के द्वारा हुआ है, वह भी 'जन्द' अथवा जन्दावस्था' कहलाता है। 'जन्द' और 'जन्दावस्था' 'छन्द' और 'छन्दावस्था' का ही रूपान्तर है। प्रो0 मैक्समूलर कहते हैं कि –''*मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि जन्द शब्द संस्कृत के छन्द शब्द का ही अपभ्रंश है, जिसे पाणिनि और अन्य विद्वानों ने वैदिक भाषा के लिए कहा है।*[40] ''छन्द' शब्द वैदिक भाषा में वेदों के लिए इसी कारण प्रयुक्त हुआ है कि वेदों का चतुर्थ भाग अथर्व छन्दवेद ही कहलाता है। पारसियों का अथर्ववेद से ही अधिक सम्बन्ध है, उनके साहित्य का 'जन्द'(छन्द) नाम अथर्ववेद के कारण पड़ा है। अतएव अथर्ववेद के छन्दवेद होने में अब कुछ भी सन्देह नहीं है। (द्रष्टव्य– वैदिक सम्पत्ति, पृ0 442)

(प्रमाण–ङ) 'तस्माद्यज्ञात्0' (यजु0 31. 7) इस मन्त्र के महर्षि दयानन्द कृत अर्थों का ही अनुसरण परवर्ती अन्य वैदिक विद्वानों तथा सनातनी वेदभाष्यकारों ने भी किया है। करपात्री जी के ही साथी स्व0 पं0 महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी इस मन्त्र का निम्न अर्थ करते हैं– ' अर्थात् सब के द्वारा पूजनीय परमात्मा से ऋक्, यजुः, साम और छन्दः, अर्थात् अथर्ववेद प्रकट हुए[41]। महामहोपाध्याय श्री पं0 गिरिधर शर्मा जी का यह अर्थ महर्षि दयानन्द के अर्थ का अनुकरण मात्र है। पं0 सत्यव्रत सामश्रमी के सुयोग्य शिष्य एवं सामवेद तथा यजुर्वेद के भाष्यकार स्वामी भगवदाचार्य इस मन्त्र के सम्बन्ध में लिखते हैं– 'इस मन्त्र में ऋक्, साम, छन्दः और यजुः की उत्पत्ति का वर्णन है। छन्दः शब्द से अवश्य ही अथर्ववेद का ग्रहण हुआ है।[42] स्वामी भगवदाचार्य ने भी स्पष्टतः यह अर्थ महर्षि दयानन्द के मन्त्रार्थ से ही लिया है।

वैदिक–लौकिक वाङ्मय में सन्दर्भित अथर्ववेद

ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त और व्यास से दयानन्द पर्यन्त ऋषियों की मान्यता है कि सृष्टि के आदि में चार ऋषियों के हृदय में वेदों का प्रकाश हुआ। अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद। अठारहवीं–उन्नीसवीं शती के योरोपीय तथा तदनुवर्त्ती भारतीय विद्वानों ने कहना प्रारम्भ किया कि सबसे पहले ऋग्वेद, उसके बाद यजुर्वेद और सामवेद तथा सबसे बाद अथर्ववेद की रचना हुई। यह कथन अविचारितरमणीय है। उपर्युक्त चारों ऋषि समकालीन हैं तथा चारों वेदों के चारों वेदों का नाम आता है–

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ (ऋ0 10.85.11)
अग्निर्जातो अथर्वणा विददविश्वानि काव्या
(ऋ010 .21.5)
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुः (ऋ0 10.12.3)
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थः (यजुर्वेद 4.9)
अथर्वभ्योऽवतोकान् (यजुः0 30.15)
यत्र ऋषयः प्रथमजाः ऋचः साम यजुर्मही
(अथर्ववेद 10.7.14)।

कोई कहता है कि रामायणकाल में अथर्ववेद नहीं था। हनुमान् जी तीन ही वेद (ऋक्, यजुः, साम) पढ़े थे। यह भी ठीक नहीं। बालकाण्ड सर्ग 15 श्लोक 2 में वचन है–

'अथर्वशिरसि प्रोक्तैः मन्त्रैः सिद्धां विधानतः।'

यहां ऋष्यश्रृंग अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ कराने की बात कहते हैं। इस श्लोक को उद्धृत करके प्रो0 ब्लूमफील्ड ने Hymns of the Atharvaveda की भूमिका में तथा रामायण की संस्कृत टीका में स्पष्टतः रामायणकाल में अथर्ववेद का अस्तित्त्व स्वीकार किया है।

उपेन्द्रराव तथा आदित्यमुनि कहते हैं– **'दुदोह यज्ञसिध्यर्थ ऋग्यजुः सामलक्षणम्'** मनु0 के इस श्लोक से मनु के काल में अथर्ववेद नहीं था यह सिद्ध होता है। यह विचार भी अनुचित है– **अभिचारेषु कृत्यासु** (मनु0 9.29) वचन से अथर्ववेद सन्दर्भित किया गया है। इसी प्रकार **अथर्वाङ्गिरसी श्रुतिः** (मनु0 11.33) मिलता है। इस पर मेधातिथि तथा कुल्लूक भट्ट टीका भी द्रष्टव्य है। रचना–त्रैविध्य से ऋग्–यजुः–साम कहा जाता है। वस्तुतः वेद की संहिताएं चार हैं। सर्वानुक्रमेणी की वृत्ति में कहा गया है–

ऋक्यजुः सामरूपेण मंत्रो वेदचतुष्टये।
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते।

।पुरुषसूक्त में 'छन्दांसि जज्ञिरे' में अथर्ववेद का ग्रहण नहीं है ऐसा उपेन्द्र राव का कहना भी अल्पज्ञता का ज्ञापक है।

अथर्ववेद के अनेक नाम हैं– 1. अथर्वण 2. ब्रह्मवेद 3. अथर्वांगिरस 4. चतुर्थवेद (द्रष्टव्य– पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ0 रामशंकर भट्टाचार्य) 5. आंगिरसवेद 6. भृग्वंगिरोवेद 7. क्षत्रवेद 8. भैषज्यवेद 9. छन्दोवेद 10. महीवेद[44]

पैप्पलादसंहिता मूल अथर्ववेद नहीं है क्योंकि उसमें ब्राह्मण पाठ अधिक है तथा अभिचारादि कर्म भी अधिक है। इस तथ्य को ह्विटनी तथा रॉथ के विचारों के प्रमाण से भी पं0 भगवद्दत्त जी ने "वैदिक वाङमय का इतिहास" भाग प्रथम में प्रदर्शित किया है। पारसियों की गाथा में जरथुश्त्र अथर्वा और अंगिरा की प्रशंसा करते हैं और पुराने ईश्वरीय ज्ञान को स्वीकार करते हैं।

प्रो0 मैक्समूलर ने "जन्द एवं जन्दावेस्ता' को छन्द एवं छन्दावस्था का रूपान्तर माना है।[45] अवेस्ता का 'अथ्रवन्' शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्वन् का प्रतिनिधि है, जिसका अर्थ अवेसता में पुरोहित है। प्रो0 ब्लूमफील्ड तथा प्रो0 विण्टरनित्स भी जन्दावेस्ता को अथर्वसंहिता का अधमर्ण मानते हैं। अथर्ववेद (11.7.24) में उल्लिखित **'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह'** में 'छन्दांसि' अथर्ववेद का तथा 'पुराण' पुराणविद्या का ज्ञापक है। शंकराचार्य सृष्टि प्रकिया–घटित विवरण को पुराण मानते है। जबकि सायणाचार्य उर्वशी–पुरूरवा आख्यान को पुराण की संज्ञा से अभिहित करते हैं।[46] इसी प्रकार अथर्ववेद में उल्लिखित 'इतिहास, पुराण, नाराशंसी इत्यादि शब्द इतिहास–पुराण– नाराशंसी आदि विद्याओं को सूचित करते हैं न कि पश्चाद्वर्ती काल में रचित इतिहास,पुराण तथा गाथा आदि के ग्रन्थों को। अद्यतन प्रचलित पुराण इतिहास आदि ग्रन्थों की चर्चा या उल्लेख अथर्ववेद में मानना अपने को प्रवंचना का पात्र बनाना है।

पादटिप्पणियां

1. (क) तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् अजायत।। ऋ0 10.90.9, यजु0 31.7

(ख) यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।। अथर्व0 10.7.20

(ग) चत्वारो वेदाः– महाभाष्य–पस्पशाहिक।

(घ) चत्वारि श्रृंगेति वेदा वा एते उक्ताः।

निरुक्त 13.7

(च) ऋचो यजूंषि सामाानि अथर्वाङ्गिरसश्च ये। तैत्तिरीय ब्राह्मण काण्ड–3, प्रपाठक–12, अनुवाक् 8

2. (क) त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्, तान् वेदानभ्यपतत्। –ऐत0 ब्रा0 5.5.6

(ख) प्रजापतिर्लोकानभ्यपतत्.......... अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् स एतां त्रयीं विद्यामभ्यपतत्। –छान्दो0 ब्रा0 1.17.1–10

(ग) तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। – शतपथ ब्रा0 11.5

(घ) अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षमणम्।।

मनु0 1.23

(ङ) त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तमथागतः।– महाभारत, शान्तिपर्व 235

3. क. ऋग्भिः शंसन्ति, यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति, अथर्वभिर्जपन्ति।

काण्व–संहिता 40.7

ख. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः। मुण्डकोपनिषद् 1.1.5

ग. एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद यद ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।

बृहदारण्यकोपनिषद 4.5.11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ.ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्।

छान्दोग्य उप0 7.1.2

ङ. ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वारः।

पद्मपुराण 5/18/56

च. ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या विद्या।

अग्निपुराण 382.2

चत्वारो वेदाः।– मत्स्य पुराण 133.33

ज. ऋक्सामवर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा।

महाभारत, शान्ति0 135

झ. ऋग्वेदविदमेव होतारं वृणीष्व, यजुर्भिरध्वर्युं, सामविदमुद्गातारम्, अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम् तथा ह्यस्य यज्ञश्चतुष्पात् प्रतिष्ठति। गोपथ ब्राह्मण 2.24

ञ. प्रजापतिर्यज्ञमतनुत स ऋचैव होरामकृणोत्, यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गात्रं अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्। गोपथ ब्राह्मण 3. 2

4. मीमांसा दर्शन 2.1.32, अर्थात् जिन मन्त्रों में अथर्ववश पादों की व्यवस्था है, उसे ऋक् कहते हैं।

5. वहीं, 2.1.33, अर्थात् गानात्मक मन्त्रों को साम कहते हैं।

6. वही 2.1.34 अर्थात् शेष को यजुः नाम से कहा जाता है।

7. तुलना करो– क). ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वारः। पद्म पुराण 5.18.56

ख). ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या विद्या। अग्नि पु0 382.2

8. सत्यव्रत सामश्रमी, वेदत्रयी परिचय (हिन्दी अनुवाद), पृ0 7,2031, विक्रमी, उत्तरप्रदेश हिन्दी समिति, लखनऊ।

9. महाभारत शान्तिपर्व 235।

10. क). पं0 रघुनन्दन शर्मा, वैदिक सम्पत्ति, पृ0 439,2027 विक्रमी, षष्ठावृत्ति, मुम्बई।

(ख) ''ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीन मुख्य विषयों के कारण भी चारों वेद त्रयी–विद्या कहलाते हैं।''

पं. धर्मदेव विद्यामर्तण्ड– वेदों का यथार्थस्वरूप, पृ. 293, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली–5

11. तै0 ब्रा0 1.2.1.26

12. वेदत्रयी परिचय, पृ0 1

13. नवधाथर्वणो वेदः (पस्पशाह्निक)

14. कूर्मपुराण, 1.52.20

15. अहिर्बुध्न्यसंहिता, 12–9

16. उद्धृत–वैदिक वांगमय का इतिहास, भाग–1 पृ. 326–27

17. वेदत्रयी परिचय, पृ. 32

18. ननु चोक्तं नहि छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसीति। यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या। तद्भेदाच्चैतद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति। पातंजल–महाभाष्यम् 4. 3.101

19. पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ0 252

20. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् अजायत।। यजु0 31.7

21. वेदार्थपारिजात, पृ0 484

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ0 12
23. वेदार्थपारिजात, पृ0 485
24. कात्यायन श्रौतसूत्र– प्रतिज्ञापरिशिष्ट, 1.1
25. वेदार्थ पारिजात।
26. छन्दोभिः गायत्र्यादिच्छन्दोयुक्तैर्मन्त्रैः।
    सायणभाष्यम्
27. तेषामृग् यथार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शन्दः।
    मीमांसा दर्शन 2.1.32–34
28. छान्दोग्य ब्राह्मण, 9.12
29. वेदार्थपारिजात, पृ0 484–485
30. केन्द्रीय आर्यसभा कानपुर से लिखित शास्त्रार्थ में 21–1–1958 ई. को करपात्रीजी द्वारा लिखा गया प्रथम पत्र।
31. 'तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यऽचलन्। – अथर्व0 15.6.8
32. वेदसंज्ञाविमर्श, पृ0 2
33. वेदार्थपारिजातः, पृ. 485
34. 'भट्टगोविन्दस्य श्रुतिविकासः' सरस्वती सुषमा, जुलाई 1949 ई0।
35. भट्टगोविन्द का हस्तलेख (श्रुतिविकास) निरंक पृ. 40
36. वेदार्थपारिजात, पृ0 484
37. हिन्दी ऋग्वेद–भूमिका, पृ. 9
38. वेदार्थ पारिजात, पृ. 485
39 ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ0 12
40. गोपथब्राह्मण 1.3.1.2
41. I still hold that the name of Zend was originally a corruption of the Sanskrit word छन्दः chhanda, which is the name given to the language of the veda by Panini and others. (Chips from a German Workshop, Vol. 1,P,84)
42. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति, पृ0 50
43. सामसंस्कार भाष्य की प्रस्तावना, पृ0 13
44, द्रष्टव्य – वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, डा0 कपिलदेव द्विवेदी
45, द्रष्टव्य– वेद और वेदार्थ, डॉ0 ज्वलन्त कुमार शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (201-209) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद में पुनरुक्ति

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

पहले कही हुई बात को विशिष्ट अभिप्राय के बिना कहना पुनरुक्ति है जोकि दोषावह है। वह शब्द और अर्थ भेद से दो प्रकार की होती है। जब किन्हीं शब्दों को बार-बार कहा जाता है तब वह शब्द पुनरुक्त कहाता है। जब भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा एक ही अर्थ को बार-बार कहा जाए तो वह अर्थ पुनरुक्त कहाता है। वेदों के परिप्रेक्ष्य में पुनरुक्ति पद, पाद, अर्धर्च, मन्त्र और सूक्त भेद से पाँच प्रकार की होती हैं, जो कि साभिप्राय है। यजुर्वेद में प्रतीक पुनरुक्ति के भी दर्शन होते हैं, जो कि कर्मकाण्ड विशेष का अंग हैं।

अथर्ववेद की शौनक संहिता में पुनरुक्ति के लगभग ये सभी भेद बहुतायत में प्राप्त होते हैं। पुनरुक्तिदोष वक्ता के प्रमाद को प्रमाणित करता है। अत: अथर्ववेद पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि इसमें पुनरुक्ति-दोष है। पुनरुक्ति दोष होने से न तो '**बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे**' [१] को स्वीकार किया जा सकता है और न उसके रचयिता को भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि दोषों से मुक्त कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में वेद के प्रामाण्य का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी विप्रतिपत्ति होने पर अथर्ववेद की निर्दुष्टता को कैसे सिद्ध किया जाए यह प्रश्न मन में उठता है। ऋग्वेद को आधार बनाकर मौरिस ब्लूमफील्ड ने 'Rigveda Repetition' नामक ग्रन्थ का निर्माण कर ऋग्वेद के उन सभी सहस्रों स्थलों को अपने ग्रन्थ में जगह दी जिनकी एक से अधिक बार पुनरावृत्ति हुई है। हालैण्ड के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान, जे०. गोण्डा (उच्चारण-खोण्डा) ने शैली विज्ञान की दृष्टि से वेदों की पुनरुक्तियों पर 'Stylistic Repetition in the Vedas' नामक ग्रन्थ में विचार किया है। 'वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं' ग्रन्थ का सम्पादन श्री जगदेव सिद्धान्ती और डॉ० रामनाथ वेदालंकार ने किया है जिननें २३ वैदिक विद्वानों के वैदिक पुनरुक्तियों पर निबन्ध हैं। जिनमें पुनरुक्तियों पर तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया गया है परन्तु समग्ररूप में आथर्वणिक पुनरुक्तियों पर अभी तक कार्य नहीं हुआ है। २० काण्डोंवाली इस अथर्ववेद संहिता का कलेवर ५९७७ मन्त्रात्मक है। अत: हम केवल इस निबन्ध में प्रथम दो काण्डों जिनमें कि ७१ सूक्त और ३६० मन्त्र हैं, में पठित पुनरुक्तियों की सभिप्रायता या सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास करेंगे।

विदित हो कि इन दो काण्डों में सूक्त पुनरुक्ति को छोड़कर शब्द पुनरुक्ति के अवशिष्ट सभी भेद मिलते हैं। मन्त्र-पुनरुक्ति भी मन्त्र के कुछ पदों के परिवर्तन के साथ जहाँ अथर्ववेद के इन काण्डों में उपलब्ध हैं वहीं दूसरे वेदों में भी पठित मन्त्र यहाँ मिलते हैं। अर्थपुनरुक्ति का यहाँ अभाव ही है। पुनरुक्त मन्त्रों का जो प्रयोग अथर्ववेद में किया गया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शब्दों, पदों, पादों, अर्धर्चों और अधिकतम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्यवाली पूर्ण ऋचाओं की पुनरुक्ति जहाँ ज्ञान से परिपूर्ण है, वहाँ उसमें शब्दमाधुर्य भी भरा हुआ है। अथर्ववेद के प्रथम और द्वितीय काण्डों के आधार पर पुनरुक्तियों का विवेचन इस प्रकार है-

पद-पुनरुक्तियाँ-जहाँ एक ही मन्त्र में एक या अनेक पद पुनः प्रयुक्त हों वह पद-पुनरुक्ति कहाती है। उक्त दोनों काण्डों में पद-पुनरुक्तियाँ इस प्रकार हैं-

१. रूपंरूपम् वयोवयः १.२२.३
२. धत्तधत्त २.१३.२
३. सम्सम् २.२६.३-इस सूक्त में 'सम्' पद कम से कम १० बार पुनरावृत्त हुआ है। अथर्व० १.१५.१ में चार बार पुनरुक्त है।
४. धत्तम् २.२९.५-में दो बार पुनरावृत्त।
५. यथा २.३०.१-में तीन बार पुनरुक्त।
६. यद्-तद् २.३०.४-में दो-दो बार पुनरुक्त।
७. हुतः २.३२.४-५ में ६ बार पुनरावृत्त।
८. हुतासः २.३२.५-में दो बार पुनरावृत्त।
९. अङ्गे-अङ्गे २.३३.७, १.२२.२
१०. लोम्निलोम्नि २.३३.७
११. पर्वणिपर्वणि २.३३.७
१२. अत्त २.२४.१ में तीन बार पुनरुक्त।
१३. अथर्व २.१७ सूक्त में कुल सात मन्त्र हैं। जिनमें प्रथम ६ मन्त्र एकपदासुरी त्रिष्टुप् और सातवां मन्त्र आसुरी उष्णिक् छन्द वाला है। सातों मन्त्रों में क्रमशः ओजः, सहः, बलम्, आयुः, श्रोत्रम्, चक्षुः, परिपाणम् पद दो-दो बार पुनरावृत्त हुए हैं।
१४. उपर्युक्त के अतिरिक्त अथर्व २.११ में 'असि' पद १३ बार प्रयुक्त हुआ है।
१५. वाचस्पतिः १.१.३ में दो बार पुनरुक्त है।
१६. श्रुतेन १.१.४ में दो बार पुनरुक्त है।
१७. यथा १.११.६ में तीन बार पुनरुक्त है।
१८. नमस्ते १.१३.१ में तीन बार पुनरुक्त है।
१९. अथर्व० २.१९.२३ में तपः, हरः, अर्चिः, शोचिः, तेजः आदि पदों की पाँच-पाँच बार पुनरुक्ति हुई है।
२०. तिष्ठ १.१७.२ में पाँच बार पुनरुक्त है।
२१. वि १.२१.३ में चार बार पुनरुक्त है।
२२. शम् १.६.१ में दो बार और १.६.४ में चार बार तथा १.१२.४ में चार बार पुनरुक्त है।

पद पुनरुक्ति के दो भेद हैं-सुबन्त की पुनरुक्ति और तिङन्त की पुनरुक्ति। वैयाकरणों के मतानुसार सुबन्त की पुनरुक्ति से वीप्सा=व्याप्ति अर्थ-गम्यमान होता है। जैसे-ग्रामो ग्रामो रमणीयः=प्रत्येक ग्राम रमणीय है। यहाँ रमणीयता की व्याप्ति ग्राम-ग्राम में है यह अर्थ प्रतीत होता है। तिङन्त की पुनरुक्ति से नित्य=आभीक्ष्ण्य पुनः पुनः क्रिया का होना विदित होता है। जैसे-देवदत्तः पचति पचति=देवदत्त पकाता ही रहता है। इनके लिए पाणिनीय सूत्र है-'**नित्य वीप्सयोः**'।[2]

इस नियम के अनुसार सुबन्त की पुनरुक्ति में 'अङ्गे-अङ्गे' लोम्नि लोम्नि', 'पर्वणि पर्वणि' का अर्थ होगा अंग-अंग में व्याप्त, रोम-रोम में व्याप्त, शरीर के जोड़ों में व्याप्त यक्ष्मा को नष्ट करता हूँ। इसी प्रकार उपर्युक्त तिङन्त पदों जैसे धत्त धत्त, अत्त, असि आदि की पुनरुक्ति में उस उसका अर्थ '**उस क्रिया का पुनः पुनः**' होना होगा।

सुबन्त पद की पुनरुक्ति के समान ही जहाँ उपसर्ग और निपात की पुनरुक्ति हो वहाँ भी 'वीप्सा' अर्थ होगा, परन्तु पाणिनि ने '**प्रसमुपोदः**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादपूरणे'[3] सूत्र द्वारा प्र, सम्, उप का ऋक् (पादबद्ध-मन्त्रों में 'पादपूर्ति' प्रयोजन भी दर्शाया है। यद्यपि इनकी पुनरुक्ति अर्थ की दृष्टि से निष्प्रयोजन है, परन्तु छन्दःशास्त्र की दृष्टि से सप्रयोजन है। सूत्रकार पाणिनि और वार्तिककार कात्यायन ने इस प्रकरण (८.१.४-१५.) के सूत्रों और वार्तिकों में पुनरुक्ति द्वारा अन्य कई विशेष अर्थों की प्रतीति होने का भी निर्देश किया है। वेदार्थ करते समय इनका ध्यान रखना आवश्यक है। पुनरुक्त पद समुदायों के सामान्य अर्थ में पुनरुक्ति से उनका वैशिष्ट्य प्रतीत है। इस विषय में आचार्य यास्क और वेंकटमाधव प्रमाण हैं। इनके अनुसार अभ्यास अर्थात् पुनरुक्ति से भूयान्=विशेष अर्थ प्रतीत होता है।[4] अर्थात् जहाँ समान पदों की पुनरुक्ति हो और अर्थ भी समान ही हो वहाँ अभ्यास=पुनरुच्चारण से अर्थ की विशेषता द्योतित होती है। जैसे लोक में किसी पुरुष को देखकर प्रयुक्त किये गये **'अहो दर्शनीयः, अहो दर्शनीयः'** पदों के पुनरुच्चारण से उस पुरुष के दर्शनीयत्व गुण के वैशिष्ट्य का बोध होता है, उसी प्रकार वेद के प्रयुक्त पदों के पुनरुच्चारण से उन पदों से प्रतीयमान अर्थ का वैशिंष्ट्य जानना चाहिए।

हतः, हतासः-उपर्युक्त पद-पुनरुक्तियों के अन्तर्गत कुछ ऐसी पुनरुक्तियां हैं जो कई मन्त्रों में एक-दो पद के रूप में बार-बार आयी हैं। इनमें हतः और हतासः (२.३२. ४-५.) प्रमुख हैं। ये क्रमशः ०६ और ०२ बार प्रयुक्त हुई हैं। यह हृदय के भावोद्रेक को प्रकट करने की एक शैली है। इसे पुनरुक्ति दोष नहीं माना जा सकता। अथर्ववेद के प्रस्तुत विवेच्य प्रसङ्ग में ऐसे पुनरुक्तियुक्त मन्त्र इस प्रकार हैं-

हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः॥[5]

उपर्युक्त मन्त्रों में 'हतः' और 'हतासः' पदों की बार-बार आवृत्ति हृदय के भावोद्रेक को प्रकट कर रही है। अतः यहाँ पुनरुक्तिदोष नहीं माना जा सकता।

काव्यमाधुर्य भी पद पुनरुक्तियों में देखने को मिलता है। अथर्ववेद के प्रस्तुत विवेच्य काण्डों में जहाँ अक्षर, शब्द एवं पदों का पुनरुक्तियों से माधुर्य देखने को मिलता है वहीं द्विपद काव्य माधुर्य भी दिखाई देता है। ऐसे कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -

अक्षर, शब्द एवं पद का माधुर्य-

१. स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसिप्रत्यभिचरणोऽसि। (२.११.२)
२. सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि (२.११.४)
३. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि (२.११.५)
४. अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरंगिरोभिः (२.१२.४)
५. घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने। घृतं पीत्वा मधुचारु गव्यं० (२.१३.१)
६. परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः (२.१३.२)
७. यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः। यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः (२.१४.५)
८. यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत तमत्त स्वा मांसान्यत्त (२.२४.१-८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. अङ्गकान् समङ्गकान् हविषा विधेम (१.१२.२)

द्विपद काव्य माधुर्य -

१. दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि (२.११.१)

२. भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं सपक्षयणमसि सपचातनं अरायक्षयणमस्यरायचातनं पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं) (२.१८. १-५)

३. प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे (२.२७. १-६)

४. अश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः (०१.४.४)

५. अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु (१.९.१)

अथर्ववेद छन्दोबद्ध होने के कारण काव्य है। लौकिक काव्य में अर्धावृत्ति, पदावृत्ति, महायमक आदि भेद होते हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद के पहले दो काण्डों में भी यदि इनका अवतार हुआ तो कुछ अलौकिक नहीं है। पदावृत्ति अर्धावृत्ति यह सब यमकालंकार के भेद हैं। वैसे भी वैदिक भाषा में नाम, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय तथा संख्यावाचक शब्दों (पदों के द्विरुक्त उपलब्ध होते हैं। अथर्ववेद के प्रथम और द्वितीय काण्डों में भी यह द्विरुक्तता मिलती है। आख्यात के द्विरुक्त-उदाहरण भी हैं, परन्तु वे 'रूपं रूपं' आदि की तरह अति विरल हैं। अतः पदावृत्ति या पदपुनरुक्तता जहाँ यमकालंकार का विषय है, वहीं द्विरुक्त समास का विषय भी बनती है, जो कि किसी भी प्रकार पुनरुक्ततादोषभाक् नहीं बन सकती।

पाद-पुनरुक्तियाँ- जहाँ पूरा पाद (चरण) पुनः पुनः प्रयुक्त हो वह पाद-पुनरुक्ति कहाती है। अथर्ववेद के प्रथम और द्वितीय काण्डों में निम्नलिखित पाद-पुनरुक्तियां प्रयुक्त हुई हैं-

१. मय्येवास्तु मयि श्रुतम् (१.१.२-३)

२. अव जरायु पद्यताम् (१.११.४-६)

३. ता न आपः शं स्योना भवन्तु (१.३३.४)

४. गन्धर्वो भुवनस्य यस्पति रेक एव नमस्यः (२.२.१-२)

५. वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु (२.८.५)

६. आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम (२.११.१-५)

७. एवा मे प्राण मा बिभेः (२.१५.१-६)

८. मा पातं स्वाहा (२.१६.१-२)

९. पाहि स्वाहा (२.१६.३-५)

१०. मे दाः स्वाहा (२.१७.१-७, २.१८.१-५)

११. योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः (२.१९, २०, २१, २२, २३ सूक्तों के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में प्रयुक्त हुआ है। यह मन्त्रांश ३.२७ में भी पुनरुक्त है।

१२. क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि (२.३१.२, ४)

१३. वि वृहामि ते (२.३३. १-७. केवल मं० सं० ३ और ७ में 'वृहामि' के स्थान पर 'वृहामसि' आख्यात पद पठित है।

विद्वानों के अनुसार[६] समस्यापूर्तियाँ वेद में दो प्रकार की हैं-एक तो ऐसी हैं जिनमें सूक्त या सूक्तांश के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में समा[न] मन्त्रखण्ड आता है। ऐसी समस्यापूर्तियां ज[ो] ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में बिखरी हुई हैं [व]ा अथर्ववेद में भी उपर्युक्त पाद-पुनरुक्तियां प्रक[ी]र्ण रूप में समस्यापूर्ति के रूप में मिलती हैं। [इ]न समस्यापूर्तियों की सूक्तियों से भावना का समा[ँ] बंध जाता है और काव्यशोभा अतिशय बढ़ जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में वह भावना बार-बार आती है। इसे टेक भी कहते हैं। अतः वेंकटमाधव ने लिखा है-**आवर्तयन्ति सूक्तींश्च यथाऽर्चन्ननु स्वराज्यम्,** अर्थात् अनके स्थानों पर गीतिकाव्य के सिद्धान्तानुसार सूक्तियों की वेद में आवृत्ति होती है। जैसे **अर्चन्ननु स्वराज्यम्**। दूसरी समस्यापूर्ति पूरे मन्त्र की होती है। कुछ वर्गों, अनुवाकों, सूक्तों आदि के अन्त में पूरा मन्त्र बार-बार आता है। जिसमें मन्त्र एक होता हुआ भी सर्वत्र नवीन रूप में भासित होता है। इसमें समस्यापूर्ति का चमत्कार भी झलकता है और काव्यशोभा भी बढ़ती है। अथर्ववेद के प्रथम दो काण्डों में यह दूसरे प्रकार की समस्यापूर्ति नहीं हैं।

गीतिकाव्यों में और वीररस प्रधान उद्बोधनपरक कविता में जैसे भक्त और वीरपुरुष अपनी टेक (या टेर) पुनः-पुनः दोहराता है वैसे ही अथर्ववेद में भी सार्थक पाद-पुनरुक्ति मिलती है। उपर्युक्त में '**मयि एवास्तु मयि श्रुतम्**=हे वाचस्पति! पढ़ा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे', '**अवजरायु पद्यताम्**=जीर्ण हुआ गर्भावरण (जेली) नीचे गिर जाये; '**एवा मे प्राण मा बिभेः**=हे मेरे प्राण! तू भय न कर', '**मां पातं स्वाहा**=मेरी रक्षा करो; '**मे दाः स्वाहा**=मुझे ओज, बल, आयु आदि प्रदान करो', **योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः**=जो हमारे साथ द्वेष करता है और जिसके साथ हम अप्रीति करते हैं हे परमात्मा उसे तू तपा, नष्ट कर', आदि गीतिपरक काव्यात्मकता भक्तिप्रधान है। भक्तिप्रधान काव्यों में इस प्रकार की पुनरुक्ति देखी जाती है, जो कि पुनरुक्ति दोषभाक् नहीं होती। इस प्रकार के उदाहरण संस्कृत के भक्तिस्तोत्रों और भाषा के भक्ति प्रधान गीतों में देखे जा सकते हैं। जैसे संस्कृत में लिखी चर्पट मञ्जरी स्तोत्र में '**भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते**' और हिन्दी में श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा रचित सर्वत्र गेय आरती-'**ओम् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे**' ये टेक प्रत्येक छन्दान्त में प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार की पादपुनरुक्ति गीतों काव्यों में सार्थक मानी जाती है और इससे उनके सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। जब लोक में यह स्थिति है तो वैदिक काव्य में इस प्रकार की पुनरुक्ति को निरर्थक कैसे कहा जा सकता है।

जिस प्रकार लोक में वीरोचित उद्बोधन में पुनरुक्ति वाक्यों में दोष नहीं देखा जाता उसी प्रकार की स्थिति वेद-कविता में भी है। हिन्दी में बहुत प्रसिद्ध उद्बोधन गीत है-

वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो।
बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो, बढ़े चलो॥

'यहाँ बढ़े' चलो वाक्य की पुनरुक्ति दोषावह नहीं है, अपितु वीररस और चारुता का आस्वादन कराने वाली है। इसकी तुलना में उपर्युक्त पादपुनरुक्तियों में उद्धृत '**आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम**' टेक वाली पुनरुक्ति को लिया जा सकता है। इसके कतिपय मन्त्र इस प्रकार हैं-

दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥
सुरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि आप्नुहि
श्रेयांसमति समं क्राम (२.११.१, ४-५)

यहाँ उपर्युक्त मन्त्रों में भी '**असि**' तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम' की पुनरुक्ति में दोष की उद्भावना न कर इसमें जो रस और चारुता है उसका आस्वादन करना उचित है।

विवृहामि ते- यह पाद अथर्व० २/३३ (यक्ष्मविबर्हणम्) में पुनरुक्त है। भिषक् यक्ष्मापीड़ित व्यक्ति के मनोबल को बढ़ाने के लिए प्रत्येक मन्त्र में अनेक शरीरावयवों का निर्देश करके कहता है कि यदि यक्ष्मा तेरे इन अवयवों में प्रविष्ट है तो मैं इन अवयवों से इसे पृथक् करता हूँ=नष्ट करता हूँ। रोगी को विश्वास दिलाने के लिए तेरे चाहे किसे भी अंग में यक्ष्मा क्यों न प्रविष्ट हो गया हो मैं उसे अवश्य दूर कर दूँगा, तुझे मरने नहीं दूँगा। इसी सुदृढ़भाव को और रोगी के मनोबल को बढ़ाने के लिए इन मन्त्रों में बार-बार **'विवृहामि ते'** पाद (चरण) की पुनरुक्ति है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त पादपुनरुक्तियों में मन्त्रों के अन्तिम चरण का अग्रिम मन्त्र के प्रारम्भ में प्रयोग गिरधर कविराय की कुण्डलियों की तरह भी देखने को मिलता है। अथर्ववेद प्रथम काण्ड में एक उदाहरण इस तरह का मिलता है-

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् (१.२३.१)

किलासं च पलितं च निरितो नाशया वृषत् (१.२३.२)

अथर्व. १.२३.२ में केवल 'च' पद अधिक है। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। अथर्ववेद में अनुलोम-विलोम उक्ति माधुर्य भी देखने को मिलता है, जैसे-**यदन्तरं तद् बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्** (२.३०.४)। काव्य माधुर्य वैदिक भाषा में किन-किन रूपों में है यह पुनरुक्तियों से व्यक्त हो रहा है।

अर्धर्च पुनरुक्तियां-जहाँ आधी ऋचा (आधा-मन्त्र) पुनः-पुनः प्रयुक्त हो वह अर्धर्च-पुनरुक्ति कहाती है। अथर्ववेद के प्रथम और द्वितीय काण्डों में अधोलिखित अर्धर्च मिलते हैं-

१. एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्। (१.३. ६-९)

२. सपत्नास्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधिरोहयेमम्। (१.९.२, ४)

३. तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि। (१.१५. ३-४)

४. या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु। (१.३३. १-३)

५. तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् (२.३. ३-५.-मन्त्र सं ४ में 'अनीनशत्' पद के स्थान पर 'अशीशमत्' पद का प्रयोग हुआ है।

६. वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु (२.८. २-५.-मन्त्र सं) ५ में इस अर्धर्च से पहले 'नमः क्षेत्रस्य पतये' पाद का भी प्रयोग हुआ है।

७. प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे। (२.२७. १-६)

पादपुनरुक्ति के समाधान में जो तर्क पूर्व में दिये गये हैं वे तर्क और युक्तियां यहाँ अर्धर्च पुनरुक्तियों में भी सटीक बैठती हैं। यहाँ इतना लिखना विशेष है कि निरुक्त १०.४० में आचार्य यास्क ने पुनरुक्ति के समाधान में लिखा है कि **'अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते'** अर्थात् जहाँ समान पदों की पुनरुक्ति हो और अर्थ भी समान ही हो वहाँ अभ्यास=(पुनरुच्चारण) से अर्थ की विशेषता द्योतित होती है। यही स्थिति यहाँ अर्धर्च पुनरुक्तियों की है। इनकी बार-बार पुनरावृत्ति अर्थभूयस्त्व को प्रकट करती है। वेंकटमाधव ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दावृत्यानुक्रमणी के अन्तिम भाग में एक अर्धर्च और एक पाद का उल्लेख करते हुए इंगित किया है कि पुनः-पुनः पठित अर्धर्च और पाद सार्थक होते हैं। अर्धर्च द्वारा और पाद द्वारा देवसमुदाय में से एक-एक देव से उस उस पदार्थ की याचना करते हुए उसका अन्य देवों के साथ सहयोगीभाव सूचित किया जाता है, अर्थात् प्रतिसूक्त स्तुत देव अकेला ही अभिलषित कामना को पूर्ण नहीं कर सकता, अपितु अन्य देवों के जिनका अर्धर्च में उल्लेख है, साथ मिलकर ही कामना को पूर्ण कर सकता है। अतः अर्धर्च अथवा पाद मन्त्रपूर्तिमात्र के लिए नहीं है, अर्थात् निरर्थक नहीं हैं-

अथार्धर्चस्तन्नो मित्रः सन्त्यप्यन्ये च तादृशाः।
प्रातर्मक्ष्विति पादः स्यात् सन्त्यन्येऽपि च तादृशाः॥
स्तुत्वान्यमन्यदेवानां तत्तदाशास्यते पुनः।
ऋषयो यद्यदिच्छन्ति तदर्थास्ते न पूरणाः॥

(४.८. ३-४)

मन्त्र-पुनरुक्ति- जहाँ पूरा मन्त्र ही पुनः उपलब्ध होता है वह मन्त्र-पुनरुक्ति कहाती है। अथर्ववेद के प्रथम और द्वितीय काण्डों में दो प्रकार से मन्त्र पुनरुक्तियाँ मिलती हैं। एक तो उन मन्त्रों की जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में पठित होने के साथ-साथ अथर्ववेद में भी पठित हैं। दूसरे प्रकार की मन्त्र-पुनरुक्तियां वे हो सकती हैं जिन मन्त्रों में थोड़ा-सा (किंचित् मात्र) परिवर्तन होने के साथ वे मन्त्र पुनरुक्ति को प्राप्त हुए हैं। प्रथम प्रकार की मन्त्रपुनरुक्तियाँ इस प्रकार हैं-

१. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥
२. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥
३. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥
४. ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम्॥ (१.५. १-४)

उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद (१०.९. १-४), सामवेद (१८३७-१८३९, ईशाना० को छोड़कर) और यजुर्वेद (११.५०-५२, ईशाना० को छोड़कर) में भी पुनरुक्त हैं! इनके अतिरिक्त अथर्ववेद १.६. १-३ मन्त्र भी ऋग्वेद आदि में पठित हैं।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने वेदों में पूरे मन्त्र की पुनरुक्ति के दो भेद माने हैं।[7] एक प्रकरणान्तर में समान पदात्मक मन्त्र की पुनरुक्ति और दूसरी एक ही प्रकरण में अर्थात् एक ही देवता के प्रकरण में मन्त्र की पुनरुक्ति। जहाँ तक प्रकरणान्तर में पुनरुक्ति का सम्बन्ध है वह समानाक्षर होते हुए भी प्रकरण भेद से अर्थभेद के लिए हैं। अतः उसका उस-उस प्रकरण भेद से अर्थ दर्शाना भाष्यकार के लिए आवश्यक है। यदि कोई भाष्यकार '**पूर्वमयं मन्त्रो व्याख्यातः**' लिख देता है तो वह अपनी अज्ञता को ही दर्शाता है। उपर्युक्त चारों मन्त्रों में से '**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता०**' को आधार बनाकर हम प्रकरणभेद से इतर अर्थ इस प्रकार कर सकते हैं-उक्त सभी स्थानों में प्रसङ्ग भेद से यह मन्त्र उपयुक्त बैठ जाता है। प्रथम ऋग्वेद का प्रसङ्ग लीजिए। ऋग्वेद के दशम मण्डल में पहले सात सूक्त अग्निविषयक हैं। आठवें सूक्त में भी पहले ६ मन्त्र अग्नि के हैं तथा मन्त्र ७ से ९ तक इन्द्र के हैं। फिर नवम सूक्त 'आपः' विषयक है, जिसका प्रस्तुत 'आपो हि ष्ठा' आदि प्रथम मन्त्र है। यहाँ 'अग्नि-इन्द्र-आपः' यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम है। भौतिक दृष्टि से देखें तो प्रथम अग्नि में यज्ञ करने से जलवाष्प ऊपर जाकर बादल बनते हैं, जिनकी वेद में वृत्र संज्ञा है। फिर इन वृत्रों तथा इन्द्र (विद्युत् या सूर्य) का युद्ध होता है तथा इन्द्र वृत्रों का वध कर उन्हें नीचे गिरा देता है। तब 'आपः' अर्थात् वर्षाजल हमें प्राप्त होते हैं। इन वर्षाजलों का समुचित उपयोग कर हम स्वास्थ्य, बल एवं तेज को प्राप्त होते हैं।

यजुर्वेद में उक्त मन्त्र दो बार आता है। प्रथम ११ वें अध्याय का ५०वां मन्त्र है। ४९वें मन्त्र में अग्नि को सम्बोधन कर कहा है कि अपने विस्तीर्ण बल के साथ देदीप्यमान होता हुआ तू व्याधियों को दूर कर। उसके साथ ही प्रस्तुत ५०वें मन्त्र में इसी कार्य के लिए जलों को स्मरण करते हुए कहा है कि तुम हमें बल, प्राण और स्मरणीय दृष्टि शक्ति प्रदान करो। ३६वें अध्याय में फिर यही मन्त्र आया है। यह सुख शान्ति की प्रार्थना का अध्याय है, जिसमें विभिन्न वस्तुओं से सुखशान्ति की याचना की गयी है। यहाँ भी यह मन्त्र संगत हो जाता है, क्योंकि इसमें जलों से सुख, शान्ति की प्रार्थना है। सामवेद में जहाँ यह मन्त्र आया है वहाँ क्रमशः इन्द्र, आपः तथा वात के त्रिक (तीन-तीन) मन्त्र हैं। यहाँ प्रसङ्गभेद के साथ-साथ अर्थभेद भी है, क्योंकि सामवेद के भक्तिपरक होने से यहाँ 'आपः' का अर्थ आनन्द रसमयी जगन्माता होता है।

अथर्ववेद १.५.१ में यह मन्त्र चिकित्सा के प्रकरण में है। इससे पूर्व के मन्त्रों में शर, मुञ्ज आदि ओषधियों द्वारा चिकित्सा का वर्णन है। इस मन्त्र से सूचित किया है कि हम स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए जल चिकित्सा भी करें। इस प्रकार एक ही मन्त्र प्रसङ्ग भेद से अनेक स्थानों पर आता है तो यह पुनरुक्ति-दोष नहीं है। इसी विधि से एक से अधिक मन्त्र या सम्पूर्ण सूक्त भी अनेक स्थानों पर पठित हो सकते हैं। वस्तुतः अभी हमने **'आपो हि ष्ठा मयोभुवः'** का जो उदाहरण दिया है वह भी अकेला मन्त्र नहीं, अपितु संकेतित सभी स्थलों में इकट्ठे तीन-तीन मन्त्र पुनरुक्त हुए हैं-'आपो हि ष्ठा', 'यो वः शिवतमो रसः' और 'तस्मा अरं गमाम वो'।

अधिकांश पुनरुक्तियों का समाधान इस प्रसङ्ग भेद से हो जाता है। विस्तार भय से सभी मन्त्रपुनरुक्तियों की सार्थकता या साभिप्रायता दिखाना असंभव है।

पाठभेद से अथर्व २.३३ सूक्त ऋग्वेद १०.१६३ में पठित है। ऋग्वेद में यह सूक्त ०६ मन्त्रों वाला है। जबकि यहाँ अथर्ववेद में ०७ मन्त्र हैं। मध्य में भी मन्त्रक्रम में अन्तर आया हुआ है। कुछ पाठभेद भी हैं। अतः इसको सूक्त पुनरुक्ति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

इस प्रकार अथर्ववेद (काण्ड प्रथम, द्वितीय) के पुनरुक्त स्थलों पर विचार करते हुए हम निम्न परिणामों पर पहुँचते हैं। जिनका समर्थन सामवेदभाष्यकार आचार्य रामनाथ वेदालंकार के लेख से भी होता है-

१. अथर्ववेद में शब्द पुनरुक्ति पर्याप्त होते हुए भी पुनरुक्ति दोष कहीं नहीं है। ऐसा ही यास्क आदि प्राचीन वेदज्ञों और अर्वाचीन भाष्यकारों ने भी स्वीकार किया है।[१]
२. विभिन्न प्रसङ्गों में जहाँ सम्पूर्ण सूक्त, कुछ मन्त्र या अकेले-अकेले मन्त्र पुनरुक्त हुए हैं, वहाँ प्रसङ्ग भेद के कारण पुनरुक्त दोष नहीं है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि उन सभी प्रसङ्गों में वे मन्त्र अपना सौन्दर्य रखते हैं।

३. कई स्थलों में मन्त्र-साम्य होते हुए भी प्रकरणानुसार अर्थ भिन्न हो जाता है। इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है।
४. समस्यापूर्ति, जहाँ प्रत्येक पद्य के अन्त में एक ही वाक्य आता है, दोष नहीं मानी जाती। प्रत्युत यह एक चित्ताकर्षक काव्यशैली है। अत: वेद के भी ऐसे प्रसङ्ग पुनरुक्ति दोष से युक्त नहीं ठहरते।
५. उपदेश में एक बात को प्रकारान्तर से पुन:-पुन: कहना दोष नहीं होता। वेद मन्त्र भी परमेश्वर के उपदेश हैं। अत: वेदों में भी यदि यह शैली रखी गई है तो वह पुनरुक्ति दोष नहीं है। इससे पाठक के मन में वह विचार बद्धमूल हो जाता है। ऐसे स्थलों में पुनरुक्ति का प्रयोजन दार्ढ्य (बल देना) होता है।
६. पद-पुनरुक्ति द्विरुक्त समास का विषय होती है। अत: वह दोषावह नहीं है।
७. भय, शोक, असूया, हर्ष, विस्मय, अनुकम्पा, त्वरा, उत्साह आदि के प्रदर्शनार्थ पुनरुक्ति शास्त्रसम्मत है। उसे दोष नहीं माना जाता। आचार्य भामह (काव्यालंकार ४.१४. एवं दण्डी (काव्यादर्श ३.१३७) ने भी इसका प्रतिपादन किया है।
८. अथर्ववेद के कई मन्त्रों में एक-दो पद बार-बार आये हैं। यह हृदय के भावोद्रेक को प्रकट करने की एक शैली है। इसे पुनरुक्ति-दोष नहीं माना जा सकता। वैदिक काव्य में भक्ति प्रधानता वाले मन्त्रों और वीरोचित उद्बोधनों में पुन:-पुन: प्रयुक्त पद, पाद आदि पुनरुक्तिदोषभाक् नहीं होते। इनसे वैदिक मन्त्रों का अनेक प्रकार से काव्यमाधुर्य प्रकट होता है। अक्षर, शब्द एवं पदमाधुर्य, द्विपद काव्यमाधुर्य, गिरधर कविराय की कुण्डलियों की तरह का माधुर्य एवं अनुलोम-विलोम उक्तिमाधुर्य भी इन पुनरुक्तियों से प्रकाश में आता है।

इस पद्धति से यदि हम आथर्वणिक पुनरुक्तियों पर विचार करते हैं तो हमें आचार्य यास्क की **'अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते'**[१०] यह उक्ति सर्वत्र चरितार्थ हुई प्रतीत होने लगती है तथा **'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'** (वै.द. ६.१.१) की सत्यता भी सिद्ध हो जाती है।

---

[१] वै० द० ६.१.१

[२] अष्टा०८.१.४

[३] अष्टा०८.१.६

[४] अभ्यासे भूयांसमर्थ मन्यन्ते, यथा अहोदर्शनीयोऽहोदर्शनीयः (नि. 10.40)

[५] अथर्व०२.३२.४-५

[६] वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं, सम्पा० पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती एवं डॉ० रामनाथ वेदालंकार, पृ०१८

[७] वही, पृ० ६८

[८] वही, पृ० ३८

[९] ऋग्वेद संहिता २.११.५, ७.१०.१, ७.६६.१६, ८.६६.१५, १०.२२.१२, १०.२२.१५, १०.३०.५ और १०.१०५.११ पर सायणभाष्य तथा यजुर्वेद ४०.१६ पर-'व्याख्याताया: पुनर्वचनं विशेषार्थम्' यह उव्वट-महीधर का वचन।

[१०] निरु०१०.४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (210-227) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

दयानन्दीय विचारधारा के आलोक में अथर्ववेद के मणिसूक्तों का स्वारस्य

डॉ. दिनेशचन्द्र शास्त्री

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

कौशिक सूत्र, नैदानसूत्र, नक्षत्रकल्प, अथर्वपरिशिष्ट एवं सम्बन्धित अनुक्रमणिकाओं का अनुगमन कर कर्मकाण्डपरक वैनियोगिक भाष्य करने वाले आचार्य सायण आदि ने अथर्ववेद के कुछ प्रकरणों को जादू-टोनों (Amulet) का पिटारा बना दिया है। वेदों के अप्रतिम भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ईश्वरीय ज्ञान वेद को दूषित करने वाली इस प्रकार की सब कुत्सित बातों का पुरजोर विरोध किया। इनके वेदभाष्यों और वेद संबन्धी सत्साहित्य से उचित आर्ष दृष्टि और प्रेरणा प्राप्त कर, अनुयायी अनेक वेदभाष्यकारों जैसे पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी, पं. जयदेव शर्मा विद्यालंकार, पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, प्रो. विश्वनाथ वेदोपाध्याय एवं स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती आदि ने अपने-अपने अथर्वभाष्यों में यह दिखाने का प्रयास किया है कि ये सब बातें वेद में नहीं हैं, प्रत्युत थोप दी गयी हैं। यहाँ हम अथर्ववेद के कुछ सूक्तों और मन्त्रों पर स्वामी दयानन्द की विचारधारा के आलोक में लिखे गये भाषा-भाष्यों के अनुसार विचार करके यह दिखाने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार ये सब बातें वेद के अपने (स्वारस्य) के सर्वथा विपरीत हैं।

अथर्ववेद की शौनक संहिता में अनेक ऐसे सूक्त हैं जिन्हें मणि सूक्त कहा जाता है,[१] जैसे कि-

१.	अभीवर्तमणि अथर्व. १.२९	२	जङ्गिडमणि अथर्व. २.४, १९.३४, १९.३५	३.	पर्णमणि अथर्व. ३.५
४.	अश्वत्थमणि अथर्व. ३.६	५.	शङ्खमणि अथर्व. ४.१०	६.	प्रतिसरमणि अथर्व. ८.५
७.	वैयाघ्रमणि अथर्व. ८.७	८.	वरणमणि अथर्व. १०.३	९.	फालमणि अथर्व. १०.६
१०.	दर्भमणि अथर्व. १९.२८-३०, ३२-३३	११.	औदुम्बरमणि अथर्व. १९.३१	१२.	शतवारमणि अथर्व. १९.३६
१३.	अस्तृतमणि अथर्व. १९.४६				

सायणादि वैनियोगिक भाष्यकारों के अनुसार उपर्युक्त मणिसूक्तों में वर्णित पदार्थों को उस सूक्त में वर्णित मन्त्रपाठ पूर्वक छोटे-छोटे खण्डों के रूप में शरीर के किसी अंग पर बाँधकर अथवा किसी अन्य प्रकार से प्रयोग में लाकर अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए तथा अनिष्ट के निवारण के लिए जादू- टोने के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इस क्रियाकलाप से अन्धविश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बू (गन्ध) आती है। यह सब 'मणि' शब्द के अर्थ को ठीक से न समझने तथा मन्त्रों के आशय को भी ठीक से न समझ सकने के कारण किया जाता है। ध्यान से देखने पर ऐसे मन्त्रों का कुछ अन्य ही आशय सामने आता है। 'मणि' शब्द और 'रत्न' शब्द किसी भी अत्यन्त उपयोगी और मूल्यवान् वस्तु को कहा जाता है।[2] इसी अर्थ में अथर्ववेद में 'मणि' शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] इसलिए बोलचाल की भाषा में पुरुष के वीर्य को भी 'मणि' कहा जाता है, क्योंकि स्वास्थ्य आदि की दशा तथा वंशवृद्धि के लिए वीर्य से बढ़कर और कोई उपयोगी और श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। व्यावहारिक भाषा में इसी कारण किसी प्रतिष्ठित पण्डित या महान् कवि आदि को कविशिरोमणि, कविरत्न और पण्डित शिरोमणि और पण्डित रत्न आदि शब्दों से सम्मानित किया जाता है। इन मणिसूक्तों में जिस पदार्थ का वर्णन है, वह पदार्थ अपने प्रयोजन को पूरा करने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी और मूल्यवान् होता है, इसीलिये उसे 'मणि' कह दिया जाता है।[4] मन्त्रों में कहीं-कहीं 'मणि' से बांधने का उल्लेख भी आता है।[5] मन्त्र के इस कथन का भाव उसे किसी ताबीज की भाँति बाँधने का नहीं होना चाहिए। उसे भली-भाँति अपने वश में करना, उससे उपयोग लेना, उसका सेवन करना आदि भाव लेना चाहिए।[6] क्योंकि बन्धन केवल धागे आदि द्वारा ही नहीं होता। योगदर्शन के '**देशबन्धः चित्तस्य धारणा**' (३.१) सूत्र में नासिकाग्र आदि में चित्त को बाँधने का भी कथन हुआ है। धारणा योगाङ्ग है। इसी प्रकार मणिसूक्तों में **बध्नामि, बध्नात्** आदि पदों का अर्थ भी यथोचित ही करना चाहिए। अथर्ववेदीय मणिसूक्त काव्यमयी आलंकारिक भाषा में लिखे गये हैं, और उसी रूप में इन मन्त्रों के बाँधने आदि शब्दों का लोक प्रसिद्ध साधारण अर्थ न लेकर उनका अन्तर्निहित तात्पर्यार्थ ही देखना चाहिए। पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने इन धागा, ताबीज आदि के जादू-टोने के रूप में बाँधने को केवल विश्वास की चीज मानते हुए लिखा है कि **यह केवल भावना की कल्पना** है।[7] डॉ. कपिल देव द्विवेदी के अनुसार- 'अथर्ववेद में मणि के पीछे यह भावना छिपी हुई है कि प्रत्येक वृक्ष में कुछ गुण होते हैं। वे गुण उसकी शाखा और पत्तों आदि में भी होते हैं। उस वृक्ष के फल आदि के सेवन से जो लाभ प्राप्त हो सकता है वह उसकी शाखा को पास में रखने से भी प्राप्त हो सकता है। इसलिए विशेष वृक्षों के मनके बनाकर उन्हें शरीर पर बाँध लेते हैं या उन्हें गले में लटका लेते हैं। विशेष वृक्ष में होने वाले सभी गुण उनके मनकों या मणियों के द्वारा भी प्राप्त किए जा सकते हैं। वृक्ष जिन रोगों आदि को दूर करता है, उसकी मणियां या मनके भी उन रोगों को दूर कर सकते हैं।[8] 'पुनर्नवा' नामक औषधि के छोटे-छोटे मनके बनाकर उसकी माला गले में इस तरह पहनी जाये कि शरीर को स्पर्श करती रहे तो पीलिया रोग में यह औषधि प्रभावकारी सिद्ध होती है। यह तो हमारा अनुभूत प्रयोग है। इसी तरह मणिसूक्तोक्त औषधियों के आयुर्वेदिक प्रयोग तरह-तरह से अथर्ववेद में इङ्गित हैं। उक्त भाषा भाष्यों के अनुसार उपर्युक्त मणिसूक्तों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं- (१) आयुर्वेदपरक (२) राजनीतिपरक। निम्नलिखित रूप में इनको हम इस प्रकार प्रदर्शित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकते हैं- आयुर्वेद (औषधि) परक मणिसूक्त, राजनीतिपरक मणिसूक्त

१.जङ्गिडमणिअथर्व. २.४१. पर्णमणि अथर्व. ३.५	२. शङ्खमणि अथर्व. ४.१०२. प्रतिसरमणि अथर्व. ८.५
३. शतवारमणि अथर्व. १९.३६३. अभीवर्तमणि अथर्व. १.२९	४. वैयाघ्रमणि अथर्व. ८.७.१४४. अस्तृतमणि अथर्व. १९.४६
५. अश्वत्थमणि अथर्व. ३.६५. दर्भमणि अथर्व. १९.२८-३०, ३२-३३	६. औदुम्बरमणि अथर्व. १९.३१

उपर्युक्त मणिसूक्तों में से 'वरण', 'फाल', 'जङ्गिड' और 'अश्वत्थ' मणियों की उभयविध व्याख्या हो सकती है। ऐसा हमारे अध्ययन से ज्ञात हुआ है। आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति ने अपने ग्रन्थ 'वेद और उसकी वैज्ञानिकता' के पृ. ३६६ पर लिखा है कि गम्भीर अध्ययन, मनन, चिन्तन, अनुसन्धान करने पर तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों से सहायता लेने पर प्रायः सभी मणिसूक्तों की किसी न किसी औषधि परक सुन्दर व्याख्या हो सकती है' यह कथन कुछ सत्य प्रतीत नहीं होता। क्योंकि आर्यभाषा-भाष्यों के अनुसार तो उपर्युक्त १३ मणिसूक्तों में से आधे से अधिक राजनीतिपरक व्याख्यात हैं। फिर आचार्य प्रियव्रत का कथन कैसे सत्य माना जा सकता है? उपर्युक्त दो वर्गों में विभक्त मणिसूक्तों का स्वारस्य इस प्रकार है-

(क) आयुर्वेदपरक मणिसूक्त-

१. **जङ्गिडमणि-** इस मणि का वर्णन अथर्ववेद के २.४ तथा १९.३४-३५ इन तीन सूक्तों में प्राप्त होता है। अथर्व. २.४ सूक्त के भाष्य की उत्थानिका में जङ्गिडमणि की महिमा बताते हुए आचार्य सायण ने लिखा है कि जो व्यक्ति कृत्या (हिंसा) से बचना चाहता हो, अपनी रक्षा करना चाहता हो तथा विघ्नों की शान्ति चाहता हो, वह जङ्गिड पेड़ से बनी विशेष प्रकार की मणि को शण (सन) के धागे में पिरोकर मणि बाँधने की विधि से इस सूक्त के मन्त्रों को पढ़कर बाँध ले।[९]

जङ्गिड कोई इस प्रकार की मणि नहीं है जिसको सूक्त के मन्त्र पढ़कर बाँधने से वह जादू-टोने के रूप में हिंसा आदि विपत्तियों से किसी की रक्षा कर सके। यह एक प्रकार की औषधि ही है। अथर्व. १९.३४.९ मन्त्र में जङ्गिड को भूमि पर उत्पन्न होने वाली वनस्पति कहा गया है।[१०] अथर्व. १९.३४.९ में ही इसे रोगों का निवारण करने वाली औषधि कहा गया है, तथा अथर्व. १९.३५.१ में इसे भेषज अर्थात् रोगों की चिकित्सा करने वाली औषधि कहा गया है।[११] एवं अथर्व. २.४.३ तथा १९.३५.५ में इसे 'विश्वभेषज' अर्थात् अनेक प्रकार के रोगों का निवारण करने वाली औषधि बताया गया है। अथर्व. २.४.५ मन्त्र में कहा गया है कि जङ्गिड के साथ शण (सन) नामक औषधि का प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। जङ्गिड औषधि जंगलों में प्राप्त होती है तथा सन की खेती की जा सकती है। यह औषधि रोग-बाधा से शिथिल होकर गतिशून्य अंगों को गति प्रदान करती है।[१२] किसी रोग या घाव आदि के कारण शरीर के किसी स्थान का मांस गल गलकर गिर रहा हो तो (विशरात्) यह औषधि उसे भी ठीक करती है।[१३] इसी मन्त्र में इस औषधि को 'सहस्रवीर्य' अर्थात् बड़ी भारी गुणकारी शक्तिशाली भी बताया गया है। यह औषधि किसी के द्वारा शरीर को काट देने से बने घाव (कृत्या) आदि को भी ठीक कर देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस औषधि के प्रयोग से कन्धों के जकड़ जाने का रोग (संस्कन्ध) भी ठीक हो सकता है।[१४] यह औषधि सब प्रकार के अर्थात् अनेक प्रकार के रोगों (अमीवा) को ठीक करती है। यह औषधि बल की क्षीणता (बलास), पीठ के रोगों (पृष्ठ्यामय) तथा कष्टदायक ज्वर (तक्मा) आदि को भी शान्त करने की शक्ति रखती है।[१५] इस सूक्त में जो अराति अर्थात् शत्रुओं को मारने की[१६] बात कही है तथा जो राक्षसों को मारने की बात[१७] कही है, उसका तात्पर्य रोगजनक कृमिरूप शत्रुओं से समझना चाहिए।

अथर्ववेद में जङ्गिडमणि के जो गुण माने गये हैं राजनिघण्टु में भी प्राय: वे ही गुण '**वच**' के बताए गए हैं। अत: विद्वानो ने जङ्गिड से '**वचा**' का अभिप्राय लिया है।[१८] पं. दामोदर सातवलेकर ने 'अथर्ववेद का सुबोध भाष्य' प्रथम भाग, पृ. ३२ पर 'वचा' और 'जङ्गिड' की तुलना इस प्रकार की है-

वचा के गुण

वैद्यकग्रन्थ के शब्द	इस सूक्त (२.४) के शब्द
१. आयुष्या	१. दीर्घायुत्वाय (मं.२) आंयूषि तारिषत् (मं.६),
२. रक्षोघ्नी/भूतघ्नी	२. रक्षांसि सहामहे (मं.४),
३.वातघ्नी/उन्मादघ्नी	३. जम्भात् पातु (मं.२) अभिशोचनात् पातु (मं.२)
४. मंगल्या, भद्रा, स्मृतिवर्धिनी	४. अरिष्यन्त: (मं.२) दक्षमणा:। सहस्त्रवीर्य (मं.२),
५. विजया	५. अरातिदूषि: (मं.६),
६.अतिसारघ्नी	६. विशरात् (वि-सारात्) पातु (मं.२)
७. शोफघ्नी, ज्वरघ्नी,	७. विश्वभेषज: (मं.३), कफहनी, ग्रंथिहनी

पं. दामोदर सातवलेकर ने भी अपने 'अथर्ववेद का सुबोध भाष्य' प्रथम भाग में जङ्गिड को औषधि मानते हुए जोरदार शब्दों में जादू-टोने का खण्डन करते हुए लिखा है- इस २.४ सूक्त में जो 'जङ्गिडमणि' का वर्णन है वह ताबीज या धागा डोरा या जादू की चीज नहीं है। यह वास्तविक औषधि पदार्थ है। इसके पूर्व के तृतीय सूक्त में पर्वत और पृथ्वी के ऊपर होने तथा समुद्र के तल में उत्पन्न होने वाली औषधि वनस्पतियों का वर्णन असंदिग्धरीति से आया है, इस औषधि वनस्पतियों की अनुवृत्ति इस सूक्त में है। ये दोनों सूक्त साथ-साथ हैं और दोनों का रोग निवारण और आरोग्य साधन यह विषय समान ही है। इसीलिये यह औषधि का मणि है यह बात स्पष्ट है।..................आजकल **जो ताबीज, कवच, धागा, डोरा जादू का पदार्थ है वह केवल विश्वास की चीज है अथवा भावना से उसकी कल्पना है।** वैसा जङ्गिडमणि नहीं है। इसमें औषधियों का सम्बन्ध विशेषरीति से शरीर के साथ होता है। यद्यपि शरीर के अन्दर औषधि नहीं सेवन की जाती तथापि शरीर के ऊपर के स्पर्श से लाभ पहुंचता है।.............जङ्गिडमणि (Disinfectant) स्पर्शजन्य दोष को हटानेवाला होने के कारण यदि वह शरीर पर धारण किया जाय, तो उससे रोग दूर होने में शंका ही नहीं हो सकती। इस सूक्त में 'दूषण, दूषि:' इन शब्दों का प्रयोग विलक्षण अर्थ में हुआ है। जैसे-

१. विष्कन्ध दूषण-विष्कन्ध को बिगाड़ने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. कृत्यादूषि-कृत्या को दोष लगाने वाला

३. अरातिदूषि-अराति को दोष लगाने वाला

सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर इस शब्द प्रयोग में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि शत्रु में 'दोष उत्पन्न करना' यहाँ सूचित किया है। कई कहते हैं कि शत्रु को मारो, काटो या शत्रु का नाश करो। वेद में शत्रु का नाश करने का उपदेश कई बार किया है। परन्तु यहाँ दूसरी बात का उपदेश शत्रु को दूर करने के विषय में किया है। शत्रु में दोष उत्पन्न करना, शत्रु में हीनता उत्पन्न करना, शत्रु की कार्यवाही में दोष उत्पन्न करना। जिस समय शत्रु का शीघ्र नाश नहीं होता है उस समय अनेक उपायों से शत्रु के अन्दर दोषों को बढ़ाने से शत्रु का बल घटता जाता है और अपना बल बढ़ता जाता है। यह जितना व्यक्तिगत रोगों के विषय में सत्य है उतना ही सामाजिक और राष्ट्रीय शत्रुओं के विषय में भी सत्य है, शत्रु में दोष उत्पन्न करने से थोड़े से प्रयत्न से शत्रु का पराभव होता है और अपने लिये विजय प्राप्त होता है।

पं. सातवलेकर के अनुसार इस मणि को धारण करने से जैसे शरीर के रोगादि शत्रुओं की शक्ति में दोष उत्पन्न होते हैं उनकी शक्ति क्षीण होती जाती है और अपना बल बढ़ता जाता है, वैसी ही राष्ट्र रूपी शरीर के क्षेत्र में भी इस मणि से राजनीति के शत्रुदमन विषयक एक बड़े सिद्धान्त का ज्ञान हो सकता है। हमारे मतानुसार इस दृष्टि से सूक्तोक्त जङ्गिड के गुणों के आधार पर जङ्गिडमणि का अर्थ योग्य सेनापति भी हो सकता है।

(२) **शङ्खमणि-** अथर्व. ४.१० सूक्त में शङ्खमणि का उल्लेख है। सायणाचार्य ने इस सूक्त के अपने भाष्य की उत्थानिका में कौशिक सूत्र ७.६, ७.९ और नक्षत्र कल्प १७ और १९ के अनुसार लिखा है कि- उपनयन संस्कार के पश्चात् बालक की दीर्घायु के लिए शङ्ख को इस सूक्त के मन्त्रों से बाँध दे तथा यह भी लिखा है कि बाढ़ आ जाने पर जल में डूब जाने आदि का भय उपस्थित होने पर भी रक्षा के लिए शङ्ख को मणि रूप में इस सूक्त के मन्त्रों का पाठ करके बाँध लेने पर वह भय दूर हो जाता है।[१०]

आचार्य सायण द्वारा की गई इस सूक्त के मन्त्रों की इस प्रकार की शङ्ख की जादू-टोने भरी मणिपरक व्याख्या भी उनकी जङ्गिडमणि आदि की व्याख्याओं की भाँति नितान्त असंगत है। यदि शङ्ख के बाँधने से और इन मन्त्रों का पाठ करने से आयु लम्बी हो जाती हो तब तो सौ साल तक और उससे अधिक जीने का आसान तरीका हाथ लग जाता है। हर कोई ऐसा कर लिया करे और वह कभी भी सौ साल से पहले न मरे। इसी प्रकार बाढ़ के भय से बचने का भी यह बड़ा सरल उपाय है। भारत के सब लोग विशेषकर हिन्दू लोग छोटे-छोटे शङ्खों की ऐसी मणियां बाँधकर रखा करें जिससे देश में कभी बाढ़ आयेगी ही नहीं। यह सब कोरी गप्पे हैं, जिन्हें वेद पर थोपकर वेद जैसे महान् ग्रन्थ को बिल्कुल हास्यास्पद और तुच्छ बनाकर रख दिया है। वस्तुतः तो इस सूक्त में शङ्ख का एक गुणकारी औषधि के रूप में वर्णन किया गया है और रोगों की चिकित्सा में बहुत उपयोगी होने के कारण उसे मणि कह दिया गया है। अथर्व. ४.१०.३ में शङ्ख को **विश्वभेषज** अर्थात् अनेक प्रकार के रोगों का निवारण करने वाला बतलाया गया है। अथर्व. ४.१०.१ में इसे **'कृशनः'** अर्थात् रोगों को दुर्बल करके दूर करने वाला बताया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। दूसरे मन्त्र में इसे शरीर को खा जाने वाला (अत्रिणः) रोग तथा तज्जनक कृमिरूप राक्षसों को मारने वाला कहा है। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि शङ्ख के सेवन से अनेक प्रकार के रोग (अमीवा) मस्तक या बुद्धि की दुर्बलता, पागलपन आदि को (अमतिम्) तथा पीड़ा देकर रुलानेवाले अन्य रोगों को दूर करने वाला बताया गया है। चौथे मन्त्र में इसके सेवन को आयुवर्धक कहा है। छठे मन्त्र में शङ्ख में हिरण्य (स्वर्ण) तथ सोम जैसे रोगनिवारण गुण बताये गये हैं। सूक्त के अन्तिम सातवें मन्त्र में कहा गया है कि शङ्ख के सेवन से १०० वर्ष की दीर्घायु प्राप्त होती है, बल प्राप्त होता है। चिकित्सक लोग शङ्ख को बारीक घिसकर या उसकी भस्म बनाकर उसे औषधि के रूप में प्रयोग में लाते हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थों में शङ्ख भस्म को अनेक रोगों में बड़ा उपयोगी बताया गया है।

शङ्ख यह एक समुद्री कोशस्थ जीव का अस्थिवत् रक्षक है। यह शङ्ख के जीव के साथ बढ़ता है। यह हड्डी के तुल्य होता है। यह बात अथर्ववेद के मन्त्र ४.१०.७ में **अस्थि** शब्द के द्वारा स्पष्ट होती है। पानी में शङ्ख को घोलकर बच्चों को पिलाने से उनकी बहुत सी बीमारियां दूर हो जाती हैं। यह विधि महाराष्ट्र में अधिक प्रचलित है। चिकित्सकीय दृष्टि से बच्चों के गले में शङ्ख की मणि बाँधने की प्रथा आज भी है। छोटे शङ्ख को सोने में जड़कर गले में आभूषण के तुल्य छोटे बच्चों को पहनाने की भी प्रथा है। इससे लाभ देखा गया है। ऐसा डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने लिखा है।[२०]

पं. विश्वनाथ विद्यालंकार ने अपने अथर्ववेद भाष्य में शङ्खमणि से शङ्खभस्म का अभिप्राय लिया है। वे अथर्व. ४.१०.१ में पठित **हिरण्यजाः शङ्खः** का अभिप्राय हिरण्य भस्ममिश्रित शङ्खभस्म लिया है। वे लिखते हैं कि अथर्व. ४.१०.७ में जो अस्थिमय शङ्ख को आयु-वृद्धि आदि का कारण बताया गया है वह संभव नहीं है। यह तभी संभव है जब इसका अर्थ शङ्खभस्म करें। यह अर्थ समग्र सूक्त के अभिप्राय के अनुकूल भी है।

(३) **शतवारमणि-** अथर्व. १९.३६ सूक्त में 'शतवारमणि' का वर्णन है। इस सूक्त के अपने भाष्य की उत्थानिका में आचार्य सायण ने लिखा है कि जिस व्यक्ति की सन्तानें मर जाती हों और इस प्रकार उसके कुल का क्षय हो रहा हो, वह इस सूक्त के मन्त्रों को पढ़कर 'शतवारमणि' को बाँध ले तो उसका यह संकट दूर हो जाता है।[२१] यहाँ भी अथर्ववेद में शतवारमणि का वर्णन किसी जादू-टोने भरी मणि के रूप में नहीं किया गया है, प्रत्युत एक बल वीर्य और पुंस्त्व शक्तिवर्धक औषधि के रूप में किया गया है। यदि जादू-टोने वाली बात होती तो कोई भी व्यक्ति इस औषधि की मणि बनाकर बाँध लिया करता और इस सूक्त के मन्त्रों का पाठ करा लिया करता तो उसकी कभी कोई सन्तान नहीं मरती और न कभी यही होता कि उसके घर में सन्तान ही न हो। यद्यपि सूक्त में इसके लिए औषधि शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है तो भी इसके गुणों का जो वर्णन वहां मिलता है, उससे यह औषधि ही सिद्ध होती है। सायणाचार्य ने भी सूक्त के मन्त्रों के अपने भाष्य में शतवार को एक औषधि ही बताया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि शतवार अपने सामर्थ्य से अनेक यक्ष्म अर्थात् रोगों को तथा रोगों के जनक कृमियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(रक्षांसि) को नष्ट कर देता है। कठिनता से झुकाये, दबाये अर्थात् नष्ट किये जा सकने वाले रोगों को भी यह औषधि नष्ट कर देती है। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि यह औषधि छोटे रोगों को भी दूर करने की शक्ति रखती है। बड़े रोगों के विनाश का भी सामर्थ्य रखती है तथा पीड़ा से रोगी को रोता चिल्लाता रखने वाले रोगों को भी नष्ट कर देती है। चौथे मन्त्र में कहा गया है कि 'शतवार' में इतनी पुंस्त्व पैदा करने की शक्ति है जो व्यक्ति एक भी सन्तान उत्पन्न न कर सकता हो, वह भी सैकड़ों अर्थात् अनेक सन्तानें पैदा कर सकता है। यह वीर्य के अनेक प्रकार के दोषों और रोगों को दूर करने की शक्ति रखता है। आचार्य सायण ने 'शतवार' औषधि के नाम की व्याख्या दो प्रकार से की है- एक तो उन्होंने यह व्याख्या की है कि इसके मूल में सैकड़ों अर्थात् अनेक मूल, मोटी जड़ों या कन्द से निकलते हैं, तथा दूसरा अर्थ उन्होंने यह किया है कि इसमें अनेक रोगों को रोकने की शक्ति है। पुंस्त्व या वीर्यवर्धक औषधि में यह शक्ति तो होती ही है। पाँचवें मन्त्र में 'शतवार' को हिरण्यशृंग भी कहा है। आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति के अनुसार जिसका एक भाव तो यह प्रतीत होता है कि इसके कन्द की नोकें स्वर्ण की भाँति चमकदार या उज्ज्वल होती हैं। एक ध्वनि इससे यह भी निकलती है कि इसमें हिरण्य अर्थात् सोने जैसे औषधि के गुण हैं और यह रोगों को सींगों की तरह फोड़ डालती है अर्थात् नष्ट कर देती है। इसकी यह ध्वनि भी निकलती है कि स्वर्ण के साथ इसका प्रयोग किया जाये तो यह और भी गुणकारी सिद्ध होगी। ये सब बातें परीक्षा करके देखने की हैं। दूसरे मन्त्र में इसको दो सींगों वाला भी बताया गया है। इससे प्रतीत होता है कि इसके कन्द में दो सींग या नोकें भो निकलती होंगी। पाँचवे मन्त्र में इस औषधि को ऋषभ भी कहा गया है। ऋषभ का अर्थ साँड की भाँति बड़ा शक्तिशाली होता है। इसका भाव यह है कि रोगों के निवारण में यह औषधि बड़ी शक्तिशाली है। इस शब्द का अर्थ साँड़ की भाँति वीर्यसेचन में समर्थ अर्थात् अधिक सन्तानें उत्पन्न करने में समर्थ भी होता है। जो औषधि पुंस्त्व और वीर्यवर्धक है, उसमें यह गुण तो होता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में वाजीकरण या वीर्यवर्धक औषधि के रूप में औषध का नाम **ऋषभ** कहा भी गया है।

(४) **वैयाघ्रमणि-** इस मणि का उल्लेख अथर्व. ८.७.१४ में हुआ है। कौशिक और वैतान सूत्रों के अनुसार आचार्य सायण ने इस सूक्त की उत्थानिका में लिखा है कि- यक्ष्मा आदि सकल व्याधियों की चिकित्सा के लिये इस सूक्त से दशवृक्षों के टुकडों को लाख और सुवर्ण से मढ़ मणि बनाकर गुगल, जामुन, कबीला, स्रक्, बङ्क, सिरस, वरण, वेल, जङ्गिड, कुटक, गृह्य, गलागल, बेत, शिम्बल, सिपुन, तिनश, अरणिका, अश्मयोक्त, तुन्यु और पूतदारु- ये शान्त वृक्ष कहलाते हैं। इनमें से किन्हीं भी दश वृक्षों के टुकड़ों से निर्मित मणि शाकलमणि कहलाती है तथा सौत्रामणि याग में इस सूक्त के द्वारा औषधियों से खिंचती हुई सुरा का अनुमन्त्रण करें।

अथर्व. ८.७ सूक्त में २८ मन्त्र हैं। जिनमें पाप का फल यक्ष्मा को बताया गया है। इस सूक्त के १४ वें मन्त्र में 'वैयाघ्रमणि' का वर्णन आया है। मन्त्र इस प्रकार है-

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीवा: सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत्॥

अर्थात् वीरुधाम्=विरोहण स्वभाववाली लता आदि में, वैयाघ्र:-वैयाघ्र वीरुध् मणि:ठ सर्वश्रेष्ठ रत्न है, त्रायमाण:-यह मणि पालन करता, अभिशस्तिपा:=तथा रोगजन्य हिंसा से रक्षा करता है। अमीवा:[२२]=रोगों या रोगकीटाणुओं, तथा सर्वा रक्षांसि- सब राक्षसी कर्मों का, अपहन्तु= यह हनन करे अर्थात् हमसे दूर कर दे।[२३]

'वैयाघ्र' का अर्थ है व्याघ्रवत् रोगों पर आक्रमणकारी-व्याघ्र इव वैयाघ्र:।[२४] व्याघ्र का अभिप्राय है **कास्टर आयल का पौधा।** आप्टे ने स्वार्थ में अण् प्रत्यय मानकर वैयाघ्र पद सिद्ध किया है और 'व्याघ्र' को The red Variety of the caster-oil माना है।[२५]

उपर्युक्त सूक्त में व्याघ्र औषधि को मणि कहा है, यह वीरुधों में श्रेष्ठ है। कास्टर आयल पौधे को मणि इसलिये कहते हैं कि बद्ध कोष्ठता (कब्ज) के लिए यह सर्वोत्तम तैल है। रोगों का कारण कब्ज है। कब्ज के ठीक रहने पर रोग प्राय: नहीं होते। व्याघ्रपदघटित अन्य औषधियां भी हैं, यथा व्याघ्रपुच्छ, व्याघ्रपात्।[२६]

उपर्युक्त वर्णन में सायणकृत व्याख्या कहाँ टिकती है? यह स्वयं ही देखा जा सकता है। समस्त रोग पेट की खराबी से पनपते हैं। वेद में 'अमीवा' रोग के कीटाणुओं को कहते हैं। अत: इनको सायण के द्वारा बताये मणिबन्धन प्रकार से कैसे दूर किया जा सकता है? इस ८.७ सूक्त में त्राणसंबन्धी, पुरुषजीवनी, बलासरोगनाशक, हृदय कल्याणकारी और रोगनाशक पीपल, दर्भ आदि औषधियों का वर्णन किया गया है। इसी क्रम में वैयाघ्र औषधि का भी अत्यन्त उपयोगी मणिरूप में वर्णन आया है। मनुष्यों को उचित है कि इसका यथोचित प्रयोग करें। **यह ध्यातव्य है कि इस सूक्त में केवल 'वैयाघ्र' के साथ ही मणि पद का प्रयोग हुआ है, अन्य औषधियों के साथ नहीं। यह इसकी महता को इङ्गित करता है।**

(४) **अश्वत्थमणि-** सायण आचार्य के अनुसार 'अश्वत्थमणि' का वर्णन अथर्व. ३.६ में आता है। यद्यपि मन्त्रों में कहीं भी 'मणि शब्द' का उल्लेख नहीं हुआ है। भाष्यकारों ने इस सूक्त का देवता '**वानस्पत्याश्वत्थ**' लिखा है। आचार्य सायण ने इस सूक्त की उत्थानिका में लिखा है- अभिचारकर्म में इस सूक्त द्वारा खैर में उगे पीपल की मणि का सम्पातन और अभिमन्त्रण करके बाँधे तथा इङ्गिडालंकृत पाशों को इससे संपातित और अभिमन्त्रित कर शत्रु के मर्म में बींधे। तथा इसी सूक्त से पूर्ववत् पाशों को अभिमन्त्रित कर '**तेऽधराञ्च:**' इस सातवीं ऋचा से नदी के प्रवाह में फेंक देवे। इसी प्रकार पहिले के समान अभिमन्त्रित पाशों को आठवीं ऋचा से प्रेरित करे। तथा अभिचरित और अभिचर्यमाण के लिये विहित महाशान्ति के मणिबन्धन में भी यह सूक्त पढ़ा जाता है।

उपर्युक्त सूक्त में आठ मन्त्र हैं। जिनमें '**पुमान् पुंस:**'[२७], दार्ष्टान्त (उपमेय) का वर्णन '**अश्वत्थ: खदिरात्**' के दृष्टान्त रूप में हुआ है। दूसरे मन्त्र में उपमान=अश्वत्थ और उपमेय=पुमान् दोनों का वर्णन है। अश्वत्थ रोग शत्रुओं का विनाशक है। इस अर्थ में इन्द्र है विद्युत्, मित्र है सूर्य, वरुण है मेघ। इन तीन की सहायता द्वारा अश्वत्थ बढ़ता है, अत: वह इनके साथ स्नेह करता है। उपमेय-पुमान् राष्ट्रिय शत्रुओं का विनाश करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस अर्थ में इन्द्र है सम्राट्, मित्र है मित्र राजा, तथा वरुण है माण्डलिक राजा।[२८] अन्तिम मन्त्र में **'वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे'** द्वारा यह ज्ञात होता है कि 'अश्वत्थ' प्रकरण द्वारा वृक्ष ही है। **'नुदामहे'** द्वारा ज्ञात होता है कि शत्रुओं को धकेलने वाले बहुत हैं। ये प्रजाएँ हैं। जब समग्र प्रजा मिलकर 'राष्ट्रिय शत्रु-स्वकीय राजा' को राष्ट्र से धकेलने के लिए तत्पर हो जाए तो वह वृक्षों की शाखाओं के प्रहारों द्वारा ही शत्रु-राजा को अपने राष्ट्र से धकेल सकती है, किसी उग्र शस्त्रास्त्र की आवश्यकता नहीं होती, इसे मन्त्र में दर्शाया है।

पं. सातवलेकर ने भी इस सूक्त की 'अश्वत्थ की अन्योक्ति' नाम से व्याख्या की है। वे लिखते हैं यह सूक्त अश्वत्थ की अन्योक्ति है। **एक का प्रत्यक्ष उल्लेख करके दूसरे के ही विषय में कहने का नाम अन्योक्ति है।** इसी प्रकार यहाँ अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन करते हुए वीर पुरुष का वर्णन किया है।[२९]

(ख) राजनीतिपरक मणिसूक्त

(१) **पर्णमणि-** राजनीतिपरक मणिसूक्तों में पहले पर्णमणि (अथर्व. ३.५) सूक्त को लेते हैं। इस सूक्त की उत्थानिका में अपने भाष्य में विनियोगकारों और अनुक्रमणिकाकारों का अनुसरण करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- जो व्यक्ति तेज, बल, आयु और धन आदि को प्राप्त करना चाहता है, वह पर्ण अर्थात् ढाक के वृक्ष की बनी हुई मणि को त्रयोदशी के दिन दही और शहद में भिगोकर तीन दिन रखे और चौथे दिन निकालकर उस मणि को इस सूक्त के मन्त्रों का पाठ करके बाँध ले।[३०] आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति के अनुसार आचार्य सायण ने इस सूक्त की उत्थानिका में यह भी लिखा है[३१] कि यदि किसी राजा का राज्य किसी शत्रु ने छीन लिया हो तो वह काम्पील नामक वृक्ष की टहनियों से, जो वृक्ष की पहले कटी हुई शाखाओं के स्थान पर पुनः उगी हों, आग जलाकर उस पर ऐसे चावलों को पकाकर जो कि खेत कटने के बाद पुराने धान की जड़ों से पुनः निकले हुए पौधों से प्राप्त किये गये हों, इस सूक्त के मन्त्रों को बोलकर खाये तो उसे पुनः उसका राज्य प्राप्त हो जायेगा।[३२] यों सायणाचार्य ने धनादि की प्राप्ति के लिये इस वाक्य में जो 'आदि' शब्द का प्रयोग किया है, उससे भी पर्णमणि की महिमा से छिन गये राज्य की प्राप्ति की बात समाविष्ट ही है, क्योंकि सूक्त के मन्त्रों में भी पर्ण से क्षत्र और राष्ट्र के अभीवर्ग द्वारा राज्य प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। आचार्य सायाण द्वारा कृत 'पर्णमणि' शब्द का अर्थ इस प्रकार की जादू भरी ढाक की बनी विशेष प्रकार की मणि करना बुद्धिसंगत नहीं है। यदि सायण का अर्थ ठीक मान लिया जाये तो कोई भी राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता खोकर पराधीन नहीं हो सकता। उस राष्ट्र की जनता वासित मणि को बाँध लिया करे और दही शहद को खा लिया करे, तथा उक्त वासित की गई लकड़ियों पर वासित चावलों को भी पकाकर खा लिया करे। स्वतन्त्रता न छिनने और पराधीन न होने का यह बड़ा आसान नुस्खा है। भारत के बाहर के लोगों को तो वेद का ज्ञान नहीं है। उनकी बात जाने भी दें, तो भारतवर्ष के आर्यों (हिन्दुओं) को तो कभी पराधीन न होना चाहिए था। यहाँ तो सदा से वेद पढ़ा-पढ़ाया जाता रहा है। फिर भी, शत्रु को भगाने और स्वतन्त्र होने का इतना सरल नुस्खा प्राप्त होने पर भी भारत के लोग शताब्दियों तक पराधीन क्यों रहे? इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायण आदि का किया हुआ 'पर्णमणि' सूक्त का यह अर्थ सही और मानने योग्य नहीं है।

वेदोपाध्याय प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार ने 'पर्णमणि' शब्द से 'पालकसेनापति रत्न-सेनाध्यक्ष, जो कि राष्ट्र का पालक पुरुषरत्न है' यह अभिप्राय लिया है एवं तदनुसार ही पूरे सूक्त की संगति लगायी है। परन्तु आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने 'वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त' नामक अपने बृहद् ग्रन्थ के प्रथम भाग के 'पर्णमणि' नामक नौवें अध्याय में इस सूक्त की बहुत विस्तृत व्याख्या की है। जिसमें आचार्यश्री ने पर्णमणि का अर्थ चुनाव के लिए मतदाताओं द्वारा अभ्यर्थी का नाम लेकर डाला जानेवाला पत्र अर्थात् मतपत्र (Ballot Paper) किया है। मत या वोट माँगने वाले के लिए मतपत्र से बढ़कर और कोई कीमती वस्तु नहीं हो सकती। उसके लिए तो वह मणिरूप है। इसीलिए सूक्त में मतपत्र को 'पर्णमणि' कहा गया है। 'पर्ण' और 'मणि' इन दो शब्दों के योग से पर्णमणि शब्द बना है। पर्ण का अर्थ होता है कागज और मणि का अर्थ जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, अत्यन्त उपयोगी और मूल्यवान् वस्तु होता है। अतः 'पर्णमणि' का अर्थ होगा 'एक बहुमूल्य पत्र'। प्रजातन्त्र में इस मतपत्र द्वारा ही राजा का चुनाव होता है। अतः यह बलशाली है। राष्ट्र के ही वर्ग द्वारा इसका उपयोग होता है। आचार्य प्रियव्रत द्वारा निर्दिष्ट इस अर्थ की संगति अथर्ववेद के इस उपर्युक्त सूक्त पर सटीक घटती है, क्योंकि इसके दूसरे, तीसरे, छठे और सातवें मन्त्रों में स्पष्ट रूप से एक अभ्यर्थी द्वारा राष्ट्र प्राप्ति की अर्थात् उसका राष्ट्रपति चुने जाने की प्रार्थना काव्यमय शैली में पर्ण से की जाती है।[33] ये मन्त्र स्पष्ट रूप से सूक्त के मुख्य आशय को व्यक्त कर रहे हैं।

(२) **प्रतिसरमणि-** अथर्ववेद ८.५ में 'प्रतिसरमणि' का उल्लेख मिलता है। इस सूक्त की उत्थानिका में आचार्य सायण ने तथाकथित विनियोगों के आधार पर लिखा है कि- अयं 'प्रतिसरः' (अथर्व. ८.५) आदि दो सूक्त अर्थसूक्त कहलाते हैं, इस अर्थसूक्त का अभिलषित प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस अर्थसूक्त से दही और शहद में तीन रात बसाई हुई तिलकमणि को संपातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे। इन सूक्तों का कृत्याप्रतिहरणगण में भी पाठ है। अत एव इसका शान्तिजल के अभिमन्त्रण आदि में विनियोग होता है। रौद्री नामक महाशान्ति के तिलकबन्धन में भी इस सूक्त का विनियोग किया जाता है। पिष्ट रात्री विधान के प्रतिसर बन्धन में भी इस सूक्त का पाठ है जिसमें कि रक्षासूत्र को बाँधा जाता है।

आचार्य सायण ने उक्त सूक्त के प्रथम मन्त्र के भाष्य में इस मणि को तिलकवृक्ष से निर्मित माना है- **'अयं तिलकवृक्षनिर्मितोमणिः'**, दयानन्दीय विचारधारा में उक्त सूक्त में सम्राट्, राष्ट्रपति तथा पुरुषमणि रूप सेनाध्यक्ष की प्रायः चर्चा हुई है। इसके पहले दो मन्त्रों में मणि के जो शूरवीर, सपत्नघ्न, सुमङ्गल, सहस्वान्, वाणी आदि विशेषण पठित हैं, वे काष्ठ निर्मित मणि के सम्बन्ध में नहीं। क्योंकि यदि विशेषणों के अनुरूप विशेष्य व्यक्ति या वस्तु न हो, तो विशेषण गप्प ही होंगे। तीसरे मन्त्र में कहा है कि सेनाध्यक्ष रूपी पुरुष रत्न द्वारा सम्राट् (इन्द्र) ने शत्रुदल (वृत्र) का हनन किया। क्या यह मन्त्रोक्त वर्णन काष्ठनिर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि द्वारा सम्भव है? चतुर्थ मन्त्र में इस मणि को '**स्राक्त्यः**' कहा है। '**स्राक्त्यमणि**' वस्तुतः है स्रक् (स्रज्) अर्थात् माला द्वारा सत्कार योग्य विजयी सेनाध्यक्षरूपी पुरुषरत्न। इसके सम्बन्ध में ही प्रस्तुत सूक्तोक्त वर्णन उपपन्न हो सकते हैं। 'स्राक्त्य' का वर्णन 'स्रक्त्य' द्वारा अथर्व २.११.२ में भी हुआ है। स्वार्थ में अण् प्रत्यय के योग से स्रक्त्य से स्राक्त्य पद निष्पन्न हुआ है। आचार्य सायण ने यहाँ- (अथर्व. २.११.२) भी इसे तिलक वृक्ष द्वारा निर्मित कहा है। यथा- '**स्रक्तिस्तिलकवृक्षः तत्र भव स्रक्त्यः**'। अथर्व. २.११.४ में 'स्रक्त्य' को 'सूरि' कहा है। सूरिः का अर्थ सायण ने 'अभिदा' अर्थात् ज्ञानी किया है। क्या काष्ठनिर्मित या फलरूप वस्तु ज्ञानी हो सकती है? अथर्व. ८.५ के मन्त्र सात और आठ में भी क्रमशः '**स्राक्त्यं मणिं**', '**स्राक्त्येन मणिना**' पदों का प्रयोग हुआ है। जिनका अर्थ 'सत्कार योग्य पुरुषरत्न (सेनाध्यक्ष)' और 'सत्कार योग्य पुरुषरत्न सेनाध्यक्ष द्वारा' होता है। मन्त्र ग्यारह में इस मणि को '**उत्तम ओषधीनाम्**' और '**व्याघ्रः श्वपदाम् इव**' कहा है। ओषधियों के दो प्रयोजन होते हैं, रोगी के दोषों अर्थात् रोगों को दूर करना और उसके शरीर का संवर्धन करना। राष्ट्र के भी दो प्रयोजन हैं, राष्ट्र शरीर के रोगों को दूर करना और राष्ट्र शरीर का संवर्धन करना। राष्ट्र शरीर के रोग हैं चोरी, डकैती, लूटमार, व्यभिचार, विप्लव तथा उपद्रव आदि। राजा सेनाध्यक्ष की सहायता से इन रोगों को दूर करता है। अतः उसे '**उत्तम ओषधीनाम्**' कहा है। और अवशिष्ट मन्त्रियों की सहायता से व्यापार, उद्योग, कृषि आदि द्वारा राष्ट्र का संवर्धन करता है। इनसे अतिरिक्त एक राजनैतिक रोग है- 'पर राष्ट्र द्वारा आक्रमण' एतदर्थ राजा सेनाध्यक्ष को व्याघ्र से उपमित करता है **(व्याघ्रः श्वपदामिव)**। क्या ये वर्णन आचार्य सायण द्वारा इङ्गित काष्ठनिर्मित मणि में उपपन्न हो सकते हैं? यह विचारणीय बात है। मन्त्र बीस में इसका एक विशेषण 'देवमणि' भी आया है। इसका अर्थ होता है दिव्यगुणी मणि अर्थात् पुरुषरत्न सेनाध्यक्ष। जो कि चेतन पुरुष में ही सार्थक बैठता है, अचेतन काष्ठ में नहीं। मन्त्र २० में '**अस्मिनिन्द्रो निदधातु नृम्णम्**' और मन्त्र २१ में '**इन्द्रो बध्नातु ते मणिम्**' कहा गया है। जिनके अर्थ होते हैं- हे राजा (इन्द्र) इस मणिरूप सेनाध्यक्ष में बल और धन (नृम्णम्) निधिरूप में स्थापित करें।' हे राष्ट्र के राजन्! सम्राट् (इन्द्र) तेरी रक्षा के लिए तेरे साथ पुरुषरत्न सेनाध्यक्ष को सुदृढ़ करें।' क्या ये दोनों अर्थ विनियोगों पर आधारित सायण कृत 'काष्ठनिर्मित मणि' में घट सकते हैं?

(३) **अभीवर्तमणि-** अथर्ववेद १.२९ में इस मणि का उल्लेख मिलता है। इस सूक्त की उत्थानिका में आचार्य सायण ने लिखा है कि इसका माहेन्द्री महाशान्ति में और इस सूक्त की प्रथम चार ऋचाओं का शत्रुमर्दित राष्ट्र की वृद्धि के लिए विनियोग होता है। लोहा, शीशा, चाँदी और तांबा मढ़ी हुई स्वर्ण की नाभि को त्रयोदशी से तीन दिन दही और मधु से पूर्ण पात्र में रखे फिर उसे धागे में पिरोकर कुशा पर रखकर उसके लिए यज्ञ करे और बाद में उसे अभीवर्त और उत्तमा से बाँधे।'

आचार्य सायण ने 'अभीवर्तमणि' का अर्थ- '**चक्रनेमिनिर्मितमणि**' किया है। सायण भाष्य के अनुसार इसके धारण करने से इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजयी हुआ और उसकी वृद्धि हुई इसके धारण करने से राष्ट्रिय शक्ति की वृद्धि होती है। यह शत्रुओं को नष्ट करती है। आक्रमणकारियों को तिरस्कृत करती है और राष्ट्र की अभिवृद्धि करती है। सूर्य और चद्रमा अभीवर्तमणि को पुष्ट करते हैं। इसको धारण करनेवाला सभी प्राणियों का सहयोग प्राप्त करता है। और इसका तेज सूर्य की तरह बढ़ता है और वह सभी शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ होता है।[३४]

स्वामी दयानन्द की विचारधारा में 'अभीवर्त' का अर्थ होता है **परराष्ट्र या शत्रु के सम्मुख (प्रवृत्त) होने वाला मणिरूप पुरुषरत्न सेनाधिपति। अभिवर्तते अनेन इति अभीवर्त सेनाधिपतिः।** [३५] उक्त सूक्त के मन्त्र दो में 'अभिवृत्य' पद आया है जिसका अर्थ होता है 'घेरकर'। अभीवर्त सेनाधिपति वह होता है जो विद्रोही प्रजाजनों को, राज्यकर न देने वालों को और दुष्ट कर्म (युद्ध) करने की इच्छा करने वालों के अभिवृत्य= घेरकर निजपादाधीन कर लेता हो। मन्त्र ३ और ५ में अभीवर्त के लिए **'सपत्नक्षयणः'** **'शत्रुहा'** और **'सपत्नहा'** विशेषण आये हैं जो कि ऐसे पुरुषरत्न मणिरूप सेनाधिपति पर ही घट सकते हैं **'चक्रनेमिनिर्मित मणि'** पर नहीं। सपत्नों (शत्रुओं) का क्षय करने वाले ऐसे सेनाधिपति के साथ ही राष्ट्रोन्नति के लिए राजा दृढ़बन्धन की अभिलाषा करता है- **'राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे'।**

पं. दामोदर सातवलेकर ने अभीवर्त का अर्थ 'शत्रु' को घेरनेवाला किया है। वे इस अभीवर्तमणि को राजदण्ड, छत्र, चामर आदि की तरह एक राजचिह्न मानते हैं, जिसको धारण करने के समय उक्त सूक्त को बोला जाता है। वे लिखते हैं- छत्र, चामर, राजदण्ड आदि चिह्नों के धारण करने से जनता पर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है। और उस प्रभाव के कारण राजा के इर्द गिर्द शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है। यद्यपि इस प्रत्येक चिह्न में कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजचिह्न धारण करने वाले साधारण सिपाही में भी अन्य सामान्य जनों की अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होने का अनुभव हर एक करता है। इसी प्रकार उक्त चिह्नों के कारण अमूर्त राजशासन का एक विशेष प्रभाव जनता पर पड़ता है। जिस कारण राजा शक्तियों का केन्द्र बनता है। जिस समय अपने चिह्नों से और सम्पूर्ण ठाठ से राजा जाता है उस समय उसका बड़ा भारी प्रभाव सामान्य जनता पर पड़ता है, इसी कारण राजा में शक्ति इकट्ठा होती है। इस सूक्त के चतुर्थ मन्त्र (अभीवर्तो०) में यह मणि ही शत्रुनाश करने वाला, प्रभाव बढ़ाने वाला, राष्ट्रहित साधने वाला है' इत्यादि कहा है। उसका भाव उक्त प्रकार ही समझना योग्य है। सिपाही की शक्ति उसके चिह्नों से ही उसमें आती है और यह शक्ति वास्तविक नहीं प्रत्युत एक विशेष भावना से ही उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण राजचिह्नों की शक्ति इसी प्रकार भावनात्मक है।[३६]

(४) **अस्तृतमणि-** इस मणि का उल्लेख अथर्व. १९.४६ में हुआ है। मारुद्गणी महाशान्ति में इसके प्रयोग को इङ्गित करते हुए आचार्य सायण ने इस सूक्त की उत्थानिका में लिखा है- **प्रजापतिष्ट्वा'** इस सूक्त से बलकाम की मारुद्गणी शान्ति को करे। इस महाशान्ति में अस्तृतानामक मणि को अभिमन्त्रित करके बाँधे। इस १९.४६ सूक्त में अस्तृतानामक मणि की स्तुति की गई है। प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र के भाष्य में सायण ने लिखा है- **अत्र सूक्ते अस्तृतताख्यो मणिः स्तूयते। 'अस्तृतस्त्वाभिरक्षतु' इति चरमपादे सर्वत्र युष्मच्छब्देन अस्तृतमणिधारकः पुरुषोऽभिधीयते। प्रजापतिः प्रजानां पालकः सर्व जगद्विधाता देवः प्रथमम् सृष्ट्यादौ मणिधारकेभ्यः पूर्वं वा अस्तृतम् परैरबाधितम् एतत्संज्ञकं त्वा त्वाम् बध्नात् धारयामास। त्रिवृन्मणिरेव वा अतिशयितप्रभावत्वाद् अस्तृतसंज्ञया उच्यते। 'अस्तृतस्त्वाभिरक्षतु'** यह टेक प्रत्येक मन्त्र के अन्त में आती है। आचार्य सायण के अनुसार इसमें युष्मद् 'त्वा' शब्द से अभिप्राय अस्तृतमणिधारक पुरुष से है। इसे त्रिवृन्मणि भी कहते हैं। अत्यधिक प्रभावशाली होने से इसका एक नाम अस्तृतमणि भी है। सायण लिखते हैं कि हे मणे! प्रजा के पालक सर्व जगद्विधाता देव ने सृष्टि के प्रारम्भ में तुझ दूसरों से अबाधित मणि को दूसरों को दबाने की शक्ति पाने के लिए धारण किया था। हे मणिधारक पुरुष! ऐसी मणि को मैं पुरोहित, आयु, वर्च, ओज और बल प्राप्त करने के लिए तेरे बाँधता हूँ, यह अस्तृतमणि तेरी रक्षा करे।[37]

दयानन्दीय विचारधारा के अनुसार यहाँ तीन का वर्णन प्रतीत होता है। प्रजापति का, अस्तृत का और बाँधने वाले का। प्रजापति-माण्डलिक राजा प्रतीत होता है। प्रजापति के राज्य में दो शासन संस्थाएँ होती हैं- सभा और समिति। सभा तो लोकसभा है, और समिति है-राज्यसभा अर्थात् मुख्य-मुख्य प्रभावशाली व्यक्तियों की सभा। यथा- **सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येन संगच्छा उप मा स शिक्षाचारु वदानि पितरः संगतेषु** (अथर्व. ७.१२.१)। समिति राज्यसभा है। यथा- **राजानः समिताविव** (यजु. १२.८०)। अस्तृतम् का अर्थ होता है- 'अपराजित अर्थात् युद्ध में जिसकी हिंसा या जिसका पराजय नहीं हुआ[38] ऐसा महाशासक सम्राट्। यथा- **शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः। न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन** (अथर्व. १.२०.४) में 'अस्तृतः' को 'महान् शासः' अथात् महाशासक कहा है। तथा यह कहा है कि इसका सखा न तो मारा जाता है, न कभी पराजित होता है। यह अमित्रों का पराभव करता है। इसलिये ऐसे महाराजा के साथ राजनीतिक सन्धि में, माण्डलिक राजाओं का बन्धना आवश्यक हो जाता है। **'अस्तृतस्त्वाभिरक्षतु'** द्वारा इसी बात की ओर बार-बार संकेत किया गया है। वर्तमान समय में भी आत्मरक्षार्थ राज्यों में पारस्परिक सन्धियाँ होती हैं। राजनैतिक सन्धि कराने वाला तीसरा व्यक्ति है, जो कि माण्डलिक या महाशासक का राजदूत है।[39]

(५) **वरणमणि-** वरणमणि का उल्लेख अथर्व. १०.३ में हुआ है। इसकी उत्थानिका में आचार्य सायण ने लिखा है कि- इस सूक्त में वरण नामक मणि का प्रताप वीर्य और शत्रु क्षय की शक्ति तथा धारक के सब दुःखों के नाश का वर्णन है और अभया नामक महाशान्ति के वरण मणि बन्धन में भी यह सूक्त पढ़ा जाता है। सायण के अनुसार शत्रुक्षय आदि को चाहने वाला इस सूक्त से दही और मधु में तीन रात तक बसाई हुई वरणमणि को संपातित और अभिमन्त्रित करके बाँधे।

दयानन्दीय वैदिक विचारधारा में प्रस्तुत सूक्त में 'वरण' का वर्णन हुआ है। इसके दो अर्थ सूक्त में सङ्गत होते हैं। (१) शत्रु निवारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनाध्यक्ष, और (२) रोगनिवारक वरणवनस्पति।[४०] मन्त्रों में **अवारयन्त**,[४१] **अवीवरन्**,[४२] **वारयिष्यते**[४३] द्वारा 'वरण' का अर्थ 'निवारक' ही प्रतीत होता है। इस सूक्त में मणि' द्वारा सेनाध्यक्षरूपी राज्यरत्न का निर्देश हुआ है।[४४] '**जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमित्यभिधीयते**' द्वारा सेना में उत्कृष्ट सेनाध्यक्ष को मणि अर्थात् रत्न कहा है। मणि और रत्न समानार्थक हैं। 'वरण' औषध भी वनस्पतियों में श्रेष्ठ है, अतः मणि है, रत्न है। मन्त्र १७ में 'वरण' द्वारा सेनाध्यक्ष तथा वरण-औषध का युगपत् वर्णन हुआ है। शेष मन्त्रों में किन्हीं में मुख्यरूप में वरण औषध का, तथा किन्हीं में मुख्यरूप में सेनाध्यक्ष का वर्णन हुआ है। इस सूक्त के मन्त्र ९ से २५ तक में, प्रायः वरण द्वारा सेनाध्यक्ष का वर्णन संगत होता है।

(६) **फालमणि-** अथर्व. १०.६ में इस मणि का उल्लेख प्राप्त होता है। याज्ञिक सम्प्रदायानुसार खादिर काष्ठ के फाल के विकाररूपी मणि को बाँधने का यहाँ वर्णन है। शत्रुनाश और सब कामनाओं की पूर्ति के लिए इस मणि को बाँधने हेतु प्रस्तुत सूक्त के विनियोग में आचार्य सायण ने लिखा है- '**खदिरकाष्ठफालविकारं मणिं शत्रुनाशाय सर्वकामावाप्तये च बध्नाति।**' पाश्चात्य वैदिक विद्वान् भी इस मणि को Amulet अर्थात् जादू-टोना रूप मानते हैं।

उक्त सूक्त में ३५ मन्त्र हैं। स्वामी दयानन्द की विचारधारा के अनुसार 'फालमणि' का अर्थ होता है फाल से उत्पन्न मणि[४५]=कृष्यन्न, मठा तथा औषधि रस- यह पूर्ण अन्न है। कृष्यन्न मणि है, श्रेष्ठ रत्न रूप है। वन्यान्न की अपेक्षया कृष्यन्न शक्तिप्रदान में श्रेष्ठ है, अतः मणिरूप है। यह अन्न मनुष्यों की रक्षा करता है, अतः कवच है। अन्न के बिना मृत्यु हो जाती है। परन्तु कृष्यन्न तब पूर्ण अन्न होता है जबकि मठे और दुग्धरस तथा औषधिरसों का इसके साथ सहयोग हो, अन्यथा केवल कृष्यन्न अपूर्ण अन्न है। इन मिश्रित अन्नों के सेवन द्वारा वर्चस् प्राप्त होता है।[४६]

मन्त्र ३ और ६ से पता चलता है कि फाल 'खदिर' काष्ठ का होता है जिसे कि तर्खान घड़ता है। सम्भवतः यह फाल खैर के काष्ठ से निर्मित किया गया है। खैर कारण है, और फाल कार्य। कार्य में कारण का उपचार हुआ है, यथा '**अन्नं वै प्राणिनां प्राणः**' प्राण कार्य है और अन्न कारण है अतः प्राण को अन्न कहा है। इसी प्रकार फाल को खदिर कहा है।

मन्त्र दो में फाल से उत्पन्न कृष्यन्न को मणि कहा है फाल और कृष्यन्न में भी कारण और कार्यभाव है। अथवा साधन और साध्य भाव है। एक जाति के पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ पदार्थ मणि कहाता है। अन्नों में कृष्यन्न श्रेष्ठ है अतः कृष्यन्न मणि है, रत्न है। कृष्यन्न से गौओं को चारा मिलता है, और गौओं से दूध और दूध से घृत मिलता है, अतः कृष्यन्न को मन्त्र ६ में '**घृतश्चुत**' कहा है। कृष्यन्न के सेवन से शरीर और मन में बल और उग्रता पैदा होते हैं। बृहस्पति जब कृष्यन्न के परिणाम 'वीर्य' को निज शरीर में बाँधे रखता है, और विषयलम्पट होकर उसका विनाश नहीं करता तो वह ओज को प्राप्त करता है। **(ओजसे) 'अबध्नात्'** द्वारा 'मणि' को बाँधना सूत्र या धागे द्वारा अभिप्रेत नहीं है जैसा कि आचार्य सायण ने लिखा है। अपितु इसे शरीर में स्थिर रखना ही अभिप्रेत है। जैसे कि '**देशबन्धः**'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तस्य धारणा' (यो.द. ३ १) में चित्त के ध्येय में बाँधने का वर्णन हुआ है। ध्येय के साथ चित्त को सूत्र द्वारा नहीं बाँधा जा सकता। 'ध्येय में चित्त को स्थिर करना' यह अभिप्राय है।

सूक्तोक्त विभिन्न मन्त्रों से ज्ञात होता है कि इस मणि को सूर्य्य, चद्रमा, अन्तर्देश, प्रदिशः, देवताः, ऋतु, मास, मासस्समूह, संवत्सर, आपः आदि जड़ पदार्थ भी धारण करते हैं (बांधते हैं)। अतः मणिबन्धन का जो अर्थ याज्ञिक सम्प्रदायानुसार किया गया है, वह समुचित प्रतीत नहीं होता। इससे ज्ञात होता है कि यह मणि खदिर या खदिर फाल से उत्पन्न स्थूलमणि नहीं, जिसे कि सूर्य आदि भी धारण करते हैं। सूर्य आदि सम्बन्धी मणियां क्या हैं? इसे प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार आदि के भाष्यों में देखा जा सकता है। परमेश्वर भी सृष्ट्युत्पादन के लिये मणि को बाँधता है, अतः **यह मणि सृष्टि के उत्पादन में परमेश्वरीय कामनारूप है, न कि कोई प्राकृतिक मणि** (मं. ९.१७)। इस सूक्त के मन्त्र २१ से २८ और ३१ से ३२ में आया है कि-

(१) सबको धारण पोषण करने वाला परमेश्वर भी मणि को भूत-भौतिक विविध पदार्थों की रचना के लिए बाँधता हैं क्या परमेश्वर का कोई शरीर है जिसके अवयव पर स्थूल मणि बाँधी जा सके।

(२) यह मणि असुरों का असुरकर्मों का क्षय करने वाली (असुरक्षिति) है।

(३) परमेश्वररूपी मणि, जब सिर पर आरूढ़ हो जाती है, तब मनुष्य सिर से पैरों तक श्रेष्ठ बन जाता है।

(७) **दर्भमणि-** अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त २८ से ३० और ३२, ३३ कुल पाँच सूक्तों के ३९ मन्त्रों में दर्भमणि का वर्णन हुआ है। याज्ञिक सम्प्रदायानुसार काण्ड १९ के २८, ३० सूक्तों का ऐन्द्री नामक महाशान्ति के दर्भमणिबन्धन और ३२ से ३३ सूक्तों का याम्या महाशान्ति के दर्भमणि बन्धन में विनियोग होता है। आचार्य सायण ने इस विषय में लिखा है-'**इमं बध्नामि ते मणिम्' इति सूक्तत्रयम्......ऐनद्र्याख्यायां महाशान्तौ दर्भमणिबध्ने विनियुक्तम्। 'शतकाण्डो दुश्च्यवनः' इत्यादिकं षष्ठं सूक्तम्। 'तस्य याम्यां यमभये (न.क. १७) इति विहितायां याम्याख्यायां महाशान्तौदर्भमणिबध्नं कुर्यात्।'**

आचार्य सायण ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है कि यह कुशा (दर्भ) से निर्मित मणि है। आर्यभाषाभाष्यों के अनुसार दर्भ शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- दृ विदारणे (दर्) भा दीप्तौ (भम्)। आतोऽनुपसर्गे कः (अष्टा. ३/२/३)। जिसका अर्थ होता है 'शत्रुओं के विदारण द्वारा चमकने वाला। मणि=सेनापतियों में शिरोमणि रूप।' दृणाति विदारयतीति दर्भ (उ़ष्ण. ३/१५१) =शत्रु के विदारण के कारण सेनापति को दर्भ कहा है। दर्भङ्कुर का अग्रभाग कण्टकमय होता है, जो कि पैर का विदारण कर देता है। इस प्रकार **रूपक दृष्टि से भी सेनापति को दर्भ कहा जा सकता है। जैसे कि बहादुर को 'शेर' तथा निर्बुद्धि को गदहा कह दिया जाता है।** सूक्त २९ के मं. ०१ से ०४ तक में साम उपायों का वर्णन हुआ है, और मन्त्र ५ से ९ तक में दण्ड-उपाय कहे गए हैं। शत्रु को अपने अनुकूल करने के चार उपाय हैं- साम, दान, दण्ड और भेद। साम का अभिप्राय है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने के कारण भी खटकता है। आधुनिक विद्वानों द्वारा भी अथर्ववेद के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम कार्य किया गया है।

4. सम्भवतया इसका कारण अथर्ववेद का मिश्रित एवं जटिल स्वरूप है। इसीलिए इस वेद के पुरोहित ब्रह्मा को सर्वविद् तथा जातविद्या बताने वाला कहा जाता है। यह निश्चित है कि किसी एक विचारधारा के आधार पर इस वेद के भाष्य में सहायता नहीं मिल सकती। इसके इस मिश्रित रूप के कारण ही इसे एक ओर भैषज वेद (चिकित्सा सम्बन्धी वेद), क्षत्रवेद (क्षत्रिय या राज सम्बन्धी वेद) और दूसरी ओर ब्रह्मवेद (ब्रह्मा पुरोहित का या ब्रह्मज्ञान का वेद) भी कहा जाता है।

5.इसके अधिसंख्य मन्त्रों के लिए भारतीय आयुर्वेद का ज्ञान आवश्यक है। स्वयं अथर्व0 (11.6.14) में अथर्व–मन्त्रों को 'भेषजाानि' कहा गया है –

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा।

6. वेद मन्त्रों के अर्थ प्रत्यक्ष शब्दों में दिखाई पड़ने वाले अर्थों से अधिक गम्भीर एवं व्यापक होते हैं, अतः शब्दानुवाद मात्र से उनका सम्यक् अवबोध नहीं हो पाता। अतः वेद–व्याख्या की एक सर्वमान्य समस्या यह है कि केवल अनुवाद से सिद्धि नहीं होती।

7. अथर्व0 की व्याख्या के सम्बन्ध में ब्लूमफील्ड ने एक विशेष मूलभूत कठिनाई के प्रति संकेत किया है। तदनुसार मूल अथर्व0 के पाठ में प्रायः इतस्ततः अनेक परिवर्तन स्पष्टतया किये गये प्रतीत होते हैं जिनके कारण समुचित संशोधन किये बिना प्रसंगानुसार अर्थ करना असम्भव हो जाता है।[1] अथर्व0 के सम्बन्ध में इतने परिवर्तनों का कारण सम्भवतया इसका लोक– वाङ्मय के रूप में प्रचलन था। इस प्रकार के परिवर्तनों का एक रोचक.उदाहरण(येभ्यो मधु)प्रधावति (ऋ0 10/154/1)के स्थान पर (अथर्व018/2/14)में प्रधावधि है, जिसके कारण अथर्व की अस्पष्टता है।

ब्लूमफील्ड ने अपने मस्तिष्क में अथर्व0 मन्त्रों की विषयवस्तु की एक निश्चित धारण बनाई है तदनुसार आथर्वण अर्थात् शान्त तथा आंगिरस अर्थात् घोर कर्मो का प्रतिनिधित्व करते हैं।[2] स्वयं वै0 सू0 (5.10) में इसी उद्देश्य से पौधों की दो सूचियां– **आथर्वण्य** तथा **आंङ्गिरस्य** दी गई हैं। इसी प्रकार गो0 ब्रा0 1. 2.18 तथा अथर्व0 11.4.16में आथर्वणी और आंगिरसी औषधियों का उल्लेख है। अन्ततोगत्वा अथर्व0 4.37.1 के आधार पर शान्त आथर्वण को भी ब्लूमफील्ड ने राक्षसों की हत्या के घोर कर्म से सम्बद्ध माना है।[3] इसी प्रकार अथर्व0 10.6.20 के अनुसार आथर्वण और आंगिरस दोनों मणियों या ताबीजों को बांधते हैं और दस्युओं का वध करते हैं।[4] सार रूप में उसका मन्तव्य है कि यद्यपि आथर्वण मन्त्रों में शान्तकर्म भी है परन्तु उनका मूल लक्ष्य भी किसी दूसरे को कष्ट पहुंचा कर या नष्ट करके अपना या अपनों का भला करना है। उसके अनुसार यही अथर्व0 की मूल भावना है ; अथर्व की ही नहीं ऋग्वेद की मूल भावना यही है। उसने यहां तक कहने का साहस किया है कि (अथर्व0 में) पवित्रता और शुद्धता की भावना का अनिवार्य अभाव है,और यह अभाव ऋग्वेद में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातु–कर्मों में प्रकट होता है।[5] इस मौलिक स्वरूप को मुखरित करने के लिए ही उसने अपने अनुवाद के लिए विशेष सूक्तों का चयन किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने अथर्ववेद के दार्शनिक तथा ब्रह्मविद्या सम्बन्धी सूक्तों की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की है, तथापि स्कम्भ सूक्त 10.7 जैसे सूक्त को उसने अपने अनुवाद का पात्र नहीं समझा–"और यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने सृष्टि–सम्बन्धी तथा दार्शनिक अंशों में अथर्ववेदमें अन्य किसी वैदिक संहिता से अधिक वह सामग्री है जो सर्वोच्च ब्रह्मविद्या को प्रस्तुत करने का उपक्रम करती है।"

अथर्व0 के अनुवाद के विषय में उसकी निम्नलिखित टिप्पणी भी ध्यान देने योग्य है – " यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अथर्व0 मन्त्र के अनुवाद का शुद्ध एवं उपयोगी उपाय यही है कि उसे अथर्व0 में प्राप्त झुकाव के अनुसार पुनः प्रस्तुत किया जाये।" और अथर्व0 में प्राप्त झुकाव को ब्लूमफील्ड स्थूल रूप में अभिचार–क्रिया, जादूटोना ही मानता है। इसीलिए उसके प्रथम काण्ड से त्रयोदश काण्ड तक के केवल लगभग उस आधे भाग को लिया है जो उसे सबसे रोचक तथा अथर्व0 प्रकृति वाला लगा।[6] उसके अनुसार इस अंश में सूक्तों का अथर्वण कर्मों में विनियोग उनकी रचना अथवा संकलन के मूल उद्देश्य के अनुसार है और प्रायः यह विनियोग बहुधा सही व्याख्या की कुंजी प्रस्तुत करता है। विनियोगों को महत्त्व उसने इसीलिए भी प्रदान किया है क्योंकि उनसे अथर्व पुरोहितों द्वारा अपने मन्त्रों के प्रयोग का ज्ञान होता हैं।[7]

अन्य सूक्तों के विषय में ब्लूमफील्ड का विचार है कि वे अथर्व0 का प्रतिनिधित्व नहीं करते। कुन्तापसूक्तों (128–136) को छोड़कर शेष बीसवां काण्ड ऋ0 के मन्त्रों की शब्दशः पुनरावृत्ति है। यद्यपि वै0 सू0 द्वारा शस्त्रों और स्तोत्रों के रूप में सोमयाग में इनका विनियोग किया गया है, तथापि ये अथर्व0 की मूल भावना से नितान्त असम्बद्ध है। उन्नीसवां कांड सामान्यतया भ्रष्ट है और यह एक परवर्ती प्रक्षेप है। सत्रहवें काण्ड में स्वल्प रुचि का एक ही सूक्त है। पन्द्रहवें और सोलहवें कांड में केवल ब्राह्मण–गद्य उदाहरण हैं और उनकी विशेषता एवं कालक्रम संदिग्ध है। चौदहवें और अठारहवें कांडों में क्रमशः विवाह और अन्त्येष्टि के आथर्वण मन्त्र संकलित हैं। वे प्रायः ऋग्वेद के दशम मंडल के तदनुरूप मन्त्रों के तत्सम है, उनका अपना भीतरी महत्त्व तो है परन्तु आथर्वण नहीं।[8]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी विचारधारा के अनुसार ब्लूमफील्ड ने उपर्युक्त सूक्तों का अनुवाद करते हुए वैज्ञानिक पद्धति का आश्रय लिया है, अर्थात् एक ओर तो परम्पराप्राप्त गो0 ब्रा0,वै0 सू0 कौशिक0, सायण को सम्मुख रखा है और दूसरी ओर अपने से पूर्ववर्ती विद्वानों के अनुवादों को। पहले केवल शब्दार्थ दिया गया है, फिर सभी सूक्तों के अन्त में सूक्तक्रम से टिप्पणियां दी गई हैं। इन टिप्पणियों में पूर्ववर्ती अनुवाद, उनकी आलोचनाओं व्याकरण–विषयक एवं अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषताओं, पाठान्तरों, अन्य वेदों एवं अथर्ववेद की ही दूसरी पैप्पलाद संहिता के मिलते–जुलते तथा अर्थ में सहायक पाठों का उल्लेख किया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि ब्लूमफील्ड ने अनुवाद में सूक्तों को विषय के अनुसार चुनकर संकलित किया है। उदाहरणार्थ, भैषजानि, आभिचारिकाणि, पुष्टिकर्माणि, राजकर्माणि आदि शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तों का संकलन करके अनुवाद किया गया है। ब्लूमफील्ड अथर्ववेद की व्याख्या के लिए कौशिकसूत्र को सबसे प्रमुख प्रमाण मानता है। इसीलिए यह कहना अत्युक्ति न होगा कि उसका अनुवाद एकांगी हो गया है। इसीलिए ह्विटने के अनुवाद के सम्पादक लैनमेन को कहना पड़ा कि जैसा कि मैंने पहले भी अनेक बार कहा कि जिस व्यक्ति ने किसी कठिन ग्रन्थ का सम्पादन किया हो उसके अतिरिक्त कोई और उसका विश्वसनीय अनुवाद करने में उतना समर्थ नहीं हो सकता; और इसी कारण खेद होता है कि ब्लूमफील्ड सूक्तों के स्वाभाविक क्रम में उतना अच्छा रूपान्तर नहीं दे सका जितना वह उस समय दे सकता था। उसने केवल सेक्रेड बुक्स ऑफ ईस्ट– 42 में बिखरी हुई असम्बद्ध खण्डित टिप्पणियां दी हैं।[9]

यद्यपि ब्लूमफील्ड ने आभिचारिक कर्मकांड को ही अथर्ववेद का केन्द्र बिन्दु माना है, तथापि कुछेक सूक्तों में उससे हटकर भी उसने व्याख्या की है। इस प्रकार के सूक्तों में प्रसिद्धि के आधार पर ब्रह्मचर्यसूक्त (11.5) को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ब्लूमफील्ड के अनुसार इस सूक्त में, अन्यत्र विश्व के आदिम तत्त्व की विशेषताएं प्रकट करने वाले, सूर्य की कल्पना ब्रह्मचारी के रूप में की गई है तत्पश्चात् सामान्य से अतिक्रमण के द्वारा ब्रह्मचारी के सभी कार्यों और सामर्थ्यों को विश्व की उत्पति और स्थिति के सृष्टि सम्बन्धी और दार्शनिक वर्णन का क्षणिक आधार बनाया गया है। इस रूपक को हिन्दू विचार पद्धति के अनुरूप अत्यन्त दुर्बल संगति द्वारा आगे बढ़ाया गया हैं।[10] सूर्य के विशुद्ध भौतिक गुण भी अमुक मन्त्रों,विशेष रूप से 1,5,6,11,23,26 में प्रकट होते हैं। इसी आधार पर सप्तम मन्त्र में ब्रह्मचारी के **'दीर्घश्मश्रु'** विशेषण की व्याख्या सूर्य के प्रसंग मे 'लम्बी किरणों वाला' कहकर की गई है। द्वादश मन्त्र में **बृहच्छेयः** (बड़े पुरुष प्रजननेन्द्रिय) से संयुक्त करने के प्रति शंकालु है; परन्तु यहां वह प्रजापति की भूमिका का निर्वाह कर रहा है और इस प्रसंग में अधिक प्रचलित "रेतस्' के समान ही जननेन्द्रिय का उल्लेख भी स्वाभाविक है।[11] किन्तु ब्लूमफील्ड ने सभी मन्त्रों में वह सूर्य सम्बन्धी 'दुर्बल' सूत्र ढूंढ़ने का प्रयत्न भी नहीं किया। वस्तुतः त्रयोदश मन्त्र के पश्चात् उसने किसी प्रकार की कोई टिप्पणी दी ही नहीं है। परिणामतः 15,17,18 मन्त्रों के निम्नलिखित अनुवाद सूर्य के प्रसंग में विशेष रूप से अबोधगम्य हो जाते हैं–

"वरुण आचार्य बन कर घर में अकेला घी बनाता है जिस किसी वस्तु की इच्छा उसने प्रजापति से की, ब्रह्मचारी ने वह पूर्ण की जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि कोई मित्र अपनी आत्मा या अपने आप से करता है।''

''ब्रह्मचर्य और तपस्या के द्वारा राजा अपने राज्य की रक्षा करता है। आचार्य अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचर्य को ढूंढ लेता है।''

''ब्रह्मचर्य के द्वारा कन्या युवा पति को प्राप्त करती है, ब्रह्मचर्य के द्वारा बैल और घोड़ा चारा प्राप्त करता है।''[12]

व्याख्या न होने से ऐसे शब्दानुवाद हास्यास्पद हो जाते हैं और वेद के उपहास का आधार बनते हैं। यदि यहां कुछ शब्द कोष्ठकों में डालकर अथवा संक्षित टिप्पणी द्वारा भाव स्पष्ट कर दिये जाते तो वह वेद के अनुरूप होता। इसी प्रकार यदि खुले मस्तिष्क से इस सूक्त में प्रसंगानुसार ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचर्य अथवा आचार्य के महत्त्व का वर्णन स्वीकार कर लिया जाय तो बहुत सी बातें बिना विस्तृत व्याख्या के ही स्पष्ट हो जायेंगी। व्याख्या कहीं अपेक्षित भी हो तो उसमें संकोच की क्या आवश्यकता? उदाहरणार्थ ब्रह्मचर्य की शक्ति के द्वारा राजा का राष्ट्र की रक्षा करना तथा कन्या का युवक पति को प्राप्त करना बोलते ही स्पष्ट हो जाता है। जहां ब्रह्मचर्य द्वारा घोड़े के चारा खाने का प्रश्न है, यह क्यों नहीं कहा जा सकता कि ब्रह्मचारी यदि ब्रह्मचर्य की शक्ति से युक्त हो तो वह पशुपालन में अधिक समर्थ होगा और पशु स्वस्थ होकर चारा खाने में समर्थ होंगे।

ब्लूमफील्ड के अनुसार अथर्ववेद की सामान्य प्रकृति के अनुकूल इसी प्रकार उदात्त भावनाओं वाला एक सूक्त प्रसिद्ध भूमिसूक्त (12.1) है। उसने इस सूक्त की प्रशंसा में कहा है कि– '' यह सूक्त अथर्ववेद की विशेषता लिए सर्वाधिक आकर्षक सूक्तों में से एक है। कहीं–कहीं यह किसी प्रकार भी अनल्प काव्यात्मक विचारों तक उठ जाता है और वैदिक कवियों की कृत्रिमताओं से अपेक्षाकृत मुक्त है। मनुष्यों, पशुओं और पौधों के साथ ठोस दृष्टिगम्य भूमि का सम्बन्ध दूरस्थ देव–शास्त्र सम्बन्धी एवं रहस्यात्मक धारणाओं से यहां कहीं अधिक है।[13] परन्तु फिर भी कौशिकसूत्र के आधार पर उसने इसका विनियोग आग्रहारणी कर्म (24.24) घरों, ग्रामों आदि के दृढीकरणार्थ (38.12),भूकम्पसम्बन्धी प्रायश्चित (98.3) तथा वास्तोष्पतीयानि सूक्तों में से एक के रूप में (8.23) में माना है। यद्यपि सूक्त के गरिमापूर्ण वर्णनों से इन सीमित विनियोगों की पूर्ण पुष्टि नहीं होती। भूमि को एक राष्ट्र के रूप में मातृभूमि के रूप में विश्व के वाङ्मय में प्रथम बार यही बताया गया है।

जैसे अन्यत्र, उसी प्रकार इस सूक्त में भी ब्लूमफील्ड ने भावपूर्ति के लिए कोष्ठकों में शब्द दिये हैं। उदाहरणार्थ, द्वितीय मन्त्र में **मध्यतः** मन्त्र में अर्थ 'फाम द मिड्स्ट (ऑफ मैन)' किया गया है। यह पाठ भी वस्तुतः संशोधित है क्योंकि उपलब्ध पाठ 'बध्यतः' उसकी दृष्टि में असंगत है। मैत्रायणी संहिता में इससे मिलते–जुलते मन्त्रांश **असम्बाध्य या मध्यतो मानवेभ्यः** से भी इसकी पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त अनेक पाण्डुलिपियों में भी मध्यतः पाठ ही है। इस प्रकार पाठों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ब्लूमफील्ड ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति, समझौते, परस्पर वार्तालाप तथा सन्धि आदि शान्त उपायों का वर्तना।

अथर्व. १९/२८-३० तीन सूक्तों में दयानन्दीय विचारधारा में 'शत्रु विदारक सेनापति' को 'दर्भमणि' नाम से कहा गया है। इसके लिए कुछ निम्नलिखित विशेषण हैं जो उक्त सूक्तों में आये हैं-

(१) **सपत्नदम्भनम्**-आन्तरिक शत्रुओं को दबाने वाला।

(२) **द्विषतस्तपनं हृदः**-द्वेषी राजा के हृदय को तपानेवाला।

(३) **शत्रूणां तापयन् मनः**-शत्रुओं के मनों को तपानेवाला।

(४) **घर्म इव**- ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के सदृश संतप्त करने वाला।

(५) **दुर्हार्दान्**-दुष्ट हार्दिक भावनाओं को हनन करने वाला।

(६) **तनूपानम्**-शरीर का रक्षक।

उपर्युक्त कतिपय विशेषण आचार्य सायण निर्दिष्ट 'कुशा (दर्भ) से निर्मित मणि' पर नहीं घट सकते। सूक्त २८ के प्रथम मन्त्र में प्रजाजनों का प्रतिनिधि कहता है कि मैं उपर्युक्त विशेषणों से युक्त सेनापति (दर्भमणि) को तेरे साथ दृढ़ बद्ध करता हूँ **(बध्नामि)**।

भिद्धि=भिन्न-भिन्न (विभेद) कर, **छिद्धि=छिन्न-भिन्न** कर, **वृश्च=काट** डाल, **कृन्त** कतर डाल, **पिंश=टुकडे-टुकडे** कर डाल, **विध्य=टुकडे-टुकडे** कर डाल, विक्ष=वेंध डाल, **तृढ्ढि=क्षीण** कर, **रुद्धि=अनादर** कर, **मृण=**घेरा डाल, **मथ=**प्राणदण्ड दे, **पिड्ढि=प्राणदण्ड** दे, **ओष=मथ** डाल, **दह=झुलसा** दे, दग्धकर, **जहि=हनन** कर आदि इन लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन की क्रियाओं का प्रयोग शत्रुविदारक सेनापति के साथ हुआ है, न कि सायण निर्दिष्ट तथाकथित दर्भनिर्मित मणि के साथ। वैसे भी इन क्रियाओं की सार्थकता चेतन पुरुष के साथ ही घट सकती है। **'त्वं राष्ट्राणि रक्षसि** (१९.३०.३) तू राष्ट्रों की रक्षा करता है- यह मन्त्रांश 'दर्भ निर्मित मणि' के साथ कैसे उपपन्न होगा? यह तो शत्रुओं का विदारण करनेवाले शिरोमणि रूप सेनापति पर ही घट सकता है।

अथर्व. १९/३२-३३ सूक्तों में परमात्मा को अविद्याग्रन्थि विदारक-रागद्वेषविदारक और भयविदारक कहा गया है। यह इन दो सूक्तों में 'दर्भमणि' का आध्यात्मिक अर्थ है। **दर्भ=विदारयति अविद्या ग्रन्थिम्।** औषधि (१९.३२.१)- **ओषद्धयति दोषं धयतीति वा** (नि. ९.३.२७) परमेश्वर अविद्यादि रोगों का औषध रूप है, उग्र औषधरूप है। आचार्य सायण ने १९.३२ समग्र सूक्त में दर्भ द्वारा कुशा घास का वर्णन किया है। यहाँ 'दर्भ' कुशा घास नहीं है। क्योंकि १९.३२.९ में जो विशेषण दर्भ के बताये गये हैं वे कुशा घास पर नहीं घटते। वे तो अविद्याग्रन्थिविदारक परमेश्वर (दर्भ) पर उपपन्न हो सकते हैं। पूरा मन्त्र इस प्रकार है-

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च। यं विभ्रं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः॥

उपर्युक्त मन्त्र में (१) **पृथिवीमदृंहत्**-जिसने पृथिवी को दृढ़ किया। (२) **अन्तरिक्षं दिवं च अस्तभ्नात्**-अन्तरिक्ष और द्युलोक को जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थामा। (३) **दिवा कः**- ज्ञानप्रकाश करने वाला ये विशेषण कुशा पर घटित नहीं होते, अपितु परमात्मा पर घटते हैं। वेदों में अन्यत्र भी ऐसी बातें परमात्मा के बारे में ही आयी हैं, जैसे **येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा** (यजुः ३२.६)।

उपसंहार- हमने ऊपर की पंक्तियों में लगभग सभी मणिसूक्तों की समीक्षा प्रस्तुत की है। इनमें किसी जादू-टोने (Amulet) की शक्ति रखनेवाली मणिविशेष का वर्णन नहीं है। इनमें जहाँ गुणकारी ओषधियों का वर्णन है, जिन्हें रोगनिवारण में बहुत उपयोगी होने के कारण मूल्यवान् मणि कह दिया गया है, वहीं राष्ट्र रोग भूख, प्यास, हिंसा आदि के निवारण में मणिरूप सेनापति ओषधि आदि का भी वर्णन है। इस प्रकार गम्भीर अध्ययन, मनन, चिन्तन, अनुसन्धान करने पर सभी मणिसूक्तों की कहीं आयुर्वेदपरक और कहीं राजनीतिपरक सुन्दर व्याख्या हो सकती है। जहाँ कुछ मणिसूक्तों की उपर्युक्त उभयविध व्याख्या संभव है, वहीं 'दर्भमणि' की आध्यात्मिक (अविद्याग्रन्थिविदारक परमेश्वर) व्याख्या भी होती है।

---

1. इनमें से अधिकांश ऐसे सूक्त हैं जिनमें 'मणि' शब्द भी साथ प्रयुक्त हुआ है। कुछ ऐसे भी सूक्त हैं जिनमें पूरे सूक्त में कहीं भी इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ फिर भी आचार्य सायण ने मणि सूक्त के रूप में स्वीकार किया है, जैसे- अश्वत्थमणि (अथर्व. ३.६) शकलमणि (१.२९) आदि।
2. जातौ-जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते (मल्लिनाथ) Anything best of kin (आप्टे)
3. अथर्व. २/४, १५/२ आदि सूक्त।
4. वेद और उसकी वैज्ञानिकता, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पृ. ३६०
5. बध्नामि, बध्नात् आदि पदों का संबन्धित मणिसूक्तों में प्रयोग।
6. सेवित शङ्खभस्म आदि को शरीर में अनुपान की सहायता से दृढबन्ध करना।
7. जंगिडमणि (अथर्व. २/४) का भाषा-भाष्य।
8. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. ३६२
9. 'दीर्घायुत्वाय' इति सूक्तेन कृत्यादूषणार्थम् आत्मरक्षार्थं विघ्नशमनार्थं च जङ्गिडाख्य वृक्षविशेषमणिं शणसूत्रप्रोतं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। 'दीर्घायुत्वायेति मन्त्रोक्तं बध्नाति' इति सूत्रम् (कौ. ५.६)। तत्र 'जङ्गिडोऽसि' इति प्रथमद्वितीयाभ्यां (१९.३४-३५) सूक्ताभ्यां 'वायव्यां वातवात्यायाम्' इति (न.क.१७) विहितायां वायव्याख्यायां महाशान्तौ जङ्गिडवृक्षनिर्मितं मणिं बध्नीयात्।
10. उग्र इत् ते वनस्पत इद्र ओज्मानमा दधौ। अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे॥ अथर्व. १९/३४/९
11. इद्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः। देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम्॥ अथर्व. १९/३५/१
12. शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभिरक्षताम्। अरण्यादन्य आभृत कृष्या अन्यो रसेभ्यः॥ २.४.५, बृहते रणाय (२.४.१)
13. अथर्व. २.४.२
14. वही, १९.३४.५
15. वही, १९.३४.९
16. वही, १९.३४.४
17. वही, १९.३४.९
18. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. ३६३
19. 'वाताज्ञातः' इति सूक्तेन उपनयनानन्तरम् आयुष्कामस्य माणवकस्य शङ्खमणिं संपात्य अभिमत्र्य बध्नीयात्। तदुक्तं कौशिकेन। 'उपनयनम्' (कौ.सू.७.६) प्रकम्य 'वाताज्ञात इति वृक्षम्' इति (कौ.७.९) 'वारुणीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलभये' (न.क.१७) इति विहितायां वारुण्याख्यायां महाशान्तौ शङ्खमणिबाधनेऽपि एतत् सूक्तम्। उक्तं नक्षत्रकल्पे। 'वाताज्ञात इति शङ्खं वारुण्याम्' इति (न.क. १९)

20. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. ३६८

21. 'शतवारो अनीनशत्' इति........ सूक्तम्। तेन 'संततिं कुलक्षये प्रयुञ्जीत' इति (न.क. १७) विहितायां संतत्याख्यायां महाशान्तौ शतवारं मणिम् अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। सूत्रितं हि। 'शतवारो अनीनशद् इति शतवारं संतत्याम्' इति (न.क. १९)।

22. अम् रोगे (चुरादिः) इति प्रो. विश्वनाथ वेदभाष्ये।

23. प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार कृत अथर्वभाष्य।

24. वही, पृ. २६९

25. व्याघ्र एव वैयाघ्रः (स्वार्थेऽण्) आप्टे कोश

26. चन्द्रराज भण्डारी, वनौषधि चन्द्रोदय।

27. अभिवर्धनशील पिता से अभिवर्धनशील पुत्र (प्रो. विश्वनाथ)

28. प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार कृत निम्न मन्त्र का भाष्य- तानश्वत्थ निःशृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः। इद्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च। ११ अथर्व. ३.६.२

29. अथर्ववेद का सुबोधभाष्य, प्रथम भाग, पृ. ३०

30. 'आयमगन् पर्णमणिः' इत्यनेन सूक्तेन तेजोबलायुर्धनादिपुष्टये पलाशवृक्षमणिं वासितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। तथा च सूत्रम्। आयमगन् (३.५) अयं प्रतिसरः (८.५) अयं मे वरुणः (१०.३) अरातीयो (१०.६) इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति। इति (कौ. ३.२)। उक्तवासित शब्दार्थ।

31. मूल सायण भाष्य में नहीं है।

32. वेदों की वैज्ञानिकता, प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पृ. ३६०.

33. मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम्। अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः॥२॥ यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम्। तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे॥३॥ ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः। उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥६॥ ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये। उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥७॥

34. अथर्व. १.२९ पर सायण भाष्य।

35. वही १.२९.१ पर प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार कृत भाष्य, पृ. ५६-५८

36. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, प्रथम भाग, पृ. ८१

37. अथर्ववेद संहिता, सायणकृत भाष्य सहित, सम्पा. पं. रामस्वरूप शर्मा गौड (१९.४६.१)

38. अ+स्तृ (स्तृणाति वधकर्मा, निघं २/१९)+क्त।

39. प्रो. विश्वनाथविद्यालंकार, अथर्ववेद भाष्यम् १९.४६.१, पृ. ३१८

40. वही, १०.३.८

41. वही, १०.३.३

42. वही, १०.३.५

43. वही, १०.३.४, ६, ८

44. वही, १०.३ १, २, ३, ६

45. वही, १०.६.२ 'अयं मणिः फालाज्जातः'।

46. वही, १०.६.२ पर प्रो. विश्वनाथ भाष्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (228-242) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद की ह्विटने एवं ब्लूमफील्ड द्वारा व्याख्या– एक अनुशीलन

डॉ0 कृष्ण लाल

पूर्व रीडर- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिक वाङ्मय में अथर्ववेद की विशेष स्थिति अविदित नहीं है। इसीलिए यद्यपि पाश्चात्त्य जगत् में सर्वप्रथम ऋग्वेद का अध्ययन प्रारम्भ हुआ, तथापि अथर्ववेद के पाश्चात्त्य अध्ययन का इतिहास भी पर्याप्त पुराना है।

ब्लूमफील्ड एवं ह्विटने से पूर्व वेबर, म्यूर, लुड्विग, त्सिम्मर, ग्रिल्ल एवं हेनरी द्वारा अथर्ववेद के आंशिक अनुवाद किये जा चुके थे। उपर्युक्त दोनों विद्वानों की व्याख्याओं में इन सभी के अनुवादों का उल्लेख एवं आलोचना की गई है। ग्रिल्ल के अथर्ववेद के सौ सूक्तों (हंदर्त लीडर देस अथर्ववेद) के अनुवाद का द्वितीय संस्करण सन् 1888 में आया। हेनरी द्वारा अथर्ववेद के दशम, एकादश और द्वादश काण्डों का फ्रेंच अनुवाद पेरिस से 1896 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि ह्विटने द्वारा अथर्ववेद का अनुवाद ब्लूमफील्ड से पूर्व पूर्ण हो चुका था परन्तु 1894 में उसकी मृत्यु के कारण उसका प्रकाशन उसके शिष्य चार्ल्स रॉकबेल लैनमैन द्वारा हा0 ओ0 सी0 में 1904 में ही सम्भव हो पाया। ब्लूमफील्ड का अनुवाद 'सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट' के बयालीसवें खंड के रूप में प्रकाशित हो गया था।

अथर्ववेद के अनुवाद की कुछ समस्याएं तो अन्य वैदिक वाङ्मय के समान ही हैं परन्तु कुछ उसकी अपनी विशेष समस्याएं हैं। यहां संक्षेप में उनका उल्लेख असंगत नहीं होगाः

1. सर्वप्रथम समस्या तो यह है कि जिस प्रकार अन्य वेदों की व्याख्या में बहुत अंश तक उनके ब्राह्मण सहायक होते हैं (और वे ब्राह्मण एकाधिक भी हैं) उसी प्रकार अथर्ववेद का केवल एक 'गोपथ ब्राह्मण' उतना सहायक नहीं होता।

2. प्राचीन वाङ्मय में कौशिक सूत्र और उस पर आधारित सायण का भाष्य ही एक मात्र आधार रह जाते हैं। इनमें भी कौशिक सूत्र स्वयं अत्यन्त परवर्ती तथा मूल संहिता से पर्याप्त दूर हैं। वह कर्मकांड के युग की रचना है जब किसी न किसी प्रकार मन्त्र विनियोग पर अत्यधिक बल दिया जाता था। इसीलिए अथर्ववेद में जादू–टोने का बाहुल्य दिखाई देता है। दूसरे सायण का भाष्य भी शत प्रतिशत पूर्ण नहीं है। उसने अनेक मन्त्र एवं सूक्त अव्याख्यात छोड़ दिये हैं। निस्सन्देह सायण ने कौशिक का अनुसरण करते हुए अथर्ववेद की उपलब्ध परम्परा का पालन किया है, परन्तु संहिता के मूल अभिप्रेत भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति उसमें हो पाई है, यह संदिग्ध है।

3. अथर्ववेद की प्राचीन व्याख्याओं का अभाव यास्क द्वारा इसकी ओर बहुत ध्यान न दिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। चतुर्दश मन्त्र में भी **पूर्वकृत्वरि** के अर्थ में भी **अवर विश** को कोष्ठक में रखकर भावपूर्ति करते हुए अर्थ किया है– **'एंटिसिपेटिंग अवर विश वाइ डीड'**। परन्तु अनेक स्थानों पर व्याख्यात्मक टिप्पणी के अभाव में अर्थ अबोधगम्य हो गया है। उदाहरणार्थ इक्कीसवें मन्त्र में भूमि को अग्नि द्वारा आवृत और काले घुटने वाली तो बताया है परन्तु उसकी इस विशेषता की संगति के लिए कोई टिप्पणी नहीं की।[14]

प्रायः अन्य सभी सूक्तों की व्याख्या में ब्लूमफील्ड ने कौशिकसूत्र का पूर्ण अनुसरण किया है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद 1.2 का कौशिक0 के अनुसार दो प्रकार का – औषध मन्त्र के रूप में तथा युद्ध–मन्त्र के रूप में विनियोग बताया है। कौशिकसूत्र 14.7 में यह सांग्रामिक गण या अपराजित गण में परिगणित है और कौशिकसूत्र 25.6 के अनुसार इसका उच्चारण करता हुआ पुरोहित मुंज घास के इषीकाग्र को उसी घास के सूत्र से रोगी पर तावीज के रूप में बांधता है। जहां तक युद्ध–मन्त्र के रूप में इसके विनियोग का सम्बन्ध है ब्लूमफील्ड ने यह कहकर संगति स्थापित की है कि, ''पर्जन्य वृष्टिदेव है और भूमि पर उसकी बौछारों की तुलना बाणों की बौछारों से की गई प्रतीत होती है।'' औषध–मन्त्र के रूप में इसका विनियोग शरीर के किसी भी अस्वाभाविक स्राव को रोकने के लिए किया गया है। इसकी संगति के विषय में भी ब्लूमफील्ड की टिप्पणी है कि,''शरीर के स्रावों की तुलना भी पर्जन्य की वृष्टि से की गई है।'' परन्तु ऐसे और अन्य सूक्तों के विषय में क्या यह नहीं सोचना चाहिए कि इनमें वर्णित औषधियों आदि का कोई आयुर्वेदिक महत्त्व भी हो सकता है? उसे केवल अन्धविश्वास की श्रेणी में रखना क्या अन्याय नहीं होगा? निस्संदेह कौशिकसूत्र अथर्ववेद परम्परा से सम्बद्ध ग्रन्थ है परन्तु संहिता से उसके दीर्घ कालान्तर के विषय में विमति नहीं हो सकती। वस्तुतः अथर्ववेद का ज्ञान प्रायोगिक विज्ञान की श्रेणी में आता है और उसी आधार पर उसके ठीक अर्थो का निश्चय किया जाना चाहिए। हम जानते हैं कि वस्तुतः विशेष प्रकार से विशेष पदार्थो को शरीर के विशेष अंगों पर बांधने से विशेष कष्ट के उपचार में सहायता मिलती है क्योंकि उससे विशेष नाड़ियां अथवा तन्त्रिकायें प्रभावित होती हैं।

इसी प्रकार ब्लूमफील्ड ने अथर्ववेद 2. 27 का विनियोग कौशिकसूत्र 38.18 पर दारिल के भाष्य के अनुसार बताया है यद्यपि अनुक्रमणी में इसे केवल 'वानस्पत्यम्' कहा गया है। तदनुसार जब प्रतिस्पर्धा के लिए जाना हो तो पाटा की जड़ को चबाता हुआ व्यक्ति उत्तरपूर्व दिशा से अपने प्रतिद्वन्द्वी के पास जाता है वह मन्त्र से अपने प्रतिद्वन्द्वी को सम्बोधित करता है। वह अपने सिर पर भी पाटा के सात पत्तों की माला धारण करता है। इस प्रकार इसका विनियोग तथा ओषधि का प्रयोग पूर्णतया अन्धविश्वास पर आधारित जादू–टोना प्रतीत होता है। परन्तु सायण इसे पाठा (क्लाइपिआ हर्नेडिफोलिया) बताता है; आयुर्वेद के ग्रन्थ भावप्रकाशनिघण्टु में इस औषधि के जहां अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव बताए गए हैं, वहां इसे वायु और श्लेष्मा का हरण करने वाली तथा श्वासरोग नष्ट करने वाली बताया गया हैं।[15] वाद–विवाद में उपयुक्त दोषों से मुक्त व्यक्ति ही ठीक बोलकर विजय प्राप्त कर सकता है सम्भवतया सूक्त की भावना इस औषध रूप में, प्रयोग के विषय में हो।

इस प्रसंग में एक और सूक्त का उल्लेख करना भी असंगत न होगा। कौशिकसूत्र 28.7 के आधार पर ब्लूमफील्ड की टिप्पणी है कि अथर्ववेद 4.20 एक जादुई पौधे को सम्बोधित है जिसे ऐसी शक्ति देने वाला माना गया है जो छिपे हुए राक्षसों, जादूगरों (यातुधानों) और उनके मारक कृत्यों को उद्घाटित करती है।[16] कौशिकसूत्र 39.6 में भी इस सूक्त का उल्लेख यातु क्रियाओं के अवरोध के प्रसंग में किया गया है। प्रस्तुत सूक्त में स्वयं किसी पौधे का नामोल्लेख नहीं है। कौशिकसूत्र में इस पौधे का नाम सदम्पुष्पा दिया गया हैं ब्लूमफील्ड ने इसका वनस्पति शास्त्रीय अंग्रेजी नाम '**कैलोट्रोपिस गाइगेंटिआ**' दिया है। यह प्रसिद्ध अर्क या आक है। अथर्ववेद के अनेक स्थानों का जहां राक्षसों आदि पर उल्लेख हुआ है, आयुर्वेदिक दृष्टि से वे रोग–विशेष के कीटाणु या जीवाणु प्रतीत होते हैं। वस्तुतः इनके वैज्ञानिक पद्धति से अन्वेषण की आवश्यकता है। श्यावदत्, मलीम्लुच, दुणसि, कुम्भी, अन्त्रीमुख आदि विभिन्न विचित्र नामों का राक्षस नामों के रूप में उल्लेख हुआ है सम्भवतया ये विशेषकीटाणुओं के नाम हों। यदि प्रस्तुत प्रसंग में कौशिकसूत्र के अनुसार इसे सदम्पुष्पा या अर्क से सम्बद्ध मान भी लें तो भी विशेष रोगों के कीटाणु रूप राक्षसों को देखने, तथा ढूंढ निकाल कर नष्ट करने की इसकी विशेषता हमें आयुर्वेद के प्रमाण से पता चलती है। इसे वात, कोढ, कण्डु और विष के घावों को भरने वाला तथा प्लीहा सम्बन्धी रोगों के, गुल्मों, अर्श, श्लेष्मा, उदर आदि से सम्बद्ध रोगों के कृमियों को नष्ट करने वाला बताया है। इसके अतिरिक्त भी अनेक रोगों में इसकी उपयोगिता बताई गई है।[17] सम्भवतया इसी आधार पर फा0 सर्वरोगभेषज '**अकसीर**' का मूल संस्कृत '**अर्कक्षीर**' बताया जाता है।

मूल विषयवस्तु के अन्वेषण से सम्बद्ध इन विचारों की यदि उपेक्षा कर दी जाए तो ब्लूमफील्ड की व्याख्या को पर्याप्त वैज्ञानिक एवं तुलनात्मक कहा जा सकता है। इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में यद्यपि ग्रिल्ल प्रभृति पूर्ववर्ती विद्वानों ने पैप्पलाद संहिता के आधार पर **पश्यति** के स्थान पर **पश्यामि** पाठ मान कर अर्थ किया है, तथापि ब्लूमफील्ड ने उस सुविधा को अपनाने के स्थान पर यह टिप्पणी की है कि पैप्पलाद संहिता का प्रयोग सम्भवतया हीन साहित्यिक प्रयोग के स्थान पर अच्छे प्रयोग का उदाहरण है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि शौनकों का **पश्यति** के अतिरक्त कोई अन्य पाठ था। मन्त्र औषधि को सम्बोधित है, अतः प्रथम पुरुष की क्रिया से कठिनाई तो होती है। परन्तु ब्लूमफील्ड ने सायण का अनुसरण करते हुए इस क्रिया का कर्ता मणिधारक को माना है।[18] संक्षेप में ब्लूमफील्ड की व्याख्या आलोचनात्मक वैज्ञानिक परन्तु एक पक्षीय व्याख्या कही जा सकती है। जिसमें केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशिकसूत्र के आधार पर जादू–टोने की अनावश्यक बहुलता स्वीकार की गई है।

ह्विटने

ह्विटने क्योंकि स्वयं अथर्ववेद का सम्पादक भी था और उसने मूल अथर्ववेद का अनेक दृष्टियों से अवलोकन, परीक्षण किया था, अतः उसका मूल संहिता–विषयक ज्ञान ब्लूमफील्ड की अपेक्षा अधिक गम्भीर तथा साथ–साथ व्यापक था। यह तथ्य इससे भी प्रकट होता है कि उसने केवल बीसवें कांड को छोड़कर शेष पूर्ण अथर्ववेद का सटिप्पण अनुवाद किया है। उसकी टिप्पणियां बहुधा संक्षिप्त हैं और अनुवाद भी मात्र शब्दानुवाद है, कहीं–कहीं भावपूर्ति के निमित्त कोष्ठकों में कुछ बाह्य शब्द अवश्य आ गये हैं। यद्यपि इस प्रकार के अनुवाद में अस्पष्टता आदि के दोष रहते हैं, तथापि ह्विटने ने एक निश्चित धारणा और योजना के अनुरूप सोच समझ कर ऐसा किया है। भूमिका में वह अथर्ववेद की व्याख्या के तीन प्रमुख उपाय बताता है और उन पर पूर्ण विवेचन करता है। प्रथम और सबसे सरल तथा हल्का उपाय है किसी देशी भाष्य का अनुसरण। द्वितीय विधि सभी देशी भाष्यों की रूपरेखा देते हुए आलोचनात्मक पद्धति से व्याख्या की विधि है। निस्संदेह यह सर्वाधिक स्वागत योग्य है, किन्तु अत्यन्त कठिन भी।[19] तृतीय मार्ग है भाषावैज्ञानिक के रूप में व्याख्या करना। इसका तात्पर्य है जिस रूप में पाठ हो केवल उस रूप में उसे प्रस्तुत कर देना, किसी भी बाह्य तत्त्व को न आने देना, केवल शास्त्र को पाश्चात्त्य आवरण में पुनः प्रस्तुत कर देना।[20] इसका उद्देश्य केवल एक ऐसा आधार प्रस्तुत करना है जिस पर आगे चलकर आवश्यकतानुसार दार्शनिक व्याख्या का ताना–बाना बुना जा सके। ऐसी स्थिति में अनुवादक को अपने सम्मुख प्रस्तुत अज्ञानावृत अथवा अस्पष्टता के अन्धकार में आवृत वेदार्थ में अन्तःप्रवेश करने, उसे समझने या उसे स्पष्ट रूप में उल्लिखित करने का साहस नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से अनिवार्यतः उसके रूपानतर में बहुत कुछ ऐसा तत्त्व मिश्रित हो जाएगा जो साक्षेप तथा सन्देहास्पद है तथा जिस पर परवर्ती विद्वानों को बार–बार विचार करके संशोधन करना पड़ेगा।[21] निस्संदेह इसके द्वारा शोधकर्ताओं (विशेषरूप से अंग्रेजी–वेत्ता पाश्चात्त्यों) के लिए वेद को लगभग मूल रूप में प्रस्तुत करने में जो सहायता मिल सकती है, यदि केवल इसका प्रयोग किया जाए। परन्तु इसमें दो प्रकार के दोष हैं– पूर्ण निष्ठा होते हुए भी केवल उसी रूप में ग्रहण करने वाला और स्वयं उस पर परिश्रम न करने वाला पाठक उस शब्दानुवाद से दिग्भ्रष्ट हो जाता है; और दूसरे अनेक स्थलों पर उसके लिए भी यह अनुवाद दुर्बोध अथवा अबोधगम्य हो जाता है। वस्तुतः जैसा कि आरम्भ में ही कहा जा चुका है, वेद का मात्र शब्दानुवाद बिना टिप्पणियों एवं व्याख्या के उसे और भी अस्पष्ट बना देता है।

ह्विटने की मूल के निकटतम रहने की निष्ठा असंदिग्ध है, परन्तु कई स्थलों पर इस शब्दानुवाद की प्रवृति की पराकाष्ठा से झुंझलाहट अवश्य होती है। अनुवाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक लैनमेन से इस विषय में आश्चर्यजनक सूचनायें प्राप्त होती हैं। तदनुसार अथर्ववेद 6.57.2 के **जलाष** का अर्थ मूल प्रति में ह्विटने ने हीलर (घाव भरने वाला) दिया है, परन्तु पश्चात् काटकर मूल **जलाष** रख दिया। इसी प्रकार 2.33.5 में **प्रपद** का अर्थ आरम्भ में **फोर पार्ट्स आफ द फीट** (पांवों के अगले भाग) देकर फिर **फ्रन्ट फीट** (अगले पांव) कर दिया है, जिससे इन दोनों स्थलों पर भाव की अस्पष्टता है।[22] लैनमेन ने भी ह्विटने के शब्दानुवाद की इस पराकाष्ठा की आलेचना इन शब्दों में की है........" हम उसका यह उद्देश्य, यह इच्छा समझ सकते हैं कि परवर्तियों के लिए पूर्ण व्याख्या कम से कम सन्दिग्ध रूप में छोड़ी जाये, परन्तु इस बात से हम इन्कार नहीं कर सकते कि कभी–कभी वह अपने रूपान्तर को काष्ठवत् बनाने के लिए निर्धारित मार्ग को छोड़ सकता है।"[23]

मूल के अधिक निकट रहने के अपने इस आग्रह के कारण ही ह्विटने ने व्याख्या में कर्मकाण्डीय ग्रन्थों से सहायता लेते हुए भी उनको अत्यधिक अनपेक्षित महत्त्व नहीं दिया और केवल मात्र उन पर अपने अनुवाद को आधारित नहीं किया। उसने यह स्पष्ट माना है कि इस विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता कि सूक्तों के समय से कर्मकाण्डीय ग्रन्थों के समय तक भारत की प्रथायें परिवर्तित हो चुकी थीं।[24] आगे एक ईसाई धर्मगीत के अंश के मूल से विच्छिन्न विनियोग का उदाहरण देते हुए वह प्रतिपादित करता है कि किसी को यह नहीं कहना चाहिए कि यह (असम्बद्ध कर्मो में मंत्रों का गौण प्रयोग) भारत में जो हुआ होगा, उसके अधिक समानान्तर नहीं है। इसके विपरीत वहां इसी प्रकार के असम्बद्ध कर्मों में यज्ञों के किसी भी रूप में सन्देह–रहित और किसी भी प्रकार अनल्पाकर्षणयुक्त विनियोगों के उदाहरण प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं।[25]

इसी कारण ह्विटने कौशिकसूत्रों के प्रभाव से मुक्त रहा है। सूक्तों के शीर्षक देते हुए भी वह बहुत सावधान रहा है। उसने यह प्रयत्न किया है कि सूक्तों के मन्त्रों में आये शब्दों, रोगों और औषधियों के आधार पर ही शीर्षक दिये जायें और परवर्ती कौशिक द्वारा दिये गये बाह्य नामों से बचा जाये। ह्विटने के ये शीर्षक निस्सन्देह उसके परिश्रम और विचारों की स्पष्टता के द्योतक हैं तथा ग्रन्थ का सार प्रस्तुत करने में सहायक हैं। उनसे हम अथर्ववेद के मौलिक स्वरूप के पर्याप्त निकट पहुंचते हैं। उदाहरणार्थ प्रथम काण्ड के द्वितीय सूक्त का शीर्षक ह्विटने के अनुसार '**अगेंस्ट इंजरी एंड डिजीजः विद ए रीड**'(घाव और रोग के विरुद्धः सरकण्डे के द्वारा) है। ब्लूमफील्ड ने इसे स्राव या अतिसार के विरुद्ध कर्मकाण्ड बताया है। परन्तु एक ओर इससे उसकी व्याप्ति केवल कर्मकाण्ड तक सीमित हो जाती है, दूसरी ओर उसके औषध–गुण के विचार की सम्भावना सर्वथा लुप्त हो जाती है। इसीलिए लैनमेन ने ब्लूमफील्ड की व्याख्या को प्रष्टव्य या सन्दिग्ध कह कर आलोचना की है।[26] इसी प्रकार 2.27 के शीर्षक **फॉर विक्टरी इन डिस्प्यूटेशनः विद ए प्लांट** (वाद–प्रतिवाद में विजय के लिए .... एक पौधे के द्वारा)[27] और 4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20 के शीर्षक **टु डिस्कवर सॉर्सरर्जः विद एन हर्ब** (जादूगरों को ढूंढ निकालते के लिएः एक बूटी द्वारा) में तत्तत् औषध के चिकित्सा–सम्बन्धी गुण अभिप्रेत होने की पूर्ण सम्भावना बनी रहती है। अथर्ववेद 3.17 के विषय में भी अन्य कृत्रिम विनियोग न बताकर ह्विटने ने शीर्षक में केवल **फार सक्सेसन आफ एग्रिकल्चर** (सफल कृषि के लिए) कह दिया है जिससे कृषि से इस सूक्त का व्याप्त सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। जिस महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सूक्त 10.7 को ब्लूमफील्ड ने सम्मिलित ही नहीं किया ह्विटने ने उसका दार्शनिक महत्त्व समझते हुए उसका शीर्षक दिया है ..... **मिस्टिकः आन द स्कम्भ आर फेम ऑफ क्रिएशन** (रहस्यात्मकः स्कम्भ या सृष्टि के ढांचे पर) जिस प्रकार व्याख्या के अभाव में अथर्ववेद 11.5 पर ब्लूमफील्ड का अनुवाद अपूर्ण रह जाता है, उसी प्रकार यद्यपि ह्विटने ने इसका शीर्षक **एक्स्टौलिंग द वैदिक स्टूडेंट** (ब्रह्मचारी) (वैदिक विद्यार्थी ब्रह्मचारी की प्रशंसा करने वाला) दिया है तथापि उसका अनुवाद भी अनेक स्थलों पर अस्पष्ट रह जाता है, विशेष रूप से जहां सूर्य जैसा वर्णन है। परन्तु ह्विटने ने अपने शब्दानुवाद के आग्रह का पहले ही उल्लेख कर दिया है। वह इस विषय में अपने अनुवार की कमी को पहचानता है और स्थान–स्थान पर उसके विषय में टिप्पणी करता चलता है। उदाहरणार्थ अथर्ववेद 10.7.21का ह्विटने का अनुवाद इस प्रकार है – '' खड़ी हुई असत् की शाखा को लोग सर्वोच्च वस्तु के रूप में जानते हैं, और निम्न लोग, जो शाखा की उपासना करते हैं, (इसे) विद्यमान (सत्) वस्तु समझते है।[28] इस अनुवाद को ह्विटने केवल यान्त्रिक और यथासम्भव शब्दानुवाद बताता है।

ब्लूमफील्ड के समान ही ह्विटने के अनुवाद की भी यह विशेषता है कि यह भी तुलनात्मक दृष्टि से आलोचनात्मक टिप्पणियों से युक्त है। इसके अतिरिक्त इसमें भी पाठान्तरों को दृष्टि में रखा गया है और कहीं–कहीं पाठ संशोधन भी सुझाये गये हैं। उदाहरणार्थ अथर्ववेद 2.27.5 के प्रथम पाद का अनुवाद किया गया है.... **विद इट विल आई ओवरपावर द फोज** (इसके द्वारा मैं शत्रुओं को पराभूत कर लूंगा)।[29] टिप्पणी में बताया गया है कि अनुवाद में 'साक्षे' से 'साक्ष्ये' में संशोधन अभिप्रेत है। यह अत्यन्त सरल है क्योंकि प्रायः मूर्धन्य और तालव्य ऊष्म वर्णो के पश्चात् य् का लोप हो जाता है। छन्द और भाव की दृष्टि से भी यह अधिक सन्तोषजनक है। पैप्पलाद संहिता का पाठ **सक्षीये** भी इसके निकट है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के संशोधन सर्वत्र आवश्यक और अच्छे ही हों। उपर्युक्त उदाहरण में ही सायण ने साक्षे पाठ मानकर ही **अभिभवामि** (मैं अभिभूत करता हूं) व्याख्या की है जो सर्वथा उचित प्रतीत होती है। वैसे व्याकरण की असुविधा को ठीक करने के लिए इसे लेट् लकार का रूप मानकर ''मैं अभिभूत करूं'' अर्थ करना सबसे अधिक संगत होगा।

अथर्ववेद 3.17.1 के अनुवाद में **सुम्नयौ** के स्थान पर ऋग्वेद 10.101.4 तथा वाजसनेयी संहिता 12.67 के पाठ के आधार पर **सुम्नया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तृतीया एकवचन पाठ स्वीकार करके ह्विटने ने **'विद डिजायर आफ फेवर'** (शोभन या कल्याण बुद्धि की कामना से) अर्थ किया है और अन्त में प्रश्नसूचक चिन्ह अनिश्चय सूचित करने के लिए लगा दिया है। वह **सुम्नया** को एक अविचारित भ्रष्ट रूप **(एन अनइंटेलिजैंट करप्शन आफ इट)** बताता है यद्यपि यह टिप्पणी बहुत कटु लगती है, परन्तु अन्य संहिताओं के प्रमाण पर इसे स्वीकार करने में कोई विशेष आपत्ति भी प्रतीत नहीं होती।

शब्दानुवाद करते हुए भी कहीं–कहीं अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए ह्विटने ने एकाध वाक्य टिप्पणी में जोड़ दिया है। उदाहरणार्थ अथर्व0 3.17.3 का निम्नलिखित अर्थ किया गया है...... ''वज्र–सम नोकीला, अच्छी प्रकार रहने वाला, अच्छे चिकने हत्थे वाला हल, गौ, भेड़, गतिशील रथ के ढांचे तथा मोटी कन्या को उत्पन्न करे।''[30] टिप्पणी में स्पष्टीकरण करते हुए यह भाव बताया है कि वे सब वस्तुएं सफ़ल कृषि पारितोषिक के रूप में प्राप्त हों।

पाठसंशोधन के विषय में ह्विटने की एक निश्चित आग्रहरहित नीति है। प्रत्येक शब्द का संशोधन उसने बिना आधार के अपनी सुविधा के लिए नहीं किया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त मन्त्र में हल के विशेषण के रूप में जो **'सुशीमम्'** शब्द आया है, यद्यपि सेंट पीटर्सबर्ग कोश द्वारा उसका संशोधन **'सुसीमम्'** (शोभन सीमा या विभाजन वाला) सुझाया है तथापि ह्विटने ने वह अनावश्यक संशोधन स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार इसी मन्त्र मे **'सोमसत्सरु'** शब्द के विग्रह के सम्बन्ध में बेबर का सुझाव **'स उमन् सत्परु'** विद स्टेप एंड विद हैंडल (फीते और हत्थे से युक्त) भी पदपाठ–विरुद्ध तथा अनावश्यक होने के कारण ह्विटने को स्वीकार्य नहीं है। हां, अर्थ करते हुए उसने अवश्य सोम का अर्थ तैत्तिरीय संहिता के **सुमतित्सरु** के आधार पर कोमल या चिकना लिया है। त्सरु का अर्थ हत्था है ही। यहां स्पष्ट ही मति की व्युत्पति मननार्थक **मन्** से नहीं है अपितु यह **मतीकृ** और उससे व्युत्पन्न अन्य शब्दों के समान है तथा कोमलता का अर्थ प्रदान करता है।

निस्सन्देह ह्विटने से सर्वत्र सहमत होना सम्भव नहीं और न ही सभी स्थलों पर सफलतापूर्वक वह, सम्भवतया शब्दानुवाद के आग्रह के कारण, स्पष्ट हो पाया है, तथापि इसकी पद्धति को हमें अधिक निष्ठापूर्ण, विवेकयुक्त तथा दुराग्रह से रहित कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि यदि काल ने उसे अपने पास न बुला लिया होता तो वह अथर्ववेद का और अधिक स्पष्टीकरण – अपने शब्दानुवाद की विस्तृत व्याख्या के रूप में कर पाता ?

कुछ भी हो अथर्ववेद की प्रत्येक व्याख्या में पूर्ण सफलता के लिए उस के विविध विषयों, भौतिक एवं आध्यात्मिक, के मिश्रित रूप होने का तथा प्रायोगिक वैज्ञानिक स्वरूप का ध्यान रखना आवश्यक है। यह कार्य समय और परिश्रम द्वारा साध्य है, परन्तु अन्ततोगत्त्वा इससे अथर्व0 को समुचित रूप से समझने की आशा की जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादटिप्पणियां

1- Not infrequently a stanza has to be rendered in some measure of harmony with its connection, when in fact, a more original meaning, ot at all applicable to its present enviornment, is but scantly covered up by the secondry modification of the text.

2.यह बात गृह्यसूत्रों में अथर्व0 मन्त्रों के विनियोगबाहुल्य से सिद्ध होती है।

3. त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षौस्योषधे।

4. अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत। तैर्मेदिनो अंगिरसो दस्यूना बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि।। अनु0 भूमिका–पृ0 33

5. The flavour of holiness and and virginal innoceney in necessarily absent, and this want crops out connection with the performances . of Yatu even in the R. V. (VII.104.15,16)

Moreover it must not be forgotten that the atharvan contains in its cosmogonic and theosophie sections more material that undertakes to present the highest Brahmavidya than any other Vedic Samhita.XL.

Needless to say the only correct and useful way to translate a mantra in the Atharvan, is to reproduce it with the bent while it has recived in the Atharvan. LXIII,

6- Of the rest of the atharvan (books I-XIII) there is presented here about one half, naturally that half which seemed to the translator the most interesting and characteristic. LXII.

7- The employment of the hymns in the Atharvanic practices is in closer touch with the original purpose of the composition or compilation of the hymns. Many times, though by no means at all times, the practices connected with a given hymn present the key to the correct interpretation of the hymns itself. InAny case it is instructive to see what the Atharvan priests did with the hymns of their own school, even if we must judge their performance to be secondray. वही LXXII

8. व्हिटने अनुभू0 पृ0 LXII-LXXII

9. As I have more than once said, no one ought to be so well able to give trustworthy translation of difficult text as the man who has made good edition of it,And lor this reason one must regret that Bloomfield did not give us.... in the natural sequence of the sukta-as

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

good a version as he was at that time able to make, instead of the detached bits of interpretation which are scattered through the notes of the S B. E. XLII.

10. ...All the functions and powers of the Brahamacharin are made the basis of a momentary cosmogonic and philosophical account of the origin and existence of the universe. This allegory is carried out with all the feeble consistency that characrerises Hindu speculations of this sort.

11. Sayana is squeemish About endowing A brahamacharin with a brhacchepa, but he enacts here the role of prajapti and the prediction of a penis is as natural as that of the more common place semen (rates).

12. अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ। तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः।।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।।
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति।।

Varuna, having become the teacher, at home prepares the ghee solely. whatever he desired from prajapati, that the Brahmacharin furnished, as Mitra (a friend) from his ownAtman (spirit of person). Through holy life disciplehood, through tapes (creative fervour), the king protects his kingdom. The teacher by (his own) holy life (ब्रह्मचर्य) seeks (finds) the Brahmacharin, through holy disciplehood the maiden obtains a young husband, through holy disciplehood the steer, the horse seeks to obtain fodder.

13. This hymn is one of the most attractive and characteristic of the Atharvan, rising at time to poetic conception of no mean merit, and comparatively free from the stock artificialities of the vedic poets. The relation of the real, visible earth to man, animals, and plants preponderates over the remoter mythological and mystic conceptions.

इस सूक्त की आलेचना ब्लूमफील्ड के अमेरिकन जर्नल ऑफ फिलोसोफी (VII.478) में प्रकाशित लेख 'सेवन हिम्ज ऑफ द अथर्ववेद' में भी सम्मिलित है।

14. The earth clothed in agni, with dark knees shall make me brilliant and alert.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निवासाः पृथिव्यऽसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु।।

15. पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः।
हन्ति शूलज्वरच्छर्दिकुष्ठातिसारहृद्रुजः।
दाहकण्डुविषश्वासकृमिगुल्मगरव्रणान्।।
गुडुच्यादिवर्गः, 191—193

16. The hymn is addressed to a magic plant which is supposed to impart the power to expose hidden demons, wizards and their hostile practices.

17. अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकंडुविषव्रणान्।।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्कृमीन्।
अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम्।।
आरोचकप्रसेकार्शः कासश्वासनिवारणम्।।
रक्तार्कपुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठकृमिघ्नं कफनाशनं च।
अर्शोविषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि गुल्मे श्वपथौ हितं तत्।
क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु।
कुष्ठ गुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम्।।

18. आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति। दिवमन्तरिक्षमाद्भूमि सर्वं तद्देवि पश्यति।।
सा0— हे देवि सदम्पुष्पाख्ये ओषधे त्वद्विकारमणिधारकोऽयं जनस्त्वत्प्रसादात् आपश्यति आगामिभयकारणं प्रतिहर्तुं जानाति।

19. This would be very welcome labour, but also extremely difficult one. भू0 XIX

20. ....reproducing the scripture itself in western guise, as nearly as the nature of theAdmits, as a basis whereon could afterward he built such fabric of philosophic interpretation as should be called for.

21. Nor need he pretend to penetrate to the hidden sense of the dark sayings that pass under his pen, to comprehend it And set it forth, for then there would inevitably mingle itself with his version much that was subjective and doubtful and that every successor would have to do over again. भू0 XX.

22. अथर्व0 अनु0 प्रथम भाग, भू0, पृ0 XCVIII

23. His presumable motive, a wish to leave all in the least degree doubtful interpretation to his successors, we can understand, but we cannot deny that he sometimes goes out of this way to make his version wooden.

24. ....it cannot be doubtful that her (India's) customs have charged in the time from the date of the hymns to that of the ritual books. भू0 LXXVIII

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25. Let no one say that this case (of secondry adaptation of martras to incongruous ritual uses) is no fair parallel to what may have happened in india. On the contrary instance, no way doubtful and not a whih less striking, of secondary adaptation of a mantra to similarly in congruous uses in the ritual may there be found in plenty. भूमिका–LXXVIII

26. Bloomfield understands it to mean 'diarrhoea' and bases upon this questionable interpretation his view of the meaning of the whole hymn, which he entitles 'formula' against diarrhea.

27. ह्विटने ने पौधे का नाम नहीं दिया। यद्यपि सूक्त में वह नाम पाटा दिया है। परन्तुसम्भवतया अर्थ के अनिश्चय के कारण उसने वह नाम देना उचित नहीं समझा। टिप्पणी में सायण का मत उद्धृत किया है जिसके अनुसार यह पाठा है; उसके विषय में अनु0 का कथन है कि यह भारत में सर्वत्र उगती है और पंजाब और सिन्ध में फोड़ों पर लगाने के लिए इसका प्रयोग बताया जाता है।

28. असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः। उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ।।

The branch of the non-existent, standing forth, people know as in a manner the highest thing, also the lover ones who worship the branch think (it) the existent

29. तयाहै शत्रून्त्साक्षे।

30. लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु। उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम् ।।

Let the plough, lance-pointed, well lying, with well. smoothed handle, turn up cow, sheep, an on-going chariot-frame and plump wench.

साभार– *A comparative & Analytical Study of Vedas,* **Editor-** Raghuveer Vedalankar Page 47-64

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (243-251) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद संहिता में पशु–विज्ञान

डॉ. शशि तिवारी पूर्व विभागाध्यक्ष,

संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिक आर्य आर्थिक विकास की उपयोगिता से परिचित थे। एतदर्थ उन्होंने उसके सभी प्रमुख अंगों को अपनाया था। किन्तु निश्चित रूप से उनके साम्पत्तिक विकास के विशेष साधन कृषि और पशुपालन ही थे। वैदिक ग्रन्थों में वेदकालीन आर्थिक जीवन से सम्बद्ध कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों के संकेत हैं। इनमें भी विविध विषयों की विवेचना करने वाली अथर्ववेद संहिता अपेक्षाकृत अधिक सामग्री प्रस्तुत करती है। ऋक्संहिता में प्रतिबिम्बित आर्यो के आर्थिक जीवन का ही अधिक विकसित और व्यवस्थित रूप इसमें दिखाई देता है। ऋग्वैदिक आर्यो ने पशुओं को अपना अभीष्ट और परम धन माना था। बार–बार मन्त्रों में पशुप्राप्ति की कामनाएं की गयी हैं। कृषि उनकी जीविका का गौण साधन था और पशुपालन प्रधान। पशुपालन का स्पष्ट प्रभाव उनके सामाजिक और सैनिक संगठन पर भी पड़ा था। उदाहरण के लिए एक गोष्ठ में रहने वाले लोग एक गोत्र के हो गये थे और गो धन ही उनके जनजातीय युद्धों का मुख्य कारण हुआ करता था। परन्तु अथर्ववेदसंहिता के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अथर्ववैदिक आर्यो ने एक और जहां अपने आर्थिक साधनों में कृषि को महत्त्वपूर्ण और प्रधान स्थान दिया था, वहीं पूसरी ओर उन्होंने पशुपालन को भी सम्पत्ति और समृद्धि के प्रमुख साधन के रूप में अंगीकार किया था। यहां अथर्ववेदसंहिता के आधार पर केवल पशुपालन की स्थिति और पशु–विज्ञान से सम्बद्ध तथ्य अध्येय हैं।

अथर्ववैदिक आर्यो ने अपने कृषिप्रधान जीवन में पशुओं की उपयोगिता से परिचित होने के कारण ही अनेक बार उनकी समृद्धि की कामनाएं की हैं। पशुसंवर्धन [1] और पशुपोषण[2] सूक्तों में पशुओं की वृद्धि, स्वास्थ्य और सुरक्षा की प्रार्थनाएं हैं। उनकी कामना है कि है कि पुरुषों के साथ–साथ पशुओं का अविनाश हो।[3] मनुष्यों के स्वास्थ्य के साथ ही पशुओं का स्वास्थ्य और रोगराहित्य भी काम्य है।[4] आर्यो ने अनेक रूपों वाले पशुओं से परिपूर्ण होने की अभिलाषा व्यक्त की है। [5]सविता देवता से कहा गया है कि वे गोष्ठ में सब पशुओं की वृद्धि करें। [6]पशुओं की पुष्टि की कामना उनसे लभ्य 'पयः' की आकांक्षा से सम्बद्ध है। [7]

पशुओं के स्वामी पशुपति रुद्र माने गये हैं।[8] अनेक अन्य देवताओं का भी पशुओं से सम्बन्ध है। अग्नि की स्तुति है कि वे पार्थिव पशुओं को जानते हैं, जो पशु उत्पन्न हो चुके हैं और होने वाले हैं वे उन सबके स्वामी हैं। [9]पूषा देव नष्ट हुए पशुओं को पुनः प्राप्त कराते हैं।[10] सविता देव प्रतिदिन प्रभूत गवादि पशुओं को प्रेरित करते हैं। [11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेदसंहिता में अनेक पशुओं का नामतः वर्णन हैं। उन्हें मुख्य रूप से दो कोटियों में रखा गया है– ग्राम्य और आरण्य [12]। आरण्य पशुओं में सिंह, व्याघ्र, मृग, पागल कुत्ते, भालू (ऋक्षीक), भेड़िया[13], हाथी[14], चीता या लकड़बग्घा (द्वीपिन्)[15] आदि और ग्राम्य पशुओं में सूकर[16], गर्दभ[17], बन्दर (कपि) और कुत्ता (शुनां)[18], उष्ट्र[19], अज[20], अश्व, अवि[21], वृष, ऋषभ, गाय आदि विशेषतया उल्लिखित हैं। जल जन्तुओं में घडियाल, अजगर, कछुए, मछलियों आदि का नाम प्राप्त होता है। [22] इनमें क्रूर और विषैले अर्थात् हिंसक पशुओं को पृथिवी से दूर रखने की प्रार्थनाओं द्वारा उनकी परिहार्यता व्यञ्जित होती है। [23] आर्थिक विकास में उपयोगी साधन होने के कारण कतिपय पशु अथर्ववैदिक आर्यो के लिए धनवत् इष्ट और पूजनीय थे, अतः उनको ही प्रधानतया इनके ग्राम्य या पालतू पशु माना जा सकता है। इनमें भी मवेशियों का अपेक्षाकृत विशेष स्थान था, क्योंकि वे पालनकर्ताओं के भोजन, व्यवसाय और धार्मिक कृत्यों के प्रमुख साधन थे। अथर्ववेद के एक मन्त्र में ग्राम में होने वाले विश्व रूप **'सप्त'** पशुओं का सामान्य रूप से उल्लेख हुआ है। [24] सायण ने उससे सामान्य ग्राम्य पशुओं का अभिप्राय लिया है। [25]

1. गाय

पालतू पशुओं में गायों का सर्वाधिक महत्त्व था। ये आर्यो की विशेष सम्पत्ति थी।[26] गौ को सम्पत्ति का भण्डार कहा गया है।[27] उनका पालन–पोषण करना वे अपना पवित्र कर्त्तव्य समझते थे, क्योंकि वे उन्हें अघ्न्या और वन्दनीया मानते थे।[28] दुग्ध आदि भोज्य पदार्थ, कृषि के लिए बैल, खाद आदि साधन तथा यज्ञिय सामग्री इत्यादि की आवश्यकता –पूर्ति गायों पर ही निर्भर थी। तभी गायों को इन्द्र से समीकृत किया गया है। [29] अथर्ववेदसंहिता के कई सूक्तों में प्राप्त गायों की स्तुति और उनके स्वरूप तथा माहात्म्य का विशद वर्णन तत्कालीन जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण स्थिति का परिचायक है। एक मन्त्र के अनुसार गायों में सभी देव समाविष्ट हैं। [30] तात्पर्य है कि गौ में सभी दैविक शक्तियां हैं, जो मनुष्य को मानसिक,शारीरिक और आर्थिक बल देने में समर्थ हैं गायें ही सम्पत्ति का माप मानी गई थीं। तभी उनको दक्षिणा में दिया जाता था और प्रायः 'दक्षिणा' शब्द के स्थान पर 'गौ' का व्यवहार किया जाता था। सम्भवतः विनिमय का मुख्य माध्यम भी गाय ही थी। वैदिक संस्कृति ही नहीं, कई प्राचीन संस्कृतियों में भी सम्पत्ति की परम्परा का आधार गायों को माना जाता रहा है।

गोपति की कामना है कि गायें उनके पास स्थिरभाव से रहें, जिनसे वह दूध को संचित करता है, घृत से स्वशरीरादि के बल को पुष्ट करता है और सन्तान का पालन–पोषण करता है। [31] अथर्ववैदिक ऋषि की दृष्टि में गाय पुष्टिकारिणी, रस और सहस्र धनों की दात्री है। [32]वह घृतादि से तृप्त करती है। [33] गायें ही मनुष्यों को तेजोयुक्त,बलिष्ठ, मांसल ओर सुरूप बनाती हैं, घर को कल्याणमय बनाती हैं, इसीलिए सभाओं में उनकी प्रशंसा होती हैं। [34] वे दुर्बल व्यक्तियों को दूध पिला कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजयुक्त करती हैं और कुरूप व्यक्ति को दर्शनीय बनाती हैं।[35] गौ–दुग्ध की महत्ता सर्वोपरि है। गोदुग्ध और गोघृत के गुणगान के पीछे वैज्ञानिक तथ्य निहित हैं। गोदुग्ध के अनेक विधायक और रोगनिवारक गुण हैं, जिनको आज आयुर्विज्ञान की दृष्टि से स्वीकार किया जाता है। इसीलिए अथर्ववैदिक ऋषि की उससे काम्य पुष्टि और वर्धन की प्रार्थनाएं सुसंगत हैं। 'गौ' द्वारा चिकित्सा की सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण बातों का आधार अथर्ववेद ही है।

गायें मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं के पोषणार्थ भी प्रार्थनीय हैं। [36] एक मन्त्र में गाय से प्रार्थना की गई है कि, ' तुम पुरुषों के लिए कल्याणकारिणी बनो। गायों और अश्वों के लिए कल्याणकारिणी बनो। तुम इस सब भूमि के लिए कल्याणकारिणी बनो और हमारे लिए कल्याणकारिणी बनो। [37] इसी प्रकार कामना है कि वे सर्वदा दूध, घी और मधु दुहें। [38] दूध प्रदान करने के अतिरिक्त खाद द्वारा कृषि में सहायता, गोबर द्वारा इन्धन में योगदान और हलवाहक वृषभों को अंगीकार करने के संकेत वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं।

गायों की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक अनेक शब्द वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं; जिनसे पशुओं के साथ आर्यों के गाढ़े सम्बन्ध का पता लगता है। अथर्ववेद के अनुसार गायें अनेक रूप और रंग की थी – लोहित, शुक्ल, चित्रिता। एक मन्त्र में वर्णन है कि प्राणियों को बनाने वालों ने विविध रूपों वाली गायों को बनाया था। [39]अन्यत्र भी उन्हें 'पुरुरूपाः' कहा गया है।[40] दूध देने वाली गाय 'धेनु' है और बांझ गाय 'स्तरी' है। श्वेत गाय को 'कर्की' संज्ञा दी गयी हैं।[41] इन्द्र के लिए सर्वप्रथम दुही जाने वाली और अमृत रूप दूध देने वाली गाय को 'गृष्टिः' बताया गया हैं।[42] कीथ ओर मैकडॉनल ने इससे बच्चा देने वाली 'युवा गाय' का ग्रहण किया है।[43] गायें तीन जातियों की बताई गयी हैं– विलिप्ती, सूतवशा ओर वशा।[44] सातवलेकर ने इनसे क्रमशः अधिक घी देने वाली, नौकर के वश में होने वाली और सबके वश में होने वाली गायों का अभिप्राय लिया है। [45] संहिता के दो सम्पूर्ण सूक्तों में 'वशा गौः' की स्तुति है। [46] सायण के अनुसार यह देवों के मध्य सर्वात्मिका होती है, और यज्ञिय पदार्थों में यज्ञिया। एक अन्य सूक्त में शुद्धा और यज्ञिया 'शतौदना गौः' की संस्तुति और वर्णन है। [47] सम्भवतः अनेक प्रकार के भोज्य और पेय पदार्थ प्रदान करने से ही उसका यह नाम सार्थक है। क्रियाभेद के अनुसार शतपथ ब्राह्मण में गायों के नामों का उल्लेख हुआ है– अनुवन्ध्या, वहला, वेहत्, निवान्या, पृषति, विचित्रगर्भा और वशा। [48] वरुण ने अथर्वा ऋषि को जो गाय दी थी, वह सुष्ठु दोग्ध्री, सदाक्षीरा और चितकबरे वर्ण वाली (पृश्नि) थी।[49] सम्भवतः व्यक्तिगत रूप से गायों के नाम भी रखे जाते थे। [50]

गायों के पालन–पोषण के सम्बन्ध में मन्त्रों में कतिपय संकेत उपलब्ध होते हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि गायें अपने लिए निश्चित स्थानों पर ही रहती थीं, जिनको 'गोष्ठ', 'सदः' या 'व्रज' कहते थे।[51] प्रायः सभी पालतू पशु गोष्ठ में ही रहते थे।[52] गायें अन्य गायों और वत्सों के साथ संघरूप में (संहिताः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मिलकर (संजग्मानाः) ही गोष्ठ में रहती थीं[53] वे अपने निवासस्थान और नामों को जानती थी।[54] एक सूक्त में 'गोष्ठ' का वर्णन करते हुए उसे गायों का पालन–पोषण करने वाला कहा गया है [55] और कामना की गई है कि 'गायें गोशाला में प्रेम से पुन–पुनः प्राप्त हों, वहीं पर मशक की भांति फूलें और वहीं अभिवृद्धि को प्राप्त हों तथा मेरे लिए सम्प्रीति से युक्त हों। [56]गाय के स्वरूप और शरीरांगों की दिव्य और आध्यात्मिक व्याख्या एक सूक्त में दर्शनीय हैं–जैसे, प्रजापति और परमेष्ठी– ये गाय के दो सींग हैं,इन्द्र सिर है, अग्नि ललाट है, यह गले की घंटी है इत्यादि।[57] अन्यत्र गाय को सुष्ठु दोग्ध्री, सदा बछड़े वाली, वश में रहकर दुहने वाली, बुद्धिमती और द्युलोक (की कामधेनु) से भी उत्कृष्ट कहा गया है,[58] जिससे अथर्ववैदिक आर्यो द्वारा अभीप्सित गाय के स्वरूप की अभिव्यंजना होती है। गायें उत्तम बछड़े और बछड़ियों से संयुक्त होती थीं, इसीलिए उन्हें 'प्रजावतीः ' विशेषण दिया गया है।[59] वर्णन हैं कि वे उत्तम हरे भरे यवादि तृणों के लिए इच्छुक होती हैं, सुखपूर्वक शुद्धजल का पान करती हैं और स्वच्छन्द विचरण करती हैं।[60]अन्यत्र भी उन्हें उत्तम तृण[61] और घास[62] खाने वाली बताया गया है। चरकर वे गोशाला में वापस आ जाती हैं।[63] वे अपने सदन में बैठती हैं। [64] उषाकाल में वे दूध दुहाती हैं।[65] पहचान के लिए गायों के कानों के ऊपर लोहे की शलाका से चिन्ह बनाने का उल्लेख प्राप्त है।[66] गाय के कानों को चिन्हित करने की प्रथा का उल्लेख पाणिनि के सूत्रों में भी किया गया हैं।[67]

गायों की सुरक्षा और समृद्धि के लिए वैदिक आर्य सतत प्रयत्नशील और जागरूक थे। एतदर्थ देवताओं से अनेकशः प्रार्थनाएं की गई हैं। एक प्रार्थना में कहा गया है कि जो गाएं इन्द्र देते हैं, वे न तो नष्ट होती हैं, न उन्हें चोर अधिकृत करता है न ही शत्रु उन्हें पीड़ित करते हैं।[68] अन्यत्र अभिलाषा व्यक्त की गई है कि चोर उसे चुराने में समर्थ न हो और पापी हिंसक भी उस पर अधिकार करने में समर्थ न हों।[69]मन्त्रों में गायों की पुष्टि और चिकित्सा के लिए देवताओं का आह्वान किया गया है।[70] गोपालन के पीछे अथर्ववैदिक आर्यो की दृढ़ धारणा थी कि गायों की पुष्टि से ही उनकी पुष्टि सम्भव है।[71]

गायों के विस्तृत विवरणों से गोवश–संवर्धन, गोसमृद्धि और संरक्षण आदि पर महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। गायों की प्रजाति सुधारने के लिए उत्तम वीर्यवान्, शक्तिसम्पन्न ऋषभों से गायों का समागम कराने का विधान अथर्ववेद में प्राप्त होता है। [72] इसी प्रकार गोवंश की पुष्टि, प्रजाति–प्रोन्नयन, दुग्धवृद्धि,विविध रोगों तथा अनेक कृमिज संक्रामक रोगों की दिव्य–चिकित्सा के वर्णन उपलब्ध होते हैं। गायों की समृद्धि ओर संरक्षण के लिए कुछ प्राप्त तथ्य उल्लेखनीय हैं। उनके संरक्षण और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना गया है कि उनका आहार और पान शुद्ध हो। उनको शुद्ध वायु में भ्रमण के लिए ले जाना आवश्यक है।[73] एक मन्त्र में निर्देश है– अवध्या तुम सदा घास खाओ और वापस आते समय शुद्ध जल पियो।[74]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायों की रक्षा और पालन–पोषण के लिए गोशाला (गोष्ठ) के निर्माण का आदेश दिया गया है।[75]

2.बैल

कृषि की प्रधानता होने के कारण अथर्ववैदिक पशुपालन में 'बैल' का विशेष महत्त्व था। कृषिसाधन योग्य हल के प्रयोग के लिए आवश्यक पशु 'बैल' को मन्त्रों में 'वाह' कहा गया है। [76] यह खेत की जुताई में सहायक होने के अतिरिक्त गाड़ी खींचने में भी उपयोगी होता था। गाड़ी खींचने में समर्थ बैल को 'अनड्वान'[77] कहते थे। ऋक्संहिता के समान ही अथर्ववेदसंहिता में भी बैल अथवा सांड के लिए वृषभ,[78] वृषन्[79] और ऋषभ[80] शब्द बहुप्रयुक्त हैं। बछड़ों का पिता और अहिंसनीया गायों का पति 'ऋषभ' हजारों प्रकार की पुष्टि के लिए प्रार्थनीय है। [81] उसे इन्द्र के स्वरूप को धारण करने वाला कहा गया है।[82] उसे रूपों को बनाने वाला और पशुओं का जनक भी बताया गया है। [83] ऋषभ की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सहस्रशः तेजों से युक्त और दुग्धदाता ऋषभ गायों में सब प्रकार के धनों को विधृत करता है।[84]

3.अश्व

अथर्ववैदिक आर्यों के पालतू पशुओं में अत्यधिक बलवान् चपल और शीघ्रगामी होने के कारण अश्व का महत्त्व था। यह उनके रथ खींचता था और सवारी के काम भी आता था। अपनी तीव्रगति के कारण यह विशेष लोकप्रिय और उपयोगी था। घोड़े के लिए अथर्वमन्त्रों में मुख्य रूप से अश्व[85], वाजिन्[86] और अर्वन्[87] शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके निवास के लिए स्थान होते थे, जहां यह घास खाता था।[88] घोड़ा बांधने के लिए रस्सी का प्रयोग किया जाता था, जिसे 'अश्वाभिधानी' कहा गया है। [89] सम्भवतः गाय और उसके वत्सों की सुरक्षा के लिए भी अश्वों की सवारी का उपयोग किया जाता था, इसलिए एक मन्त्र में एतदर्थ वाजी से प्रार्थना है। [90] वाजीसूक्त में अश्व के द्रुतगामी होने की अभिलाषा की गई है, 'हे अश्व! रथ से संयोजित होकर तुम वायु के समान वेग वाले हो। इन्द्र को प्रेरणा देने में मन के समान वेग वाले होकर गतिशील हो। संर्वधन के स्वामी मरुत् तुम्हे संयोजित करें। त्वष्टा देव तुम्हारे पैरों में वेग भरें।[91] इससे प्रतीत होता है कि अश्व दौड़ में भाग लेते थे। दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि 'जो वेग तुम्हारे हृदय,बाज पक्षी, वायु और परितोगामी सूर्य में है, उसी वेग से वेगशाली होकर युद्ध में पार लगाने वाले तुम विजय करो।[92] इससे अश्वों की युद्ध में आवश्यकता का बोध होता है। अतः सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अश्व की महत्ता स्वीकार्य थी।

अश्व का सम्बन्ध इन्द्रदेव से अधिक माना गया है। इन्द्र ही अश्वों के स्वामी हैं।[93] घोड़ों के पालन में कुशल होने से इन्द्र को 'हरिपाः' विशेषण दिया गया है।[94]

4.भेड़, बकरी आदि अन्य पालतू पशु

अन्य पालतू पशुओं में अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी भेड़ और बकरी माने गये हैं। इनके नाम का कई बार साथ–साथ उल्लेख हुआ है।[95] एक सूक्त में अज को वेदि पर ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानें का वर्णन है।[96] इसकी आध्यात्मिक व्याख्याएं भी की गई हैं [97]'अजशृंगी' ओषधि बड़ी ही वीर्यशालिनी बताई गई है।[98] अन्यत्र श्वेत पैरों वाली भेड़ की चर्चा प्राप्त है।[99]अन्य पालतू पशुओं में ऊंट, कुत्ता, गधा, हाथी आदि का नामतः उल्लेख तो अवश्य प्राप्त होता है किन्तु अथर्ववेदसंहिता के मन्त्रों के आधार पर इनके पालन और उपयोग आदि पर प्रायः कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है।

पशुचिकित्सा

संहिता में पशुचिकित्सा पर भी विचार किया गया है। निवास, भोजन, पान, विहार और स्वच्छता आदि का ध्यान रखने पर भी यदि पशु बीमार पड़ जाए, तो ओषधियों का प्रयोग करना चाहिए। अथर्ववेद [100] में कहा गया है कि प्रशंसित, गुणयुक्त और मोल से प्राप्त (अभिष्टुताः अपक्रीताः) ओषधियां गौ, अश्व आदि पशुओं को निरोग रखें। इस सूक्त में श्रेष्ठ ओषधियों का परिगणन करते हुए अश्वत्थ, कुश,सोग, अन्न, व्रीहि और यव को अमर ओषधियां कहा गया है।[101] इनके प्रयोग–प्रकार अवश्य ही अन्वेषणीय हैं। एक अन्य सूक्त में महौषधि, अरुन्धती, सहदेवी ओषधियों से प्रार्थना है कि वे बैलों, दूध देने वाली गायों, गर्भिणी गायों और अन्य चतुष्पद प्राणियों के लिए उत्तम स्वास्थ्य और सुख प्रदान करें। वहीं काला अगर, सुभगा शालपर्णी, जीवला(पिप्पली) आदि ओषधियां भी बताई गई हैं।[102] ये ओषधियां कोष्ठशोधक, क्रिमिनाशक और त्रिदोषनाशक हैं। अतः पशुओं के पेट में अफारा, क्रिमि और बाह्य क्रिमियों के आक्रमण आदि से उनकी रक्षा करती हैं। गायों में रोगनिवारणार्थ और पुष्टि हेतु अनेक विधानों का निर्देश भी हुआ है[103] गाय आदि पशुओं के स्वास्थ्य के लिए आंजनमणि और दुग्ध वृद्धि के लिए औदुम्बरमणि के प्रयोग का विधान किया गया है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि अथर्ववैदिक आर्यो के पशुपालन का प्रधान उद्देश्य जीवन निर्वाह के लिए बहुविध साधन जुटाना ही था। पशु उनके धन थे, तो पशुपालन उनका प्रमुख उद्योग। निश्चय ही पशुओं के द्वारा उनके भोजन, युद्ध, धर्म, व्यवसाय व्यवहार और व्यवस्था सम्बन्धी और अवस्था संबन्धी अनेक कृत्य पर्याप्त रूप से प्रभावित हुए थे।

पादटिप्पणियां

1.अथर्व0 2.26

2. अथर्व0 3.28

3.सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च। अथर्व0 3.28.6

4.यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि। अथर्व0 12.2.1

5.त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः। अथर्व0 17.1.6

6. पशूनां सर्वेषां , स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्। अथर्व019.31.1

7. पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्। पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्।। अथर्व 19.31.5

8. रुद्रं पशुपतिश्च यः। अथर्व0 11.6.9

पशुपते नमस्ते। अथर्व0 11.2.9

य ईशे पशुपतिः पशूनाम्। अथर्व0 2.34.1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः। अथर्व0 2.28.3

10. पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि। अथर्व07. 9.4

11. अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः। अथर्व0 7.14.3

12. वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्वि..........अथर्व0 3.31.3

13. ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति। उलं वृकं पृथिवी दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् अथर्व0 12.1.49

14.यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे। अथर्व06. 70.2

15.या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये। अथर्व0 6.38.2

16. अथर्व02.27.2

17. अथर्व0 8.6.10

18. अथर्व03.9.4,4.37.11

19. अथर्व0 20.127.2

20. अथर्व0 4.14.6

21. अथर्व0 3.29.3, 5.21.5

22. शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यति।अथर्व0 11.2.25.

23. कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता। यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः।। अथर्व0 3.9. 9

24. ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु। अथर्व0 3.10.6

25. सायणभाष्य—गोरश्वाजाविपुरुषगर्दभोष्ट्राख्याः।

26. गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्। अथर्व0 4.21.5

27.धेनुं सदनं रयीणाम्। अथर्व0 11.1.34

28. बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः। अथर्व0 10.10.1

29. इमा या गावः स जनास इन्द्रः। अथर्व0 4.21.5.

30. एतत् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।अथर्व0 9.7. 25

31. सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयिं गोपतौ।।
अथर्व0 2.26.4

32. इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव।
अथर्व0 3.28.4

33. घृतेनास्मान्त्समुक्षत। अथर्व0 7.75.2

34. यूयं गावो मदेयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्। भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु।। अथर्व0 4.21.6

35. अथर्व0 4.21.6

36. पशून् यमिनि पोषय। अथर्व0 3.28.4

37. शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।।
अथर्व0 3.28.3

38.तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु।
अथर्व0 10.9.12

39. यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः। अथर्व0 3.28.9

40. अथर्व0 4.21.1

41. कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्। अथर्व0 4.38.6,7.

M. Bloomfield, *Hymns of the Atharvaveda*, (S.B.E. 42), 1967 , p. 414; Macdonell and Keith, *Vedic Index of Names and Subjects*, Varanasi, 1958, Vol I,p. 140

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

42. केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथम दुहाना ।अथर्व0 8.9.24
43. *Vedic Index of Names and Subjects*, Vol I, p. 229
44. त्रीणि वै वशा जातानि विलिप्ती सूतवशा वशा । अथर्व0 12.4.47
45. सातवलेकर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, पारडी 1958, भाग4 खण्ड 12, पृ0 90.
46. अथर्व0 10.10, 12.4
47. अथर्व0 10.9
48. बलदेव उपाध्याय, वैदिक आर्यो का कृषिकर्म तथापशुपालन, गोसेवा अंक, कल्याण, वर्ष 69, संख्या 1, पृ0 133–34
49. कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामघर्वणे सुदुधां नित्यवत्साम् ।अथर्व0 7.104.1
50. विश्वनाम्नीः । अथर्व0 7.75.2
51. इमं गोष्ठमिदं सदः । अथर्व0 7.75.2, अयं घासो अयं व्रजः । अथर्व0 4.38.7
52. इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु । अथर्व0 2.26.2
53. अथर्व0 3.14.3, 7.75.2
54. पदज्ञा स्थ रमतयः । अथर्व0 7.75.2
55. वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः । अथर्व0 3.14.6
56. इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत । इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः । अथर्व0 3. 14.4
57. अथर्व0 9.7
58. अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः । अथर्व0 9.4.21
59. अथर्व0 4.21.1, 5.75.1
60. प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।अथर्व0 7.75.1
61. सूयवसाद् भगवती हि भूयाः । अथर्व0 7.73.11
62. अयं घासो अयं व्रजः । अथर्व0 4.38.7
63. आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।अथर्व04.21.1
64. असदन् गावः सदने । अथर्व0 7.96.1
65. इन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः । अथर्व0 4.21.1
66. लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ।। अथर्व0 6.141.2
67. अष्टाध्यायी 6.3.115
68. न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।अथर्व0 4.21.3
69. मा व स्तेन ईशत माघशंसः । अथर्व0 4.21.6, 7. 75.1
70. वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भेम्ने चिकित्सतु ।। अथर्व0 6.141.1
71. सुयवसाद् भगवती हि भूया अघा वयं भगवन्तः स्याम । अथर्व0 7.73.11
72. अथर्व0 9.4
73. येषां सहचारं वायुः जुजोष । अथर्व0 2.26.1
74. अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती । अथर्व0 7.73.11
75. व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः । अथर्व0 19.58.4, 4.22.1, 3.14.1, 3.14.5
76. अथर्व0 3.17.6
77. अथर्व0 4.11.10
78. ऋ0 10.102.6, 10.102.9, 10.103.1; अथर्व0 9. 1.10, इत्यादि ।
79. ऋ0 10.102.12, 10.115.2; अथर्व0 8.5.12,4. 24.4, 9.4.1 इत्यादि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

80. ऋ0 6.28.8, 10.166.1; अथर्व0 3.6.4., 4.24. 4,9.4.1 इत्यादि।

81. पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु।अथर्व0 9.4.2

82. इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः। अथर्व0 9.4.7

83. त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्। अथर्व0 9.4.6

84. साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्। अथर्व0 9.4.1

85. अथर्व0 19.55.1

86. अथर्व0 6.92.1

87. अथर्व0 6.92.2

88. अश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै। अथर्व0 19.55.1

89. अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या। अथर्व0 4.36.10

90. कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्। अथर्व0 4.38.6,7.

91. वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः।

युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं

दधातु। अथर्व0 6.92.1

92. जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः।6.92.2

93. इन्द्र स्थातर्हरीणाम्। अथर्व0 20.64.5

94. अथर्व0 20.31.3

95. यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः। 5.21.5, 7.60.5, 8.7.25

96. आ नयेतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्। अथर्व0 9.5.1(इस मन्त्र में मुमुक्षु का वर्णन हो जो कि निज आत्मस्वरूप के 'अज' अर्थात् जन्ममरण से रहित जानकर मोक्ष पाने का अधिकारी है (सम्पा.)

97. सातवलेकर, अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, 1966, भाग 3, काण्ड 9, पृ0 45

98. एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती। अजशृङ्गी..... । अथर्व0 4.37.6

99. अविस्तस्मात्प्र मुञ्चन्ति दत्तः शितिपात् स्वधा 3.29.1

100.अथर्व0 8.7.11

101. अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ।। अथर्व0 8.7.20

102. अथर्व0 6.59

103. अथर्व0 4.21

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (252-263) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद की सामाजिक मान्यतायें –आज के सन्दर्भ में

हर्षा कुमारी, प्राध्यापिका
श्रीवेंकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अथर्ववेद के अध्ययन से तत्कालीन पारिवारिक जीवन,सामाजिक जीबन,आर्थिक जीवन एवं राष्ट्रीय जीवन की विभिन्न मान्यताओं एवं अथर्दवेदकालीन उदार चिन्तन से हम परिचित होते हैं।

क) परिवार के सन्दर्भ में अथर्ववेद की मान्यता–

पिता पुत्र सम्बन्ध–

वैदिक आर्यो के यह विचार थे कि पिता को अपने पुत्र के मंगल के लिए अनायास लभ्य होना चाहिए।[1]

पुनः उनका मानना है कि पिता पुत्र की प्रत्येक बात सुने। एक स्थल पर वैदिक ऋषि देवों से कहते पाये जाते हैं कि जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है उसी प्रकार हमारे लिए आहूत होकर बातें सुनो।[2]

वस्तुतः पिता के द्वारा अपने व्यस्ततम समय से भी पुत्र के लिए समय निकालना,उसकी बातों को सुनकर उसे सही परामर्श देना ऐसी मान्यता मात्र अथर्ववेदकालीन युग के लिए ही नहीं अपितु हर युग के लिए सराहनीय है।

माता पिता के प्रति संतान की सोच–

केवल माता–पिता ही अपनी सन्तान का ध्यान नहीं रखते बल्कि जब संतान बड़े हो जाते तो वे भी अपने माता–पिता की चिन्ता करते। वैदिक आर्य माता–पिता की रक्षा की प्रार्थना रुद्र देव से करते दिखाई देते हैं– आप मेरे पिता को मत मारना न ही माता का वध करना।[3]

पुनः अथर्ववेद के 1.31.4 में भी ऐसी भावना व्यक्त की गई है। **स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।**

अर्थात् माता के लिए, पिता के लिए, गायों के लिए, पुरुषों के लिए, सारे ही जगत् के लिए कल्याण हो।

पारिवारिक मान्यतायें–

वेद में पुरुष यह घोषणा करता है कि हे स्त्री! तू ऋग्वेद के समान है मैं सामवेद हूँ।[4] वस्तुतः ऐसा कहकर वह स्त्री पुरुष की समानता को ही बताता है।

देवों से प्रार्थना की गई है कि शत्रुओं द्वारा स्त्रियों का मान भंग न हो।[5]

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड में गृह–समृद्धि की सूचना देने वाला एक सूक्त है, जिसमें वैदिक आर्य यह कहता है कि हे मेरे घर तू जहां बना है वहां चिरकाल तक स्थिर होकर खड़ा रह। तेरे अन्दर घोड़े हों, गाय हों। तुझमें रहने वाले लोग सदा परस्पर सत्य और मधुर वाणी बोलें।तू अन्न,दूध से भरपूर हो और हमारी महान् सुख समृद्धि के लिए सदा **ऊंची खड़ी रह।**[6] **यहां न केवल गृह की दृढ़ता**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उसके सुदृढ़ भौतिक बनावट) का वर्णन है अपितु उसके ऐश्वर्य का भी वर्णन है।

पुनः अथर्ववेद में ही इन्द्र से एक मन्त्र में मंगलकारी गृह प्रदान करके वहां से हिंसक शक्तियों को दूर करने की प्रार्थना है।[7] स्पष्ट है कि वैदिक आर्य पारिवारिक जीवन में भी हिंसा से दूर रहना चाहते थे और परिवार में पूर्ण शान्ति के इच्छुक थे।

परिवार के लोग परस्पर अनुकूल आचरण करने वाले हों ऐसी कामना की जाती थी– पुत्र अपने पिता के अनुकूल आचरण वाला हो और वह अपनी माता के साथ प्रीतियुक्त विचार वाला हो। पत्नी अपने पति के प्रति माधुर्य युक्त एवं शान्तिदायिनी वाणी बोले।[8]

भाई अपने भाई से द्वेष न करे और बहिन अपनी बहिन से द्वेष न करे। एक मार्ग पर चलने वाले और एक ही कर्म करने वाले होकर कल्याणी वाणी के द्वारा परस्पर सम्भाषण करो।[9]

(ख) नैतिक मान्यतायें –

सौहार्द–

अथर्ववेद में वैदिक आर्य सौहार्द की याचना करता हुआ कहता है कि अपनों से मेरा सौहार्द हो, अपरिचितों से सौहार्द हो, हे अश्वी देवो, तुम मेरे जीवन में सौहार्द की भावना को केन्द्रित कर दो–

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः। संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्।[10]

माधुर्य–

अथर्ववेद में ऋषि यह भी कामना करता दिखाई देता है कि मेरा घर से बाहर निकलना, कर्म करने के लिए दूर–दूर जाना, वापस लौटना सब मधुमय हो, मैं वाणी से मधुमय ही बोलूं, मैं शहद के समान मीठा हो जाऊं– **मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।**

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः।[11]

समृद्धि एवं यश–

वैदिक आर्य की कामना है–हम सब में यशस्वी बनें।[12]

समृद्धि यश की जननी है अतः वह वैदिक ऋषि कीर्ति के लिए धन का दान अपने देव से करने को कहता है–अथर्ववेद में ऋषि अश्विनी देव से प्रार्थना करते दिखाई देते हैं कि हमारे घर को रमणीय धन एवं गौ से युक्त करने के लिए अपने रथ को हमारे घर की ओर ले चलो।[13]

पर हां वैदिक आर्य इस विषय में पूरे सावधान रहते हैं कि धन किसी अनुचित माध्यम से न आया हो। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि मनुष्य को यह निरीक्षण करते रहना चाहिए कि कहीं कोई पाप की लक्ष्मी तो हमारे पास नहीं आ गई है–

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव। रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम्।[14] अर्थात् जैसे कोई अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौशाला में प्रविष्ट गौओं की पड़ताल करता है कि यह मेरी है या नहीं,उ सी प्रकार मैं अपने समीप आई हुई लक्ष्मियों का निरीक्षण करता हूं। जो पुण्य की लक्ष्मियां हैं उन्हें मैं अपने पास रमने देता हूं, किन्तु जो पाप लक्ष्मियॉ हैं उन्हें दूर कर देता हूं।

असमृद्धि से मुक्ति–

देश आर्थिक संकट से मुक्त रहे, प्रजा में असमृद्धि, निर्धनता, नग्नता, क्षुधा आदि न रहे, यह वैदिक समाज एवं वैदिक राष्ट्र का आदर्श था–

पुरोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि। वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते।।[15] अर्थात् हे असमृद्धि, तू हमारे देश से दूर हो जा। हम तेरे शस्त्र को परे कर देते हैं। हम जानते हैं कि घातक है, तू व्यथा पहुंचानेवाली है।

अथर्ववेद में यह स्पष्ट विचार व्यक्त किया गया है कि कोई भी व्यक्ति, जिसनें भूमि पर जन्म लिया है, भूखा–प्यासा न रहे–

एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत्।[16]

(ग)–कृषि सम्बन्धी मान्यता

अथर्ववेद में अन्नप्राप्ति के साधनरूप में कृषि के महात्म्य को स्वीकार करते हुए उसे मनुष्य के जीवन निर्वाह का मुख्य आधार माना गया है– **ते कृषिं च शस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति**।[17] समाज में सुख और समृद्धि को कृषि द्वारा ही सम्भव बताया गया था।[18]

राज्य में कृषि की व्यवस्था का समस्त दायित्व राजा का माना गया था।तभी कहा गया है कि राजा हमारे कृषि का विस्तार करें– **नो राजा नि कृषिं तनोतु।**[19]

सभी को अन्न दे कर प्रसन्न करने वाले **कृषक की प्रसन्नता की कामना भी अथर्ववेद में की गई है।**[20]

(घ) कर्मपरक मान्यतायें–

अकर्मण्यता सदाचारी मानव को शोभा नहीं देती परन्तु कर्म अनाचारी भी करता है, चोरी करना, डाका डालना,किसी की हत्या करना आदि कार्य भी कर्म की श्रेणी में आएगा परन्तु यह सत्कर्म नहीं अपितु दुष्कर्म हैं, दुष्कर्मी व्यक्ति को कर्मशीलकी संज्ञा नहीं दी जा सकती है। वैदिक जीवन में दुष्कर्म एवं पाप के लिए कोई स्थान नहीं है।पापों से मुक्त रहने के लिए वेदों में शतशः प्रार्थनाएं मिलती हैं। वैदिक स्तोता के इन उदगारों में पाप मुक्ति के लिए कैसी आतुरता दिखती है–दिन और रात से, सूर्य–चन्द्रमा से, आदित्यों से, वायु से, बादल से, आकाश से, दिशाओं से हम कहते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ाये।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः।[21]
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः।[22]

पुनः वैदिक आर्य कहते हैं जागते या सोते हुए भी हम कोई पाप करें तो उस पाप रूप अपराध से हे देव आप! मुझे छुड़ाइये।

यदि जाग्रद यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम्। भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम्।।[23]

इसमें दो भाव निहित हैं, एक तो यह कि सोते में भी हमसे पाप न हों, दूसरा यह कि जागते सोते हुए हम मन से भी पापाचार की बात न सोचें।

अथर्ववेद में ऋषि यह प्रार्थना करता है कि हे पृथिवी! मनुष्यों के चलने के तथा रथादि के चलने के जो मार्ग हैं, उन मार्गो पर धर्मात्मा और पापात्मा दोनों ही चलते हैं। जो चोर और शत्रुओं से रहित मार्ग हैं वही कल्याणप्रद मार्ग हमें प्राप्त हों उसी के द्वारा तुम हमें सुखी करो।[24]

सत्कर्म वह है जिसमें सबके कल्याण की नहीं तो कम से कम अधिकांश के कल्याण की भावना अवश्य हो, वैदिक आर्यो ने भी ऐसे ही कर्म करने की प्रवृत्ति के लिए प्रार्थना की,साथ ही उनकी दृष्टि में अकर्मण्य व्यक्ति के लिए सम्मान भी नहीं था।

कर्मशील मनुष्य को ही विजय प्राप्त होती है, अथर्ववेद में मानव के कर्म के प्रति

विचार कुछ इस प्रकार बताया गया है– मेरे दाहिने हाथ में कर्मकारित्व स्थित है और बायें हाथ में विजय।[25] इससे यह भी ध्वनित होता है कि "कर्म का फल अवश्यम्भावी है"।

वेदों में स्थान–स्थान पर सौ वर्षो तक जीने की कामना की गई है परन्तु कहीं भी क्षीण शक्तिवाला होकर जीने की कामना नहीं की गई है वैदिक आर्य कहते हैं कि मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, दांत–अक्षुण्ण और केश पलित रोग से रहित रहें। मेरी बाहुओं में बल रहे, जांघों में ओज और पांवों में खड़े रहने की शक्ति रहे। आत्मा अहिंसित और अंग पाप से शून्य हो।[26]

इस प्रार्थना में स्वावलम्बी होकर कर्मशील रहने की भावना विद्यमान है पुनः कहा गया है कि मैं जीवन भर अपने दांतों से खाता रहूं शत्रुओं के शरीरों को अपने शरीर से दबा सकूं।[27] इन्द्रियों की शक्ति की कामना उसने कर्मशील रहने के लिए ही की।

अथर्ववेद में एक मन्त्र मिलता है– हे हूयमान द्रव्य! तुम साक्षात् ओज हो, मुझे ओज प्रदान करो। तुम सामर्थ्य हो मुझे सामर्थ्य दो। तुम चक्षुःशक्तिस्वरूप हो, मुझे चक्षु शक्ति दो।[28] वस्तुतः आयु, ओज और बल आदि की कामना वैदिक आर्यो ने इसलिए की है कि कर्म क्षेत्र के सदृढ़ प्राङ्गण में वो पराभूत न हो जायें।

ड.)– मानवकल्याण एवं विश्वशान्ति परक मान्यतायें–

वैदिक आर्य अपने जीवन के चारों ओर कल्याण ही कल्याण देखना चाहते थे, कल्याण ही कल्याण सुनना चाहता थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी अभिलाषा थी मेरे कान कल्याणकारी बातों को सुनें मैं मंगलमयी प्रशंसात्मक बातों को सुनूं।[29]

अमंगल वचनों से वह सदा बचना चाहते थे इसलिए उनकी प्रार्थना थी– अमंगल वाणियां हम पर आकमण न करें।[30] अथर्ववेद का विचार है कि जो हमारे कल्याण के विरुद्ध है, उनका साथ छोड़ो और कल्याणकारी शक्तियों को साथ लेकर पार करो।[31]

अभय मन की एक उत्कृष्ट स्थिति है जिसमें मनुष्य सत्कार्य में निर्बाध गति से प्रवृत्त हो सकता है। अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के 15वें सूक्त में ऋषि ने अपने प्राणों को निर्भीक होने और भयभीत न होने का परामर्श किया है– जैसे देवलोक और पृथ्वी न तो कभी भयभीत होती है और न हिंसित ही, उसी प्रकार हे मेरे प्राणों, तुम भी भयभीत न होओ।[32]

वैदिक जीवन शान्ति का परमधाम है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, और अशान्ति का वातावरण वेद को प्रिय नहीं है। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि हम जो कार्यों की पूर्व–योजनाओं बनाते हैं वे षांति का अनुसरण करने वाली हों, हमारे कृत और अकृत कार्य शांति अनुसरण करने वाले हों। हमारा भूत और वर्तमान, भव्य सब कुछ शान्त हो–

शान्तानि पूर्वरूपाणि, शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्। शान्तं भूतं च भव्यं च, सर्वमेव शमस्तु नः।[33]

पुनः वैदिक ऋषि ने देवों से,मानवों से, प्रकृति की एक एक वस्तु से शान्ति की पुकार की है–

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु, शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।[34]

च) शिक्षा परक मान्यतायें

वैदिक आर्य का यह दृढ़ विश्वास था कि एक बच्चा अपनी प्रारम्भिकशिक्षा माता–पिता के द्वारा ही प्राप्त करता है इसलिए एक स्थान पर वो कहते पाये जाते हैं कि हे इन्द्र तुम हमारे लिए ज्ञान लाओ जैसे पिता पुत्र के लिए लाता है।[35]

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य–सूक्त में आचार्य को मृत्यु, वरुण सोम, ओषधी और पयः कहा गया है– **आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः _ पयः। जीमूता आसन् सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम्।**[36]

वस्तुतः गुरु के ये विशेषण मात्र विशेषण न होकर तत्कालीन समाज के गुरुओं के आवश्यक गुण थे। इससे शिक्षको के चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। शिक्षक को मृत्यु होना चाहिए, उसके अन्दर मार सकने का सामर्थ्य होना चाहिए। विद्यार्थी यदि कोई कुसंस्कार लेकर आया है तो उन्हें मारे बिना शिक्षक शिष्य का निर्माण नहीं कर सकता। शिष्यों के कुसंस्कार कई प्रकार के होते हैं– उच्चारण सम्बन्धित दोष, मिथ्या ज्ञान सम्बन्धित दोष, नैतिक दृष्टि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसंस्कार जैसे–असत्य भाषण, चोरी आदि। एक शिक्षक की सफलता इसमें है कि वह शिष्यों के सारे कुसंस्कार को मार सके। मारना भी एक कला है जिसमें शिक्षकों को निपुण होना आवश्यक है वस्तुतः शिक्षकों की स्थिति एक कुशल बालमनोविज्ञानवेत्ता की भांति होनी चाहिए।

शिक्षक का दूसरा गुण वरुणत्व है।वरुण वेदों में अपने पाश, सहस्र गुप्तचरों के लिए प्रसिद्ध हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति अपराध करता है वह वरुण के गुप्तचरों से छिपा नहीं रहता झट ही वो उन्हें अपने पाषों में बॉध लेता है।शिक्षकों की दृष्टि भी वरुण की तरह पैनी होनी चाहिए शिष्यों की प्रत्येक गतिविधियों की जानकारी होने पर ही शिक्षक यथाक़ाल उचित कारवाही कर सकता है।

शिक्षकों को सोम की तरह अर्थात चांद की तरह सौम्य, आकर्षक एवं प्रिय होना चाहिए। उसका व्यक्तित्त्व शिष्यों को आह्लादित, आकर्षित करने वाला होना चाहिए। वेद में सोम का दूसरा अर्थ सोमलता भी होता है जैसे सोमलता का रस अपूर्व वीरता, बुद्धि को प्रदान करता है वैसे ही शिक्षक शिष्यों में इन गुणों को भरने वाला होना चाहिए।

शिक्षक को ओषधी की तरह होना चाहिए।जैसे ओषधी रोगों को दूर करती है वैसे ही शिक्षक के ऊपर छात्रों के शारीरिक एवं नैतिक निर्माण का उत्तरादायित्व है। आजकल विद्यालयों में फीजिकल एजुकेशन, एवं मोरल क्लास को प्रारम्भ करने के पीछे यही धारणा है।

शिक्षक पयः या दूध भी है। दूध पुष्टिकारक होता है वैसे ही शिक्षक को छात्र की सर्वतोमुखी पुष्टि करने वाला होना चाहिए। छात्र को शिक्षक के समीप यह अनुभव होना चाहिए कि मेरे ज्ञान, मेरे चरित्र में गुरू के सौजन्य से निरन्तर वृद्धि हो रही है।

अथर्ववेद के प्रथम सूक्त में शिष्यों की ओर से शिक्षक को कहलाया है कि आप देव मन के साथ पुनः पुनः हमारे बीच में आइए। **पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह।**[37]

इससे सूचित होता है कि वैदिक–शिक्षक शिष्य में ऐसा मधुर प्रेम पूर्ण सम्बन्ध है कि शिष्य शिक्षक को बार बार अपने मध्य आने के लिए निमन्त्रित करते हैं। दूसरी बात यह है कि शिक्षक को शिष्यों से व्यवहार करते समय सदा देव मन से युक्त होना चाहिए। कभी शिक्षक दुर्बलतावश अपने मन को शिष्यों के प्रति अदेव न होने दे। इसी सूक्त में आगे कहा गया है–हम शिक्षक को निमन्त्रित करते हैं शिक्षक हमें निमन्त्रित करे– **उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।**[38]

पारस्परिक स्नेह, विनय, आदर, शिष्टाचार एवं माधुर्य का यह अनुपम निदर्शन है।

शिक्षक की शिक्षण शैली कैसी हो इस पर प्रकाश डालते हुए अथर्ववेद में कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है– हे गुरुवर आप हमें ऐसे खेल खेल में पढ़ाइए कि जो कुछ मैं सुनूं वह मुझमें ही रहे– **वसोंस्पते नि रंगयमय्येवास्तु मयि श्रुतम्।**[39] पुनः अथर्ववेद में ही कहा गया है जो कुछ हम गुरु मुख से सुनें उससे संगत रहे,वह हमें विस्मृत न हो–**सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि।**[40] बार बार ऐसा कहना कि जो कुछ हम सुने हमें विस्मृत न हो ऐसा कहने के पीछे सम्भवतः यह सोच रही होगी कि अध्यापक छात्रों को इस शैली से समझाये कि छात्रों को कक्षा में ही पाठ स्मरण हो जाए।

पुनः अर्थववेद में ही कहा गया है कि शिक्षक को चाहिए कि जैसे प्रत्यंचा से धनुष्कोटियों को तान दिया जाता है वैसे ही अपनी वाणी से पाठ्यविषय को ऐसा तान दें स्पष्ट कर दें कि वह कभी विस्मृत न हो –

इहैवाभि वि तंनूमि आर्त्नी इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।[41]

छ) पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी मान्यतायें–

वैदिक संस्कृति यज्ञ परक संस्कृति थी यज्ञ में अग्नि, घृत, फूल फल आदि तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती थी। यज्ञों से संबंधित वस्तुओं के प्रति सम्मान एवं उनके संरक्षण की भावना यहीं से शुरू हुआ वैदिक आर्यो का प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण, प्रकृति से उसका अटूट संबंध।

गो संरक्षण–

यज्ञ में गौ के घृत आदि की आवश्यकता पड़ती है परिणामस्वरूप गौ को अन्वध्या माना गया तथा उसे मारने वालों को गोली से उड़ाने की बात कही गई।[42]

पुनः अथर्ववेद में कहा गया है अन्वध्या तुम सदा घास खाओ और वापिस आते समय शुद्ध जल पिओ–**अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।**[43] गाय को शुद्ध वायु में भ्रमण के लिए ले जाने की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया है– **येषां सहचारं जुजोष।**[44] इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य गायों पर बहुत ध्यान देते वो मात्र इसे एक पशु मानकर इसका दोहन ही नहीं करते अपितु इनके स्वास्थ्य के प्रत्येक पहलू पर ध्यान देते।

इसी कम में उनको गायों की रक्षा और पालन पोषण के लिए गोशाला के निर्माण का आदेश दिया गया है–**व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः।**[45]

अथर्ववेद में पशुचिकित्सा पर भी विचार किया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रशंसित, गुणयुक्त और मोल से प्राप्त ओषधियां गौ, अश्व, आदि पशुओं को निरोग रखे।[46]

गायों के प्रति उनका प्रेम उनकी श्रद्धा यहां तक थी किगायों की सुरक्षा और समृद्धि के लिए उन्होनें देवों से प्रार्थना भी की, अथर्ववेद में उनके द्वारा देवों से प्रार्थना का उल्लेख मिलता है कि चोर उसे चुराने में समर्थ न हों और पापी हिंसक भी उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अधिकार करने में समर्थ न हों–**मा व स्तेन ईशत माघशंसः**।[47] पुनः गायों की पुष्टि और चिकित्सा के लिए भी देवताओं का आह्वान किया गया है– **वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम्। इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद्रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु।।**[48]

वृक्ष संरक्षण–

वैदिक आर्य वृक्ष–वनस्पति के गुणों को जानते थे अतएव अथर्ववेद में कहा गया है कि वृक्ष–वनस्पतियों में सभी देवों की शक्तियाँ विद्यमान हैं। ये मनुष्य को जीवन–शक्ति देती हैं और उसकी रक्षक हैं।[49]

एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि ओषधियाँ प्रदषूण को नष्ट करती हैं इसलिए इन्हें 'विषदूषणी' कहा जाता है।[50]

वैदिक आर्य वृक्ष के गुणों को मात्र जानकर ही वह सन्तोष नहीं कर लेते थे अपितु उसके संरक्षण के लिए भी कृत संकल्प दिखाई देते थे।

अथर्ववेद में कहा गया है कि वृक्ष को ऐसे काटें कि उससे हजार अंकुर फूँट जाएं अर्थात् उसे ठूंठ न बनाया जाए[51]

भूमि संरक्षण –

वैदिक आर्यो ने भूमि को अपनी माँ तथा अपने को उसका पुत्र बताया[52] इस माँ विशेषण के द्वारा उन्होंने कई बातों को गूढ़ रूप में कह दिया वस्तुतः जिस तरह एक माँ अपने सभी संतानों में चाहे वह अमीर हो या गरीब, स्वस्थ हो या शारीरिक अथवा मानसिक दोष से युक्त हो, मूर्ख हो कुशाग्र बुद्धि का हो सभी को समान मानती है उसी प्रकार पृथिवी अपने ऊपर रहने वाले सभी मनुष्यों, पशुओं, वृक्षों में कोई भेद नहीं रखती। सबको अपनी सम्पदा समान रूप से बांटती है, हर के ऊपर अपना प्यार बनाएँ रखती हैं तभी तो अथर्ववेद में पृथिवी रूपी माँ को बचाने के लिए पुत्र की तरह ऋषि घोषणा करते हैं मैं अपनी पृथिवी माँ के लिए उसके दुःख निवारण के लिए हर कष्ट सहने को तैयार हूँ और प्रयत्न से सब शत्रुओं को परास्त करूँगा। एक भी शत्रु को रहने नहीं दूंगा।[53] वस्तुतः पृथिवी का दुख उसका प्रदूषण और उसका पोषण ही है।

अथर्ववेद में पृथिवी के कल्याणमयी रूप का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं– हे पृथिवी! तुम्हारे बर्फ से ढके, ऊँची चोटियों वाले पर्वत तथा तुम्हारे वन भी सुख देने वाले हो, तुम सबका भरण पोषण करने वाली, कृषि कर्म से युक्त, वृक्षादि को उपजाने वाली हो।[54] इस मंत्र के हर विशेषण द्वारा एक प्रदूषण रहित सस्यश्यामला धरा हमारे समक्ष आती है।बर्फ से ढके होने का मतलब है पृथिवी का तापमान नियंत्रित हो जिसके कारण हिमखंड न पिघले।

पृथिवी को क्षति न पहुँचाने की दिशा में अथर्ववेद में एक महत्त्वपूर्ण मंत्र मिलता है कि हम पृथिवी के जिस भाग को खोदते हैं उसे फिर भरें। किसी भी अवस्था में पृथिवी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचावें।[55] इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथ्वी से रत्न कोयला आदि जो भी पदार्थ निकालते हैं उससे रिक्त हुए स्थान को फिर पूर्ण करें, अन्यथा–भू–संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प, भूभाग का दब जाना, आदि संकट उत्पन्न होते हैं।

ज) सांस्कृतिक मान्यतायें–

जैसा कि उपर उल्लेख कर दिया गया है कि वैदिक संस्कृति यज्ञ परक संस्कृति थी।वस्तुतः व्याकरण के अनुसार यज्ञ शब्द 'यज्' धातु से नञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है– देवपूजा, संगतिकरण, तथा दान। यज्ञ में विभिन्न देवों की पूजा की जाती है, यज्ञ मिलकर किया जाता है, यज्ञ के निमित्त घृतादि सामग्री के लिए दान किया जाता है।

वस्तुतः इन तीनों का एकत्र अथवा पृथक्–पृथक् अन्तर्भाव ही सम्पूर्ण वैदिक समाज के लिए निर्देशित मापदण्डों में हम पाते हैं। वेदों में यत्र तत्र दान की महिमा का गुणगान किया गया है। अथर्ववेद के ऋषि का यह स्पष्ट विचार था कि ईश्वर दानी को धन देता है।वह एक स्थान पर कहता है–हे परमेश्वर ! तेरा एश्वर्य और संरक्षण दानी के लिए होता है।[56]

पितरों से भी वह दानी व्यक्ति को ही धन देने के लिए कहता है।[57]

अथर्ववेद में दानशीलता की महान् प्रेरणा देते हुए इस मन्त्र में कहा गया है –सौ हाथों से संचय कर,हजार हाथों से बांट दे।

अथर्ववेद में यह भी परामर्श दिया गया है कि जिसके अन्न को दूसरे खाते हैं,उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।[58]

यज्ञ के इस संगतिकरण की भावना हमें वैदिक समाज में साफ–साफ दिखाई देती है। अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं कि विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले विभिन्न कामों को करने वाले सभी राष्ट्रवासी देश में उसी प्रकार मिलकर रहे जैसे कि एक घर के सदस्य परस्पर प्रेम से रहते हैं।[59]

वैदिक आर्य व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा समष्टिगत लाभ की ओर अधिक ध्यान देते थे।वे चाहते थे सबका कल्याण हो, सभी आदर्श बनें, सभी सुखी हों,उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।[60] अथर्ववेद की यह प्रार्थना आओ, मिलकर ऐसी प्रार्थना करें जिससे मनुष्यों में सुमति और सद्भावना का विस्तार हो।[61] यह प्रार्थना वैदिक आर्य के उस विचार की परिचायक है जो सभी को समान रूप से उन्नत देखना चाहता है।

समता भाव के व्यवहारिक आधार के रूप में सहभोज और सहपानका स्पष्ट उल्लेख मन्त्रों में किया गया है।[62] अथर्ववेद में प्रार्थना है–तुम्हारे जलपान का स्थान एक हो, तुम्हारा भोजन मिलकर हो, तुम्हें समान स्नेहपाश में बाधंता हूं। **समानी प्रपा सह वो अन्नभाग :समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।**[63]।

भेदभाव को त्यागकर सहभोजन करने पर अन्यत्र भी बड़ा बल दिया गया है। **सह भक्षः स्याम**।[64] एकश्नुष्टीन् पद की व्याख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आचार्य सायण ने **एकविधस्यान्नस्य भुक्तिं वा** अर्थ लेते हुए समूह में एक से भोजन का तात्पर्य लिया है–

संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन् ।[65]

साथ–साथ समीप बैठकर एक–सा भोजन और पान करने से समभाव की उत्पत्ति होती है।

झ) राष्ट्र–परक मान्यतायें–

राष्ट्रिय भावना–

वैदिक आर्यो में राष्ट्रियता की भावना कूट–कूट कर भरी थी उनके स्पष्ट विचार थे कि जो ग्राम हैं, जंगल हैं, सभायें हैं, संग्राम हैं, समितियां हैं, सबमें हे राष्ट्रभूमि, तेरे प्रति हम चारु भाषण करते रहे–

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्। ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।।[66] भला ऐसे विचारों से प्रेरित समाज में राष्ट्र **द्रोह की भावना भी कैसे पनपेगी।**

यद्यपि वैदिक आर्य शान्ति में विश्वास करते थे परन्तु उनकी शान्ति की चाह उन्हें कायर नहीं बनाती थी पृथिवी मां को कष्ट पहुंचाने वाले व्यक्ति को वो माफ नहीं करते। अन्यायपूर्वक पृथिवी पर वास करने वालों को खदेड़ने की बात भूमि सूक्त में कही गई। वह उस को ठीक उसी प्रकार खदेड़ फेंके जिस प्रकार अश्व अपने शरीर पर लगी अवाञ्छित धूली को फेंक देता है।[67] अथर्ववेद में कहा गया है कि देष में रहने वाला स्वयं ही राष्ट्र के लिए बलि देने की भावना से युक्त हो–......... **वयं तुभ्यं बलिहृतःस्याम।**[68]

राष्ट्र नायक सम्बन्धी मान्यता

अथर्ववेद में कहा गया है कि इस पृथिवी को धारण करने वाले सत्य, बृहद (भौतिक उन्नति), ऋत, उग्र (दण्डविधान), दीक्षा, तप (श्रम), ब्रह्मज्ञान, यज्ञ (देवपूजा, संगति, दान) का निर्वाह करने वाला हो।[69] इन विशेषताओं के द्वारा ही एक आदर्श राजा की छवि तैयार कर दी है। वैदिक आर्य राजा से वशेन्द्रिय होने की अपेक्षा करते थे उनके स्पष्ट विचार थे कि राजा तप (चेष्टारूप संकल्प) से तथा ब्रह्मचर्य (आत्मवशेन्द्रियता) से अपने अधिकृत क्षेत्र पर शासन करता है।[70] जरा इससे हम आज के नेताओं की तुलना करें जो हमारे आज के राष्ट्र नायक हैं जिनमें लगभग हर चौथे पर बलात्कार,हत्या,चोरी आदि का मुकदमा चल रहा है।

वैदिक आर्यो की कामना थी कि हमारे राष्ट्र का अधिनायक सदा विजयी रहे, कभी पराजित न हो।राजाओं में अधिराज होकर शोभा पाये। वह कर्मकुशल, प्रशंसनीय, वन्दनीय तथा प्रजा की पहुंच में रहनेवाला हो–

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह।।[71]

राजा–प्रजा कर्त्तव्यसम्बन्धी मान्यता

राज्य में जब राजा का राज्याभिषेक होता था तथा वह प्रजा के साथ नूतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरी में प्रवेश करता तो उस समय जो मन्त्र पढ़े जाते थे वो इतने सार गर्भित थे जिनकी उपयोगिता किसी भी युग में कम नहीं होगी–

प्रजापति प्रजाभिरुदकामत् तां पुरं प्रणयामि वः। तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु।[72] अर्थात् राजा प्रजापति होता है।राजा की उन्नति प्रजाओं पर निर्भर है।प्रजा उन्नत होगी तो राजा भी उन्नत कहलाएगा,प्रजा का अधःपतन होगा तो राजा भी अधःपत्ति कहलाएगा।

पुनः कहा गया है कि समुद्र राजा है, नदियां प्रजाएं हैं, उनकी अपनी एक नगरी है। ऐसी ही नगरी में मैं तुम्हें प्रवेश कराता हूं। मिलकर इसमें प्रवेश करो। यह नगरी तुम्हें सब सुख और रक्षाएं प्रदान करती रहे–

समुद्रो नदीभिरुदकामत् तां पुरं प्रणयामि वः। तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु।[73]

अर्थात् राजन्! तुम्हें समुद्र जैसा बनना है। समुद्र नदियों से जल लेकर अपने कोष को भरता है, वैसे ही तुम प्रजाओं से कर लेकर अपने राजकोष को विशाल बनाना। किन्तु समुद्र वह सब जल राशि–कोष सदा अपने ही पास नहीं रखता,वह अपने जल को वाष्प बन जाने देता है और बादल बनाकर फिर नदियों पर बरसा देता है। वैसे ही तुम भी प्रजाओं से कर लेकर उन्हीं की सुख समृद्धि के लिए उसका व्यय करते रहना।

प्रजा और राष्ट्र नायक के मध्य अगर आज भी ऐसे सम्बन्ध हो तो उस राष्ट्र को आगे बढ़ने कोई भी विदेशी ताकत नहीं रोक पायेगी। वस्तुतः अथर्ववेद के ये विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उस युग में थी।

पाद टिप्पणियां

1 अथर्व0–10.6.5
2 अथर्व0 –20.8.2
3 अथर्व0–11.2.29
4 सामाहमस्मि ऋक् त्वम्। अथर्व० 14.2.71
5 अथर्व0 1.20.1
6 अथर्व0–3.12.2
7 अथर्व0–20.141.1
8 अथर्व0–3.30.2।
9 अथर्व0–3.30.3
10 अथर्व0–7.52.1
11 अथर्व0–34.3
12 अथर्व0–6.58.2
13 अथर्व0–20.141.1
14 अथर्व0–7.115.4
15 अथर्व0–5.7.7
16 अथर्व0–2.29.4
17 अथर्व0–8.10.4,12
18 कृषिसूक्त–3.17.
19 अथर्व0–3.12.4
20 अथर्व0–3.17.6
21 अथर्व0–11.6.5
22 अथर्व0–11.6.6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[23] अथर्व0–6.115.2
[24] अथर्व0–12.1.47
[25] अथर्व0–7.50.8
[26] अथर्व0–19.60.1
[27] अथर्व0–19.61.1
[28] अथर्व0–2.17.1
[29] अथर्व0–16.2.4
[30] अथर्व0–20.79.2
[31] अथर्व0–12.2.26
[32] अथर्व0–2.15.
[33] अथर्व0–19.9.2
[34] अथर्व0–19.10.8
[35] अथर्व0–20.79.1
[36] अथर्व0–11.5.14
[37] अथर्व0–1.1.2
[38] अथर्व0–1.1.4
[39] अथर्व0–1.1.2
[40] अथर्व0–1.1.4
[41] अथर्व0–1.1.3
[42] यदि नो गां हंसि ....अवीरहा, अथर्व० 1.16.4
[43] अथर्व० –7.73.11
[44] अथर्व० –2.26.1
[45] अथर्व० –19.58.4
[46] अ0–8.7.11
[47] अथर्व० –4.21.7
[48] अथर्व० –6.141.1
[49] वीरुधो वैश्वदेवी उग्राः पुरुषजीवनीः। अथर्व०8.7.4
[50] उग्रा या विषदूषणीः............ओषधीः। अथर्व० 8.7.10
[51] अथर्व० 12.1.35
[52] माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः। अथर्व० 12.1.12
[53] (1) अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्।
(2) अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः।।
अथर्व० 12.1.54
[54] गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्। अथर्व० 12.1.11
[55] यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्। अथर्व० 12.1.35
[56] अथर्व० –20.60.5
[57] अथर्व० –10.3.43
[58] अथर्व० –9.6.8
[59] जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। अथर्व० 12.1.45
[60] अथर्व० –5.30.7
[61] अथर्व० –3.30.4।
[62] वैदिक अध्ययन, डॉ0 शशि तिवारी, पृ0–48।
[63] अथर्व० –3.30.6
[64] अथर्व० – 6.47.1
[65] अथर्व०–3.30.7
[66] अथर्व० –12.1.56
[67] अथर्व० 12.1.57
[68] अथर्व0–12.1.62
[69] अथर्व012.1.1
[70] अथर्व0–11.5.17
[71] अथर्व० –6.96.1
[72] अथर्व० –19.19.11
[73] अथर्व0–19.19.7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (264-272) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

आथर्वणिक चिन्तन के आलोक में जन्दावेस्ता का अध्ययन

डा. अमित कुमार चौहान

प्रवक्ता- संस्कृत विभाग, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

विश्व साहित्य में वेदों का सर्वोच्च एवं गौरवपूर्ण स्थान है। आदिकाल से ही इन्हें ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता का उद्गम स्थान माना जाता रहा है- ' **सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा**'[१]

अर्थात् विश्व की प्रथम संस्कृति के विकास में वेदों का अद्वितीय योगदान है। महर्षि दयानन्द का डिण्डिमघोष है कि 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।'[२] और 'वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है।[३] क्योंकि वेद ही सृष्टि के आदि में अग्नि वायु, आदित्य और अङ्गिरा के अन्त:करण में प्रकट हुए।[४]

सभ्यता व संस्कृति की आधारभूत विशेषताओं धर्म, आचरण, कर्त्तव्य आदि का सर्वप्रथम वर्णन हमें वेद से ही प्राप्त होता है।

महर्षि मनु ने कहा है कि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'[५] अर्थात् वेद सभी धर्मों का मूल है।[६] 'धर्म'शब्द का व्यापक वैदिक अर्थ न ग्रहण करके यदि प्रचलित अर्थ लिया जाए जो Religion और मज़हब शब्दों का पर्याय है तब भी सभी धर्मों का मूल उद्गम स्रोत वेद ही सिद्ध होता है।[७] धर्मों के मिलान और अनुशीलन से ज्ञात होता है कि जब कभी पुरोहितों के स्वार्थ अथवा सर्वसाधारण के अज्ञानवश 'धर्म' का ह्रास अथवा लोप हो जाता है। तब कोई महान् आत्मा प्रकट होकर उसका बलपूर्वक प्रचार करता है जिसके कारण धर्म का मैल दूर होकर वह अपनी पूर्व दीप्ति के साथ चमकता है।[८] इसी को कृष्ण ने भी कहा था-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥[९]

हे भारत! जब जब धर्म मन्द पड़ता है, अधर्म जोर करता है, तब तब मैं जन्म धारण करता हूँ।[१०]

अर्थात् वैदिक धर्म के आचरण में आई शिथिलता को पुनः स्थापित कर सुचारू आचरणमय करने के लिए देश व काल में अनेक महापुरुषों ने जन्म लेकर धर्मोद्धार किया।[११] ऐसे ही धर्मोद्धारक के रूप में महात्मा जरथुस्त्र का नाम भी आता है। जरथुस्त्र का जन्म अब से लगभग २६०० वर्ष पूर्व ईरान के अजरबेजान प्रदेश में दरेज नदी के तट पर 'पोरुषास्य' और 'दुग्धाओ' नाम के दम्पति के यहाँ हुआ था। जरथुस्त्र दयालु व धार्मिक प्रवृत्ति के थे। दु:खी मनुष्यों तथा पशुओं को देख उनका हृदय द्रवित हो उठता था। कोमल हृदय होने पर भी वह अन्तरात्मा के विरुद्ध कार्य न करते थे। दस वर्ष की कठिन तपस्या के बाद उन्हें धर्म के तत्त्व का सत्यार्थ प्रकट हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदुपरान्त उन्होंने धर्म प्रचार तथा पाप-संहार के लिए कमर कस ली।[१२]

जरथुस्त्र ने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। कालान्तर में वह जरथुस्त्री मत कहलाया। उनका धर्म प्रचार फारस अर्थात् ईरान में था तो इसको पारसी मत (धर्म) भी कहा जाता है। इतिहास में इससे पूर्व केवल वैदिक मान्यताओं की भव्य भावनाओं से ओतप्रोत वैदिकधर्म का ही प्रचलन था। इसलिए जरथुस्त्र द्वारा धर्मप्रचार के लिए जिस मत का प्रचार प्रसार किया गया। कालान्तर में वही 'जरथुस्त्र धर्म' कहलाने लगा। यह वैदिक धर्म में आये धार्मिक अनाचरण से उत्पन्न अधर्म के संहार के लिये वैदिक धर्म का ही प्रचार था। इस कारण इसमें वेद के दर्शन, सिद्धान्त, आचार शास्त्र, नीतिशास्त्र का ही समावेश है।[१३]

पारसी धर्म का धर्मग्रन्थ 'जन्द-अवेस्ता' है। इसमें अवेस्ता को मूल और जन्द को उस पर की गई टीका कहा गया है। परन्तु पारसी धर्म के विद्वान् डॉ. हॉग और प्रो. मैक्समूलर की सम्मति से पं. गङ्गाप्रसाद जी का कहना है[१४] कि जन्द शब्द 'जन' धातु से बना है, जो संस्कृत की 'ज्ञा' धातु से निकला है। वेद का अर्थ भी 'ज्ञा' जानने से है अतः जन्द[१५] का अर्थ अथवा यह संस्कृत के छन्द शब्द का अपभ्रंश है। यह ध्यातव्य है कि 'छन्द' शब्द को संस्कृत में पद्यात्मक साहित्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है। वेद की भाषा पद्यात्मक है और पाणिनि ने तो स्पष्ट ही अनेक स्थानों पर 'छन्द' के रूप में 'वेद' को ही मान्यता दी है।[१६]

जन्द के समान ही अवेस्ता को अ+विस्ता के रूप में निष्पन्न किया जा सकता है जो संस्कृत की विद् ज्ञाने धातु का 'क्त' प्रत्ययान्त रूप है, इसका अर्थ 'जो कुछ जाना गया' या ज्ञान है। अथवा अवेस्ता को संस्कृत के 'अवस्था' का अपभ्रंश माना जा सकता है, जिसका अर्थ स्थापित नियम या आदेश होगा। इस अवस्था को 'व्यवस्था' के रूप में भी मान्य कर सकते हैं, जिससे अर्थ में विशेषता का बोध ही होता है। इस तरह हम देखते हैं कि

'**जन्द अवेस्ता**' के दो अर्थ हो सकते हैं[१७]-

१. **जन्द**=जन=ज्ञान =वेद
अवेस्ता=(अ+विस्ता)= ज्ञान जो कुछ जाना गया=ज्ञान
अर्थात्- वेद- जो कुछ जाना गया
अथवा
ज्ञान- जो कुछ जाना गया

२. **जन्द**=छन्द=वेद
अवेस्ता=अवस्था=व्यवस्था= स्थापित नियम व आदेश अर्थात्
वेद-व्यवस्था
अथवा
वेद- स्थापित नियम(आदेश)

यहाँ कोई-सा भी अर्थ हम लें, लेकिन उसका निश्चित अर्थ 'वेद' व उसके ज्ञान से ही है। इससे सिद्ध होता है कि जरथुस्त्र और उनके मत का धर्म व दर्शन वेद से ही अनुप्राणित है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अथर्ववेद में सभी छन्द प्राप्त होते हैं। अतः अथर्ववेद को छन्दांसि, छन्दोह-छन्दोवेद के नाम से भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकारा जाता है।[१८] छन्दांसि या छन्दोवेद अथर्ववेद का पर्याय होने से जन्द-अवेस्ता का अर्थ हम निम्नरूप में भी ले सकते हैं-

अथर्ववेद का ज्ञान जो जाना गया

अथवा

अथर्ववेद व्यवस्था

अथवा

अथर्ववेद के स्थापित नियम=आदेश-

ऐसा ही पं. लेखराम के ग्रन्थ संग्रह 'कुलियात आर्य मुसाफिर' के अनुवाद में पं. जगत् कुमार शास्त्री ने अपनी टिप्पणी में 'जेन्दावस्ता को 'छन्दावस्था' अथवा 'छन्द व्यवस्था' के रूप में मान्य किया है।[१९]

इसका अर्थ यह नहीं कि जन्दअवेस्ता अथर्ववेद का पर्याय अथवा अथर्ववेद का पर्याय 'जन्द अवेस्ता' है। अपितु इसका आशय इतना ही लिया जाना चाहिए कि ''जन्द अवेस्ता'' विषय वस्तु की दृष्टि से अथर्ववेद के निकटतम है। अथर्व से जन्द के इस सामीप्य के निम्न बाह्य कारण हैं-

१. **भाषा-** जन्दअवेस्ता की भाषा प्राचीन वैदिकभाषा से अत्यन्त साम्य रखती है। संस्कृत के असुर, रोना, अस्मि, सन्ति, सोम, सप्त, मास आदि शब्द जन्द की भाषा में अहुर, हेना, अहमि, हेन्ति, होम, हप्त और माह आदि के रूप में आंशिक ध्वनि परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं।

शब्द साम्यता के साथ-साथ संस्कृतभाषा के व्याकरण के अनुसार ही जन्द की भाषा का व्याकरण भी है, जिसमें शब्दों के रूप लगभग एक ही प्रकार से चलते हैं। क्योंकि जन्द में भी संस्कृत के समान तीन वचन और आठ कारक मिलते हैं।[२०]

२. **छन्द-** वैदिक संस्कृत में छन्दों का बहुत महत्त्व है। छन्द इनका महत्त्व इसी से पता लग जाता है कि 'छन्द' विषयक सामग्री का सम्यक् ज्ञान एक वेदाङ्ग के रूप में जाना जाता है। वैदिक छन्दों के तीन सप्तक हैं- गायत्र्यादि, अतिजगत्यादि और कृत्यादि सप्तक। गायत्र्यादि सप्तक में गायत्री, उष्णिग्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये सात छन्द हैं।[२१] ये क्रमशः इन्हें उशतावती, अहुनावती, स्पेन्ता मन्यु, बाहुक्षत्र में प्राप्त होते हैं।[२२] इसी प्रकार 'जन्द अवेस्ता' में भी छन्द पाए जाते हैं। जन्द में बहुतायत रूप से पाये जाने वाले छन्द- त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, उष्णिक् आदि हैं। यही छन्द अथर्ववेद के अधिकांश मन्त्रों के भी हैं।

३. **यज्ञ-** वैदिक संस्कृति का 'यज्ञ' 'जन्द अवेस्ता' में 'यस्न' के नाम से जाना जाता है। 'यज्ञ' का पर्याय 'इष्टि' 'जन्द अवेस्ता' में 'इष्टि' ही है। 'आजुति' को 'आहुति' कहा जाता है।

यज्ञ के ऋत्विक् क्रमशः होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा वैदिक मत में प्रसिद्ध हैं ये चारों ही यज्ञ का सम्पादन करते हैं। जो क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से सम्बन्ध रखते हैं। जन्द में होता के स्थान पर 'जोता' व अध्वर्यु के स्थान पर 'रथ्वी' या 'रस्मी' हो गया है और उद्गाता का वर्णन प्राप्त नहीं होता परन्तु 'ब्रह्म' को 'अथर्व'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या 'अथर्वन्' कहा जाता है।[२३] यहाँ ध्यातव्य है कि वैदिक संस्कृति में यज्ञ का ब्रह्मा अथर्ववेद का ज्ञाता होता है।[२४] वह यज्ञ में ब्रह्मवेद(अथर्ववेद) का व्याख्यान करता है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि यज्ञ के दो पक्ष हैं। एक पक्ष का संस्कार तीन वेदों के द्वारा होता है। अथर्ववेद वित् ब्रह्मा मन के द्वारा दूसरे पक्ष का संस्कार करता है।[२५] यह ब्रह्मा यज्ञ का निर्देशक होता है। यज्ञ कार्य में सम्भाव्य अनिष्ट का परिहार, प्रायश्चित्त अर्थात् विधि द्वारा यज्ञ की त्रुटि निवारण, यज्ञानुष्ठान के क्रम में अन्य ऋत्विजों के लिए अनुज्ञा प्रदान करना ब्रह्मा के प्रमुख कार्य हैं। इसलिए यज्ञ में ब्रह्मा का अत्युच्च स्थान है।[२६]

वैदिक संस्कृति का मूलाधार यज्ञ है और यज्ञ में मुख्य देवता अग्नि है। 'जन्द अवेस्ता' का मुख्य देवता 'अग्नि' ही है। 'जन्द अवेस्ता' के अनुयायी अग्नि का पूजन करते हैं और अग्नि पूजक कहलाते हैं। इनके पूजास्थल भी अग्नि मन्दिर कहलाते हैं। 'अग्नि' को वे अत्यन्त पवित्र मानते हैं, इसी कारण वे मृतक देह को 'अग्नि' में नहीं जलाते।

सामवेद के आधुनिक भाष्यकार पं. रामनाथ वेदालङ्कार ने अपने 'अथर्ववेद ज्योति'[२७] नामक ग्रन्थ में ऋग्वेद १०.१४.६ की निरुक्त में महर्षि यास्क द्वारा की गई व्याख्या 'अथर्वाणो अथर्वणवन्तः' को उद्धृत करते हुए कहा है कि अथर्वन् शब्द का अर्थ 'अथर्ववेद वाला' अर्थात् अथर्ववेद का ज्ञाता होता है। अग्नि का सर्वप्रथम आविष्कारक अथर्वा है।[२८] उसने सर्वप्रथम यज्ञ किया और आहुति दी।[२९] अथर्वा द्वारा अग्नि की खोज की गई अतः अग्नि का सर्वप्रथम पूजन (सत्कार=महत्त्व) भी अथर्वा द्वारा ही किया गया। यज्ञ में अग्नि ही सर्वोच्च देवता होता है। अतः यज्ञ का पुरोहित अथर्वा वा अथर्वन् कहा गया है।

इस प्रकार अथर्ववेद से ब्रह्मा और 'जन्द अवेस्ता' से अथर्वन् का सम्बन्ध समान भाव के साथ-साथ समान कार्य और समान प्रतिष्ठा के रूप में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। अर्थात् 'जन्द अवेस्ता' में पुरोहित को अथर्वन् कहने का कारण उसका अथर्ववेद से सामीप्य ही है।

आर्य- प्राचीन काल से ही समाज में वेदानुयायियों को 'आर्य'[३०] शब्द से सम्बोधित किया जाता रहा है। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि यज्ञ प्रेमी और आस्तिक जनों को आर्य कहा गया है। वे यज्ञ को बुद्धि की वृद्धि का साधन मानते थे।[३१] आर्य शब्द 'ऋ'गतौ, मित गतौ धातु से बना है जिसका अर्थ गति करना, मित गति करना है, अतः आर्य शब्द का अर्थ- प्रगतिशील, मिताचारी। मिताचारी का अर्थ- संयमी, विज्ञानी, सदाचारी, नियमी, न्यायपरायण, उदार, सर्वहितैषी व निष्ठाशील जैसे गुणों से समाहित है। वेद कहता है- **आर्या ज्योतिरग्राः**[३२] अर्थात् आर्य वे हैं जो प्रकाश को आगे रखते हैं= जो प्रकाश द्वारा आगे बढ़ते हैं।[३३] महर्षि यास्क ने तो **आर्याः ईश्वरपुत्राः** कहा है।

'जन्द अवेस्ता' के अनुयायी भी आर्य कहलाते हैं। ईरान को पारश्य देश भी कहते हैं। यहाँ के वासी ही पारसी कहलाते हैं। यह जाति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन काल में भारत से जाकर वहाँ बसी थी। यह मैक्समूलर की साक्षी है। आर्यन का अपभ्रंश 'ईरान' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[३४] आज भी पारसी लोग नाम के सामने 'ईरानी' लगाते हैं। ईरान का राजा 'आर्य मेहर' उपाधि लगाता है। फारसी में 'मेहर' सूर्य को कहते हैं। ईरानी स्वयं अपने को सूर्यवंशी आर्य कहते हैं। ईरान के स्कूल में पढ़ाया जाता है कि आर्य लोग भारत से हिमालय पर्वत से उतरकर यहाँ आए और यहाँ का जल वायु पाकर यहीं बस गए।[३५]

'जन्द अवेस्ता' में 'आर्य' शब्द की प्रतिष्ठा अनेक स्थानों पर है- आर्यों की प्रतिष्ठा में (सिरोजह- १.९) हम आर्यों की प्रतिष्ठा में यज्ञ करते हैं जिन्हें मजदा ने बनाया है।

आर्यों के देश उर्वरा शक्ति प्राप्त करेंगे।

(यशत ८.६)

आर्यजाति उस पर भेंट चढ़ाते।

(यशत ५८)

५. **दाम्पत्यजीवन-** वैदिक समाज की इकाई परिवार है और परिवार का मुख्य आधार पति पत्नी रूपी दाम्पत्य जीवन है। दम्पती का अर्थ ही घर के स्वामी=परिवार के पति अर्थात् पालनकर्त्ता। अथर्ववेद में दाम्पत्य जीवन का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। दम्पती के महत्त्व का वर्णन करते हुए पुरुष को सामवेद, स्त्री को ऋग्वेद और पुरुष को द्युलोक व स्त्री को पृथिवी कहा गया है।[३६] इस प्रकार दोनों तत्त्व एक दूसरे के पूरक और पोषक हैं। यह दाम्पत्य जीवन के लिए विवाह नामक संस्था का प्रणयन वेद ने किया है और उसकी गरिमा हेतु उसका आदर्श प्रस्तुत करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि दोनों का प्रेम इतना प्रबल हो कि वे दोनों एक दूसरे से मिलकर चलें, मिलकर रहें और मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करें। उनके चित्त और कर्म समान हों।[३७] दोनों पुरुषार्थी हों, श्रद्धापूर्वक कार्य करने से ही संसार में सुख मिलता है।[३८] वे राष्ट्र उन्नति के लिए साथ बढ़ें और परस्पर सहयोग से ही एक सुखमय संसार बना सकते हैं।[३९]

दाम्पत्य जीवन और विवाह का ऐसा ही आदर्श जन्द में भी आया है। ''गृहस्थी में प्रविष्ट होने वाली कुमारियों और तुम को मैं जानता हूँ। शिक्षा देता हूँ। तुम प्रेममय जीवन की सत्यता से खोज करते हुए इसे मन में धारण करो और इस पर मनन करो। धर्माचरण के विषय में तुम दोनों में से प्रत्येक दूसरे से आगे बढ़ने का यत्न करो क्योंकि इससे आनन्द की प्राप्ति होती है।[४०]

६. **आर्थिक जीवन-** प्राचीन काल से ही कृषि ही मनुष्य जीवन का आर्थिक आधार रहा है। क्योंकि इसके द्वारा ही मनुष्यों को भोजन प्राप्त होता है। अन्य आर्थिक साधन तो कृषि के पूरक ही समझने चाहिए। अन्य वेदों के सदृश अथर्ववेद भी कृषि को अत्यन्त महत्त्व देता है।[४१] धीर व्यक्तियों द्वारा कृषि कर्म को सुख प्राप्ति के लिए अपनाने का उपदेश है और कृषि को गौरवपूर्णकार्य बताया गया है। जिसने कृषि में सफलता प्राप्त कर ली है, वह आजीविका में सफल हो जाता है।[४२] कृषि मानव कल्याण का साधन है और यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐश्वर्य और पोषण का साधन है। कृषि की ऐसी प्रशंसा ''जन्द अवेस्ता'' में भी कही गई है। जरथुस्त्र को अहुरमज्दा ने उत्तर देते हुए कृषि के महत्त्व वर्णन में कहा कि भूमि वहाँ अत्यन्त प्रसन्न होती है, जहाँ कोई धार्मिक व्यक्ति अत्यधिक अनाज, घास तथा फल उगाता है। जहाँ वह सूखी भूमि को सींचता है अथवा अत्यधिक गीली भूमि को सुखाता है।[४३] इसी प्रकार कृषि कर्म को महान् बताते हुए कहा गया है कि जो जन इस संसार में सुकार्य करते हैं तथा पृथ्वी को जोतकर उपज बढ़ाते हैं तू उन पर कृपा दृष्टि करता है। वे तेरे सन्मार्ग पर ही चलते हैं तथा सत्य द्वारा तेरे पवित्र लक्ष्यों की पूर्ति करता है।[४४] हॉग ने पारसी मतानुसार कृषि को धार्मिक कार्य में गिना है।[४५]

७. **गौ महिमा-** गौ व उसके पालन की दिव्य प्रेरणा व महिमा वर्णन जितना वेद व वैदिक संस्कृति में हुआ है अन्यत्र मिलना दुर्लभ है परन्तु चूंकि 'जन्द अवेस्ता' अथर्ववेद[४६] का सीधा सम्बन्धी है। अतः उसमें भी गौ व उनके पालन का समान वर्णन व महत्त्व प्राप्त होता है- सज्जनों द्वारा वाञ्छित गौ ने हमें बस्ती, समृद्धि तथा भूमि दी है। हे अहुरमज्दा! तुमने प्रथम सृष्टि के आरम्भ से ही पवित्र व्यवस्था के अनुसार उसके लिए पौधों को अंकुरित किया है।[४७] यह अथर्ववेद १४.२.५३ से ५८ तक आए वर्णन कि गाय में अनेक सद्गुण, वर्चस् (कान्ति), तेजस्, भग, यशस्, पयस्, रस हैं; गाए जहाँ रहती है वहाँ कल्याण करती हैं। वे गौशाला में सुख से रहें और सुख दें। गाय के लिए घास जल आदि की सुव्यवस्था की प्रेरणा करने का संक्षिप्तीकरण मात्र है।

'जन्द अवेस्ता' व अथर्ववेद की सामाजिक और आर्थिक जीवन के इस सामञ्जस्य को इनकी दार्शनिक एकरूपता दोनों को इतना निकट ले आती है कि इनका भेद लगभग नगण्य सा हो जाता है। इसके प्रमाण हेतु एकेश्वरवाद, त्रैतवाद और 'असुर' का उदाहरण ही इस संक्षिप्त लेख में लेते हैं-

एकेश्वरवाद- वेद एकेश्वरवाद का प्रचारक है, अर्थात् वेद में एक ईश्वर को उसके अनेक गुण कर्म और स्वभावों के कारण अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं और उसी एक ईश्वर की उपासना की जाती है[४८] अथर्ववेद में आता है कि **स्कम्भं तम् ब्रूहि कतमः स्विदेव** सः(१०.७.४) अर्थात् तू उसे स्कम्भ कह वह निश्चय ही एक है अन्य स्थानों पर '**यो देवानां नामध एक एव**, (अथर्व. २.१.३) और **त्वमिन्द्रः त्वं महेन्द्र**' (अथर्व. १७.१.१८) अर्थात् वह परमात्मा एक ही है। उस एक परमात्मा के ही ये अनेक देवों वाले नाम हैं। गाथा में समान शब्द प्राप्त होते हैं-

ये आन्मेनी मझदाओ श्रावि अहुरो।

अर्थात् जिसका नाम 'मझदा' है वह ही ईश्वर है। यहाँ ध्यातव्य है कि 'मझदा' को 'स्कम्भ' का पर्याय माना जा सकता है। मझदा=मझ=middle। स्कम्भ का आशय अथर्व १०.७.३५ के अनुसार सकल ब्रह्माण्ड का आधार स्तम्भ है। जिसने छहों दिशाओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा हुआ है। स्कम्भ=स्तम्भ भी मध्यस्थ होकर धारणकर्त्ता बनता है। क्योंकि अथर्ववेद १०.७ के समान गाथा ४४.११ में कहा गया है कि द्यौ, अग्नि, सूर्य, सोम, आपः का निर्माणकर्त्ता 'मझदा' ही है और उसी ने इन सबको धारण किया हुआ है। फिर गाथा ४४.११ में केवल वह 'मझदा' ही एकमात्र पूजनीय है।

त्रैतवाद- वेद का एक अन्य दार्शनिक मत 'त्रैतवाद' है जिसके अनुसार ईश्वर ब्रह्माण्ड का नैमित्तिक कारण है प्रकृति उपादान कारण और जीवात्मा साधारण कारण है। इस दर्शन में ईश्वर,जीव, प्रकृति तीनों ही अनादि और नित्य सत्ताएँ हैं।[४९] पं. गङ्गाप्रसाद ने पारसी ग्रन्थ लेखक सासान प्रथम को उद्धृत करते हुए पारसी मत को त्रैतवाद का समर्थक बताया है और पारसी मत में कहा है कि जीवात्मा, अप्राकृतिक, अखण्डनीय, अनादि और अनन्त है। अहुर-मझदा प्रकृति से संसार का निर्माण जीवों के लिए करता है।[५०]

अहुर- असुर शब्द- असु (प्राण या जीवन)+रा= देना, अथवा असु=(प्राण)+रम=आनन्द करना ये बन सकता है। उसका शब्दार्थ प्राण दाता है। परन्तु अर्वाचीन संस्कृत में यह सदा बुरे अर्थों में व्यवहृत होने लगा है और वह केवल राक्षस का पर्यायवाचक बन गया है। इसका लौकिक प्रचलित अर्थ यह है कि जो व्यक्ति केवल प्राणों में रमण करता अर्थात् अपने वर्तमान जीवन में प्रसन्न होता वा उसका उपभोग करता है, आगामी जीवन का ध्यान नहीं करता, जो केवल शरीर का पोषण करता है आत्मा का नहीं करता। परन्तु वेद में यह शब्द अनेक बार परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद १.५४.३, १.२४.१४, ४.२.४, ७.२.३, १.३.५ में क्रमशः वरुण, अग्नि, सवितृ, रुद्र को असुर कहा गया है। अर्थात् यह प्राण शक्ति का प्रदाता है। इसी प्रकार अथर्ववेद में इन्द्र (२०.३२.१), अग्नि (५.२७.१), वरुण (१.१०.१), राजा (४.८.३), वैद्य (२.३.३) को असुर कहा गया है।[५१] 'जन्द अवेस्ता' में अहुर शब्द का अर्थ परिवर्तित नहीं हुआ। वहाँ ईश्वर के लिए 'अहुरमज्दा' शब्द अनेक बार आया है। वहाँ जितनी भी प्रार्थना याचनाएँ व स्तुति हैं वे सभी 'अहुर मझदा' को सम्बोधित करते हुए ही हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था, कर्मफल सिद्धान्त, ३३ देवता, लोकतन्त्र, सादगी, विश्वबन्धुत्व आदि अनेक तथ्य 'जन्द अवेस्ता' में अथर्ववेद से अत्यधिक साम्यता रखते हैं। 'जन्द अवेस्ता' का यस्न नामक भाग तो 'यज्ञ' और याज्ञिक(कर्मकाण्ड सम्बन्धी) कर्मों का संग्रह है। अतः 'जन्द अवेस्ता' का अथर्ववेद से सायुज्य सम्बन्ध स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्रो. ब्लूमफील्ड तथा प्रो. विण्टरनित्स ने जन्द-अवेस्ता को अथर्वसंहिता का अधमर्ण कहा है।[५२] इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आर्यों की जो शाखा ईरान की ओर भारतवर्ष से गई वह अथर्ववेदानुयायी थी। दूसरे यह भी कि ईरान (मध्य एशिया) से आर्य भारत नहीं आए अपितु भारत से मध्य एशिया गए। क्योंकि आर्यों के मूलस्थान में वेद सुरक्षित हैं। परन्तु मध्य एशिया में जन्द के रूप में वह कालान्तर में कुछ परिवर्तित हो गया। अप्रवासी भारतीयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में धर्म सम्बन्धी आचार-व्यवहार को लेकर प्राय: ऐसा देखा जाता है।

---

[१] यजुर्वेद ७.१४

[२] आर्यसमाज का पहला नियम

[३] आर्यसमाज का तृतीय नियम

[४] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्ति विषय- पृष्ठ. ४०, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली संस्करण- २

[५] मनु. २.६

[६] आपस्तम्ब, वशिष्ठ और गौतम आदि धर्मसूत्रकार भी वेदों को धर्म का मूल ही मानते हैं।

[७] धर्म का आदिस्रोत- पं. गङ्गाप्रसाद एम.ए.

[८] तदेव पृष्ठ ४

[९] गीता ४.७

[१०] महर्षि दयानन्द ने इस श्लोक का सत्यार्थ उद्घाटन करते हुए कहा है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करुं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि परोपकाराय सतां विभूतय: परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर (ईश्वर का अवतार) नहीं हो सकते। सत्यार्थ प्रकाश- सप्तम समुल्लास पृष्ठ- १७०

[११] सब धर्मों की बुनियादी एकता- डॉ. भगवान दास, पृ. ५२

[१२] सर्वधर्मकोश- डा.रामस्वरूप रसिकेस- पृ. १६

[१३] द्रष्टव्य- अध्याय-५, धर्म का आदिस्रोत- पं. गङ्गाप्रसाद

[१४] तदेव पृष्ठ ७४

[१५] विद् ज्ञाने धातु से 'वेद' शब्द का अर्थ जानना या ज्ञान है।

---

[१६] 'बहुलं छन्दसि' यह सूत्र पाणिनि की अष्टाध्यायी में यत्र-तत्र उपलब्ध है।

[१७] धर्म का आदिस्रोत- पं. गङ्गाप्रसाद, पृष्ठ ७५

[१८] अथर्वणां. . . सर्वाणि छन्दांसि-१.२९

[१९] पृ. ९९, सृष्टि का इतिहास, कुलियात् आर्य मुसाफिर, पं. लेखराम

[२०] धर्म का आदिस्रोत, पं. गङ्गाप्रसाद जी, एम.ए., पृष्ठ ६८-६९

[२१] वेदमञ्जरी भूमिका पं. रामनाथ वेदालङ्कार पृष्ठ- ९।

[२२] द कनसैप्शन ऑफ गाथा- जितेन्द्र मोहन चटर्जी, पृष्ट- २४

[२३] धर्म का आदिस्रोत- पं. गङ्गाप्रसाद, पृष्ठ- ११९.

[२४] अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्

[२५] त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति, मनसैव ब्रह्मा संस्करोति- ५.३३

[२६] कल्याण वेदाङ्क पृष्ठ-१७६

[२७] पृष्ठ-१५

[२८] अग्निर्जातो अथर्वणा- ऋग्वेद १०.२१.५, अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने- यजु- ११.३२

[२९] यामाहुतिं प्रथममथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः- अथर्ववेद १९.४.१

[३०] आर्य- श्रेष्ठ पुरुष

[३१] अथर्व. १८.१.२१

[३२] ऋ. ७.३३.७

[३३] सार्वभौम आर्य साम्राज्य- स्वामी विद्यानन्द विदेह, पृष्ठ- २२

[३४] वैदिक सम्पत्ति, पृष्ठ- ३७४

[३५] द्रष्टव्य- भूमिकाभास्कर- अवतरणिका- स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, पृष्ठ-२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३६] सामा॒हम॒स्मि ऋक् त्वं घोर॒हं पृ॑थि॒वी त्वम्- अथर्व. १४.२.७१

[३७] सं भर्गा॑सो अग्मत॒ सं चि॒त्ता॒नि॒ समु॑ व्र॒ता- अथर्व. २.३०.२

[३८] ६.१२२.३

[३९] सं तत् सृ॑जेथाम्. . . . सम्पा॒दय॑न्तो स॒ह लो॒कमेक॑म्- अथर्व. १२.३.३९

[४०] यस्न ५३.५

[४१] अथर्ववेद ३.१७.१

[४२] अथर्ववेद ८.१०.२४

[४३] जन्दअवेस्ता, वेदीदात ३.४

[४४] जन्दअवेस्ता, यस्न ३४.१४

[४५] धर्म का आदिस्रोत, पं. गङ्गाप्रसाद- पृष्ठ १२०

[४६] ९.७ सूक्त के २६ मन्त्र पूरी तरह से गौ के सम्बन्ध में हैं

[४७] यस्न- ४८.६

[४८] द्रष्टव्य- सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास- महर्षि दयानन्द सरस्वती, त्रैतवाद १.१६४.४६

[४९] अथर्व. ९.९.२० एवं ऋग्वेद १.१६४.२०

[५०] धर्म का आदिस्रोत- पं. गङ्गाप्रसाद, पृष्ठ १०७

[५१] अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ- ३४६

[५२] वैदिकपथ- जनवरी १२, ज्वलन्तकुमार शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (273-287) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य की समीक्षा

डा. दिनेशचन्द्र शास्त्री

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- वेदविभाग, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

अद्भुत वाग्मी, विचित्र ऊहा के धनी, उद्भट विद्वान् शास्त्रों के तलस्पर्शी अध्येता, गुरुकुल काङ्गड़ी के यशस्वी स्नातक और अध्यापक, आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के लब्ध प्रतिष्ठ उपदेशक एवं प्रधान आर्यसमाज के शास्त्रार्थकर्त्ता, प्रगल्भ लेखक तथा कुशल वक्ता मुद्गल गोत्रोत्पन्न स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज (पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार) उन विद्वत्-सन्त-शिरोमणियों में से हैं जो अपने आदर्श जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रवचन-पीयूष-वर्षण से लोक-कल्याणकारी कार्यों का प्रचार करते रहे। इसी विश्व कल्याण की भावना से ये जगच्छ्रेयोविधायिनी अपनी वाणी को लेखनीबद्ध भी कर दिया करते थे। स्वामी जी महाराज की लेखनी स्रोतस्विनी से निःसृत छोटे-बड़े लगभग ३२ ग्रन्थ हैं[१], जिनमें अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के १२वें सूक्त तक का भाष्य एवं चतुर्दश काण्ड का भाष्य भी मिलता है। हम यहाँ उनके अथर्ववेद के प्रारम्भिक ५८ मन्त्रों(काण्ड-१, सूक्त १२ तक) के भाष्य का ही समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे वेद के विद्यार्थी ही नहीं अपितु वेदों पर आस्था रखने वाले जनसामान्य भी लाभान्वित हो सकेंगे।

स्वामी समर्पणानन्द जी का व्यक्तित्त्व, चिन्तन तथा उनकी साधना बहुमुखी एवं बहुआयामी थी। उन्होंने अथर्ववेदीय शौनक शाखा के पूर्व इङ्गित सूक्तों पर तर्कानुमोदित व्याख्या की है। यह व्याख्या उन्होंने आ.प्र. सभा पञ्जाब के प्रधान आचार्य रामदेव जी की आज्ञा से संवत् १९९३ में लिखी, जो कि उक्त सभा के मासिक मुखपत्र 'आर्य' में धारावाही छपती रही।[२] यह भाष्य संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में है और काण्ड, अनुवाक एवं सूक्त की दृष्टि से व्यवस्थानुसार मन्त्रों को रखकर लिखा गया है। वर्तमानकाल में इस भाष्य का नवीन संस्करण गुरुकुल प्रभात आश्रम, मेरठ और समर्पण शोध संस्थान साहिबाबाद से छपा है।

बड़े दुःख की बात है कि उभयलोक का कल्याण करने वाले[३] अथर्ववेद का यह भाष्य अधूरा है। परन्तु अधूरेपन से इसकी महत्ता कम नहीं आंकी जा सकती, क्योंकि भाष्यकार ने अपनी व्याख्या में सदियों से अछूते वेद के ऐसे अज्ञात रहस्यमय गूढ़ तत्त्वों को ढूंढकर प्रदर्शित किया है, जिससे वेदों पर आस्था रखने वाले किसी भी श्रद्धालु एवं जिज्ञासु को सहज ही उन तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान होकर वेद की आत्मा के दर्शन हो जाते हैं और वह वेदार्थ की ऐसी कुञ्जी प्राप्त कर लेता है कि कोई भी गुत्थी उलझती नहीं।

(१) विषयगत विवेचन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) भाष्य-लेखन का प्रयोजन- वेदभाष्य की परम्परा में प्रस्तुत वेदभाष्य स्वामी समर्पणानन्द जी की अनुपम देन है। इस भाष्य में वेद-मन्त्रों के आधार पर चिकित्साविज्ञान, राजनीतिविज्ञान, युद्धविज्ञान, ब्रह्मविज्ञान, सृष्टिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों का विशेष विवेचन किया गया है[4] जिसके आधार पर अथर्ववेद के विषय में पाठक को कोई सन्देह नहीं रहता और जादू, सम्मोहन, मारण, उच्चाटन, भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि परक कल्पनाप्रसूत तथा पूर्वाग्रह पर आधारित लोकप्रसृत अलीक मान्यताओं का स्वतः खण्डन होकर यह सिद्ध हो जाता है कि यह ब्रह्मवेद है; विज्ञान का वेद है।

भाष्यकार ने स्वयं भाष्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है- **'तेन च प्रीयताम्भगवान् यज्ञ पुरुषः'** अर्थात् इस भाष्य से भगवान् यज्ञ पुरुष का तर्पण होगा। इसी प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिये भाष्यकार ने इतरवेदों के साथ इस ब्रह्मवेद की प्रयोजनता भी इस प्रकार सिद्ध की है- 'ऋग्वेद में मनुष्य की जिज्ञासा की अग्नि को प्रज्वलित किया गया है! यजुर्वेद में उसी संगृहीत ज्ञान को लोक हित के लिये अपने स्वार्थ को अर्पण करके राष्ट्रोपयोगी कैसे बनाया जा सकता है। इसका उपदेश किया गया है। सामवेद में एक विचित्र प्रकार की नव-रस-रचिरा काव्य सृष्टि की रचना की गई। इस रसमयी काव्यसृष्टि के अपने ही स्वतन्त्र नियम हैं, इसमें विधाता की अन्य सृष्टियों के नियम नहीं लगते। इस सृष्टि का निर्माण-तत्व आह्लाद है। आह्लादमय सामवेद में यद्यपि नव-रस हैं, तो भी वहाँ प्रधान रस वीर है परन्तु इस अथर्ववेद का उदय उसी ज्ञान-राशि का यज्ञपुरुष के अङ्गभूत पुरुष व्यक्ति के लिए हितकारी तत्व दिखाने के लिए हुआ है।' (पृष्ठ सं. ४)

(ख) शरीर के उपयोगी तत्त्वों का वर्णन-

भाष्यकार की यह प्रतिज्ञा है कि इस वेद में शरीर के लिए उपयोगी तत्त्वों का वर्णन किया गया है- 'तत्र शरीरोपयोगि किमपि तत्त्वमस्मिन् वेदे प्रपञ्चितमित्यनुपदं व्याख्यास्यते।' (पृ. १) शरीरोपयोगी तत्त्वों का वर्णन होने से ही इस वेद का नाम आङ्गिरस है। शरीर की सारी चेष्टा दो कारणों से होती है- १. पञ्चभूतों के संघात से बनी हुई शरीर की सात धातुओं के कारण और २. आत्मा की शक्ति से प्रेरित होने वाले प्राण के कारण। रसायन शास्त्र के पण्डित हमें बताते हैं कि सात धातुओं का आधारभूत अङ्गार (कार्बन) नामक एक तत्त्व है। अङ्गार का ही दूसरा नाम अङ्गिरा भी है। प्राण का भी दूसरा नाम अङ्गिरा है। अङ्गार और प्राण दोनों का ही नाम अङ्गिरा है। यह ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है। प्राण और धातु दोनों को बताने वाले अङ्गिरा की व्याख्या इस वेद में होने के कारण इसकी अङ्गिरस संज्ञा है। अङ्गिरस वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आविर्भाव का साधन बनने के गौरव को प्राप्त होने के कारण इसके आदि ऋषि का नाम भी अङ्गिरा पड़ गया।

शरीर के हितकारी एवं उपयोगी तत्त्वों में जल, मुञ्ज, दर्भ(शर) का वेद-मन्त्रों के आधार पर उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने लिखा है, 'तेनान्त्रेषु मूत्र-सञ्चयवर्णनं न विस्मयावहन्तद्विदाम्। तस्य च निरोधश्शरेण-वार्य्यते। शर शब्देन च दर्भजलज्ञानानाङ्ग्रहणमिति प्रागुदाहृतम्। तदेषान्त्रयाणामपि प्रभावो मूत्र निरोधविनाश इति दर्शयिष्यामः। दर्भैरद्भिश्च तनूभृताम्मूत्रनिरोधो वार्य्यते' (अथर्व. भा. १.३.५, पृ. ५८)

अर्थात् मूत्र का निरोध शर से दूर किया जाता है। शर शब्द से दर्भ, जल और ज्ञान का ग्रहण किया जाता है। दर्भ से और जल से पुरुष के मूत्र का निरोध दूर किया जाता है।

अथर्व. १.३.६ (पृ. ६०) के भाष्य में भाष्यकार ने जलचिकित्साशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् जैसे चार्ल्स. डब्ल्यू. बर्कले आदि के 'इण्डैक्स टू ट्रीटमेण्ट' के उद्धरण देते हुए जलचिकित्सा के बारे में स्पष्ट किया है कि कटि स्नान और मेहन स्नान (sitz bath) से मूत्र-निरोध दूर किया जा सकता है।

अथर्व. १.३.५ के व्याख्यान में व्याख्याकार ने लिखा है कि शरीर का स्तम्भक वीर्य शर नामक ओषधि के सेवन तथा जलस्नान से बढ़ता है। (पृष्ठ सं. ५६)

अथर्व. काण्ड १, सू. ३ के भाष्य में भाष्यकार ने 'शर' शब्द को उपलक्षण मानकर मूत्र के प्रवाह की निरोधक चीजों को बाहर निकालने में समर्थ गोखरु आदि अन्य औषधियों का भी ग्रहण किया है।

मूत्र निरोधादि रोग के निवारक जल किस प्रकार प्राप्त करते हैं, उनमें श्रेष्ठता कैसे आती है यह उल्लेख करते हुए लिखा है- (**सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः**, अथर्व. १.४.३) अर्थात् नदी रूप से बहने वाले जल प्रयत्न से घर में लाये जा सकते हैं, एवं इनको (**अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह**, अथर्व. १.४.२) अग्नि के ताप से तपाकर निर्मल किया जा सकता है।

चरकसंहिता १-२ के अनुसार ओषध दो प्रकार के होते हैं। एक स्वस्थ को बलिष्ठ बनाने वाले और एक रोगी को नीरोग करने वाले। जल में दोनों प्रकार के गुण हैं। इन गुणों का अथर्व. १.५.४ के भाष्य में वर्णन करते हुए लिखा है- 'ज़लों में औषध है। औषध रूप जलों के सेवन से पुरुष अमृत हो जाता है। अर्थात् वह पूर्ण आयु भोगता है।'

(**अग्निं च विश्वशम्भुवम्**, अथर्व. १.६.२) इस वाक्य के आधार पर भाष्यकार ने लिखा है- 'श्रुति में सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने में समर्थ जल चिकित्सा शास्त्र का बीज पाया जाता है।' (पृष्ठ ८०)

(ग) शल्य चिकित्सा-

भाष्यकार ने शल्य चिकित्सा के बारे में अथर्व. १.३.७ के आधार पर लिखा है कि मूत्र के निरोध का प्रतीकार केवल जल, दर्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अन्य औषधियों से ही नहीं होता, अपितु समय-समय पर शलाका आदि शस्त्र के प्रयोग की भी आवश्यकता होती है- 'अथ मूत्रनिरोधस्य प्रतीकारो न केवलं जलेन दर्भादिशरजाति- प्रविष्टौषधप्रयोगेण वा भवत्यपितु तत्काले काले शस्त्रप्रयोगमप्यपेक्षते।' (पृष्ठ ६२)

अथर्ववेद में केवल उपस्थेन्द्रिय की ही शल्य-चिकित्सा नहीं, अपितु समयानुसार बस्ति को भी खोलकर बस्ति के द्वार के निरोधक पथरी आदि को भी शल्यचिकित्सादि के द्वारा दूर करने का विधान है। इसलिए (**विषितं ते बस्तिबिलम्,** अथर्व. १.३.८) के भाष्य में इसी प्रकार का संकेत करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'शल्य प्रयोगेण न केवलं मेहनद्वारमेवानावरणीयं वैद्येनापितु यथाकालं बस्तिं विदार्य बस्तिद्वारनिरोधकोऽश्मादिरप्यपनेय इति।'

इसी प्रकार शरीरोपकारक अग्नि-तत्व[५], प्रसवयन्त्र[६] और रसायन[७] आदि विषयों का भी वर्णन किया गया है।

(घ) अन्य-

मन्त्रों की व्याख्या करते समय देवतानुसार विविध विषयों का उल्लेख किया गया है। पुनरपि प्रसंगवश निम्नविषयों को भी विवेचित किया गया है। जैसे- प्राण और अपान, दार्शनिकता- ईश्वर, जीव, प्रकृति, भक्ति का फल, प्रार्थना, मन्यु, राजसूय यज्ञ, वीर्य और दाई आदि।

दार्शनिक भाषा में परमेश्वर के सत्यस्वरूप, प्रकृति और भक्ति के फल को बताते हुए अथर्व १.२.१ के भाष्य में लिखा है- 'निरन्तरोपासना प्रसादितभगवदनुकम्पा धारावर्षणं बिना ज्ञानार्जनसाधनभूता कुशाग्रा बुद्धिर्नोत्पद्यत इत्याह अस्य ज्ञानाख्य शरस्य पितरं भूरि-धायसं भूरीणां बहूनां स्थावरजंगमानां धारणकर्तारं पर्जन्यं तर्पयितारं जनयितारं जनहितकरञ्च तं परमेश्वरं विद्म: जानीम: खलु। अस्य मातरं भगवदनुकम्पारूपबीजं गृहीत्वा ज्ञानजन्मदात्रीम्मातरं भूरिवर्पसं नानारूपां पृथिव्युपलक्षितां प्रकृतिमपि सुविद्म:। यद्यपि भगवदनुकम्पां बिना न ज्ञानमधिगम्यते तथापि तदधिकरणन्तु प्रकृतिरेव तद्विलोडनेनैव ज्ञानराशेर्लाभ इति भाव:। यस्य हि नाम शरस्य भगवान् परमकारुणिको लोके सहस्रधाराभिरानन्दवर्षयिता परमेश्वर: पिता यस्य च जननी खल्वियं भगवती भूतधात्री कथमसौ न नियतं लक्ष्यवेधेन सौभाग्यं ममोत्पादयेत।' (पृष्ठ १९)

इसी प्रकार अथर्व १.४.१ में परमेश्वर के स्वरूप और अथर्व १.१.१ के भाष्य में ईश्वरस्वरूप पूर्वक प्रार्थना पर प्रकाश डाला है।

त्रैतवादपरक वैदिक दार्शनिक मान्यता का उल्लेख करते हुए अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के 'त्रिषप्ता:' पद के भाष्य में भाष्यकार ने लिखा है- 'त्रय: सप्ता:। तीन सप्त। इस अर्थ में सप्त शब्द षप् समवाये धातु से बना हुआ क्त प्रत्ययान्त रूप मानना होगा। जो एक दूसरे में समवाय से रहते हों, सदा एक दूसरे के साथ और एक दूसरे में व्याप्त रहते हों उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त कहेंगे। ऐसे तीन सप्त जीव, ईश्वर और प्रकृति होंगे। इन्हीं तीनों ने संसार के सारे रूपों को धारण किया हुआ है।' (पृ. ८)

छठे सूक्त में, ईश्वर की भक्तिपरायणता और भक्ति के नानाविध फलों का वर्णन किया गया है।[८] वैज्ञानिक प्रक्रिया से प्राण और अपान का विवेचन करते हुए अथर्व, १.३.२ के भाष्य में लिखा है- यत्र ह्याचार्य्यैरन्तः प्रविशन्वायुरपानेत्याख्यया बहिर्निर्गच्छँश्च प्राणेत्याख्ययाऽभिहितस्स हि तत्र वानस्पत्यस्यास्माभिः प्रत्यक्षमुपलभ्यमानस्य सर्गस्यापेक्षया तथाऽख्यातः। तथा हि वानस्पत्यमिदं जगदस्माभिरुत्सृष्टेन वायुना प्राणिति, तदपानितेन च वायुना वयं जीवामः। यो ह्यस्माकमपानः स हि वीरुधां प्राणो यो वीरुधामपानः स एवास्माकं जीवनाधारतया प्राणः। न च वृक्षादौ प्राणनभावः इत्याक्षेपणीयम्। **'येन॑ प्रा॒णन्ति॑ वी॒रुध॑'** इत्यथर्वसंहितायाम् (१.३२.१) दर्शनात्।' (पृ. ४१)

हमने यथामति संक्षेप में उपर्युक्त विषयों को ढूंढकर दिखाया है। इसी प्रकार यदि सूक्ष्मदृष्टि से मुहुर्मुहुः प्रकृतवेदभाष्य का पारायण किया जाये तो कई अज्ञात वैज्ञानिक वैदिक तत्त्व मिल सकते हैं। क्योंकि वैदिक तत्त्वों पर स्वा. समर्पणानन्द जी की पहुँच प्रगल्भ एवं प्रामाणिक थी।

प्रकृत भाष्य की विशेषतायें

I. **भाष्य-लेखन का ढंग-** स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत इस अथर्वभाष्य का सम्यगध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि यह भाष्य इस रीति या क्रम (ढंग) से लिखा गया है कि मन्त्र- व्याख्यान में किसी भी प्रकार का संशय न रह जाये। सूक्त के प्रारम्भ में ऋषि, देवता, छन्द और सूक्त-प्रसंग का पूर्वापर सम्बन्ध स्थापन के पश्चात् संहितापाठ, पदपाठ, अन्वय मन्त्रों की विशद व्याख्या (विवेचन), शब्दार्थ और अन्त में मन्त्र का भावार्थ स्पष्ट लिखा है। मन्त्र के प्रारम्भ में मन्त्र-प्रसंग को भी दिखाया गया है।

प्रत्येक मन्त्र के भाष्य में व्याकरण प्रक्रियान्तर्गत निरुक्तशास्त्र और व्याकरण शास्त्र के द्वारा क्रमशः निर्वचन एवं प्रकृति-प्रत्यय, आगम, विकार आदि का अनुसन्धान कर शब्द की सिद्धि भी की है। इस व्या.प्र. में श्री क्षेमकरणदास जी के भाष्य से विशेष सहायता ली गयी है। इसका उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने प्रथम मन्त्र के भाष्य में लिखा है- 'व्याकरणप्रक्रियेयं श्रीक्षेमकरणभाष्याद् विशेषत उद्ध्रियते। उपरिष्टादप्यस्य मान्यविदुषो भाष्यात् पदानां व्याकृतिप्रदानेन भूयः साहाय्यमादास्यामः। अतस्तस्य महान्तमुपकारं मन्वानास्तस्मै साञ्जलि नमस्कुर्मः।'

II. **वेदार्थ-शैली**[९]- स्वामी समर्पणानन्द जी ने पुराण-प्रभावित वेदार्थ-शैली जिसमें बहुदेवतावाद, कर्मकाण्ड एवं विनियोगों की प्रधानता है, को न अपनाकर दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द द्वारा प्राचीन यास्क-शैली के पुनरुद्धार स्वरूप विकसित शैली[१०] को ही अपने भाष्य में अपनाया है।

स्वामी जी ने कोई नवीन मान्यता स्थापित नहीं की। उन्होंने आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक अर्थों के साथ व्यावहारिक (अधिराष्ट्र अधिज्यौतिष आदि इतर प्रक्रियापरक) अर्थ कर अथर्ववेद की दैनिक जीवन में उपादेयता स्थापित की है। उनकी वेदार्थ-शैली के सिद्धान्त हैं-

(१) वेद के सब शब्द यौगिक हैं, योगरूढ़ हैं, रूढ़ नहीं।
(२) वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं।
(३) इनमें मानव-इतिहास और भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्तिका आदि का वर्णन नहीं है।
(४) वेदों के अर्थ देवतानुसार होने चाहिए, उनमें स्वर, छन्द का भी ध्यान रखना उपयोगी है।
(५) वेद ज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है, उसमें विकासवाद नहीं है, परन्तु अधिकतम विकास की प्रेरणा देता है।
(६) विकासवाद, अदृष्टवाद एवं विनियोगवाद- ये तीन वेद-विघातक वाद हैं परन्तु यौगिकवाद, समकक्षवाद तथा विज्ञाताश्रयवाद- ये तीनों ही वेदार्थ में परमसहायक हैं।

इस शैली को ही स्वामी जी ने अपने अथर्वभाष्य में स्थान दिया है। जिसके आधार पर इस भाष्य की विशेषतायें इस प्रकार हैं-

(क) मन्त्रार्थ देवता के अनुरूप हैं- शब्द की व्युत्पत्ति एवं रचना पर ही वेद के शब्दों का अर्थ निर्भर करता है। एक मूल शब्द के अनेकों अर्थ होते हैं। विषयानुसार उनका मुख्य अर्थ स्थापित किया जाता है। देवता यह इंगित करता है कि यहाँ इस शब्द का विषयानुसार क्या अर्थ होना चाहिए[११], और वैसा करने पर ही समस्त शब्दों एवं मन्त्रार्थ की ठीक संगति बैठती है। अत: जब मन्त्र के पदों का देवता की दृष्टि से उनके आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक अर्थ किये जाते हैं, तभी मन्त्र का सत्यार्थ होता है। इस प्रकार देवता मन्त्रार्थ को सुस्पष्ट एवं नियन्त्रित करने में सहायक होता है।

देवता के अनुसार, व्यापक दृष्टि से मन्त्र के कई अर्थ तो हो सकते हैं, मगर सब शब्दों का अर्थ मन्त्रान्तर्गत प्रत्येक पद का अर्थ देवता से- नियन्त्रित एवं सम्बन्धित (संगत) होना चाहिए। इसी बात की पुष्टि वेदार्थ प्रकाशक निरुक्तशास्त्र से भी होती है- 'न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्या:। प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्या इति (नि. १३.१२)।' देवता मन्त्र का प्राण है, आत्मा है, केन्द्रबिन्दु है, मन्त्रार्थ का आधार और चिन्तनधारा का मार्गदर्शक है।

देवता-सबन्धी उपरोक्त तथ्य एवं विवेचन को ध्यान में रखकर ही स्वामी समर्पणानन्द जी का अथर्ववेद भाष्य के रूप में यह सफल प्रयास है। इसमें जहाँ मन्त्र के कई अर्थ किये हैं, वहाँ भी सब शब्दों का अर्थ देवता से नियन्त्रित एवं सम्बन्धित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह के संकेत, भाष्य में स्थान-स्थान पर मिलते हैं, पुनरपि इसकी पुष्टि में हम भाष्यकार के निम्न वचन को ही उद्धृत करना उचित समझते हैं- 'इस प्रकार विविध क्षेत्रों में 'आपः' के उस विषयक अर्थ की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस भाँति इन मन्त्रों के अनेक अर्थ हो जायेंगे। इसलिये कहा है कि 'अनन्ता वै वेदाः' वेद अनन्त हैं।' (पृ. ६८)

(ख) प्रकृत भाष्य यौगिक- प्रक्रिया पर आधारित है:-

यौगिक-प्रक्रिया का वेदार्थ में अत्यन्त महत्त्व है। निरुक्त के लगभग सभी आचार्य, विशेषकर आचार्य यास्क, वेदों के समस्त नाम-पद यौगिक हैं एवं वे सभी यौगिक प्रक्रिया से अर्थ का बोधन कराते हैं- ऐसा मानते हैं। स्वामी समर्पणानन्द जी ने अपने भाष्य में प्राचीन शास्त्रीय इस यौगिक-प्रक्रिया का ही आश्रय लिया है। इससे दूसरे अनार्ष भाष्यों से वैदिक मान्यताओं के विषय में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनका समूल निराकरण हो जाता है।

यौगिक-प्रक्रिया की विशेष देन है वैदिक शब्दों के विविध अर्थों को बताना। कोई शब्द लौकिक संस्कृत में जिस अर्थ में प्रचलित है उसका वही अर्थ वेद में भी हो, यह आवश्यक नहीं। वेद में शब्दों का अर्थ लौकिक शब्दों की अपेक्षा व्यापक है। यह सबको मानना ही पड़ता है, यदि ऐसा न मानें तो-

'अश्वा॒ भव॑त वा॒जिनो॒ गावो॑ भवत वा॒जिनीः' (अथर्व. १.४.४)। यहाँ 'वाजी' और 'वाजिनी' शब्द का क्या अर्थ करेंगे? घोड़े-घोड़े हो जावे और गौवें घोड़ी हो जायें। कदापि नहीं।

यहाँ सायण को भी 'वाज इति बलनाम' यह निरुक्त प्रमाण देकर 'अश्वाः बलयुक्ता भत्रथ' और 'गावः प्रभूतक्षीरा भवथ' ऐसा अर्थ करना पड़ा। इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए, यौगिक-प्रक्रिया से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ- 'अश्वाः बलवन्तो भवथ तथा गावस्तद्गुणविशिष्टा भवथः (पृ.७२) करते हुए भाष्यकार ने इस प्रक्रिया का वैशिष्ट्य दर्शाते हुए डिण्डिम घोष किया है- 'वैदिक शब्दानां यौगिकत्वं न स्वीकुर्वताम्मतेऽश्वा भवथ वाजिन इति वाक्यस्य कथमर्थनिर्व्वहणं स्यादिति विभावनीयम्भाव-विद्भिः।' अर्थात्, जो लोग वेद के शब्दों का यौगिक अर्थ स्वीकार नहीं करते हैं उन्हें इस मन्त्र के उत्तरार्ध की व्याख्या में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि रूढ़िवाद में अश्व का अर्थ भी घोड़ा होता है और वाजी का भी। 'वाजिनी' का अर्थ होता है घोड़ी। तब मन्त्र-खण्ड का अर्थ यह होगा कि 'हे घोड़ो, तुम घोड़े हो जाते हो और हे गौवो, तुम घोड़ी हो जाती हो।' कितना हास्यास्पद अर्थ है। इसी तरह द्वितीय अनुवाक के प्रारम्भ में भाष्यकार ने यौगिकवाद से 'मूत्र' शब्द के कई प्रकार के मल अर्थ कर लिखा है- 'मूत्र शब्देन च रूढ़िम्परित्यज्य योगमाश्रित्यान्येषामपि मलानामात्मन्यन्तर्भावः कृत इत्यपि स्फुटीकृतम्' (पृ. ८३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: (**बस्तिबिलं समुद्रस्योदुधेरिव**, अथर्व. १.३.८) इस मन्त्रांश की व्याख्या भी भाष्यकार ने यौगिक प्रक्रिया की सहायता से की है तथा लिखा है कि 'बस्तिबिलम् का दृष्टान्त होने के कारण समुद्र सागर न होकर, (उन्दी क्लेदने) उसका यौगिकार्थ ही लिया जायेगा। इस प्रकार 'उदधि' शब्द का अर्थ होगा वह कृत्रिम जलाशय, जो कि वर्षाऋतु के जल को एकत्रित करके बनाया जाता है।'

इस प्रकार अनेकों अर्थ यौगिक-प्रक्रिया से इस भाष्य में किये गये हैं। विस्तार-भय से सबको दिखाना असम्भव है। यौगिक प्रक्रिया के साथ-साथ भाष्यकार ने वैज्ञानिक प्रक्रिया का भी आश्रय लिया है। परन्तु, वह भी यौगिक प्रक्रिया से ही अनुप्राणित है।[१२]

(ग) ब्राह्मणग्रन्थों का आश्रय- वेदमन्त्रों की व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों का विशेष महत्त्व है। वेद व्याख्येय हैं और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्यान। स्वामी समर्पणानन्द जी ने प्रस्तुत भाष्य में, अपने विवेचन को सुस्पष्ट करने के लिए जहाँ निरुक्तशास्त्र के वचनों का आश्रय लिया है वहीं व्याकरण की संगति के अभाव में एवं अर्थ को अधिक सुसंगत करने के लिए ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणों का सहारा भी लिया है। ५८ मन्त्रों के कलेवर वाले इस भाष्य में ४५ प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थों के हैं। जिससे स्वा. समर्पणानन्द जी के तद्विषयक साहित्य-मर्मज्ञत्व का बोध होता है। उनके इस भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थों के उद्धरणीय अंशों की विपुलता को देखकर यदि हम यह कहें कि उनका प्रत्येक अर्थ और विवेचन ब्राह्मण वचनों के उद्धरणों से अलंकृत है तो कोई अत्युक्ति नहीं। ब्राह्मणग्रन्थों के जिन प्रमाणों को भाष्यकार ने उद्धृत किया है उनका विवरण इस प्रकार है-

१. ब्रह्माग्निः। श. १.३.३.१९
२. ब्रह्म वा अग्निः। श. ५.३.५.३२
३. ब्रह्म ह्यग्निः। श. १.५.१.११
४. अग्निरु वै ब्रह्म। श. ८.५.१.१२
५. अग्निरेव ब्रह्म। श. १०.४.१.५
६. ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति। श. १.४.२.२
७. वाग् वै बृहती तस्या एषः पतिः। श. १४.४.१.२२
८. ब्रह्म वै बृहस्पतिः। श. ३.९.१.११
९. क्षत्रं वा इन्द्रः। श. ३.९.१.१७
१०. द्वयं वा इदं न तृतीयस्ति। आर्द्रं चैव शुष्कं च। यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्रं तत् सौम्यम्। श. १.६.२.२३
११. रेतो वै सोमः। श. १.९.२.९
१२. पूषा वै देवानां भागदुघः। श. ५.३.१.९
१३. एते खलु वादित्या यद् ब्राह्मणाः। तै. १.१.९.८
१४. पूषा भागदुघोऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता। श. १.१.२.१७
१५. असुराः कुसीदिनः। श. १३.४.३.११
१६. एष वै शुक्रो य एष तपति। श. ४.५.९.६
१७. रेतो देवतेति। श. २.३.१.१
१८. प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ। श. १.८.३.१२
१९. प्राणो वै मित्रः। श. ६.५.१.५
२०. ब्रह्ममित्रः। श. ४.१.४.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२१. प्राणोदानौ मित्रावरुणौ। श. ३.२.२.१३
२२. उदानो ह्यन्तर्यामोऽमुं (दिवं) ह्येव लोकमुदनन्नभ्युदमिति। श.४.१.२.२६
२३. वज्रो हि वा आपस्तस्माद् येनैता यन्ति निम्नं कुर्वन्ति यत्रोपतिष्ठन्ते निर्दहन्ति ब्राह्मण (पृ. ४३)
२४. मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोऽभिगन्तैव ब्रह्मकर्ता क्षत्रिणा इति। श.४.१.४.१
२५. मित्रस्त्वा परिबध्नीतामिति०। श.३.२.४.१८
२६. अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति। तै.ब्रा.१ ७.२.६
२७. वरुणो वा एतं गृह्णाति०। श.१२.७.२.१७
२८. वरुण्यं वा एतत्। श.२.५.२.२०
२९. वरुण्यो वै ग्रन्थिः। श.१.३.१.१६
३०. तस्मादेव पत्न्या योक्त्रे०। श.३.२.४.१८
३१. योषा वै आपः। श.१.१.१.१८
३२. सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहेति तदुभयतो०। श.२.३.१.३३
३३. अग्नेरेवैतानि नामानि घर्म्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः। श.९.४.२.२५
३४. तै.ब्रा. ३.९.१८.५
३५. मनो वै देवताध्नम्। श.१.४.३.६
३६. नामृतत्वस्या शास्ति। श.२.२.२.१४
३७. वीर्यं वा अश्वः। २.१.४.२३
३८. क्षत्रं वा अश्वः। ६.४..४.१२
३९. या गौः सा सिनीवाली। ऐ.३.४८
४०. योषा वै सिनीवाली। श.६१५.१.१०
४१. ऐ.ब्रा. ७.१३
४२. उभयं वै तदन्नं यद् दर्भा आपश्च ह्योता ओषधयश्च। श.७.२.३.२
४३. आपो दर्भाः। श.२.२.३.११
४४. आपो वै दर्भाः तै.३.३.२.१
४५. तै.ब्रा.२.८.३.८

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी समर्पणानन्द जी ने यौगिक-प्रक्रिया को अपनाते हुए तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों को उद्धृत करके अपने भाष्य को अधिक तर्कसंगत, बोधगम्य एवं चमत्कृत कर दिया है।

ब्राह्मणग्रन्थों के अतिरिक्त अथर्ववेदीय मन्त्रों का अभिप्राय भाष्यकार ने आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्र, आयुर्वेद एवं संस्कृत वाङ्मय के अन्य अनेक ग्रन्थों तथा आंग्लभाषा में प्रणीत शरीर विज्ञान से सम्बन्धित ग्रन्थों एवं कोशों के प्रमाणों से स्पष्ट किया है। जिनका विवरण इस प्रकार है–

संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थ- बाल्मीकि रामायण, महाभारत, चरकसंहिता, न्यायदर्शन, न्यायवात्स्यायन भाष्य, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र, जै.उ., प्र.उ., नीतिशतक, अमरकोश, भावप्रकाश, राजनिघण्टु, मनुस्मृति, निरुक्त, निघण्टु, गीता, अष्टाध्यायी, उणादिकोश, तै. आरण्यक, फिट् सूत्र और संस्कार विधि आदि। कल्याण मार्ग का पथिक (हिन्दी)।

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ- प्रेक्टिस ऑफ मैडिसन, मैडिसन बाईब्यूमौण्ट, मैन एण्ड वीमैन, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, एन इण्डैक्स ऑफ ट्रीटमैण्ट ब्राई वैरियस राइटर्स,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होमियोपैथिक मैटिरिया मेडिका, इण्डैक्स टु ट्रीटमैण्ड आदि।

उपरोक्त ब्राह्मण एवं अन्य ग्रन्थों के प्रमाण इस भाष्य में वेदार्थ-पुष्टि में अत्यन्त सहायक होने से दर्शाये गये हैं। उनसे वेदों के स्वतः प्रामाण्य पर कोई आँच नहीं आती। इसको आलंकारिक भाषा में स्पष्ट करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'अत्र केचिद् ब्रूयुर्हन्त भो! श्रुतिवाक्यान्यपि प्रमाणान्तरैः पुष्टिमपेक्षन्ते तत्रेत्थमावेदयामो यदियमेव लोकस्य यात्रा कदाचिन्नौ शकटं वहति कदाच्छिकटो नावं वहति। प्रत्यक्षेण समर्थितेषु वैदिकवचनेषु प्रत्यक्षागोचरेष्वप्यत्र वर्णितिष्वध्यात्म तत्वेषु दृढतरम्प्रत्ययमादध्युरध्येतारः इत्येतदर्थमेवाय-मभ्यासो न तु श्रुतिसूर्यस्य प्रदीपेनालोकनोपहासे पक्षपातस्तन्मर्षणीयोऽयं व्यक्तिक्रमः कालस्य महिमानं जानद्भिर्विद्वद्वरेण्यैरिति साञ्जलिबन्ध-मभ्यर्थयामः।' (अथर्वभाष्य १.९.२, पृ. १०७)

(घ) अर्थों की अलौकिकता- प्रकृत भाष्य में ब्राह्मणग्रन्थानुमोदित एवं यौगिक-प्रक्रिया से बोधगम्य और तर्कसंगत देवतानुसारी अर्थों की अलौकिकता क्या है? अब इस विषय पर प्रकाश डालते हैं।

स्वामी समर्पणानन्द जी ने अथर्ववेदभाष्य में विविधार्थप्रक्रिया का विशेषरूप से प्रयोग किया है। क्योंकि आधुनिक विद्याओं, विज्ञानों और प्रकृति के तत्त्वों के प्रति उनकी अतीव निष्ठा थी, इसलिए उनके अर्थों में नवीनता है। ज्ञान का उद्देश्य अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की प्राप्ति है। इस कारण उनकी दृष्टि में जीवन का लक्ष्य केवल अध्यात्म ही नहीं, अधिभूत भी हैं। अत एव भाष्यकार ने प्रकृत वेद के प्रारम्भिक सूक्तों में ही आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, अधिज्यौतिष और अधिराष्ट्रादि व्यावहारिक अनेक पक्षों में अर्थ दिया है। वे मन्त्रान्तर्गत किसी एक शब्द को उपलक्षण मानकर उपमा, रूपक और श्लेष अलङ्कारों के प्रयोग से मन्त्रों के कई अर्थ प्रायः सूचित कर देते हैं। आपः देवता के मन्त्रों की वे जल, परमात्मा, ज्ञानधारा, स्त्री और प्रजा पाँच पक्षों में अर्थ-योजना करते हैं। मित्र का अर्थ प्राणवायु, जीवन का आधारभूत (ऑक्सीजन), जलों का उत्पादक, राजसभा में राष्ट्रोपयोगी नियम बनाने वाला राजपुरुष आदि करते हैं। वरुण का अर्थ उदान अर्थात् हाइड्रोजन नामक वायु और पुलिस विभाग का अध्यक्ष (राज्याधिकारी) आदि करते हैं। सूर्य का अर्थ राजपुरुष, विद्वान्, वीर्य, दर्भोत्पादक और सब प्रजाओं का प्रमाण करते हैं। शर शब्द के ज्ञान, जल और औषधि, चन्द्र के चन्द्रमा, जलों का पिता, ललित कलाओं के प्रबन्ध करने में नियुक्त राजपुरुष, पर्जन्य के परमात्मा, मेघ, संन्यासी, कुलपति, तृप्तिकर्ता एवं सबका उत्पादक, पृथिवी के पत्नी, पृथिवी और उससे उपलक्षित प्रकृति, सोम के वीर्य और वैद्य, अग्नि के ब्राह्मण, भौतिक अग्नि, जाठराग्नि, विद्युत् रूप अग्नि, प्रजा, विद्वान् और प्राणशक्तिरूप अग्नि, बृहस्पति के सिर, वेदवेत्ता ब्राह्मण और पुरोहितों का अधिपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं हवि के मन्त्रजप, नहर खोदना और जलयन्त्र बनाना आदि के व्यापार, आह्वान, सत्कार, स्नेहयुक्त व्यवहार, अन्न, कर (टैक्स) आदि अर्थ करते हैं।

विविधार्थ प्रक्रियाओं में मुख्य शब्दों के अर्थ क्या लिये जायें इस विषय में भाष्यकार प्राय: वेदों और उनके व्याख्यानभूत ब्राह्मणग्रन्थों से ही प्रेरणा लेते हैं। जैसा कि वे लिखते हैं-

१. 'आप:' से जल का वर्णन तो होगा ही परमात्मा का भी वर्णन हो जायेगा। क्योंकि वेद में ही **'ता आप: स प्रजापति:'** (यजु. ३२.१) इन शब्दों में आप: का अर्थ प्रजापति परमात्मा किया गया है।(पृ. ६६)
२. 'आप:' का अर्थ ब्राह्मणों में 'योषा वै आप:'(श.१.१.१.१८) स्त्री भी किया गया है। इसलिए मन्त्रों की व्याख्या स्त्री परक भी हो सकती है।(पृ. ६८)

भाष्यकार ने एक मन्त्र के अनेक अर्थों में किसी एक अर्थ को प्रधान मानकर अन्य आनुषंगिक अर्थों को भी दर्शाया है। इस अनेकार्थक शैली में भाष्यकार ने अध्यात्म से अधिदैवत परक तथा अधिभूत एवं अधिदैवत से अध्यात्म परक अर्थों की संगति लगायी है। इन तीनों प्रकार के अर्थों में ही अन्य प्रकार के अर्थ भी श्लेष अलंकार से समाहित हो जाते हैं। ये विविध अर्थ असंगत नहीं अपितु, इनमें औचित्य विद्यमान है।[१३] इसके साथ ही साथ इनमें विशेषण विशेष्य भावों की सार्थकता भी प्रदर्शित की गयी है।[१४] भाष्यकार ने देवतानुसारी प्रतिपाद्य मुख्यार्थ को मानते हुए कहीं-कहीं प्रत्यक्षकृत ऋचाओं का चेतनप्राणिपरक अर्थ भी सुन्दर रीति से घटाया है।[१५] मन्त्र-व्याख्या में एक वचनान्त क्रियाओं के साथ बहुवचनान्त क्रियाओं की संगति इस प्रकार लगायी गयी है कि एक भी अर्थ का उच्छेद (विघात) नहीं होता।[१६]

प्रकृत वेद के भाष्यकार ब्राह्मण-साहित्य के अनन्य विद्वान् थे। ऐसा हम ऊपर लिख चुके हैं। समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र में भी उनका अद्भुत प्रवेश था। उन्होंने अथर्ववेद के सूक्तों और मन्त्रों का इसी दृष्टि से अध्ययन और विवेचन किया है। वेद की ऋचायें मानव-जीवन की सामूहिकता को उदात्त करने के प्रयोजन से मनुष्य को दी गयीं, गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन के अनन्तर उनकी ऐसी आस्था बन गई थी और इसी दृष्टि से स्वा. समर्पणानन्द जी के प्रकृत वेद भाष्य में एकरूपता और प्रवाह दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, अधिराष्ट्रपरक व्यावहारिक अर्थों में मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य के अर्थों में एकरूपता की संगति लगाते हुए उन्होंने लिखा है-

'मित्र को चाहिये कि वह दूषित शासन विधान के, इसी प्रकार वरुण दूषित पुरुष के चन्द्र विषय वासना पैदा करने वाले संगीत कला आदि के सूर्य, प्रमादादि दोषों से युक्त साहित्य के दोषों को इस प्रकार दूर करे, जिस प्रकार शरीर मूत्र को दूर करता है।' (अथर्व. १.३, पृ.६०)

प्रकृत एवं अन्य भाष्यों में अन्तर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त वर्णन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वा. समर्पणानन्द कृत यह अथर्वभाष्य वेदभाष्य-परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अथर्ववेद के अन्य भाष्यकार हैं, जैसे- वैनियोगिक भाष्यकार सायणाचार्य, गिरधारीलाल शास्त्री (फर्रुखाबाद वाले), पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी और चतुर्वेदभाष्यकार पं. जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार और दामोदर सातवलेकर आदि। इनमें से दा.सातवलेकर को छोड़कर अन्य सबका भाष्यकार ने अपने वेदभाष्य में नामोल्लेख किया है। एवं स्थान-स्थान पर इनके सिद्धान्तों को भी उद्धृत किया है। एक दो स्थानों पर गिरधारी लाल शास्त्री के अर्थों को तटस्थभाव से स्वीकारते हुए भाष्यकार ने उनका स्मरण किया है। पं. गिरधारी लाल शास्त्री ने यद्यपि अथर्ववेद के प्रथमसूक्त का ही भाष्य किया है पुनरपि, तद्भाष्य के प्रथम मन्त्र के 'त्रिषप्ताः' पद के उत्कृष्ट अर्थ को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर कस, अनन्य भाव से उचित ठहराते हुए सम्मानपूर्वक उनका स्मरण किया है। पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी के भाष्य से तो स्वा. समर्पणानन्द जी ने स्थान-स्थान पर सहायता ली है, विशेषतः व्याकरण-प्रक्रिया में, यह हम ऊपर दिखा चुके हैं। इनके अतिरिक्त वैनियोगिक भाष्यकार आचार्य सायण के अलीक, मिथ्या, तथ्यहीन एवं असंगत अर्थों का स्थान-स्थान पर युक्तियुक्त खण्डन कर उनके अस्पष्ट अर्थों की सही संगति लगाकर वेद के रहस्यमय तत्त्वों को भी उद्घाटित किया है। भाष्यकार ने यह इसलिए नहीं किया कि इससे वेदभाष्य-परम्परा में आचार्य सायण का महत्त्व कम हो जाये, बल्कि वह तो इनको विद्यार्णव, विनियोगादि सामग्रीसंग्रहीता, वैदिक वाङ्मय के महान् विद्वान् एवं पदवाक्यप्रमाणज्ञ आदि विशेषणों से विशेषित कर उचित सम्मान देते हैं, एवं तत्कालीन परिस्थिति को ही इसका दोषी ठहराते हैं।[१७]

प्रत्येक युग की अपनी परिस्थिति भिन्न होती है। तत्कालीन वातावरण (परिवेश) से, चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक रचनाकार अछूता नहीं रहता। इसलिए जिस मध्ययुग में आचार्य सायण पैदा हुए वह बड़ा ही उथलपुथल वाला था और उस समय यज्ञों की प्रधानता थी। अतः इस कर्मकाण्ड प्रधानयुग की छाप सायणभाष्य पर स्पष्ट दीखती है। क्योंकि उन्होंने अधियज्ञप्रक्रिया से वेदमन्त्रों के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विनियोगपरक अर्थ किये हैं। अपने से पूर्ववर्ती कृति का महत्त्व कम नहीं होता, क्योंकि भूत प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि परक व्याख्या करके वेद के स्वच्छ, सुन्दर, गम्भीर अभिप्राय को बिगाड़ दिया और इससे अथर्ववेद को वास्तविक वाणी न मिल पाई, उसकी निगूढ़ आत्मा का उन्मेष न हो पाया तथा उसके लाल (रत्न) छिपे के छिपे रह गये। साथ ही, इसके विपरीत भारतीय जनमानस में भूत-प्रेतादि की भ्रान्ति पैदा हो गयी और वे वेदों पर अश्रद्धा रखने लगे।

इस अश्रद्धा एवं अविश्वास को दूर कर छिपे रत्नों को प्रकट करने का ही यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभूतपूर्व प्रयास है, यह प्रयास इस भाष्य की मौलिकता है। चाहे अल्पकाय यह भाष्य अपूर्ण हो, फिर भी सदियों तक वेदानुयायियों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

सायण एवं मौद्गल्य (स्वा. समर्पणानन्द) कृत अथर्वभाष्यों के समीक्षात्मक अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सायण-भाष्य में निम्न दोष हैं, जिनसे वह अस्वीकार्य है-

१. विशेषण विशेष्य भावों में सार्थकता का अभाव।[१८]
२. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में असंगति और प्रवाह-भंग।
३. वेदों के शब्दों को यौगिक न मानकर मिथ्यावादिनियोग परक अर्थ करना।
४. साहचर्य का विरोध।[१९]
५. लोकप्रचलित मिथ्या धारणाओं एवं वेदों में भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि का वर्णन है, ऐसी गलत मान्यताओं के आधार पर अर्थ करना।[२०]
६. अर्थों में औचित्य का अभाव।
७. वाच्यार्थ की प्रधानता।

किन्तु, प्रकृत मौद्गल्यकृत अथर्वभाष्य इन दोनों से सर्वथा असम्पृक्त एवं इनसे विपरीत अनेक गुणों से युक्त है, जिस कारण यह सर्वथा ग्राह्य है। वे गुण इस प्रकार हैं-

१. प्रकृत भाष्य में मिथ्याविनियोगों एवं तत्परक अर्थों के खण्डन पूर्वक पूर्वाचार्यों के उचित विनियोगों एवं अर्थों का मण्डन हुआ है।[२१]
२. इसमें पौराणिक कथाओं के मूल रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।[२२]
३. व्यङ्ग्यार्थ की प्रधानता है।
४. अर्थों में औचित्य प्रधानता है।
५. पूर्वापर सूक्तों एवं मन्त्रों के अर्थों में संगति एवं प्रवाह है।
६. विशेषणविशेष्य भावों में सार्थकता है।
७. पदों के अर्थों में साहचर्य का विरोध नहीं है।
८. इसमें वेद के शब्दों को यौगिक मानकर एवं तत्प्रक्रिया और वैज्ञानिक-प्रक्रिया दोनों से भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदि परक अर्थों का खण्डन कर वेद के स्वच्छ, सुन्दर एवं गम्भीर अभिप्राय की पुनः स्थापना की गयी है।

इत्यादि उक्त इन कतिपय गुणों के कारण यह मौद्गल्यकृत अपूर्ण अथर्वभाष्य वेदभाष्य-परम्परा में अपनी पूर्णता का भान हमेशा कराता रहेगा, ऐसी आशा है।

-०-०-

---

[१] देखो, डा. भवानीलाल भारतीय, आर्यलेखक कोश, पृष्ठ ३२

[२] प्रस्तुत लेख में पृष्ठ संख्या उसी के अनुसार दी गयी है।

[३] देखो, सायणाचार्यकृत अथर्वभाष्य की भूमिका में- 'ऐहिकामुष्मिक फलं चतुर्थं, एवं प्रकृत वेदभाष्य की पृ. सं. ६

[४] अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के भाष्य में ही भाष्यकार ने लिखा है 'इस प्रकार इस मन्त्र (ये त्रिषप्ता०) में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मविद्या, भूतविद्या, वयोविद्या, लिङ्गविद्या, आयुर्वेदविद्या, संगीतविद्या, शब्दविद्या, चित्रकला और राजनीति का बल वाचस्पति गुझे देवें ऐसी प्रार्थना की गई है।' (पृ. १२)

[५] द्र. अथर्व. काण्ड-१, अनुवाक-२ की भूमिका, पृष्ठ ८३)

[६] द्र. अथर्व. १.११.३ का भाष्य पृ. १२५

[७] द्र. अथर्व. १.९ ,सू. का भाष्य

[८] समाराध्यमानं विविधाम्फलपरम्परां प्रसूते।

(अथर्वभा. १.६.२

[९] इस विषय में विशेष जानकारी के लिए देखो स्वामी समर्पणानन्द प्रणीत 'ऋग्वेदमण्डलमणिसूत्र' का प्राक्कथन।

[१०] द्र. अथर्व. १.१.१ का भाष्य, पृष्ठ ७

[११] बृहद्देवता ८.१३६; वेङ्कटमाधव प्रणीत ऋग्वेदानुक्रमणी ५.१.५-७; एवं कात्यायनरचित ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार गन्त्र का जो-जो अर्थ होता है, वही उसका देवता है। (द्र. ऋ. भा. भू., प्रश्नोत्तर विषय)

[१२] इस विषय में विशेष जानकारी के लिए द्र. सू. ३ के मं. २ और ३

[१३] औचित्य विद्यमानता के उदाहरण स्वरूप मित्र और वरुण के अर्थों को लिया जा सकता है। जै.पृ. ४५ पर- वाणी का बन्धन वरुण अर्थात् पुलिस के हाथ में नहीं रहना चाहिए, वह मित्र अर्थात् राज्य नियम बनाकर अमृत का बन्धन करने वाले राजपुरुष के हाथ में रहना चाहिए, अन्यथा प्रजाओं की अपने अभिप्राय के प्रकाशन की स्वतन्त्रता नष्ट हो जायेगी।

[१४] देखो, अथर्व. १.३.८ का भाष्य, पृ. ६३-६४

[१५] देखो, अथर्व. १.५ आप: सूक्त में मन्त्र सं. १ से ३ का भाष्य तथा एतत्सूक्त सम्बन्धी भाष्यकार का यह कथन-७ अब इस सूक्त में स्त्री अर्थ की प्रधानता है। क्योंकि यहाँ 'स्थ' 'दधातन' आदि मध्यमपुरुष की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है। मध्यमपुरुष का प्रयोग चेंतन में ही अधिक सुन्दर रीति से घट सकता है। इसके साथ ही 'जनयथ' क्रिया का प्रयोग भी स्त्रियों में ही अधिक सुन्दरता से घट सकता है। (पृ. ७४)

[१६] (सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि, अथर्व. १.१.४) के भाष्य में एकवचनान्त क्रिया के साथ बहुवचनान्त क्रिया पढ़ने का औचित्य प्रदर्शित करते हुए भाष्यकार ने लिखा है- 'उस (वाचस्पति) की कृपा से मैं भी पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह अपने ज्ञान को उपयुक्त पात्रों में दान कर सकूँ। जिससे केवल मैं ही नहीं हम सारे ही ज्ञान से संयुक्त हो सकें। 'विराधिषि' इस एकवचनान्त क्रिया के साथ 'संगमेमहि' इस बहुवचनान्त क्रिया के पढ़ने का यही भाव है।' (पृ. १८)

[१७] सायणादयोऽपि च सकल शास्त्रावगाहिनो वेदाभ्यास पराङ्मुखेऽस्मिन् घोरतमेकाले विनियोगादि सामग्री संग्रहीतार: पदवाक्यप्रमाणेषु त्रिष्वपि तन्त्रेष्वव्याहतगतयो मादृशानान्तु वन्दनीया एव यद्य कुत्रापि भ्रान्तमेतैर्विद्यादिग्गजैस्तत्र कारणमद्यत्वेऽस्माभिरुपलभ्यमानानां प्राकृतिकतत्वान्वेषणसारपरिवृढानां तेषां तेषां विद्युदादिशास्त्राणां तस्मिन् कालेऽनुपलाभ एव।' (अथर्व भा. १.१.१, पृ.६-७)

[१८] द्र. अथर्वभा. १.३.८

[१९] द्र. अथर्वभा. १.११.४

[२०] द्र. अथर्वभा. १.१.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२१] द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १.११ की भूमिका

[२२] द्र. मौद्गल्यकृत अथर्वभा. १.३.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (288-295) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेदीय वहिष्ठ एवं इस्लामिक बहिश्त

डा. वेदपाल

अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, जे.वी. कालेज, बड़ौत, मेरठ

सुखप्राप्ति एवं दुःख से छूटने की ललक प्राणीमात्र में समानरूप से दिखाई देती है। मनुष्य समाज में चाहे वह किसी भी धर्म और देश से सम्बद्ध क्यों न हो, सुख प्राप्ति की इसी कामना ने स्वर्ग-'**सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः**' की अवधारणा को जन्म दिया है।

भारतीय परम्परानुसार प्रत्येक वह अवस्था तथा स्थान, जिसमें मनुष्य दुःख से छूटकर सुखपूर्वक रहता है- स्वर्ग है। सुख के शारीरिक एवं आत्मिक उभयविध होने के कारण स्वर्ग भी द्विविध कहा जा सकता है। वस्तुतः शारीरिक सुखों की पराकाष्ठा स्वर्ग तथा आत्मिक आनन्द की पराकाष्ठा मोक्ष या मुक्ति नाम से कही गयी है। व्यावहारिक दृष्टि से भी देखें तो कष्टों से रहित सर्वविध सुविधापूर्ण जीवन जीने वाले को सामान्यतः कहा जाता है कि वह स्वर्ग में है अथवा उसके यहाँ स्वर्ग है। आत्मिक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सुख है- शरीर अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से छूटकर मोक्ष का आनन्द प्राप्त करना।

तुतं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दुत्तं पित्र्यमायनेन।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव॥

इस आथर्वण मन्त्र ६.१२२.२ में सन्तान प्राप्ति के माध्यम से प्रजा तन्तु का विस्तार अथवा अबन्धु- निस्सन्तान रहते हुए ईश्वर, समाज व राष्ट्र के प्रति अपनी विद्या, धन आदि का प्रत्यर्पण करने में समर्थ होने को ही स्वर्ग कहा है।

अथर्ववेद में इस स्वर्ग का वर्णन- ब्रह्मौदन ४.३४, ओदन ११.३ तथा स्वर्गौदन १२.३ के रूप में उपलब्ध है। कौशिक सूत्रानुसार ये सभी मन्त्र 'ब्रह्मौदनसव' में विनियुक्त हैं [१], अथर्ववेदीय वैतान [२], कृष्णयजुर्वेदीय वाराह [३], वैखानस [४], आपस्तम्ब [५] तथा शुक्लयजुर्वेदीय कात्यायन [६], श्रौतसूत्रानुसार यह 'ब्रह्मौदनसव', 'अग्न्याधेय' वा 'आधान' के अन्तर्गत है। कात्यायन (२०.१.८) तथा वैतानश्रौत सूत्रानुसार (३६.१५) यह सब अग्न्याधेय के साथ-साथ अश्वमेध का भी अङ्ग है। यहाँ इसका अधियज्ञ विश्लेषण की अपेक्षा अधिलोक विवेचन संक्षेपतः प्रस्तुत है।

अथर्व ४.३४ के आठ तथा ११.३ के छप्पन मन्त्रों का देवता क्रमशः ब्रह्मौदन तथा ओदन और ऋषि अथर्वा है। बाहरवें काण्ड के तृतीय सूक्त के साठ मन्त्रों का देवता ओदन तथा ऋषि ब्रह्मा है। इन मन्त्रों का ऋषि द्रष्टा अथर्वा एवं यम ही स्पष्ट कर रहे हैं कि इनमें वर्णित ओदन वा ब्रह्मौदन का दर्शन चञ्चलता रहित एकाग्रचित्त मनुष्य ही कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रों में वर्णित स्वर्ग की प्राप्ति हेतु अथर्वा बनना नितान्त आवश्यक है।

उपर्युल्लिखित (१६.१) मन्त्रों में ओदन को स्वर्ग[७], स्वर्ग्य[८], वहिष्ठ[९], (पैप्पलाद संहिता में बहिष्ठ), लोकजित, विष्टारी, कामदुघाधेनु, धन ऐश्वर्य का स्थान[१०], सहस्त्रपृष्ठ, शतधार, अक्षय, देवयान[११], वृषभ[१२] तथा यज्ञ[१३] आदि कहा गया है। प्रसंग प्राप्त इसके स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है-

अधिकारी- 'आर्षेयेषु निदध ओदन त्वा नानार्षेयाणामस्त्यत्र'[१४]- इस मन्त्रानुसार ऋषि- प्रगतिशील (ऋष् गतौ) विचारक, ज्ञानपूर्वक आचरण कर्त्ता तथा इनकी सन्तति-शिष्य ही इसके अधिकारी हैं। अनार्ष लोगों का इसमें कोई भाग नहीं। देवयान- विद्वज्जन प्रतिपादित मार्ग पर चलते हुए पुण्यकर्मा ही इसे प्राप्त करने के अधिकारी हैं।[१५] पुण्यकर्मा व्यक्ति रथी होकर ज्ञान-कर्म रूप पक्षों से युक्त शुद्ध आत्मा हो, तेजोमय लोक को पारकर ज्योतिस्वरूप ब्रह्म[१६] (स्वर्गौदन) को प्राप्त करता है।

प्रकाशमय- यह स्वर्ग (ओदन) परम तेजोमय है। तत्त्वदर्शी जिस ज्योति से प्रकाशमय लोक को प्राप्त करते हैं, पुण्यलोक भी उसी परम ज्योति के द्वारा ही प्राप्तव्य हैं।[१७] द्यु एवं पृथिवी ये दोनों लोक ज्योतिष्मान् तथा मधुमान् हैं। यज्ञशील पुरुषों के द्वारा प्राप्तव्य यह मधु के समान आनन्द रस से पूर्ण और प्रकाशमय ज्ञान लोक हैं।[१८]

प्रिया व पुत्र- हे पुरुष! तू पौरुष शक्ति से सम्पन्न होकर अन्य पुरुषों पर अध्यक्ष रूप से अधिष्ठित हो आसन पर आ विराज तथा सब स्त्रियों में से एक जो तुझे सर्वाधिक प्रिय हो, उसे बुलाकर (पत्नी रूप में) ग्रहण कर।[१९] इस स्वर्गलोक में हम स्त्री व पुत्रों के साथ रहें। हम जिस स्त्री का हाथ ग्रहण करें, वह हमारा अनुवर्तन करे। हमें यहाँ रहते हुवे निर्ऋतिः- पाप वासना कष्ट न दे तथा अदानशील भी हमें (मो- मा उ) न सतावें।[२०]

घृत-दुग्ध-मधु-सुरा- इस स्वर्गलोक (गृहस्थ) में घृत से परिपूर्ण, शहद जिनके किनारों तक भरा हुआ है, सुरा- भपके की विधि से प्राप्त शुद्ध जल से भरे तथा दूध, सामान्य जल एवं दही से भरे कलशों से बहती हुई आनन्द को उत्पन्न करने वाली धाराएँ तुझे प्राप्त हों। तेरे समीप पुष्करिणी हो।[२१]

घृत एवं मधु से लबालब भरे कलश हों, दुग्ध एवं जल की धाराएँ बह रही हों कोई हड्डी दिखाई न देती हो- शरीर स्वस्थ एवं बलिष्ठ हो और बहुत-सी स्त्रियाँ हों तथा सुरा के कलश छलकते हों, ऐसे लोक-स्थान को प्राप्त करने पर भी मनुष्य का पौरुष सामर्थ्य अक्षम्य रहे। इसका कारण[२२] है- आचार से पवित्र, प्राणायाम क्रिया द्वारा धातुओं के सम्पूर्ण मल दग्ध करके शुद्ध तथा विचार से पवित्र होकर जब स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं, तब उनका जातवेद (ब्रह्मचर्यावस्था में ज्ञान प्राप्त होना अथवा परमात्मा रूपी अग्नि का ध्यान) होना संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का व्यवस्थापक, यम-नियम का परिपालक यम ब्रह्मौदन का परिपाक करने वालों के सामर्थ्य का हरण नहीं करता है।[२३]

दुष्टजन अग्नि में- यम नियम का पालन न करने वाले दुष्टजन अतितुच्छ तुष के समान हैं।[२४] ये इस ज्योतिर्मय मधुमान् लोक के स्थान पर अग्नि में फैंकने योग्य हैं। ये तुष आदि पाप या मृत्यु का भाग है।

अथर्ववेदीय इन सूक्तों में 'ओंदन'- वहिष्ठ का यह वर्णन आलंकारिक हैं- **'इयमेव पृथिवी कुम्भी भवती राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम्'**- ११.३.११ इस ओदन को पकाने की कुम्भी-स्थाली (हाण्डी) पृथिवी है और द्यु इसका ढक्कन है- आदि शब्दों से यह सुतरां स्पष्ट है।

स्थाली पुलाक न्याय से उपर्युद्धृत मन्त्रों से स्पष्ट है कि- यह स्वर्ग अन्यत्र कहीं नहीं, अपितु यहीं पृथिवी पर गृहस्थाश्रम है। **'अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धः', 'पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति', 'सं जायया सह पुत्रैः स्याम', 'गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः', 'नैनान्यमः परिमुष्णाति रेतः', 'तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम्'** आदि-आदि अनेक मन्त्र एवं मन्त्रांशों से सुव्यक्त है कि- गृहस्थाश्रम ही वहिष्ठ- वोदृतम- सबको वहन करने वाला तथा विततः- संसार में फैला हुआ है।

मनुष्य इस विस्तृत ओदन- सब को परिपक्व कर अर्थात् ज्ञानानुकूल आचरण करने पर प्रकाशमय ज्योतिष्मान् मधुमान् स्वर्ग- गृहस्थ में प्रवेश करता है, तो सम्पूर्ण गृहस्थोपयोगी शक्तियाँ आनन्द को उत्पन्न करती हुई उसे प्राप्त करती हैं। यह गृहस्थ स्वर्ग तभी होता है, जब वह पौरुष शक्ति से युक्त हो तथा उसकी प्रेयसी भी एक ही हो। ऐसे विद्वान्-आश्रय-पक्षी गृहस्थ की सन्तति भी उसी अमृतमय स्वर्ग- गृहस्थ का सेवन करने वाली होती है, जिसे उनकी विदुषी माता ब्रह्मचर्य पालन आदि द्वारा परिपक्व करती रही है।[२५] जब पति-पत्नी पितृ-ऋण से अनृण तथा वाणी के पास से मुक्त होने के लिए इसे परिपक्व करते हैं, तब यही **ओदन-** गृहस्थ **शतधारः**[२६] - सैंकड़ों को धारण करने वाल तथा सैंकड़ों अमृतमयी धाराओं से युक्त होत है। ऐसे ज्ञानकर्म के समुच्चयकर्त्ता पुरुषों वे लिये यह गृहस्थ ही **वृषभ-** कामनाओं का वर्णन करने वाला तथा सम्पूर्ण कामनाओं का दोहन करने वाला विश्वरूपा कामदुघा **धेनु-** कामधेनु है।

इस्लामिक बहिश्त- इस्लाम मानने वालों के पास जन-सामान्य को अपनी ओर आकृष्ट करने का बौद्धिक आधार केवल बहिश्त- जन्नत-स्वर्ग की कल्पना है। यद्यपि बहिश्त का आकर्षण कयामत एवं दोजख की कल्पनाओं के परिप्रेक्ष्य में ही महत्त्वपूर्ण है। कुरआन की शताधिक आयतों में जन्नत का वर्णन उपलब्ध है। अतिसंक्षेप में स्वरूप वर्णन प्रस्तुत है-

अधिकारी- सूरा जल-वाकिआ के अनुसार- कयामत के समय समस्त मनुष्य तीन श्रेणियों में विभक्त होंगे। १. जो अग्रसर हैं, अल्लाह के अत्यन्त करीबी हैं। २. साधारण ईमान वाले तथा ३. जो न तो ईमान लाये हैं और न ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्होंने आखिरत को स्वीकार किया होगा। इनमें से प्रथम दो ही जन्नत के अधिकारी हैं।

बहिश्त का अधिकारी बनने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य न केवल ईश्वर विश्वासी हो, अपितु वह उसके दूत (हजरत मुहम्मद स.) के प्रति भी विश्वासी हो। साथ ही वह ईश्वर से डरने वाला एवं कुरआन की शिक्षाओं के अनुकूल कर्म करने वाला भी हो। तद्यथा- 'जो लोग ईमान लाये और अनुकूल कर्म किये, उनके लिए जन्नतों का ठिकाना है।'[२७] 'जो हमारी आयतों पर ईमान लाये मुस्लिम थे'- 'दाखिल हो जाओ जन्नत में पूरी खुशियों के साथ तुम और तुम्हारे संघाती'[२८], 'और जन्नत डर रखने वालों के समीप कर दी गयी, कि कुछ भी दूर न रही।'[२९]

हदीस के अनुसार- महज अमल से कोई निज़ात नहीं पा सकता। भरोसा खुदा की रहमत का होना चाहिये।[३०]

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि- ईमान के साथ-साथ हिजरत और जिहाद भी महत्त्वपूर्ण हैं। तद्यथा- 'जो लोग ईमान लाये और हिजरत की और अल्लाह की राह में अपने माल और अपनी जानों से जिहाद किया, अल्लाह के यहाँ (उन के लिये) बड़ा दर्जा है। और वही हैं जो सफलता प्राप्त करने वाले हैं।[३१]

हदीस है कि- एक बार जिबरील ने रसूलुल्लाह स. से स्वयं प्रश्नकर्त्ता के रूप में पूछा कि- ईमान क्या है? आपने फरमाया- अल्लाह उसके फरिश्ते उसकी किताबों उसको पैगम्बरों आखिरत के दिन और अच्छी बुरी तकदीर पर ईमान लाना।[३२] कुरआन[३३] के अनुसार- नमाज कायम रखना तथा ईश्वर प्रदत्त पदार्थों में से कुछ को धर्म पर खर्च करना ही ईमान है। हदीस[३४] में ईमान और जिहाद को श्रेष्ठ आचरण माना है।

हूरें- बहिश्त में प्राप्तव्य वस्तुओं में महत्त्वपूर्ण हैं-हूरें। हूरों को लेकर इस्लाम की बहुता आलोचना होती रही है, किन्तु यहाँ अत्यन्त संक्षेप में तटस्थ रूप से कुरआन के आधार पर ही इनका परिचय प्रस्तुत है-

ये स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों वाली परम रूपवती नीची निगाह रखने वाली कुंवारियाँ तथा समायु (हम उम्र) होंगी। ये जन्नत से पहले किसी भी मनुष्य अथवा जिनके स्पर्श से अछूती रहेंगी। तद्यथा- 'और बड़ी और सुन्दर आँखों वाली परम रूपवती स्त्रियाँ', 'और हमने उन्हें कुमारी बनाया है', 'प्रेयसी और समायु'[३५], 'इनमें निगाह बचाये रखने वाली (लज्जावती) स्त्रियाँ हैं, जिन्हें इनसे पहले न किसी पुरुष ने हाथ लगाया है और न किसी जिन्न ने'[३६] और उनके पास निगाहें बचाये रखने वाली (लजीली) समायु स्त्रियाँ होंगी।[३७]

पत्नी एवं विवाह- जन्नत में पुरुष के साथ उसकी पत्नी भी होगी। तद्यथा- 'निश्चय ही जन्नत वाले आज आनन्द लेने में मग्न हैं', 'वे और उनकी पत्नियाँ घने सायों में हैं, मसनदों पर तकिये लगाये हुए हैं।[३८] 'वहाँ इस तरह का हाल होगा और हम बड़ी-बड़ी आँखों वाली सफेद रंग की औरतों से उनके जोड़े लगायेंगे।[३९] उनके लिये वहाँ पाक साफ जोड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे और वे वहाँ सदैव रहेंगे।'[४०] यहाँ टीकाकार ने पाक-साफ जोड़े होने का अर्थ- पुरुषों को अच्छी स्त्री और स्त्रियों को अच्छे पति की प्राप्ति माना है।

सूरा अर-रअद १३.२३ के अनुसार- जन्नत के बागों में प्रवेश करने वालों के पूर्वजों और उनकी पत्नियों और उनकी सन्तानों में से जो नेक होंगे, वे भी जन्नत बागों में प्रविष्ट होंगे।

उपर्युक्त आयत से प्रतीत होता है कि- स्त्रियाँ भी यदि नेक हों तो पुरुष के साथ जन्नत जाएंगी, किन्तु ऐसी स्थिति में हूरों का क्या उपयोग होगा तथा जोड़े (पाक-साफ) किनमें से बनाये जायेंगे। इसका कोई संकेत नहीं है।

किशोर- हूरों की तरह ही जन्नत में किशोरों का होना भी पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। कुरआन के अनुसार- जन्नत में ऐसे लड़के होंगे जो सदैव एक-सी अवस्था में रहेंगे। इनका कार्य दास का प्रतीत होता है। तद्यथा- 'फिर रहे हैं उनके पास ऐसे किशोर जिनकी अवस्था सदा एक ही रहेगी, आबखोरे और आफताबे लिये और प्याला निथरी बहती शराब से भरा हुआ।[४१]

भोग-सामग्री- जन्नत में रमणीय उद्यान हैं।[४२] जल के स्रोत हैं।[४३] पानी एवं दूध की नहरें हैं, जिनमें न तो सड़न है और न ही जिनका मजा बदला है। स्वादिष्ट शराब तथा साफ-सुथरे शहद की नहरें हैं।[४४] अंगूरों के बाग हैं। समवयस्का नवयौवनाएँ, छलकते मद्यपात्र, बहते स्रोत, ऊँचे-ऊँचे तख्त, गावतकिये, मखमली मसनदें तथा आबखोरे वहाँ सजे होंगे।[४५] मनपसन्द मेवे तथा इच्छानुकूल पक्षियों का मांस भी वहाँ है।[४६] जन्नत की शराब ऐसी है कि न तो सरदर्द होगा और न ही बुद्धि में विकार आयेगा।[४७] जन्नत के उद्यानों के फल नीचे लटक रहे होंगे[४८] स्यात् इसलिये कि जन्नती आसानी से तोड़कर खा सकें।

वस्त्राभूषण- जन्नतियों के वस्त्र पतले एवं गाढे रेशम के होंगे।[४९] सोने के कंगन तथा मोतियों से आभूषित होंगे।[५०] जन्नत की मसनदें मखमल की तथा बिछौने भी रेशम के हैं।

काल- जब तक धरती और आकाश हैं तभी तक जन्नती वहाँ रहेंगे। यदि रब ही इसे अन्यथा न कर दे।[५१]

फल- जन्नत प्राप्त करने का लाभ है- अल्लाह का जन्नतियों तथा जन्नतियों का अल्लाह से राजी होना।[५२] साथ ही जन्नत पा लेने के बाद कभी मृत्यु नहीं होगी, बस जो पहली मृत्यु (दुनिया में) आ चुकी, वह आ चुकी।[५३] हदीस के अनुसार तो जन्नतियों के दिल परिन्दों की तरह होंगे और यह जन्नत वास्तव में इतनी करीब है, जितना कि जूते का तस्मा भी जूते के करीब नहीं होता है।[५४]

द्वेषी अग्नि में- जो मनुष्य कृतघ्न है अथवा द्वेष करने वाला है वह तो जहन्नम की भड़कती अग्नि[५५] (यातना) ही पायेगा।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि- ईश्वर विश्वासी, पुण्यकर्मा, धर्मरक्षक एवं प्रचारक बहिश्त के अधिकारी हैं। जन्नत में प्राप्तव्य भोग-सामग्री में कुछ पदार्थ यथा- वस्त्र, आभूषण, अंगूर के बाग, आबखोरे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेवे, पक्षियों का मांस, शहद-दूध की नहरें एवं गिलमान तो इह लौकिक पदार्थ प्रतीत होते हैं। किन्तु जन्नत के काल की दृष्टि से यह वैदिक स्वर्ग का पर्याय न होकर मोक्ष का पर्याय प्रतीत होती है। इहलोक में शराब का निषेध (सूरा अल-माइदा ५.९०-९१ करने पर बहिश्त में शराब का अतिरञ्जक वर्णन इसे मोक्ष से पृथक् करता है। हाँ यदि यह शराब ईश्वर की भक्ति(भक्ति रस) हो, जिसे गुरु ग्रन्थ साहिब में- 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात' कहकर पुकारा है अथवा यह वैदिक सोम का ही देश-काल की भिन्नता से पर्याय रूप में वर्णन हो तो पृथक् बात है।

उपरिवर्णित अथर्ववेदीय वहिष्ठ- स्वर्ग तथा कुरआन प्रतिपादित बहिश्त की कतिपय प्रमुख समानताएँ एवं विषमताएँ निम्नवत् सुव्यक्त होती है। तद्यथा-

समानताएँ-

वहिष्ठ	बहिश्त
१. प्रगतिशील विचारक, ज्ञानपूर्वक, आचरणकर्त्ता, आर्ष एवं आर्षेय अधिकारी	१. अग्रसर, अनुकूल कर्मकर्त्ता, जेहादी और उनकी सन्तति अधिकारी है।
२. मधुमान् ज्योतिष्मान्	२. प्रकाशमय
३. भोग-सामग्री में मधु, दुग्ध, घृत आदि	३. शहद, मेवे, फल आदि

विषमताएँ	
१. प्रिया एक	१. जोड़ा बनाने की बात है शेष स्पष्ट नहीं, किन्तु हदीस में एक जन्नति के साथ अनेक हूरें।
२. शराब लिये किशोरों का वर्णन नहीं	२. शराब के प्याले लिये किशोर
३. मांस का नाम तक नहीं	३. मनचाहे पक्षियों का मांस
४. पुण्यकर्मों का फल तथा निरन्तर कर्मशीलता	४. रब की इच्छा भी नियामक है तथा जन्नत में कर्म की आवश्यकता नहीं
५. पृथिवी के अतिरिक्त किसी अन्य लोक में नहीं, अपितु यहीं पर गृहस्थ आश्रम ही है।	५. पृथिवी लोक के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र, स्थान स्पष्ट नहीं, यतः तब पृथिवी तो होगी ही नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से सुव्यक्त है कि तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो उभयत्र कतिपय समानताओं के होते हुवे भी अथर्ववेदीय वहिष्ठ कोरी कल्पना की उड़ान न होकर बुद्धि संगत एवं व्यावहारिक है। जबकि इस्लामिक बहिश्त की अवधारणा में मात्र अनन्त सुख-प्राप्ति की कामना ही आधारभूत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादटिप्पणियाँ

[१] अग्नीनाधास्यमानः सवन्वा दास्यन्संवत्सरं ब्रह्मौदनिकमग्निं दीपयति। अहोरात्रौ वा। यथाकामौ वा। संवत्सरं तु प्रशस्तम्। कौ.सू. ६०.१.४

[२] वैतानश्रौतसूत्र ५.४

[३] वाराहश्रौतसूत्र ४.१,७,११

[४] वैखानस श्रौतसूत्र १.५

[५] आप.श्रौतसूत्र २२.२६

[६] कात्यायन श्रौतसूत्र ४.८

[७] इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्। स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमाना त्रिश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु॥ ४.३४.८ तथा स्वर्ग ११.१.३०, ३५ विष्टारी ४.३४.३-४

[८] पैप्पलाद संहिता ६.२२.९

[९] एष यज्ञानां विततो वहिष्ठः ४.३४.५

[१०] यज्ञं दुहानं सदमित्..... ॥११.१.३४

[११] सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः॥ ११.१.२० तथा १२.३.५ भी द्र. है।

[१२] वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान्गच्छ। ११.१.३५

[१३] अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु। ११.१.१५

[१४] ११.१.३३. तथा ऋषीनार्षेयान्गच्छ। ११.१.३५

[१५] समाचिनुष्वानुसं प्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्। एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ॥ ११.१.३६

[१६] रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति- ४.३४.४ तथा ये वै विद्वांसस्ते पक्षिणो येऽविद्वांसस्तेऽपक्षाः। त्रिवृत्पञ्चदशावेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति॥ ताण्ड्य ब्राह्मण १४.१.१३

[१७] येन देवा ज्योतिषा धामुदायन्ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्। तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुक्तम्॥ ११.१.३७

[१८] उभे नभसी उभयांश्च लोकान्ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः। तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान्यो अग्रे तस्मिन्पुत्रैर्जरसि सं क्षयेथाम्॥ १२.२३.६

[१९] पुमान्पुंसोऽधितिष्ठ चर्मे हि तत्र हयस्व यतमा प्रिया ते। १२.३.१

[२०] स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम। गृह्णामि हस्तमनु मैत्वा मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः॥ १२.३.१७

[२१] घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥ ४.३४.६

[२२] अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्। नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्॥ ४.३४.२

[२३] विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परिमुष्णाति रेतः॥ ४.३४.४

[२४] अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्। एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम्॥ ११.१.२९

[२५] आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य। तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री॥ १२.३.४

[२६] यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः। स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा॥ १२.३.५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२७] सूरा अस-सजदा ३२.१९ तथा सूरा अल-अनकबूत २९.५८ भी द्रष्टव्य है।

[२८] सूरा अज-जुखरुफ ४३.६९-७०

[२९] सूरा काफ. ५०.३१ तथा सूरा अद-दुखान ४४.५ एवं सूरा मरयम १९.६३ भी द्रष्टव्य है।

[३०] रियाजुस्सलिहीन (जादे सफ़र) पृ. ६८

[३१] सूरा अत-तौबा ९.२०

[३२] जादे सफ़र- पृ. ५३

[३३] सूरा अल-अनफाल ८.२-४

[३४] जादे सफ़र- पृ. ८३ पर बुखारी मुस्लिम- ईमान की साठ या सत्तर शाखाएँ हैं, श्रेष्ठतम है- 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहना और अदना काम रास्ते में काँटे बगैर का हटा देना- वही (बुखारी मुस्लिम) पू. ८६

[३५] सूरा अल-वाकिआ ५६.२२, ३६-३७

[३६] सूरा अल-रहमान ५५.५६, ७२, ७४

[३७] सूरा सॉद. ३८.५२ तथा सूरा अन-नबा ७८.३३ भी द्रष्टव्य है।

[३८] सूरा यासीन, ३६५५-५६

[३९] सूरा अद-दुखान ४४.५४

[४०] सूरा अल-बकरा २.२५

[४१] सूरा अल-वाकिआ ५६.१७-१८

[४२] वही ५६.१२

[४३] सूरा अज-जारियात ५१.१५

[४४] सूरा मुहम्मद ४७.१५

[४५] सूरा अन-नबा ७८.१४-३३

[४६] सूरा अल-वाकिआ ५६.२०-२१

[४७] वही ५६.१९

[४८] सूरा अर-रहमान ५५.५४

[४९] सूरा अद-दुखान ४४.५३

[५०] सूरा अल- हज्र २२.२३ तथा सूरा फातिर ३५.३३

[५१] सूरा अत-तौबा ९.२२; सूरा अल-बय्यिना ९८.९; सूरा हूद ११.१०८

[५२] सूरा अल-बय्यिना ९८.८

[५३] सूरा अद-दुखान ४४.५६

[५४] जादे सफर पृ. ६३, ७७

[५५] सूरा कॉफ. ५०.२४; सूरा अल-माइदा ५.८६; सूरा अद-दुखान ४४.५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (296-299) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद में न्याय एवं दण्ड विधान

डॉ विनय कुमार विद्यालंकार
एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
रामनगर (नैनीताल)

वेद वर्णित राजधर्म (राजनीति) का महत्त्वपूर्ण अंग न्याय एवं दण्डनीति भी है। प्रायः नीति शब्द धर्म एवं सदाचार के लिए प्रयुक्त होता है। दुराचार समाज का शत्रु है। इस से मुक्ति या तो सदाचार से संभव है अथवा न्याय व दण्ड विधान स्पष्ट एवं पारदर्शी होने से । वेद में स्थान–स्थान पर सुचरित की ओर ले जाने का सन्देश प्राप्त होता है– **"परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भजः।"**[1] परन्तु सुपथ पर ले चलने के सन्देश अथवा प्रार्थना मात्र से सभी अपराधी सुधर जायं ऐसा सम्भव नहीं है। न्याय द्वारा सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के दमन के लिए दण्ड का प्रयोग अनिवार्य है–" **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**"[2] अथर्ववेद वर्णित राजधर्म के अनुसार दुष्टों व शत्रुओं का विनाश कठोरता से किया जाना चाहिए। राजव्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए न्याय एवं दण्ड का भय आवश्यक है। राजा कहता है कि– "हे दुष्ट तुम्हें फिर से पाप करने के लिए नहीं छोडूंगा।"[3] चाणक्य ने भी माना है–"राजा को चाहिए कि वह दण्डनीय को दण्ड अवश्य देवे, तभी प्रजा धर्म, अर्थ एवं काम का पालन करती है।"[4] वैदिक न्याय व्यवस्था का उद्देश्य है कि अपराधी जब पहली बार अपराध करे तभी उसे समुचित दण्ड मिल जाय तो वह पुनः अपराध में प्रवृत्त नहीं होगा यदि उसे दण्ड नहीं दिया जायगा तो वह स्वयं भी पुनः–पुनः अपराध में प्रवृत्त होगा तथा अन्य व्यक्ति भी अपराधी को दण्ड न मिलने तथा उसके सुख प्राप्ति के साधनों के सुलभ होने को उदाहरण मानकर उस मार्ग का अनुसरण करेंगें । अतः दण्ड का उद्देश्य है कि दुष्ट अपराधी को कुमार्ग से हटाकर श्रेष्ठ मार्ग पर लाया जाय।[5] जो बार–बार अपराध करते हैं और दण्ड से भयभीत नहीं होते ऐसे समाजद्रोहियों को नष्ट कर देना चाहिए।[6] वेद राष्ट्र के शत्रुओं व आन्तरिक अपराधियों दोनों को ही दण्डनीय मानता है। अपराधियों के लिए न्यायालय होने चाहिए जहाँ ज्ञानी पुरुष न्यायाधीश बनकर अपराधी के पक्ष–विपक्ष में बहस करके सत्यासत्य का निर्णय कर सके। वादी व प्रतिवादी में जो सत्य पर हो उसे छोड़कर असत्य पर चलने वाले को अवश्य ही दण्ड देना चाहिए।[7] वेद का यह भी सन्देश है कि सत्यासत्य का निर्णय चर्चा (बहस) से इसलिए भी करना चाहिए कि कोई अपराधी दण्ड पाये बिना न रह जाय तथा निरपराधी को दण्ड प्राप्त न हो जाय क्योंकि निरपराध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति को दण्ड देना अत्यन्त भयदायी होता है।[8] जो व्यक्ति कपटपूर्वक दूसरे को अपराधी बतावें अथवा जो अपराधी स्वयं को निरपराध बतावें ऐसे असत्य आचरण करने वाले को राजा कठोर दण्ड दें ऐसा विधान है।[9]

कठोर दण्ड का विधान–

अथर्ववेद दुष्टों के लिए कठोर दण्ड का विधान करता है जिससे दण्ड का भय समाज में बना रहे और व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे। दण्ड विधान से पूर्व उक्त अपराधी का पूर्ण परिचय लेना आवयक है, जिससे अपराधी का परिचय समाज को हो जाय (वर्तमान में अपराधी को पकड़कर ले जाते हुए उसे नकाब पहनने की अनुमति है जिससे गम्भीर अपराधी भी अपनी पहचान छुपाने में सफल हो जाता है) अपराधी के विषय में उसका नाम, माता–पिता का नाम एवं निवास स्थान आदि का उल्लेख भी आवश्यक है जिससे अमुक नाम के व्यक्ति ने अमुक अपराध किया है और यह दण्ड दिया जा रहा है इसके अन्न एवं प्राणों को बांधा जा रहा है।[10] अर्थात् इसकी अन्नादि सम्पत्ति को जब्त किया जा रहा है ऐसे कठोर दण्ड का विधान किया गया है।

अपराध के अनुसार दण्ड–

वेद के दण्ड–विधान में विभिन्न अपराधों के करने पर पृथक्–पृथक् दण्ड देने का विधान है। जो असत्य बोलकर सत्य को छुपाना चाहता है अथवा मिथ्यावादी होकर वाणी से चोरी करता है अथवा धोखा देता है उसके मर्मस्थानों को बेधित कर दो।[11] गो दुग्धादि की चोरी करने वाले का सिर काट दो।[12] काम या बलात्कार–सम्बन्धी अपराध पर नपुंसक भी बना दिया जाता है इसके लिए औषध का प्रयोग तथा लिंग व अण्डकोशों का छेदन भी कर दिया जाय।[13] आचार्य चाणक्य ने भी वेद के इस दण्ड विधान से मिलता हुआ विधान अपने अर्थशास्त्र में किया है। यदि कोई किसी के लिंग व अण्डकोशों को काट दे तो उस अपराधी के भी लिंग व अण्डकोश काट दिये जायं। जो पुरुष माता, बुआ, भाभी, आचार्याणी, पुत्रवधु, पुत्री अथवा बहन के साथ व्यभिचार करे तो उसका लिंग छेदन कर मृत्यु दण्ड दे।[14] अथर्ववेद अपराध के जैसा ही दण्ड उचित समझता है। अपराधी ने दूसरे व्यक्ति की जैसी भी हानि की है वैसी ही हानि अपराधी की भी की जानी चाहिए। ताकि ऐसे व्यक्ति इस प्रकार के कुत्सित अपराध पर मिलने वाले दण्ड को देखकर दुष्ट क्रियाओं से बचें।[15] इस प्रक्रिया से कम व्यक्तियों को दण्ड मिलता है एवं चारों ओर दण्ड का भय व्याप्त होने से अपराध कम हो जाते हैं।

वैदिक न्याय व दण्ड व्यवस्था में प्रायश्चित का महत्त्वपूर्ण स्थान है सत्यासत्य को समझने के लिए तथा अज्ञानवश हुए अपराध के लिए प्रायश्चित करने का तथा शपथ एवं अभिशाप का भी प्रयोग किया जाता है। यदि मैं अपराधी हूं तो आज ही मर जाऊं और यदि मैं अपराधी नहीं हूँ तो मुझ पर दोषारोपण करने वाला मृत्यु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त हो जावें। जो व्यक्ति कपटपूर्वक दूसरे को अपराधी बतावें अथवा जो दुष्ट स्वयं को निरपराध बतावें ऐसे दोनों को कठोर दण्ड का विधान है।[16]

नीति, राजनीति एवं दण्डनीति–

प्रारम्भ में नीति शब्द से सदाचार एवं दण्डनीति दोनों को व्यक्त किया जाता था परन्तु कालान्तर में नीति, राजनीति या दण्डनीति उन शब्दों को अपने–अपने अर्थ द्वारा स्पष्ट कर दिया गया। शुकनीति सार में कहा गया है " **सर्वोपजीवकं लोकस्थिति कृन्नीति शास्त्रकम्**"[17] अर्थात् सम्पूर्ण लोक का आश्रयभूत यह नीति शास्त्र ही है। लोक व्यवहार की स्थिति इस नीति शास्त्र के बिना नहीं रह सकती जैसे कि भोजन के बिना शरीर की स्थिति– "**सर्वलोकव्यवहारस्थितिः नीत्यः विना न हि। यथाशनैर्विना देहस्थितिर्न स्याद्धि देहिनाम्।।**"[18]

डॉ0 भण्डारकर कहते है कि " सम्भवतः कुछ काल बाद जब नीति शब्द शिष्टाचरण के लिए प्रयुक्त हुआ तब राजधर्म एवं शिष्टाचार का भेद व्यक्त करने हेतु नीति व राजनीति ये दो शब्द अलग–अलग प्रयोग होने लगे।"

दण्डनीति की निरुक्ति करते हुए कामान्दकनीति तथा शुक्रनीति में कहा गया है राजा तो दण्ड ही है, अपराध का दमनकर्ता होने से उसकी नीति ही दण्डनीति है। मार्गदर्शन कराने वाली होने से उसे नीति भी कहते हैं–

दमो दण्ड इति प्रोक्तस्तात्स्थ्यात् दण्डो महीपतिः।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिः
नयनान्नीतिरुच्यते।।[19]

भारतीय शास्त्रकारों ने दण्ड का महत्त्व प्रतिपादित किया है, परन्तु दण्ड का तात्पर्य यह नहीं कि राजा प्रत्येक व्यक्ति को दण्ड के माध्यम से ही सुधारने का प्रयास करें अथवा सभी मनुष्य स्वभावतः नीच या अपराधी ही हुआ करते है तथा उन्हें दबाने या उनके ऊपर शासन करने के लिए दण्ड की ही आवश्यकता होती है। वैदिक राज्य का ध्येय ऐसी परिस्थिति तथा वातावरण उत्पन्न करना है जिससे चारों वर्ण एवं आश्रय अपने–अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन यथाविधि कर सकें भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

" **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।**"

यदि मनुष्य अपने–अपने कर्तव्य पालन में तत्पर रहे तो अपराध से दूर ही रहेगा। दण्ड का भागी तभी बनता है जब कर्तव्यच्युत होता है। महामनीषी चाणक्य ने भी अर्थशास्त्र में कहा है– **राजा अपनी प्रजा को कर्तव्यच्युत न होने दें, जो अपने धर्म का यथाविधि पालन करता है एवं वर्ण तथा आश्रय का सम्मान करता है वह दोनों लोकों में प्रसन्न रहता है।**[20] कामन्दक एवं शुक्रनीति सार में भी कहा है– राजा न्याय करके स्वयं को तथा प्रजा को भी धर्म, अर्थ, काम रुप त्रिवर्ग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त कर देता है अन्यथा वह स्वयं तो नष्ट होगा ही साथ ही प्रजा को भी नष्ट कर देगा– **"न्यायप्रवृत्तो नृपतिरात्मानमपि च प्रजाः त्रिवर्गेणोपसन्धते निहन्ति ध्रुवमन्यथा"**[21] ऐसी परिस्थिति न आए इसलिए दण्ड को राजनीति का मुख्य अंग माना गया है। दण्ड को साक्षात् धर्म कहकर नीति एवं राजनीति का सामान्जस्य द्योतित कर दिया गया–

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभि रक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्बुधाः।।[22]

अर्थात् दण्ड ही सम्पूर्ण प्रजाओं पर शासन करता है, दण्ड सबकी रक्षा करता है सभी के सो जाने पर भी दण्ड निरन्तर जाग्रत रहता है इसलिए बुद्धिमान लोग दण्ड को धर्म ही जानते व मानते है।

राजनीति का एक नाम दण्डनीति है इस प्रकार दण्ड या राजनीति तथा नीतिशास्त्र परस्पर अन्योन्याश्रित से है। इसलिए दण्ड की स्थिति स्पश्ट करते हुए कहा है–

"असंमोहाय मर्त्यानामर्थ संरक्षणाय च।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विज्ञायते।।[23]

मनुष्यों को संमोह से उबारने के लिए धनधान्य की रक्षा करने के लिए और लोक मर्यादाओं के पालन कराने के लिए दण्ड नामक यह विधान किया है।

पाद टिप्पणियां–

1. यजुर्वेद 4.28
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4.8
3. न पापुत्वाय रासीय0। अथर्व0 20.82.1
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.4.13–14
5. यया दासान्यार्याणि.. ।अथर्व020.36.10
6. इन्द्र द्रुहो वि नाशय–––––। अथर्व0 19.15.2
7. अथर्व 8.4.12,13
8. अनागोहत्या वै भीमा0। अथर्व 10.1.29
9. अथर्व08.4.15,16
10. अथर्व0 10.5.44
11. ऋतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति। अथर्व0 8.3.11–14
12. अथर्व0 8.3.15
13. अथर्व0 6.138.15
14. कौटिल्य अर्थशास्त्र0 4.11.33, 40
15. अथर्व0 3.2.71
16. अथर्व0 8.4.15–16
17. शुक्रनीति सार 1.5
18. शुक्रनीति सार 1.11
19. कामन्दक नीति 2.15, शुक्रनीति सार 1.57
20. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.4
21. कामन्दक नीति 1.13, शुक्रनीति सार 1.67
22. महाभारत शान्ति पर्व 15.2
23. महाभारत शान्ति पर्व 15.12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (300-307) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेदीय समाज-प्रतिष्ठा

डॉ. विजय कुमार त्यागी

असि.प्रोफेसर(अतिथि)- श्रद्धानन्द वैदिक शोधसंस्थान, गु.कां.वि.वि. हरिद्वार

वेदों में समाज को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया गया है। अथर्ववेद में 'राष्ट्राणि'[1] शब्द के प्रयोग से अनेक राष्ट्रों की सत्ता स्वीकार करते हुए राज्यम्[2], राज्यानि[3], राज्ये[4] और राज्याय[5] आदि पर्यायवाचक पदों का प्रयोग किया गया है। वास्तव में राष्ट्र की प्राथमिक इकाई समाज है, समाज से ही राष्ट्र का निर्माण होता है और समाज के निर्माण के सूत्र वेदों में विराट् पुरुष के द्वारा सिद्ध किये गये हैं। वेदों में राज्य के आवयविक स्वरूप को स्वीकार किया गया है। वेदों में सृष्टिरचना का वर्णन मिलता है। इसमें आवयविक सिद्धान्त को अपनाते हुए राष्ट्र और समाज को लगभग साम्यता प्रदान की गई है। शाश्वत मान्यता है कि विराट् पुरुष से ही समस्त सृष्टि, राष्ट्र अथवा समाज की उत्पत्ति हुई है। उस विराट् पुरुष के विभिन्न अङ्गों से सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि की उत्पत्ति हुई। उससे ही द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी की सृष्टि हुई। समाज का उद्भव विराट् पुरुष से माना गया है।

राज्य अथवा राष्ट्र के अंगों के विषय में वेदों की मान्यता है कि राष्ट्र (भूभाग) विराट् पुरुष की पीठ है। प्रजा (विश्) विराट् पुरुष की ग्रीवा, कन्धे, कटि, जङ्घा और घुटने हैं। कोश विराट् पुरुष का सिर है। यश मुख है, तेजस्विता विराट् पुरुष के केश दाढ़ी-मूँछ हैं तथा राजा उस विराट् पुरुष का प्राण है। मित्रबल उसके सहायक अंग हैं। बल उसकी भुजाएँ हैं। क्षात्रधर्म उस पुरुष की आत्मा है। ज्ञान-विज्ञान नाभि हैं तथा धर्म उस विराट् पुरुष के पैर हैं।

इस प्रकार निर्मित राज्य का प्रमुख उद्देश्य समाज की सर्वाङ्गीण उन्नति करना ही है। वैदिक समाज के चार प्रमुख कार्य होते थे (१) कृषि की उन्नति, (२) जन-कल्याण, (३) धन-धान्य की वृद्धि, (४) प्रजा का भरण-पोषण आदि।

समाज शब्द का अर्थ समूह है। यह शब्द सम् उपसर्गपूर्वक 'अज्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। वैसे तो समाज और सङ्घ दोनों ही शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं परन्तु पशुओं के समुदाय को सङ्घ की संज्ञा देना उचित है तथा मानव समुदाय को समाज की संज्ञा प्रदान करनी चाहिये।[6]

वैदिक विचारधारा के अनुसार समाज मनुष्यकृत न होकर दैवी संस्था है। यह समाज भौगोलिक बन्धनों से मुक्त है। यह किसी देश या कालविशेष से सम्बद्ध नहीं है, इसका संबन्ध मानवमात्र से है। वैदिक दृष्टिकोण से समाज की सृष्टि मानव की उत्पत्ति के साथ ही मानी जाती है। समाज मानव के लिए एक रंगमञ्च के समान है इसी में मानव की समस्त जीवनलीलाओं का उद्भव, विकास एवं अन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। समाज रूपी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति महामानव विराट् पुरुष से होती है तथा उसी में उसका विलय हो जाता है। वैदिक सभ्यता के अनुसार समाज को चार भागों में विभाजित किया गया है- ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र। इसी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर भारतीय समाज का संगठन और विकास हुआ है।

समाज के निर्माण के आधाररूप गुणों के रूप में ज्ञान (बुद्धिबल), रक्षणशक्ति, प्रजा-पालन या भरण-पोषण का सामर्थ्य, श्रमशक्ति और मौलिक एकता हैं। समाज में ब्राह्मण ज्ञान या बुद्धि का प्रतीक है, राजन्य अर्थात् क्षत्रिय रक्षणशक्ति है, वैश्य प्रजा-पालन या उसके भरण-पोषण का सामर्थ्य है, शूद्र श्रमशक्ति है।[७]

वैदिक समाज का मुख्य उद्देश्य एक लक्ष्य होना है। यजुर्वेद में कहा गया है कि लोक-कल्याण को सर्वप्रथम रखो और जनहित में बाधक जो तत्त्व या छिद्र हैं, उनको दूर करो।[८] अर्थात् लोक-हित अथवा लोक-कल्याण के साथ-साथ पुरुषार्थचतुष्टय(धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) वैदिक समाज का मुख्य उद्देश्य और लक्ष्य रहा है।

वैदिक काल में आर्यों ने समाज को चार विभागों में विभाजित किया। यह विभाजन साधारणरूप से अर्थशास्त्र के कार्य-विभाजन सिद्धान्त पर अवलम्बित है। वेदों में जो वर्ण-व्यवस्था दी गई है, वह शुद्धरूप से गुणों और कर्मों पर आश्रित है। वेदों में वर्ण वृत्तिपरक है, जातिपरक नहीं। अतः ब्राह्मण आदि वर्णों का संबन्ध जन्म से सर्वथा नहीं है। ऋग्वेद में वर्ण का अर्थ है आर्यों का वर्ण व दासों का वर्ण अर्थात् रंग।[९] वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि का परिचायक नहीं है, अपितु आर्य व दास का भेद दिखाने मात्र के लिये है।[१०] ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के रूप में वर्णविभाजन तो वैदिक काल में था परन्तु जाति नहीं। वर्ण-व्यवस्था के विषय में वैदिक आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में केवल दो ही वर्ण थे, आर्य व दास। दोनों में रंग व संस्कृति का भेद था। जब आर्यों ने दस्युओं को पराजित किया तो ये शूद्र कहलाये। धीरे-धीरे विद्वत्ता के कारण ब्राह्मणों ने क्षत्रियों और वैश्यों पर आधिपत्य कर लिया। संस्कृति के विकास से नए कला-कौशलों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हीं के अनुसार सामाजिक मान्यता में विसंगत स्तरों के व्यक्तियों के साथ विवाह के कारण तरह-तरह की जातियाँ उत्पन्न हुईं।

वैदिक समाज का प्रमुख लक्ष्य लोक-हित करना है। वैदिक मान्यता के अनुसार स्वाभाविक गुणों के आधार पर वर्णों को व्यवस्थित किया गया है।[११] अर्थात् ब्रह्म या ज्ञान से सम्बद्ध सभी कार्यों के लिए ब्राह्मण वर्ण है। क्षत्र या रक्षण कार्य के लिए क्षत्रिय है। वैश्य वर्ण का कार्य धन का सङ्ग्रह करना और समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उस धन का यथास्थान व्यय करना है। शूद्र के लिए तपस् कार्य कहा है। तपस् से अभिप्राय है- तप या श्रम से संबद्ध सभी कार्य। उद्योग और विकास के सभी कार्यों के लिए तप और श्रम करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणवर्ण का प्रमुख कार्य वेदाध्ययन निश्चित करते हुए आचार्य मनु ने कहा है कि 'जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन न करके अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता है, वह सपरिवार शूद्र हो जाता है।[१२] इसी प्रकार एक स्थान पर कहा गया है कि 'जो ब्राह्मण प्रातः और सायं संध्या-उपासना कर्म नहीं करता है, उसे शूद्र समझना चाहिए और उसका बिरादरी(वर्ग) से बहिष्कार किया जाना चाहिये।'[१३] वर्ण-व्यवस्था रूपी विशाल वृक्ष की बीज रूपी सत्ता वैदिक साहित्य में पर्याप्त सामर्थ्य को लिये थी। सम्पूर्ण समाज को विराट् पुरुष बताते हुए अनेक विभिन्न वर्णों को उस पुरुष के अङ्ग बताते हुए कहा है कि ब्राह्मण उस पुरुष का मुख था, क्षत्रिय भुजाएँ थीं, वैश्य उरूभाग थे, शूद्र पैर थे।

समाज को शिक्षित करने के लिए ब्राह्मण को आचार्य के रूप में प्रतिष्ठ करते हुए अथर्ववेद कहता है कि यज्ञोपवीत के द्वारा आचार्य शिष्य को अपने नियन्त्रण में लेता हैं।[१४] वही आचार्य द्यावापृथिवी का ज्ञान शिष्य को देता है।[१५] समाज की प्रमुख इकाई के रूप में शिक्षक को प्रतिष्ठित करते हुए कहा गया है कि तेजस्वी शिक्षक ज्ञान संग्रह करके शिष्यों में भर दे तथा शिक्षक तेजस्वी हो और शिष्यों की जिज्ञासाओं को न दबावे, वह उनके साथ मित्रवत् व्यवहार करे।[१६]

ब्राह्मण समाज में प्रतिष्ठित वर्ण के रूप में प्रसिद्ध है, उसको उच्च स्थान प्राप्त है सम्भवतः इसीलिए कहा है कि ब्राह्मणघाती के आयु, रूप, नाम और यश नष्ट हो जाते हैं।[१७] एक शक्तिसम्पन्न राजा के लिए भी स्पष्ट चेतावनी देते कहा है कि जो उग्र राजा ब्राह्मण को सताता है, उसका राष्ट्र नष्ट हो जाता है।[१८] यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म की संज्ञा प्रदान करते हुए कहा है कि हे वेदज्ञ विद्वान्! उठो और यज्ञ से देवों को प्रबुद्ध करो।[१९] समाज को एक विशेष व्यवस्था प्रदान करते हुए स्पष्ट निर्देश है कि ब्राह्मण की हिंसा नहीं करनी चाहिए।[२०]

समाज में इकाई परिवार, समुदाय, ग्राम, जनपद, राज्य, राष्ट्र आदि शब्दों का प्रचलन प्रमुखता से है। इन सबको नियन्त्रित करने के लिए एक व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था है। जिसके अन्तर्गत क्षत्रिय वर्ण को निश्चितता प्रदान की गई है। इसी वर्ण की कुशलता से समाज सुव्यवस्थित, सुदृढ़, एवं सुनियन्त्रित होता है। क्षत्रिय वर्ण को प्रजा का स्वामी अथवा पालक कहना उचित है साथ ही क्षात्रधर्म से नियम-व्यवस्था का विधान किया गया है।[२१]

शूद्र शब्द का प्रयोग यजुर्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है[२२] तथा ऋग्वेद में केवल एक स्थान पर इस शब्द की प्राप्ति होती है, जिसका अभिप्राय है कि 'शूद्र समाजरूपी पुरुष के पैरों से उत्पन्न हुआ है।'[२३] शूद्र, दस्यु, दास आदि शब्द भारत के असभ्य आदिम निवासियों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। इन शूद्रों का कार्य समाज में सेवा करना है। उनके साथ समाज को सद्व्यवहार किया जाता था। अथर्ववेद में उल्लेख है कि 'मुझे देवताओं तथा राजाओं में प्रिय बनाओ। मैं सबका प्रिय बनूँ, चाहे आर्य हों, चाहे शूद्र हों।'[२४] इस कथन में शूद्र के साथ अच्छा व्यवहार करने का स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख है। शूद्र समाज का एक अविकल अङ्ग हैं। यद्यपि शूद्रों को अध्ययन से पृथक् रखने का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु साथ ही यजुर्वेदीय प्रमाण से यह भी सिद्ध होता है कि शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार प्राप्त हो।[२५] दासीपुत्र(दास्याः पुत्रः[२६]) की विद्वत्ता के कारण गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ आदि महान् ऋषि उसका आदर सत्कार करते थे। कहा जा सकता है कि वैदिक समाज व्यवस्था में शूद्रों को न केवल दास्य-कर्म करना होता था, अपितु उन्हें आत्मविकास का भी पूरा अवसर प्रदान किया जाता था, जिससे वे समाज में उच्च स्थान को प्राप्त कर सकें।

आश्रम-व्यवस्था वैदिक सामाजिक प्रतिष्ठा का महत्त्वपूर्ण आधार है। अथर्ववेद के अध्ययन से उक्त व्यवस्था के सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्धित अस्तित्व का ज्ञान होता है।

जीवन को भलीभाँति समझ कर ही आश्रम-व्यवस्था का विकास किया गया। भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन यात्रा एक पवित्र यात्रा है। यात्रा में जिस प्रकार विभिन्न पड़ाव होते हैं उसी प्रकार जीवन यात्रा में भी चार-आश्रमों के रूप में चार पड़ाव पड़ते हैं। इसी को आश्रम-व्यवस्था संज्ञा प्रदान की गई है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्राचीनकाल में ऋषियों, मनीषी, आचार्यों तथा समाजशास्त्रियों ने मानव जीवन को अनुशासित करने तथा पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) की प्राप्ति के उद्देश्य से चार भागों में बाँटकर एक वैज्ञानिक समाज-व्यवस्था प्रस्तुत की। वैदिक प्रमाण हैं कि मनुष्य की आयु सौ वर्ष की है। इन सौ वर्षों को २५-२५ वर्षों का विभाजन कर चारों को क्रमशः संज्ञा प्रदान की है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इसी व्यवस्था का नाम आश्रम-व्यवस्था है।

मानव-जीवन के सौ वर्षों में से प्रथम २५ वर्ष की आयु को ब्रह्मचर्याश्रम की संज्ञा दी गई है। इस आयु के प्रथम १२ वर्ष माता-पिता के साथ व्यतीत करता है, तत्पश्चात् वह गुरुकुल में जाकर आचार्य के द्वारा उपनयन संस्कार के माध्यम से उपनीत होकर ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करता है। वैदिक काल में भी गुरु के चरणों में बैठ कर वेदाध्ययन द्वारा ज्ञानोपार्जन करना शिष्य (ब्रह्मचारी) का कर्तव्य होता था। अथर्ववेद के अनुसार ब्रह्मचर्य को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा गया है कि 'पशु और पक्षी भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।'[२७] ब्रह्मचर्य से समाज को व्यवस्थित एवं सुशिक्षित एवं तेजस्वी बनाया जा सकता है। समाज की प्रतिष्ठा ब्रह्मचर्य से ही सम्भव है क्योंकि कहा कि 'इन्द्र ने ब्रह्मचर्य से ही देवों को तेजस्वी बनाया।'[२८] समाज को प्रतिष्ठित करने के लिये अथवा सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए ब्रह्मचर्य की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि कहा गया है कि 'ब्रह्मचारी इन्द्ररूप होकर असुरों को नष्ट करता है।'[२९] अर्थात् समाज से असुरों के अभाव में ही समाज प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता है। तभी तो ब्रह्मचारी में समस्त देवों का निवास बताया गया है[३०] और ब्रह्मचारी अपने तप के द्वारा द्यावापृथिवी की रक्षा करता है।[३१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचर्य का विधान कन्याओं के लिए करते हुए अथर्ववेद कहता है कि 'ब्रह्मचर्य का पालन करके ही कन्या युवा पति को प्राप्त करती है।'[३२] प्रत्येक व्यक्ति, देव अथवा जीव का प्रयास होता है कि मृत्यु पर विजय प्राप्त की जाये। यदि इस इच्छा की पूर्ति करने का उपाय प्रस्तुत किया है तो वह है अथर्ववेद। इसी अपौरुषेय ग्रन्थ में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की।[३३] समाज में बाल, युवा, प्रौढ एवं वृद्धों की स्थिति सर्वत्र होती है परन्तु प्रतिष्ठा केवल बालब्रह्मचारियों से ही सम्भव हो पाती हैं इसका आगम प्रमाण प्रसिद्ध है क्योंकि अथर्ववेद कहता है कि ब्रह्मचर्य की तपस्या से देवों को प्रसन्न किया जा सकता है।[३४]

ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्मचर्याश्रम के महत्त्व का द्योतक है। ब्रह्म शब्द अर्थ होता है- परमात्मा, ज्ञान, वीर्य आदि तथा चर्य अर्थात् आचरण, पालन और धारण करना। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'वह जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी अपने तप, परिश्रम और कठोर साधना से लोकों पर विजय प्राप्त कर लेता है।[३५] इतना ही नहीं अथर्ववेद में तो यह भी कहा गया है कि 'ब्रह्मचर्य के बल से मृत्यु आदि शाश्वत दुःखों को भी जीता जाता है।'[३६] ब्रह्मचर्य काल में ऐसी जीवनचर्या का समावेश हो जाता है जो ब्रह्म की प्राप्ति करा सके। कहा गया है 'सत्यं वै ब्रह्म'[३७] अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है। अतएव सत्य की खोज करना ब्रह्मचर्य-काल का प्रमुख धर्म है। यह संसार व मानव-जीवन यथार्थ में एक बड़ी पहेली है। मानव-जीवन का सर्वोत्तम ध्येय यही हो सकता है कि इन पहेलियों को सफलतापूर्वक हल किया जाए। इसी लक्ष्य से प्रथम आश्रम का नाम ब्रह्मचर्याश्रम रखा गया। इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर ब्रह्मचारी अपनी विभिन्न शक्तियों के सम्यक् विकास का पाठ सीखता था।

विद्याध्ययन करके ब्रह्मचारी स्नातक बनकर विवाह-संस्कार के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। अथर्ववेद में स्पष्ट उल्लेख है कि कन्या और पुरुष ब्रह्मचर्य से युक्त होकर गृहस्थाश्रम में जाए। कन्या को भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद अपने अनुकूल पति वरण करने का आदेश है।[३८] लौकिक दृष्टि से यह आश्रम अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। इस आश्रम की अवधि भी २५ वर्ष नियत की गई है। अन्य तीन आश्रमों का अस्तित्व इसी पर निर्भर रहता था, है और रहेगा। अथर्ववेद में कामना की गई है कि वंश-परम्परा को अविच्छिन्न रखते हुए हम संसार से तर जाएँ।[३९] इस कामना का निर्वहन केवल गृहस्थ आश्रम के द्वारा ही किया जा सकता है। गृहस्थियों को अपने घरों में गुणों से सुगन्धित होकर रहना चाहिए।[४०] गृहस्थियों को पञ्च-महायज्ञ आदि द्वारा अपना जीवन धार्मिक बनाना होता है तथा तीन ऋणों (मातृ, पितृ और गुरुऋण) से मुक्त होने का प्रयत्न करना होता है। साथ ही पञ्चमहायज्ञ(ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ) करने का विधान है। इस आश्रम में सद्व्यवहार एवं सदाचरण के द्वारा गृहस्थी सामाजिक एवं सांसारिक अभ्युदय करे तथा संसार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागभाव से भोग करे, उसमें लिप्त, आसक्त नहीं होना चाहिये।

अथर्ववेद में गृहस्थ धर्म का श्रेयस्कर उपदेश भरा पड़ा है जो समाज को प्रतिष्ठा प्रदान करता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए प्रमुख रूप से वैवाहिक स्थिति पर बल दिया जाना अनिवार्य है। वैवाहिक कर्म को यज्ञ के समान बताते हुए कहा है कि अग्नि होता के रूप में स्त्री का पाणिग्रहण करता है।[81] समाज में गृहस्थाश्रम की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति से ही सम्भव है, इसीलिए कामना की गई है कि हे इन्द्र और सविता! हमें पतिहितैषी और सन्तानप्रद स्त्री दो।[82] गृहस्थाश्रम का प्रमुख क्षेत्र हमारे गृह(घर) हैं तथा गृहस्थकर्म की प्रमुख साधिका स्त्री है, अथर्ववेद में प्रेरित करते हुए कहा गया है कि इस स्त्री को पुण्य के कार्यों में लगाओ।[83] इस प्रकार गृहस्थाश्रम के प्रमुख रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्त्री व पुरुष सुलक्षणयुक्त हों। अथर्ववेद की प्रतिष्ठा है कि उसमें एक पति-पत्नी व्रत पर विशेष बल दिया गया है।[84] वैसे तो पति-पत्नी का सम्बन्ध विशेष रूप से भोग्य-भोक्ता रूप में प्रसिद्ध है जिससे सन्तानों की उत्पत्ति सम्भव होती है परन्तु यह भोग्य-भोक्ता सम्बन्ध भी एक सीमा में आबद्ध होना चाहिए, क्योंकि अधिक सन्तानों वाला व्यक्ति कष्ट में रहता है।[85] अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि अथर्ववेद में सुखी गृहस्थ की कामना करते हुए समृद्धियुक्त ऐश्वर्य[86], सहस्रगुणी ऐश्वर्य[87] की प्रत्याशा की गई है। साथ स्त्री की शिक्षा पर विशेष बल देते हुए कहा है कि हे वधू! तू गृहस्वामिनी होकर शास्त्रार्थों में बोलना। गृहस्थी के लिए समाज में प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में उसके घर(भवन) का विशेष स्थान है इस हेतु से घर की उचित परिमाप आदि का उल्लेख करते हुए कहा है कि घर की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई ठीक नपी हुई हो।[88] घर में कुआ या कमल युक्त तालाब भी हो।[89] घर में गाय, भेड़, बकरी भी रहें।[90] घर में धनी एवं सुमधुर व्यञ्जन खाने वाले हों।[91] अर्थात् सब ओर से सम्पन्नता का भाव हो। राष्ट्र का मूलाधार गृहस्थ आश्रम है, साथ ही समस्त अन्य तीनों आश्रमों का आश्रय प्रदान करने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चतुर्वर्गफल(धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य होता है।

विषय-विस्तार के भय से संक्षेप में कहा जा सकता है कि अथर्ववेद में हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा से वर्णाश्रम, शिक्षा, शिक्षक, शिष्य, संस्कार, सद्गुण, ऋत, पुरुषार्थ, स्वस्ति, कुशलता दान, दुर्गुणत्याग आदि से सम्बन्धित समस्त तत्त्वों तथा गुणों पर विचार किया गया है, जिसके आचरण एवं विमर्श से व्यक्ति परिवार अथवा समुदाय को समाज में विशेष स्थान प्राप्त हो सकता है। अतः वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सभी आर्यों का परमधर्म है क्योंकि वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। उसमें भी समाज की प्रतिष्ठा के लिए अथर्ववेद महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि श्रेष्ठ समाज वही होता है जिसमें हिंसा का किञ्चित्मात्र भी भाव न हो। अथर्व (थर्व=हिंसा, अथर्व=अहिंसा) शब्द से उक्त ध्येय की पुष्टि भी होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1] त्वं राष्ट्राणि रक्षसि। अथर्ववेद १९.३०.३

[2] अथर्ववेद ४.८.१। ११.१२.२। १२.३.३१

[3] अथर्ववेद ११.८.१५

[4] अथर्ववेद १८.४.३१, ३२

[5] अथर्ववेद ३.४.२

[6] शिक्षायाः सामाजिकाधारः, डा. ए.पी. सच्चिदानन्दः, पृ. १, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान राजीवगाँधीपरिसर शृङ्गेरी, कर्नाटक।

[7] ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्। यजुर्वेद ३०.५

[8] लोकं पृण, छिद्रं पृण। यजुर्वेद १५.५९

[9] यो दासं वर्णमधरं गुहाकः। ऋग्वेद २.१२.४

[10] दैव्यो वै ब्राह्मणः असुर्यः शूद्रः। तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.६

[11] ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्। यजुर्वेद० ३०.५

[12] योऽनधीत्य द्विजो वेदम्, अन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वम्, आंशु गच्छति सान्वयः॥ मनुस्मृति २.१६८

[13] न तिष्ठति तु यः पूर्वां, नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवत् बहिष्कार्यः, सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ मनुस्मृति २.१०३

[14] आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। अथर्व. ११.५.३

[15] आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे। अथर्व. ११.५.८

[16] शिक्षानः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यः, संगृह्याभिभूत आ भर। अथर्व. २० २१.२, ३

[17] आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च। अथर्व. १२.५.९

[18] उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति। अथर्व. ५.१९.६

[19] उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय। अथर्व. १९.६३.१

[20] न ब्राह्मणो हिंसितव्यः। अथर्व. ५.१८.६

[21] क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम्। ७.८२.३

[22] ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽअयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम्॥; यजुर्वेद ३०.५, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रोऽअजायत॥ यजुर्वेद ३१.११

[23] ऋग्वेद १०.९०.१२

[24] प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ अथर्ववेद १९.६२.१,

[25] यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ यजुर्वेद २६.२

[26] कौशीतकी ब्राह्मण २.१९

[27] अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः। अथर्ववेद ११.५.२१

[28] इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्। अथर्ववेद ११.५.१९

[29] इन्द्रो ह भुत्वासुरान् ततर्ह। अथर्ववेद ११.५.७

[30] तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति। अथर्ववेद ११.५.१

[31] ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी। अथर्ववेद ११.५.८

[32] ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद ११.५.१८

[33] ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। अथर्ववेद ११.५.१९

[34] सर्वान् स देवान् तपसा पिपर्ति। अथर्ववेद ११.५.२

[35] ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति। अथर्ववेद ११.५.४

[36] ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । अथर्ववेद ११.५.१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

---

[37] बृहदारण्यकोपनिषद् २.३.६, ५.४.१, ५.५.१

[38] ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्। अथर्ववेद ११.३.१८

[39] अच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम। अथर्ववेद ६.१२२.१

[40] अध स्याम सुरभयो गृहेषु। अथर्ववेद १८.३.१७

[41] अग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय। अथर्व. ५.१७.२

[42] इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह। अथर्व. १४.१.६२

[43] इमां नारीं सुकृते दधात। अथर्व. १४.१.५९

[44] परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि। अथर्व. ३.१८.३

[45] बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश। अथर्व. ९.१०.१०

[46] युवं भगं सं भरतं समृद्धम्। अथर्व. १४.१.३१

[47] रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ। अथर्व. ६.७८.२

[48] उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत। अथर्व. ९.३.१

[49] उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान्। अथर्व. ६.१०६.१

[50] उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथर्व. ७.६०.५

[51] ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती। अथर्व. ३.१२.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (308-312) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद में राजव्यवहार

डॉ, वेदव्रत
असि.प्रोफेसर (अतिथि), ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड विभाग, गु.कां.वि.वि.
हरिद्वार

अखिल ज्ञान–विज्ञान की अधिष्ठात्री भगवती श्रुति की अविरल ज्ञान–धारा अनादि काल से कलुषित कल्मषों एवं ताप–सन्तापों का परिमार्जन करते हुए ज्ञान–विज्ञान को वितरित कर रही है। वेद के आलोक से ही सकल लौकिक एवं अलौकिक विद्याएं आलोकित हो रही हैं। अशेष–ज्ञान–विज्ञान के अंकुर वेद में ही सन्निहित हैं। **'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्'** यह सूक्ति वेद के विषय में ही परमार्थतः चरितार्थ होती है। यही कारण है कि भगवान् मनु ने वेद को सर्वज्ञानमय कहा है– **सर्वज्ञानमयो हि सः।**[1]

उदारमना वैदिक ऋषियों ने अशेष विश्व को एक परिवार के रूप में देखा।[2] विभिन्न भाषा–भाषी, विभिन्न धर्मावलम्बी, भिन्न–भिन्न भूभाग पर निवास करने वाले समस्त मानव वैदिक ऋषि की दृष्टि मे एक ही विश्वम्भरा माता की सन्तान हैं।[3] किन्तु वर्तमान समय में अलगाववाद एक भयंकर एवं विकराल समस्या का रूप धारण करता जा रहा है। भाषा, धर्म एवं भूभाग के आधार पर समाज को बांटने का कार्य किया जा रहा है। **'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'**[4] एवं 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'[5] का डिण्डिम घोष करने वाले समाज के मानस से राष्ट्रियभावना की चेतना सुप्त सी होती जा रही है। असत्य, अनाचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार का ताण्डव नृत्य आजकल समाज की अखण्डता को प्रचण्डतया खण्ड–खण्ड कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उग्रतम होती जा रही है। राष्ट्र को एक नई ऊर्जा एवं दिशा देने वाले युवाओं की अकर्मण्यता एवं उदासीनता राष्ट्र एवं समाज के लिये घातक सिद्ध हो रही है। धर्म[6] परिवार, समाज एवं राष्ट्र को संगठित करके आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करता है।[7] किन्तु वर्तमान में धार्मिक उन्माद समाज को विघटनकारी बना रहा है।

उपरोक्त समस्त समस्याओं का समाधान योग्य राजा के द्वारा ही हो सकता है। समस्त प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्याओं के उत्स वेद में राजा के व्यवहार का भी दर्शन प्राप्त होता है। वेद का ऋषि कहता है कि राष्ट्र के नागरिकों को सत्यप्रिय, तेजस्वी, संकल्पवान्, उद्यमी, धर्मप्रिय तथा यजनशील होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। ये समस्त तत्त्व परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्राणतत्त्व तथा संधारक हैं। इसी सूक्त के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जिस राष्ट्र में अनेक व्यावहारिक विद्याओं में पारंगत लोक कल्याण की भावना से सर्वभूतहित में रत विद्वान् शौर्य, तेज से परिपूर्ण प्रमादरहित कर्तव्यपरायण राष्ट्ररक्षा में तत्पर राष्ट्र के प्रहरी वीर युवक राष्ट्र की रक्षा करते हैं, वह राष्ट्र ऐसे देशवासियों के लिये सुख की वृष्टि करता है।[8]

राष्ट्र की उन्नति एवं विकास में ही व्यक्ति, परिवार एवं समाज की आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। पुराकाल में राष्ट्र के उन्नत होने के कारण ही तत्कालीन समाज उन्नत दिखाई देता है। समृद्ध राष्ट्र का राजा ही यह डिण्डिम घोष कर सकता है कि मेरे राज्य में कोई भी शराबी, चोर, व्यभिचारी नहीं है। किन्तु राष्ट्र की समृद्धि अथवा सुरक्षा सीमाओं अथवा भूखण्ड की रक्षा करं लेने अथवा बढ़ा लेने मात्र से नहीं हो जाती। जब तक राष्ट्र का आन्तरिक कलेवर अर्थात् उसकी संस्कृति, सभ्यता एवं प्रजा सुरक्षित एवं संवर्धित नहीं होती तब तक राष्ट्र को सुरक्षित एवं समृद्ध नहीं कह सकते। परस्पर सौहार्द एवं पारिवारिक शान्ति के बिना राष्ट्र समृद्ध नहीं कहा जा सकता। इसीलिए राष्ट्र के शक्तिशाली, समृद्धशाली एवं गौरवशाली होने के लिए योग्य राजा का होना आवश्यक है। लोक में प्रसिद्ध है– **"यथा राजा तथा प्रजा"** अर्थात् राजा जिस प्रकार के गुणों से समन्वित होता है, उसकी प्रजा भी उसके अनुरूप हो जाती है। अथर्ववेद में राजा की महत्ता से सम्बद्ध अनेक सूक्त हैं। राजा प्रजा–जनों के द्वारा स्वीकार्य होना चाहिए।[9] राजा प्रजा का पालक होता है, प्रजा का हित ही राजा का हित है इसीलिए कहा जाता है **"राजा प्रकृतिरंजनात्"।** अथर्ववेद में कहा गया है कि प्रजाजनों के कल्याण से ही राजा का कल्याण सम्भव है, अन्यथा नहीं।[10]

यजुर्वेद में भी प्रजा के आश्रय से ही राजा को प्रतिष्ठित बताया गया है।[11] राजा वही है, जो प्रजा के सुख को अपना सुख और प्रजा के दुःख को अपना दुःख समझे। राजा का पद भोग–विलास करने के लिए नहीं हैं, अपितु प्रजा की सुख समृद्धि की चिन्ता करते हुए अपनी सन्तान की तरह उसका पालन–पोषण कर उसकी भलाई करने के लिए है।

वेद का यह भी आदेश है कि राजा होने के लिए योग्यता का होना आवश्यक है, राजपरिवार में उत्पन्न होने से कोई राजा नहीं हो सकता। योग्यता के साथ–साथ प्रजा का समर्थन भी राजा के लिए अत्यावश्यक है। प्रजा राज्य शासन चलाने के लिए राजा को स्वीकार करे, ऐसा कहने मात्र से यह सिद्ध हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है कि राजा राज–सिंहासन पर तभी तक बना रह सकता है, जब तक उसे जन समर्थन प्राप्त हो।[12] प्रजा के समर्थन के बिना यह असम्भव है।[13]

अथर्ववेद में राजा के कर्त्तव्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है–

आ त्वा गन्राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशांपतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह।।[14]

अर्थात् हे राजन्! यह राष्ट्र तुम्हें प्राप्त हुआ है, अब अपने तेज को प्रकाशित कर समस्त प्रजाओं का एकछत्र राजा होकर विराजमान होओ। सब दिशाओं और उपदिशाओं में रहने वाले समस्त लोग तुम्हारे यश के लिए कामना करें तथा तू सबके लिये प्राप्त होने वाला बनकर सुपूजित हो। उपरोक्त मन्त्र में आया 'विशांपति' शब्द राजा के प्रजापालन रूप कर्तव्य का बोध कराता है। ऐसे प्रजा पालक को ही प्रजा प्रेम से नमन करती है।

निर्धनता एवं धन की अधिकता दोनों ही समस्त प्रकार के अनर्थों का मूल हैं। वर्तमान कालीन आर्थिक नीतियां इन दोनों की ही उन्नति में सतत प्रगतिशील हैं। धनी व्यक्ति और अधिक धनी होता जा रहा है तथा निर्धन और अधिक निर्धन होता जा रहा है। राजा के आवश्यक कर्तव्यों में एक कर्तव्य यह भी है कि वह प्रजा में समुचित प्रकार से धन–धान्य का वितरण करे। धन की विषमता प्रजा में न हो, इस विषय में वेद स्थान–स्थान पर आदेश देता है–

वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।[15]
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।[16]

मन्त्र का भावार्थ यह है कि राज–सिंहासन पर आसीन होने के उपरान्त राजा को मृदु स्वभाव वाला नहीं होना चाहिए। उसे प्रजापालन के लिए कठोर स्वभाव वाला बनना पड़ता है। अतः उसे उग्र होकर बिना किसी पक्षपात के प्रजा में धन का संविभाग करना चाहिए। धन के समुचित विभाजन के बिना समुचित प्रजापालन नहीं हो सकता।

देश में बढ़ रहे अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार एवं ईर्ष्या–द्वेष का प्रमुख कारण लोगों में शिवसंकल्प सद्विचारों का अभाव है। प्रजाजनों को शिवसंकल्प एवं सद्विचारों वाला बनाना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है–

जायाः पुत्राः सुमनसः भवन्तु।[17]

अर्थात् हे राजन्! तू अपने राज्य में शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध कर जिससे स्त्रियां एवं बालक उत्तम विचार एवं क्रिया वाले हों। माता के शिक्षित एवं शिष्ट होने पर सम्पूर्ण परिवार अनायास ही शिक्षित एवं शिष्ट हो जाता है, इसीलिए वेद का ऋषि स्त्रियों के शिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने की कामना करता है। राजा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रजा को संस्कारित करे। प्रजा में अच्छे संकल्प एवं सद्विचारों को उत्पन्न करने की परिस्थितियों को बनाये रखने का दायित्व राजा का ही है। उसे उन समस्त संस्थाओं के भरण–पोषण की इस प्रकार से व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे संस्थाएं स्वायत्तता के साथा प्रजा में शुभ संकल्प पैदा कर सकें और प्रजा को राष्ट्रनिर्माण के कार्य में प्रवृत्त कर सकें।

वेद के अनुसार राजा को अपना व्यवहार सीधा–सादा एवं सरल बनाना चाहिए। राजा साधारण भेष में राष्ट्र में भ्रमण करे तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रजा के रहन–सहन एवं कष्टों का निरीक्षण करे।[18] राजा के लिए राष्ट्र की चिन्ता सर्वोपरि होनी चाहिए, उसकी समस्त निष्ठाएं राज्य के प्रति रहनी चाहियें। राष्ट्र की उन्नति में ही उसे अपनी उन्नति समझनी चाहिए।[19]

अथर्ववेद के अनुसार रथकार, सुनार, लुहार, ज्ञानीपुरुष, मन्त्री, सूत, ग्रामनेता, सरदार तथा राजा का चुनाव करने वाले ये सब लोग राजा के पास रहें, उसके अनुगामी बनें, राजा के साथ रह कर उसे योग्य परामर्श दें। इस प्रकार राज्य का शासन प्रजा के द्वारा नियुक्त किये गये राजपुरुषों द्वारा प्रजा हित के लिए प्रजा की अनुमति से चलाया जाए।[20] राजा को प्रजा से कितना कर लेना चाहिए? इसका विवेचन भी अथर्ववेद में प्राप्त होता है। वेद का निर्देश है कि राजसभा के सभासद् प्रजा की आय से सोहलवां भाग प्राप्त करते हैं।[21] यही नही, वेद में प्रजा से प्राप्त होने वाले कर का राजा किस रूप में व्यय करे, इसका वर्णन भी प्राप्त होता है। इस विवरण के अनुसार राजा को प्रजा की अच्छी तरह रक्षा करने में, उसका सामर्थ्य बढ़ाने में, ज्ञानी, व्यापारी, कारीगर और अन्य लोगों की संघ–शक्ति बढ़ाने में, इनका राष्ट्रिय अस्तित्त्व सुरक्षित रखने में, प्रजा को ऐश्वर्य सम्पन्न और प्रभावशाली बनाने में, प्रजा को निर्भय बनाने में, प्रजा को भूमि के समान ध्रुव, जलनिधि समुद्र के समान गम्भीर और प्राणों के समान जीवनयुक्त बनाने में, उन्हें भय और विनाश से बचाने में, सबलों से निर्बलों को अत्याचार मुक्त रखने में राज्य कोष का धन व्यय करना चाहिए।[22]

इस प्रकार अथर्ववेद में राजा के चुनाव, उसके कर्तव्यों, राज्य–प्रशासन, राज्य–शासन चलाने के ढ़ग, कराधान और कर–विनियोग सम्बन्धी तथ्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इन सब विवरणों के द्वारा जो मुख्य तथ्य निष्कर्ष के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, उसका अर्थ यही है कि वैदिक शासन प्रणाली के अनुसार राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा का अनुरंजन करना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादटिप्पणियां

[1] मनु. 11.7
[2] अथर्व. 2.1.1
[3] अथर्व. 12.1.45
[4]
[5] अथर्व. 12.1.12
[6] धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। महा. शा. 109.11
[7] यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः। वै.द. 1.1.2
[8] अथर्व. 12.1.7
[9] अथर्व. 3.3.4
[10] अथर्व 3.3.5
[11] यजु. 20.9
[12] अथर्व. 3.4.1
[13] अथर्व. 3.4.2
[14] अथर्व. 3.4.1
[15] अथर्व. 3.4.2
[16] अथर्व. 3.44
[17] अथर्व. 3.4.3
[18] अथर्व. 3.4.6
[19] अथर्व. 3.5.2
[20] अथर्व. 3.5.6–7
[21] अथर्व. 3.29.1
[22] अथर्व. 3.29

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (313-316) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद में जल-चिकित्सा विषयक चिन्तन

डॉ. गोपाल लाल मीणा

असिस्टैण्ट प्रोफेसर- संहिता एवं संस्कृत विभाग, आयुर्वेदसङ्काय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पानीयं प्राणिनां प्राणा विश्वमेव च तन्मयम्।
न हि तोयाद्विना वृत्तिः स्वस्थस्य व्याधितस्य वा॥

(अष्टाङ्ग संग्रह, सूत्रस्थान ६.२९, ३०)

अर्थात् जल जीवसृष्टि का प्राण है, विश्व ही जलमय है, क्या स्वस्थ और क्या रोगी? सभी का जीवन जल के बिना सम्भव नहीं है। भारतीय चिकित्सा-विज्ञान (आयुर्वेद) के वर्त्तमानकालिक वैद्यक-प्रणेता-अष्टाङ्गसंग्रहकार आचार्य वाग्भट् ने भी जल-चिकित्सा के महत्त्व को मानव-जीवन में उपयोगी माना है। जल-तत्व रूपी महाभूत की इस असीम दर्शन-धारा का वैदिक-विवेचन अथर्ववेदीय पृष्ठभूमि में प्रस्तुतशोधपत्र के माध्यम से किया जा रहा है-

ज्ञानार्थक 'विद ज्ञाने' से घञ् (अ) प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है। आचार्य सायण लिखते हैं कि 'वेद समस्त ज्ञान के स्रोत हैं, आगम प्रमाण हैं, शब्दराशि रूप वेद से संसार के समस्त अर्थ उत्पन्न हुए हैं।[१] षड्-दर्शन वेद को ईश्वरीय वाणी अथवा अपौरुषेय शब्दराशि के रूप में व्यवस्थित करते हैं[२], तो मनु के अनुसार वेद भारतीय धर्म के उत्स हैं।[३] तथा सभी ज्ञानों के अक्षय कोश हैं।[४] अतः जीवन प्रक्रिया के आधार-स्वरूप इस वैदिक वाङ्मय का आयुर्वेद की दृष्टि से गहनानुशीलनोपरान्त ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में रोग, औषधियाँ, वैद्य के गुण-दोष, कर्म एवं स्वस्थ-दीर्घायुष्य के विषय में शुद्ध वायु, जल एवं सूर्य की किरणों से रोग निवारक गुणों इत्यादि प्राकृतिक चिकित्साविज्ञान का सविस्तार वर्णन मिलता है। लेकिन विशेषकर अथर्ववेद जो कि भेषजवेद[५] के नाम से विख्यात है, जिसमें आयुर्वेद का विपुल ज्ञान समाहित है, उसके अनेक सूक्तों में प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का अत्यन्त उत्कृष्ट एवं मार्मिक वर्णन किया गया है। यहाँ इन महत्त्वपूर्ण चिकित्सापद्धतियों में अत्यन्त उपयोगी एवं सहज सुलभ 'जल चिकित्सा विज्ञान' का अथर्ववेदीय दृष्टिकोण से अनुशीलन प्रस्तुत है।

यद्यपि ऋग्वैदिक ऋचाओं में भी जल के औषधीय[६] गुणों एवं उसकी रोग निवारण सामर्थ्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।[७] लेकिन जल-चिकित्सा विषयक अनुचिन्तन अथर्ववेद में बहुत ही युक्तिसंगत एवं सुविकसित स्वरूप में प्रतीत होता है। उनके अवलोकन में जल न केवल रोग निवारक ओषध है[८] अपितु समस्त रोगों की भेषजी है।[९] आथर्वणिक ऋषि का मानना है कि जल जीवनाधायक औषध रस[१०] तीव्र प्रभावकारी[११] एवं शरीर में बलवर्धक तथा सौन्दर्यवृद्धि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारक होता है।[१२] इस प्रकार उन्होंने शरीर के आन्तरिक एवं बाह्यदोषों का शोधक एवं निस्तारक जल को अत्यन्त कल्याणकारी रस कहा है।[१३] अथर्ववेद के ऋषि जल को एक ऐसा रस औषध मानता है जिससे प्राणीमात्र को दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है।[१४] उनका चिन्तन है कि औषधि मात्र में जल की सत्ता विद्यमान रहती है, बिना जल के औषधि का कोई स्वरूप नहीं होता है। जल चिकित्सा द्वारा अङ्गों एवं उपाङ्गों के उपशमन के विवरण प्राप्त होते हैं, यथा जल को राजयक्ष्मा(टी.बी.) रोग के नाश में समर्थ प्रथम औषधि माना गया है। जल(जिसके) द्वारा रोगी के अङ्ग-अङ्ग से इस रोग का निवारण होता है।[१५]

अथर्ववेद के जल-चिकित्सा विषयक मन्त्रों में मनुष्यों के रोग निवारक एवं शारीरिक कष्ट निवारक औषध के रूप में जल की महत्ता के संकेत दिखाई देते हैं।[१६] शैवाल वाली जल धारा को उत्तम सर्प-विष विनाशक अमृत तुल्य औषध कहा गया है, इससे मुख और हृदय में होने वाली विषजन्य जलन को शान्त करने का उपाय कहा गया है।[१७] इस प्रकार अथर्ववेद में जल को अमृत और औषधियों से परिपूर्ण माना गया है तथा जलों से कामना की गई है कि 'हे जलों आप में स्थित जो तत्त्वरूप परम कल्याणकारी रस है उससे हमें पुष्ट कीजिए।' हे जलों मेरे रोगों के उपशमनार्थ औषधियाँ प्रदान कीजिए और मेरे शरीर को पुष्ट कीजिए, जिससे मैं बहुत समय तक सूर्य को देखता रहूँ। **'आप पृणीत भेषजं वरूथ तन्वे३। मम ज्योक् च सूर्यं दृशे।'**[१८] अतः जल एक महौषध है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में जल की दिव्यता एवं उसके औषधीय गुणों का उल्लेख सम्प्राप्य है।[१९] इसी वेद में जल को अमृत कहा गया है- **अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।'**[२०] छठे काण्ड के २४वें एवं ५७वें सूक्त में सद्योव्रणचिकित्सा, रक्तस्राव को रोकने, आँखों व पञ्जों की जलन को शान्त करने तथा हृदय की धड़कन, जलन व शूल को दूर करने में जल-चिकित्सा के अत्यन्त उपयोगी होने का उल्लेख प्राप्त है।[२१] दसवें काण्ड में इसी चिकित्सा के माध्यम से दुःस्वप्न को दूर करने के प्रमाण प्राप्त होते हैं[२२] तो तीसरे काण्ड में जल को समस्त रोगों की औषध बताते हुये जन्मजात रोगों से छुटकारा दिलाने वाला कहा गया है[२३]।

अतः प्राणीमात्र की दीर्घायु में जल का महत्त्व वर्णित करते हुये महर्षियों ने इसको समस्त रोगों को दूर करने वाली औषधियों में परमकुशल चिकित्सक कहा है।[२४] इसी क्रम में अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के एक मन्त्र में मरुभूमि में उत्पन्न जल, जलीयदेश के जल, खोद कर कुओं से प्राप्त जल, घड़े में लाए गये जल एवं वर्षा के जल से रोग शान्ति की कामना की गई है-

शं नः आपो धन्वन्या३ः शमुसन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भाभृताः।
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।।[२५]

भंजा जल प्रयोग के द्वारा ही शरीर के आन्तरिक विकार नीचे के द्वार से निस्तारित होते हैं।[२६] जल प्रयोग द्वारा ही अपान वायु निम्नगामी होकर वायु दोषों का निस्तारण करता है।[२७] अपने सामान्य औषधीय गुणों को अवधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हुआ जल रुचिकर, पाचन शक्ति का उद्दीपक, हल्का, थकावट, वात, कफ, मद के दोषों का नाशक, पुष्टिप्रद, शीतल, तृष्णाओं का नाशक होता है। निद्रा, आलस्य और विष निवारक, विद्या, बुद्धि, बल और वीर्य का वर्धक तथा क्षीण अङ्गों को पुष्ट करने वाला होता है।[२८]

अतः वैदिक अनुशीलन में जल को सुखदायक, शक्तिवर्धक, सौन्दर्यवर्धक एवं पुष्टिवर्धक माना गया है।[२९] तथा दीर्घायुकारक[३०] एवं प्रजनन शक्ति दाता माना गया है।[३१] ऋग्वेद में- सिन्धुद्वीप ऋषि का कथन है कि 'मुझे सोम ने कहा है कि जल में समस्त औषधियाँ विद्यमान हैं- **'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।'**[३२]

उपर्युक्त सान्दर्भिक गहन अनुशीलन अथवा अनुचिन्तन से यह तो स्पष्ट होता ही है कि वेदकालीन आर्य जल के औषधीय सामर्थ्य का पूर्ण लाभ उठाने में समर्थ थे। वे भलीभाँति यह जानते थे कि प्रकृति-प्रदत्त 'जल जीवनजनक, जीवनधारक एवं जीवनपोषक रसायन होता है। यह जल स्नान, पान और अवगाहन के लिए अमृतसम हितकारी होता है। अथर्ववेदीय ऋषियों का यही दर्शन पद्मपुराण में परिलक्षित होता हुआ दिखाई देता है कि

अपां संस्पर्शनात् स्नानात् पानाद् दर्शनतोऽपि वा।
मनुष्यसिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तरक्षालिताः॥

अर्थात् जल के संस्पर्शन से, स्नान से, पीने से तथा उसके दर्शन से भी अन्तर्बाह्य शुद्ध हुए मनुष्य (अपने स्वास्थ्य रक्षण और रोग हरणादि कार्यों में) सिद्धि को प्राप्त होते हैं। अतः मनुष्य मात्र को जल के इस उपयोगी स्वरूप को इस प्रकार जानना चाहिए-

अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषप्रदम्॥

(वृद्ध चाणक्य)

पादटिप्पणियाँ

[१] सायण- ऋग्वेदभाष्यभूमिका, मङ्गलश्लोक-२

[२] बादरायण- ब्रह्मसूत्र १.१.१, शास्त्रयोनित्वात्

[३] मनुस्मृति- (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्) २.६

[४] मनुस्मृति- (सर्वज्ञानमयो हि सः) २.७

[५] अथर्ववेद- ऋचः सामानि भेषजः यजुंषि, ११.२५.६.४

[६] आप इद्धा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। अथर्ववेद ६.९१.३

[७] अपस्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। ऋग्वेद १.२३.१९

[८] इदमिद् इत् वा उ भेषजं, अथर्ववेद ६.५७.१ ; ६.९१.३

[९] आपो विश्वस्य भेषजीः। अथर्ववेद ६.३१.३

[१०] अथर्ववेद- १.४.४, अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।

[११] वहीं, ६.५७.२, जलाषमुग्रं भेषजं

[१२] वहीं, १.५.१, आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।

[१३] वहीं, १.५.२, यो वः शिव तमो रसः।

[१४] अथर्ववेद, ६.५७.२, तेन नो मृड जीवसे।

[१५] अथर्ववेद, ८.७.३, आपो अग्रं दिव्या ओषधयः। तास्ते यक्ष्ममेनस्यमंगादंगादनीशन॥

[१६] अथर्ववेद, १.५.४, एवं ऋग्वेद १०.९.५

[१७] वहीं, ६.१२.३

[१८] अथर्ववेद, १.६-३

[१९] अथर्ववेद, ९.८.१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[20] अथर्ववेद, १.४.४

[21] अथर्ववेद, ६.२४.१-३ ; ६.५७.१-३

[22] अथर्ववेद, १.४.४

[23] अथर्ववेद, १०.५.२४

[24] अथर्ववेद, ३.७.५

[25] अथर्ववेद, १.६.४

[26] अथर्ववेद ६.९१.२

[27] अथर्ववेद, ६.९१.२

[28] अथर्ववेद, संहिता-प्रथम खण्ड, भाषा भाष्य, पं. जयदेव शर्मा, तृतीय संस्करण, पृ. सं. १५ पर उद्धृत।

[29] अथर्ववेद, १.५.१

[30] वहीं, १.६.३

[31] वहीं, १.५.३

[32] वहीं, १.६.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (317-322) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेद का संक्षिप्त परिचय

श्रीऋषिराम जी रेग्मी, अथर्ववेदाचार्य

चारों वेदों में ऋक्, यजुः और साम– ये मन्त्रलक्षण के आधार पर प्रसिद्ध हैं, किन्तु अथर्ववेद इन तीनों से भिन्न नाम से जाना जाता है। चारों वेदों का समष्टिगत नाम 'त्रयी ' भी है। मूलतः इसी के आधार पर कुछ आधुनिक विद्वान् अथर्ववेद को अर्वाचीन कहते हैं, परंतु इसके पीछे कोई ठोस आधार या युक्ति नहीं है।

वैदिक मन्त्रों का उच्चारण तीन प्रकार से किया जाता है– 1. जिस मन्त्र में अर्थ के आधार पर पाद–व्यवस्था निश्चित है, उसे 'ऋक्' कहते हैं, 2. गीत्यात्मक मन्त्र को 'साम' तथा 3. इनसे अतिरिक्त जो मन्त्र हैं अर्थात् पद्यमय और गानमय मन्त्रों से अतिरिक्त जितने मन्त्र हैं, उन्हें 'यजुः' कहते हैं। यजुर्मन्त्र गद्य–रूप में पढ़े जाते हैं। अथर्ववेद में तीनों प्रकार के मन्त्र उपलब्ध हैं। अतः इस वेद का नाम ऋक्, यजुः और साम अर्थात् मन्त्रलक्षण के आधार पर नहीं, अपितु प्रतिपाद्य विषयवस्तु के आधार पर है। इसी कारण अथर्ववेद के अन्य विविध नाम भी हैं। इस प्रकार मन्त्र–लक्षण के आधार पर 'त्रयी' शब्द का प्रयोग हुआ है, तीन वेदों के अभिप्राय से नहीं। भगवान् कृष्णद्वैपायन ने श्रौतयज्ञकर्मों के आधार पर एक ही वेद को चार भागों में विभक्त किया है।[1] इससे भी अथर्ववेद को अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता।

अथर्ववेद के विविध नाम

अन्य वेदों की तरह अथर्ववेद का भी एक ही नाम क्यों नहीं रहा? अथर्ववेद को विभिन्न नाम देने में क्या प्रयोजन है ? ऐसी जिज्ञासा की शान्ति के लिए संक्षेप में कुछ विचार किया जा रहा है–

अथर्ववेद अनेक नामों से अभिहित किया जाता है, जैसे– अथर्ववेद, अथर्वाङ्गिरोवेद, ब्रह्मवेद, भिषग्वेद तथा क्षत्रवेद आदि।

अथर्ववेद–

पाणिनीय धातुपाठ में ' थुर्वी' धातु हिंसा के अर्थ में पठित है। वैदिक शब्दों के परोक्षवृत्तिसाधर्म्य के आधार पर 'थुर्वी' धातु 'थर्व' के रूप में परिणत हो गया है। अतः जिससे हिंसा नहीं होती है उसको अथर्व[2] कहते हैं।

वैदिक वाङ्मय में 'हिंसा' शब्द किसी की हानि या परस्पर होने वाले असामञ्जस्य आदि के अर्थ में भी प्रयुक्त है। अतः केवल प्राणवियोगानुकूल–व्यापार ही हिंसा नहीं है। सामान्यतः हिंसा दो प्रकार की होती है– 1. आमुष्मिकी और 2. ऐहिकी। जिस कर्म या आचरण से पारलौकिक सुख में बाधा (हानि) होती है, उसको आमुष्मिकी हिंसा कहते हैं। इस प्रकार की हिंसा को अथर्ववेदोक्त कर्मों से दूर किया जा सकता है। दूसरी इहलौकिक सुख में होने वाली बाधा भी अथर्ववेदोक्त शान्तिक तथा पौष्टिक कर्मों से दूर की जा सकती है । अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे किसी प्रकार की हिंसा नहीं हो पाती है, उसके कारण 'अथर्ववेद ' ऐसा नाम है।

अथर्वाङ्गिरोवेद–

अथर्ववेद का दूसरा नाम अथर्वाङ्गिरस भी है। अथर्ववेद (10/7/20), महाभारत (3/305/2), मनुस्मृति (11/33), याज्ञवल्क्यस्मृति (1/312) तथा औशनसस्मृति (3/44) आदि ग्रन्थों में द्वन्द्वसमास के रूप में 'अथर्वाङ्गिरस' शब्द प्रयुक्त है। इस नाम के संदर्भ में गोपथब्राह्मण में एक आख्यायिका है–

प्राचीन काल में सृष्टि के लिए तपस्या कर रहे स्वयम्भू ब्रह्मा के रेतका जल में स्खलन हुआ। उससे भृगु नाम के महर्षि उत्पन्न हुए । वे भृगु स्वोत्पादक ब्रह्मा के दर्शनार्थ व्याकुल हो रहे थे। उसी समय आकाशवाणी हुई– ' हे अथर्वा ! तिरोभूत ब्रह्मा के दर्शनार्थ इसी जल में अन्वेषण करो' (**'अथर्वाऽन्मेतास्वेवाप्स्वन्विच्छ'** गो0 ब्रा0 1/4)। तब से भृगु का नाम ही 'अथर्वा' हो गया। पुनः रेतयुक्त जल से आवृत 'वरुण' शब्दवाच्य ब्रह्मा के सभी अङ्गों से रसों का क्षरण हो गया । उससे अङ्गिरा नाम के महर्षि उत्पन्न हुए। उसके बाद अथर्वा और अङ्गिरा कारणभूत ब्रह्मा ने दोनों को तपस्या करने के लिए प्रेरित किया। उन लोगों की तपस्या के प्रभाव से एक अथवा दो ऋचाओं के मन्त्रद्रष्टा बीस अथर्वा और अङ्गिरसों की उत्पति हुई । उन्हीं तपस्या कर रहे ऋषियों के माध्यम से स्वयम्भू ब्रह्मा ने जिन मन्त्रों के दर्शन किये, वही मन्त्र समूह अथर्वाङ्गिरस वेद हो गया। साथ ही एक ऋचा के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की संख्या भी बीस होने के कारण यह वेद बीस काण्डों में बंटा है।

कुछ विद्वानों का मत यह है कि 'अथर्वन् ' शब्द शान्तिक तथा पौष्टिक कर्मो का वाचक है। इसके विपरीत ' अङ्गिरस्' पद घोर (अभिचारात्मक) कर्मो का वाचक है। अथर्ववेद में इन दोनों प्रकार के कर्मो का उल्लेख मिलता है। अतः इसका नाम 'अथर्वाङ्गिरस' पड़ा। यह मत पूर्णतः स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि अथर्ववेद में सबसे अधिक अध्यात्म विषयकमन्त्रों का संकलन है। उसके बाद शान्तिक तथा पौष्टिक कर्मो से सम्बद्ध मन्त्र हैं ; किन्तु आभिचारिक कर्म से सम्बद्ध मन्त्र तो नगण्यरूप में ही हैं।

ब्रह्मवेद–

अथर्ववेद के 'ब्रह्मवेद ' अभिधान में मुख्यतः तीन हेतु उपलब्ध होते हैं– 1. यज्ञकर्म में ब्रह्मत्व– प्रतिपादन, 2. ब्रह्मविषयक दार्शनिक चिन्तन–गाथा तथा 3. ब्रह्मा नामक ऋषि से दृष्ट मन्त्रों का संकलन ।

उपर्युक्त तीन हेतुओं में प्रथम कारण उल्लेख्य है। श्रौतयज्ञ का सम्पादन करने के लिए चारों वेदों की आवश्यकता पड़ती है। जिनमें ऋग्वेद के कार्य होता द्वारा, यजुर्वेद के कार्य अध्वर्यु द्वारा, सामवेद के कार्य उद्‌गाता द्वारा और अथर्ववेद के कार्य ब्रह्मा नाम के ऋत्विजों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। यज्ञकार्य में सम्भाव्य अनिष्ट का दूरीकरण, प्रायश्चित–विधियों द्वारा यज्ञ के त्रुटि–निवारण, यज्ञानुष्ठान के क्रम में अन्य ऋत्विजों के लिए अनुज्ञा–प्रदान ब्रह्मा के प्रमुख कार्य हैं। इस प्रकार किसी भी श्रौतयज्ञ की सफलता के लिए ब्रह्मा की अध्यक्षता आवश्यक होती है। अतः यज्ञकर्म में ब्रह्मत्वप्रतिपादन के कारण अथर्ववेद का दूसरा नाम 'ब्रह्मवेद ' युक्ति संगत ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मवेदाभिधान का दूसरा कारण ब्रह्मविषयक दार्शनिक चिन्तन है। अथर्ववेद के विभिन्न स्थलों पर विराट्, ब्रह्म, स्कम्भब्रह्म, उच्छिष्टब्रह्म, ईश्वर, प्रकृति, जीवात्मा, प्राण, व्रात्य, वशा, ब्रह्मौदन आदि विभिन्न स्वरूपों का विस्तृत वर्णन मिलता है। अतः अध्यात्मविषयक चिन्तनाधिक्य के कारण भी 'ब्रह्मवेद ' यह नाम हो सकता है। '

अथर्ववेद मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में ब्रह्मा ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या 884 है। इस आधार पर भी अथर्ववेद का नाम 'ब्रह्मवेद' हो सकता है।

भिषग्वेद–

अथर्ववेद के लिए 'भिषग्वेद' का प्रयोग भी मिलता है। इसमें विभिन्न रोगों तथा उनकी औषधियों का भरपूर उल्लेख किया गया है। अतः यह नाम उपयुक्त है।

क्षत्रवेद–

अथर्ववेद में स्वराज्य– रक्षा के लिए राजकर्म से सम्बन्धित बहुत से सूक्त उपलब्ध हैं। इसलिए अथर्ववेद को 'क्षत्रवेद' नाम दिया गया है।

अथर्ववेद की शाखाएं

अथर्ववेद की नौ शाखाएं थीं। जिनके नाम इस प्रकार हैं– 1. पैप्पलाद 2. तौद 3. मौद 4. शौनक 5. जाजल 6. जलद 7. ब्रह्मवद 8. देवदर्श 9. चारणवैद्य । इन शाखाओं में आजकल प्रचलित शौनक– शाखा की संहिता पूर्णरूप से उपलब्ध है। पैप्पलादसंहिता अभी अपूर्ण ही उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त अन्य शाखाओं की कोई भी संहिता उपलब्ध नहीं है।

शौनकसंहिता का संक्षिप्त परिचय

मन्त्रों का संकलन क्रम–

अथर्ववेद में 20 काण्ड, 730 सूक्त, 36 प्रपाठक और 5987 मन्त्र हैं। इसमें मन्त्रों का विभाजनक्रम एक विशिष्ट शैली का है। पहले काण्ड से सातवें काण्ड तक छोटे–छोटे सूक्त हैं। पहले काण्ड में प्रायः 4 मन्त्रों के सूक्त हैं । दूसरे काण्ड में 5 मन्त्रों के, तीसरे काण्ड में 6 मन्त्रों के, चौथे काण्ड में 7 या 8 मन्त्रों के, पांचवें काण्ड में 8 या उससे अधिक मन्त्रों के सूक्त हैं। छठे काण्ड में 142 सूक्त हैं और प्रायः सभी सूक्त 3 मन्त्रों के हैं। सातवें काण्ड में 118 सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में प्रायः एक या दो मन्त्र हैं। आठवें काण्ड से 12वें काण्ड तक विषय की विभिन्नता और बड़े बड़े सूक्तों का संकलन है। तेहरवें काण्ड से 20 काण्ड तक भी अधिक मन्त्रों वाले सूक्त हैं, परंतु विषय की एक रूपता है। जैसे बारहवें काण्ड में पृथ्वी सूक्त हैं, जिसमें राजनीतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों की भावना दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार 13 वें,14वें और 19वें काण्ड अध्यात्मविषयक हैं। चौदहवें में विवाह, सोलहवें में दुःस्वप्ननाशन के लिए प्रार्थना, सत्रहवें में अभ्युदय के लिए प्रार्थना, अठाहरवें में पितृमेध, उन्नीसवें के शेष मन्त्रों में भैषज्य, राष्ट्रवृद्धि आदि तथा बीसवें में सोमयाग के लिए आवश्यक मन्त्रों का संकलन है। 20वें काण्ड में अधिकांश सूक्त इन्द्रविषयक हैं।

प्रतिपाद्य विषय

1. ब्रह्मविषयक दार्शनिक सिद्धान्त–

इस वेद में ब्रह्म का वर्णन विशेषरूप से हुआ है। ब्रह्म का वर्णन इस वेद में जितने विस्तार और सूक्ष्मता से हुआ है उतने विस्तार से एवं सूक्ष्मता से किसी वेद में नहीं हुआ है। उपनिषदों में ब्रह्मविद्या का जो विकसित रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है, उसका स्रोत अथर्ववेद ही है, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी । विविध दृष्टिकोण से इसमें ब्रह्मतत्व का विवेचन हुआ है। ब्रह्म क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं? वह एक है या अनेक? उसका अन्य देवों के साथ क्या सम्बन्ध है ? आदि सभी विषयों के साथ– साथ जीवात्मा और प्रकृति का भी विवेचन हुआ है। इसमें विराट्, ब्रह्म, स्कम्भ, रोहित, व्रात्य, उच्छिष्ट, प्राण, स्वर्गौदन आदि ब्रह्म के विविध स्वरूपों के विस्तृत वर्णन मिलते हैं।

इसमें संसार की उत्पत्ति जल से बतायी गयी है। प्रारम्भ में ईश्वर ने जल में बीज डाला। उससे हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और उससे सृष्टि का प्रारम्भ हुआ (अथर्ववेद 4/2/6/8)।

इस प्राकर अध्यात्म विषयक दार्शनिक चिन्तन ही अथर्ववेद का मूल प्रतिपाद्य विषय है।

2. भैषज्यकर्म–

प्रतिपाद्य विषयों की दूसरी कोटि में विविध रोगों के उपचारार्थ प्रयोग किये जाने वाले भैषज्य सूक्त आते हैं। जिनके मन्त्रों के द्वारा देवताओं का आह्वान तथा प्रार्थना आदि किये जाते हैं साथ में विभिन्न रोगों के नाम तथा उनके निराकरण के लिए विविध प्रकार की औषधियों के नाम भी उक्त सूक्तों में प्राप्त होते है। जल–चिकित्सा, सूर्यकिरण– चिकित्सा और मानसिक चिकित्सा के विषयों पर इस वेद में विस्तृत वर्णन मिलता है।

3. शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म–

विभिन्न प्रकार की क्षति, आपत्ति या अवाञ्छित क्रियाकलापों से मुक्त होने के लिए किये जाने वाले कर्मों को शान्तिक कर्म कहते हैं। दुःस्वप्ननाशन, दुःशकुन–निवारण आदि के लिए किये जाने वाले देव–प्रार्थनादि विभिन्न सूक्तों के जप आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

ऐश्वर्य और विपन्निवृत्ति के लिए प्रयोग किये जानेवाले सूक्त पौष्टिक कर्म के अन्तर्गत आते हैं । जैसे पुष्टिवर्धक, मणिबन्धन तथा देव–प्रार्थना आदि।

4. राजकर्म (राजनीति)–

अथर्ववेद में राजनीतिक विषयों का भरपूर उल्लेख मिलता है। राजा कैसा होना चाहिए ? राजा और प्रजा का कर्तव्य, शासन के प्रकार, राजा का निर्वाचन और राज्याभिषेक, राजा के अधिकार एवं कर्तव्य, सभा और समिति तथा उनके स्वरूप, न्याय और दण्डविधान, सेना और सेनापति, सैनिकों के भेद एवं उनके कार्य, सैनिक–शिक्षा, शस्त्रशास्त्र,युद्ध का स्वरूप, शत्रुनाशन, विजयप्राप्ति के साधन आदि विविध विषय इसके अन्तर्गत आते हैं।

5. सांमनस्यकर्म–

अथर्ववेद में राष्ट्रिय, सामाजिक,पारिवारिक, राजनीतिक तथा धार्मिक सामञ्जस्य के लिए विशेष महत्व दिया गया है और परस्पर में सौहार्द–भावना स्थापित करने के लिए विभिन्न सूक्तों का स्मरण करने का विधान किया गया है।

6. प्रायश्चित्त (आत्मालोचना)–

ज्ञात–अज्ञात अवस्था में किये हुए विभिन्न त्रुटिपूर्ण कर्मों के कारण उत्पन्न होने वाले सम्भावित अनिष्टों को दूर करने के लिए क्षमा–याचना, देव–प्रार्थना, प्रायश्चित्तहोम, चारित्रिक बदनामी का प्रायश्चित्त और अशुभ नक्षत्रों में जन्मे हुए बच्चों के प्रायश्चित्त आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध प्रायश्चित्तों का उल्लेख इसमें मिलता है।[3]

7. आयुष्यकर्म–

स्वास्थ्य तथा दीघार्यु के लिए देवताओं की प्रसन्नता पर विश्वास करते हुए विभिन्न सूक्तों के द्वारा दीर्घायुष्य–प्राप्ति–हेतु प्रार्थना की गयी है। इसके अतिरिक्त दीर्घायु–प्राप्ति के लिए हाथ तथा गले में रक्षासूत्र एवं मणियों को बांधने का विधान है।

8. अभिचार–कर्म–

दैत्य–राक्षस तथा शत्रु आदि के उद्देश्य से किये जाने वाले विभिन्न प्रयोग एवं विधियां इसके अन्तर्गत आती हैं। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि विषयों को अभिचार कहते हैं। अथर्ववेद में आभिचारिक मन्त्रों की संख्या बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है, परन्तु कतिपय पाश्चात्य विद्वान् अथर्ववेद को अभिचारकर्म–प्रधान वेद के रूप में भी स्वीकारते हैं। हमारी दृष्टि में तो यह बात बिलकुल युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि अथर्ववेद में कितने मन्त्र किस कर्म में विनियुक्त हैं, प्रथमतः यह देखना चाहिए । इसके बाद कौन–कौन से मन्त्रों में किन–किन विषयों का वर्णन है– यह देखने से पता चलता है कि अथर्ववेद में अधिकतम मन्त्र अध्यात्मदर्शन–विषयक हैं। इसी कारण अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद' कहा जाता है।

इस प्रकार अथर्ववेद विषय–विवेचन से यह पता चलता है कि इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूपी पुरुषार्थ -चतुष्टय के सभी अङ्गों का वर्णन है। शास्त्रीय दृष्टि से धर्मदर्शन, अध्यात्म और तत्वमीमांसा से सम्बद्ध सभी तत्त्व इसमें विद्यमान हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और ज्ञान–विज्ञान का यह भण्डार है। साहित्यिक दृष्टि से रस, अलंकार, छन्द तथा भाव एवं भाषासौन्दर्य आदि विषय इनमें विद्यमान हैं। व्यवहारोपयोगिता की दृष्टि से भावात्मक प्रेरणा, मनन–चिन्तन, कर्तव्योपदेश, आचारशिक्षा और नीतिशिक्षा का इसमें विपुल भण्डार है। संस्कृति की दृष्टि से इसमें उच्च, मध्यम और निम्न– इन तीनों स्तरों का स्वरूप परिलक्षित होता है। अतः अथर्ववेद वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण है। विषय की विविधता, स्थूल से सूक्ष्मतम तत्त्वों का प्रतिपादन, शास्त्रीयता के साथ व्यावहारिकता का सम्मिश्रण इसकी मुख्य विशेषता है।

कुछ आथर्वणिक ग्रन्थों का विवरण

अथर्ववेद की नौ शाखाओं के ब्राह्मण–गन्थों में आज एक 'गोपथ–ब्राह्मण' ही उपलब्ध है यह ग्रन्थ भी पैप्पलाद शाखा से सम्बद्ध है। इसके दो भाग हैं– पूर्वभाग तथा उत्तरभाग। पूर्वभाग मे 5 प्रपाठक तथा उत्तर भाग में 6 प्रपाठक हैं । प्रपाठक कण्डिकाओं में विभक्त हैं पूर्वभाग के प्रपाठकों में 135 तथा उत्तरभाग के प्रपाठकों में 123 कण्डिकाएं है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्रौतयज्ञों का वर्णन ही है। इसमें प्रतिपादित निर्वचन–प्रक्रिया भी अत्यन्त रोचक है।

अथर्ववेद से सम्बद्ध श्रौतसूत्रों में एकमात्र श्रौतसूत्र 'वैतानसूत्र' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ शौनक–शाखा से सम्बद्ध है। इसमें श्रौतकर्मो का विनियोग बताया गया है और इसमें 8 अध्याय है। अथर्ववेद के गृह्यसूत्रों में 'संहिता–विधि' के नाम से प्रसिद्ध 'कौशिक–गृह्यसूत्र' उपलब्ध है। यह ग्रन्थ शौनक–संहिता का प्रत्यक्ष विनियोग बताता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

। श्रौतसूत्र भी इसी के आश्रित हैं। 14 अध्याय तथा 141 कण्डिकाओं में विभक्त कौशिक–सूत्र आथर्वण साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। शिक्षाग्रन्थों में 'माण्डूकी शिक्षा' उपलब्ध है। 171 श्लोकों से युक्त यह शिक्षाग्रन्थ अथर्ववेद के स्वर तथा वर्णों के विषय में जानकारी देता है।

इसी प्रकार अथर्ववेद से सम्बद्ध 5 कल्पसूत्र तथा 5 लक्षणग्रन्थ हैं। पांच कल्पसूत्र ये हैं– 1. नक्षत्रकल्प, 2. वैतानकल्प (वैतान श्रौतसूत्र), 3. संहिताविधि (कौशिक–गृह्यसूत्र), 4. आङ्गिरस–कल्प और 5. शान्तिकल्प । इनमें से आजकल केवल दो ही कल्पसूत्र उपलब्ध हैं। लक्षणग्रन्थों में 'शौनकीया चतुरध्यायिका' चार अध्यायों में विभक्त है। यह सबसे प्राचीन अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य है। सन् 1882 में अमेरिकन विद्वान् डॉ० ह्विटनी ने इसे सानुवाद प्रकाशित किया था। अभी 1998 में वाणी–मन्दिर, नई सड़क, वाराणसी 'निर्मल' और 'शशिकला' ने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाष्य–सहित इसको प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त 'अथर्वप्रातिशाख्य' नामक दूसरा प्रातिशाख्य भी उपलब्ध है। इसमें 1923 में श्रीविश्वबन्धु शास्त्री जी द्वारा प्रकाशित केवल सूत्रों का मूलपाठ और डा. सूर्यकान्त जी द्वारा 1940 में लाहौर से प्रकाशित इस प्रकार दो प्रातिशाख्य में उदाहरण– सहित कुछ टिप्पणियां भी हैं। तीसरे लक्षणग्रन्थ में 'पञ्चपटलिका', चौथे में 'दन्त्योष्ठविधि' और पांचवें में 'बृहत्सर्वानुक्रमणिका' भी आजकल उपलब्ध हैं। पञ्चपटलिक' में अथर्ववेद काण्डों तथा तद्गत मन्त्रों की संख्या का विवरण, दन्त्योष्ठविधि में बकार तथ वकार का उच्चारणगत नियम तथा बृहत्सर्वानुक्रमणिका में अथर्ववेद के ऋषि, देवता तथा छन्दों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

अथर्ववेद के प्रमुख उपनिषदों में पैप्पलाद–शाखा का प्रश्नोपनिषद् उपलब्ध है और शौनक–शाखा के मुण्डक तथा माण्डूक्य दो उपनिषद् हैं। इनके अतिरिक्त अथर्ववेद से सम्बद्ध अन्य उपनिषदों की संख्या भी अधिक है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार 108 उपनिषदों में 31 उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध हैं।

---

1 यह विचार भ्रान्तिपूर्ण है क्योंकि *ऋग्वेद–10/90/9, यजुर्वेद–31/7, अथर्ववेद–19/6/13 के पुरुष सूक्त में आए प्रसिद्ध मन्त्र तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः*............ ' चारों वेदों का एक ही समय में ईश्वर द्वारा प्रकट होना स्पष्ट है। अतः कृष्णद्वैपायन द्वारा एक वेद को चार में विभक्त करना कभी भी तार्किक दृष्टि से मान्य नहीं हो सकता। ––– सम्पादक

2 इस वेद के कुल 5987 मन्त्रों में 2696 मन्त्र विशुद्ध अथर्वा ऋषि के द्वारा दृष्ट हैं। अथर्वाङ्गिरा के द्वारा दृष्ट मन्त्र 49, बृहदिदव या अथर्वा के द्वारा दृष्ट मन्त्र–29, मृगार या अथर्वा के 7, अथर्वा या वसिष्ठ के 7, अथर्वा या कृति के 4 और भृगुराथर्वण के द्वारा दृष्ट मन्त्र 7 हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 2799 मन्त्र तथा 220 सूक्तों के द्रष्टा ऋषि अथर्वा होने से इस वेद का नाम अथर्ववेद है।

3 अथर्ववेद में प्राप्त यह विद्या पूर्णतः वैज्ञानिक और चिकित्सा शास्त्र सम्मत है। सत्यार्थ को न समझने से इसको अवैज्ञानिक चमत्कारिक विद्या (जादू–टोना) समझा जाता है और अथर्ववेद को भी इससे पूर्ण मानने का भ्रम है। अधिक ज्ञान के लिए शोधपत्रिका में प्रकाशित विद्वान् लेखक श्री प्रियरत्न आर्ष के लेख 'अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या' का अवलोकन करें। ––– सम्पादक

साभार-

कल्याण, वेद–कथांक

वर्ष–73, जनवरी एवं फरवरी अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (323-326) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण– एक परिचय

श्रीऋषिरामजी रेग्मी, अथर्ववेदाचार्य

अथर्ववेद की नौ शाखाओं में आज केवल दो ही शाखाएं उपलब्ध होती हैं– शौनक शाखा तथा पैप्पलाद शाखा। इनमें शौनक शाखा ही आजकल पूर्णरूप से उपलब्ध तथा प्रचलित है। पैप्पलाद शाखा की संहिता पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं है। पातञ्जल–महाभाष्य (1/1/1) तथा गोपथब्राह्मण (1/1/29) के आधार पर यह ब्राह्मण पैप्पलाद शाखा से सम्बद्ध है, परन्तु सम्प्रति उपलब्ध अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण 'गोपथ' ही है।

नामकरण–

'गोपथ' के नामकरण के विषय में विविध मत उपलब्ध होते हैं, परंतु इस लेख में अधिक विश्वसनीय एकमात्र मत प्रस्तुत किया जाता है।

ऐतरेय, कौषीतकि, तैत्तिरीय आदि ब्राह्मणग्रन्थों की प्रसिद्धि प्रवचनकर्ता आचार्यों के नाम पर है। अतः गोपथ' ब्राह्मण की प्रसिद्धि भी इसके प्रवचनकर्ता ऋषि 'गोपथ' के आधार पर हुई, क्योंकि अथर्ववेद शौनकसंहिता (काण्ड–19 के 47–50 तक चार सूक्तों) के द्रष्टा ऋषि गोपथ हैं। इस आधार पर गोपथब्राह्मण के प्रवचनकर्ता 'गोपथ' ऋषि के होने की सम्भावना अधिक है।

स्वरूप–

यह ब्राह्मण 'पूर्व–गोपथ' और 'उत्तर–गोपथ' इन दो भागों में विभक्त है। पूर्वभाग के पांच तथा उत्तरभाग में छः प्रपाठक–इस प्रकार कुल ग्यारह प्रपाठक हैं। प्रपाठकों का विभाजन कण्डिकाओं में हुआ है। पूर्वभाग के पांच प्रपाठकों में 135 और उत्तरभाग के छः प्रपाठकों में 123 कण्डिकाएं हैं । इस प्रकार इसमें कुल ग्यारह प्रपाठक और 258 कण्डिकाएं हैं।

'अथर्ववेद–परिशिष्ट' के 49 वें परिशिष्ट 'चरणव्यूह' का कथन है कि किसी समय में गोपथब्राह्मण 100 प्रपाठकों में विभक्त था।

प्रतिपाद्य विषय–

पूर्वभाग के प्रति प्रपाठक में सृष्टि–प्रक्रिया का निरूपण है। तदनुसार स्वयम्भू–ब्रह्मा का तप, जल की सृष्टि, जल में रेतःस्खलन, शान्त जल के समुद्र से भृगु, अथर्वा, आथर्वण ऋषि तथा अथर्ववेद, ॐकार, लोक और त्रयी का आविर्भाव वर्णित है। अशान्त जल से वरुण,मृत्यु, अङ्गिरा, अङ्गिरस ऋषि, अङ्गिरस वेद, पांच व्याहृति तथा यज्ञ की उत्पत्ति बतलायी गयी है। तदनन्तर पुष्कर में ब्रह्म के द्वारा ब्रह्मा की सृष्टि, ॐकार का महत्त्व, ॐकार–जप का फल, ॐकार के विषय में 36 प्रश्न तथा उनके उत्तर, गायत्री मन्त्र की विशद व्याख्या एवं आचमनविधि आदि विषयों का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के महत्त्व तथा उनके कर्त्तव्यों का निरूपण करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचारी को ऐन्द्रिक रागों तथा आकर्षणों से बचना चाहिए । इसके साथ ही स्त्री सम्पर्क, दूसरों को कष्ट पहुंचाने तथा ऊंचे आसन पर बैठने का निषेध आदि विविध आचार–दर्शन के विषय इसमें प्रतिपादित हैं। तदनन्तर यज्ञ में होता प्रभृति चारों ऋत्विजों की भूमिका भी इसमें वर्णित है।

तृतीय से लेकर पञ्चम प्रपाठक तक यज्ञसम्बन्धी विभिन्न विषयों का वर्णन है। जैसे– ब्रह्मा के महत्त्व, अथर्ववेदवित् को ब्रह्मा बनाना चाहिए, व्रतभङ्ग होने पर प्रायश्चित करना चाहिए, दर्शपूर्णमास तथा अग्निहोत्र की रहस्यमयी व्याख्या, ऋत्विजों की दीक्षा का विशेष वर्णन, अग्निष्टोम, सवनीय पशु, इष्टियां, गवामयन, अश्वमेध, पुरुषमेध आदि विभिन्न यज्ञों का विवरण।

उत्तर भाग में भी विभिन्न यज्ञों तथा तत्सम्बद्ध आख्यायिकाओं का उल्लेख है। जैसे– प्रथम प्रपाठक में कण्डिका 1–12 तक दर्शपूर्णमास, 13–16 तक काम्येष्टियां, 17–26 तक आग्रयण, अग्निचयन और चातुर्मास्यों का वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक के प्रथम कण्डिका में काम्येष्टि, 2 से 4 तक तानूनप्त्रेष्टि, 5–6 तक प्रवर्ग्येष्टि, 7–12 तक यज्ञशरीर के भेद, सोमस्कन्द–प्रायश्चित्त, 13–15 तक आग्नीध्रविभाग, प्रवृत्ताहुतिओं, प्रस्थितग्रहों तथा 16–23 तक दर्शपूर्णमास का निरूपण है। तृतीय प्रपाठक के प्रथम से षष्ठ कण्डिका तक वषट्कार–अनुवषट्कार, 7–11 तक ऋतुग्रहादि, 12–19 तक एकाह प्रातःसवन, 20–23 एकाह माध्यन्दिनसवन का उल्लेख है। चतुर्थ प्रपाठक में तृतीयसवन तथा षोडशी याग का विधान है। पंचम से षष्ठ प्रपाठकों में अतिरात्र, सौत्रामणि, वाजपेय, आप्तोर्याम, अहीनयाग और सत्रयाग का निरूपण है।

इस प्रकार अन्य ब्राह्मणग्रन्थों में भी मुख्यरूप से यज्ञकर्मो का प्रतिपादन हुआ है। इस ब्राह्मण की जो अलग विशेषताएं हैं, उनको भी संक्षिप्त रूप में यहां प्रस्तुत किया जाता है–

गोपथब्राह्मण की विशेषताएं–

1. पूर्वब्राह्मण के प्रारम्भ में ही सृष्टि–प्रक्रिया का निरूपण है ।(1/1/1–15)
2. ॐकार से जगत् की सृष्टि (1/1/16–30) । यद्यपि पूर्ववर्णित सृष्टि–प्रक्रिया से यह भिन्न प्रतीत होता है, तथापि इसका अलग महत्त्व है।
3. इसमें ॐकार के विषय में जितनी व्याख्या उपलब्ध होती है, उतनी व्याख्या अन्यत्र नहीं है। प्रत्येक वेदों में ॐकारोच्चारण का भेद (1/1/25), प्रत्येक वेदमन्त्र के उच्चारण से पूर्व ॐकार का उच्चारण (1/1/28) करना चाहिए ।
4. किसी अनुष्ठान के आरम्भ करने के पहले तीन बार आचमन करना चाहिए (इसके लिए विशिष्ट मन्त्र संकेत है– 1/1/31)
5. ब्राह्मण को गाना और नाचना नहीं चाहिए, 'आग्लागृध' नहीं कहलाना चाहिये (**य एष ब्राह्मणो गायनो वा नर्तनो वा भवति तमाग्लागृध इत्याचक्षते, तस्माद ब्राह्मणो**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैव गायेन्नानृत्येन्माग्लागृधः स्यात् 1/2/21) ।

6. गायत्री–मन्त्र की प्राचीनतम व्याख्या इसमें मिलती है।

7. व्याकरण महाभाष्य में उपलब्ध अव्यय–कारिका 'का प्रथम पाठ इसी ब्राह्मण में दिखायी पडता है– **'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्** ' (1/1/26) इसके अतिरिक्त धातु, प्रातिपदिक, विभक्ति, विकार, विकारी, स्थानानुप्रदान आदि व्याकरणसम्बन्धी शब्दों का भी उल्लेख है (1/1/25–27)।

8. आथर्वणश्रुति (अ0 11/5) का अवलम्बन करके ब्रह्मचारी के विभिन्न कृत्यों का उल्लेख है (1/2/1–9)। वेदाध्ययन के लिए 48 वर्षतक ब्रह्मचारी–व्रत में रहने के विधान (1/2/5) के साथ प्रत्येक वेद के लिए बारह–बारह वर्षो की अवधि निर्धारित की गयी है।

निर्वचन प्रक्रिया–

अन्य ब्राह्मणों की तरह गोपथब्राह्मण में भी शब्दों की निर्वचन–प्रक्रिया अत्यन्त रोचक प्रतीत होती है। जैसे–

1. यज्ञार्थक 'मख' शब्द की व्युत्पत्ति–**'छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः, मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति ।'** (गोपथब्रा0 2/2/5) । 'ख' का अर्थ छिद्र है, इसका 'मा ' शब्द के द्वारा निषेध किया गया हैं इससे यह बात स्पष्ट होती है कि यज्ञ में कोई अशुद्धि या भूल नहीं होनी चाहिए।

2. 'रथ' शब्द की व्युत्पत्ति–**'तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते'** (1/2/21) रसपूर्ण अर्थात् आनन्दमय होने से इसका नाम 'रथ' हो गया ।

3. 'दीक्षित' शब्द की व्युत्पत्ति–**'श्रेष्ठां धियं क्षियतीति''''''दीक्षितः'** (1/3/19) श्रेष्ठ बुद्धि का निवास होने के कारण 'दीक्षित' हो गया ।

4. 'स्वेद' शब्द की व्युत्पति– **' सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते** ' (1/1/1)वेद के अच्छे जानकार होने से ही पसीने को 'स्वेद ' कहा जाता है। इस पर एक आख्यायिका भी है।

5. 'कुन्ताप' शब्द की व्युत्पत्ति–**' कुयं भवति वै नाम कुत्सितं तद्यत्तपति, तस्मात् कुन्तापः'** (2/6/12)। अथर्ववेद के 20/127–136 तक के सूक्तों का नाम 'कुन्ताप–सूक्त ' है। इसी का अर्थ यहां दिया गया है। पापकर्म को जलाने वाले सूक्त या मन्त्र का नाम 'कुन्ताप' है।

इसके अतिरिक्त धारण करने से 'धरा', जन्म देने के कारण 'जाया', वरण से वरुण', मधु से 'मृत्यु', भरण करने के कारण 'भृगु', अथ+अर्वाक्='अथर्वा', अङ्ग+रस =अङ्गरस या 'अङ्गिरस' आदि विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न शब्दों की निरुक्ति है। इस तरह भाषाशास्त्रीय दृष्टि से भी गोपथब्राह्मण का अपना पृथक् महत्त्व है।

गोपथब्राह्मण का सम्बन्ध–

वैदिक वाङ्मय में सामान्यतः संहिता, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र ऐसा क्रम उपलब्ध होता है, किन्तु आथर्वण वाङ्मय में ऐसा क्रम न होकर इससे भिन्न क्रम या विपर्यस्त क्रम उपलब्ध होता है। आथर्वणिक वाङ्मयों के अध्ययन से यह पता चलता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका क्रम भिन्न है। अन्य वेदों के श्रौतसूत्र संहिता या ब्राह्मणग्रन्थों पर आश्रित है, और गृह्यसूत्र श्रौतसूत्रों पर। परंतु अथर्ववेद का वैतानश्रौतसूत्र कौशिकगृह्यसूत्र पर आधारित है और गृह्यसूत्र पूर्णतः संहिता पर आश्रित है। इसी प्रकार ब्राह्मण और श्रौतसूत्र के कुछ अंशों की तुलना करने से ऐसा प्रतीत होता है कि गोपथब्राह्मण भी वैतानश्रौतसूत्र से सम्बद्ध है।

साभार

कल्याण,वेदकथांक

वर्ष– 73, जनवरी एवं फरवरी अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotih Vol.1, No.1 (327-331) Jul-Dec.2013 ISSN 2277-4351

श्रौतकर्मकाण्डेऽथर्ववेदस्य स्थानम्

डॉ0 विजयपालो विद्यावारिधिः

रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली, सोनीपत, हरियाणा

सुविकसितोऽयं श्रौतकर्मकलापो वेदप्रतिपादित इति शास्त्रकृद्भिरुद्घोष्यते। यज्ञसिद्ध्यर्थमेव वेदप्रादुर्भाव इति प्राचीनाचार्यैरास्थीयते। तथा च स्मरति मनुः–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुःसामलक्षणम्।। मनु 1.23।।

जैमिनिरपि सूत्रयति–

आम्नायस्यक्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् पू0 मी0 1/2/1

वेदाङ्गज्योतिषे खल्वप्युक्तम् –

वेदा यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः

न्यायभाष्यकारो वात्स्यायनोऽप्याह–

यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहास पुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थार्पनं धर्मशास्त्रस्य विषयः। न्या0 भा0 4.1.62।

यद्यपि वेदस्य लक्षणस्वरूपादिविषये मतानि भिद्यन्ते[1] तथापि वैदिककर्मकाण्डप्रसङ्गे वेदश्रुत्याम्नाय शब्दामन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशिम् अभिदधतीति सर्वैरूरीक्रियते[2]। तत्र 'अनुष्ठेयार्थस्मारका मन्त्राः' इति मन्त्रलक्षणं प्राहुः। मन्त्राश्च ऋग्यजुःसामभेदात् त्रिविधाः। तथा च जैमिनिस्तान्लक्ष्यति–

तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।गीतिषु सामाख्या।शेषे यजुः शब्दः। पू मी 2.1.35–37।

अयं मन्त्र विभागो रचनाविशेषप्रेक्षया विहित इति प्रतीयमानोऽपि कर्मकाण्डप्रसङ्ग ऋत्विग्विशेषसम्बद्धोऽधिगम्यते। तथा च श्रूयत ऐतरेयब्राह्मणे--

यद् ऋचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथम् '''। ऐ0 ब्रा0 5.33।।

एवं च होतृव्यवहार्यमन्त्रा[3]ऋचः, तासां च संघातेनोपनिबद्धो ग्रन्थ ऋक्संहितेति, अध्वर्यु व्यवहार्यमन्त्रा[4] यजूंषि, तेषां संघातेनोपनिबद्धो ग्रन्थो यजुःसंहितेति, उद्गातृव्यवहार्यमन्त्राः सामानि, तेषां संघातेनोपनिबद्धो ग्रन्थः सामसंहितेति निष्कर्षः। एषा समुदिता विद्या त्रयीति समाख्यां भजते।

वैदिककर्मकाण्डस्य श्रौतयागरूपायां प्रधानधारायाम् ऋग्यजुःसामवेदात्मिका त्रयी त्वेवोपयुयुजे पुरातनकाले। अथर्ववेदः खलु त्रयीवत्सनातनोऽपि शान्तिकपौष्टिक अभिचारिकादि कर्ममात्रोपयोगी बभूव।[5] यद्यपि गृह्यादिकर्मसु राजकर्मसु चाथर्वणिकाः प्रतिष्ठां प्रापुः, तथाप्युच्चाभियुक्तवर्गानुष्ठितश्रौतयागेषु त उपेक्षिता एव बभूवुः। एतच्च प्राचीनश्रौतवाङ्मये प्रायेण त्रय्या एव प्राशस्त्योल्लेखाद्, अवरकालिकवाङ्मये क्रमशोऽथर्ववेदसमावेशोपलम्भाद्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आथर्वणिकवाङ्मये चाथर्ववेदब्रह्मर्त्विजोः माहात्म्यातिशयसंकीर्त्तनात् कल्प्यते। तथा हि– ऋग्वेदे तावत् अथर्ववेदस्य भेषजाथर्वाङ्गिर–आदिभिर्नामभिरुल्लेखो न विद्यते। तत्र सामान्यस्य (ऋ० 8.11.5) विशेषस्य (ऋ० 10. 90.9) चोल्लेखस्यावसरा अपि स्वल्पा एव सन्ति, ऋग्वेदस्य देवशंसनप्रधानत्वात्। यद्यपि श्रुतावथर्वाङ्गिरोभृगवस्तादृशमासस्पदं प्रापुर्यादृशमन्य ऋषयः, तथापि श्रौतप्रतिपाद्ये कर्मणि(यागे) भेषजादिकर्मणोऽल्पत्वाद् न श्रौतवाङ्मयेऽथर्ववेदोल्लेखः।

साहित्यिकविधाप्रसङ्गे तु तत्रापि त्रय्या अनन्तरम् अथर्ववेद उल्लिख्यते, तदनन्तरं चेतिहासपुराणगाथादीनि विन्यस्यन्ते। तद्यथा– **ऋग्भ्यः स्वाहा यजुर्भ्यः स्वाहा सामभ्यः स्वाहाङ्गिरोभ्यः स्वाहा वेदेभ्यः स्वाहा गाथाभ्यः स्वाहा नाराशंसीभ्यः स्वाहा।** [6]तथैवोपनिषत्स्वपि त्रय्या अनन्तरम् अथर्ववेद उल्लिख्यते। तद्यथा– **तस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः.....।**[7] उपनिषत्सु क्वचित् त्रयीमात्रमेव श्रूयते।[8] यद्यपि गृह्यवाङ्मयस्याथर्ववेदेन घनिष्ठः सम्बन्धः, तथापि सर्वस्य वाङ्मयस्य त्रय्या प्रभावितत्त्वाद् गृह्यमपि प्रायस्तयैव सम्बध्यते, अथर्ववेदेन सह विशिष्टः सम्बन्धो न क्वचिद् निरूप्यते। क्वचित् तु पूर्ववत् त्रय्या अनन्तरम् अथर्ववेदः स्मर्यते।[9] क्वचिद् विशिष्टोल्लेख उपलभ्यते[10], अन्यत्र त्रयीमात्रमेव संकीर्त्यते।[11] अथर्ववेदस्य यथोचितं महत्त्वं गृह्यसूत्रेष्वेव प्रकटीभवति। धर्मसूत्रेष्वस्य स्मरणं स्वल्पमेव विद्यते, तत्र चापि त्रय्या अनन्तरम् अस्योपन्यास इतिहासादिपरकः।[12] मनुस्मृतौ (11.33) आङ्गिरसी श्रुतिः याज्ञवल्क्यस्मृतौ चाथर्वणिकं राजपौरोहित्यं निर्दिश्यते। वाल्मीकिना रामायणे त्रय्या एवोल्लेखः क्रीयते।[13]महाभारतेऽथर्ववेदस्य पूर्णं महत्त्वम् अभिव्यज्यते (राजकर्माणि)।[14] यद्यपि महाभारतेऽपिक्वचित् पूर्ववत् त्रयी स्मृता, तथापि प्राधान्येन वेदचतुष्टयं वर्ण्यते। तद्यथा –

ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव।
अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव हि।।

महा० सभा० 11 .32।।

इत्थं साहित्यिकविधारूपेण सम्मतोऽप्यथर्ववेदः श्रौतकर्मकलाप उपेक्षित एवासीदिति निष्कर्षः।

आथर्वणिक कर्मकाण्डवाङ्मयेऽथर्ववेदस्य तत्सम्बद्धर्त्विक्पुरोहितयोर्माहात्म्यमतिशयोक्त्या संकीर्त्यते। तथा हि–

(क) अथर्ववेदः संस्तूयते–

एतद् वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः।

गो० ब्रा० 1.3.4।।

त्रिविष्टपं त्रिदिवं नाकमुत्तमं तमेतया त्रय्या विद्ययेति। अत उत्तरे ब्रह्मलोकाम हान्तोऽथर्वणामाङ्गिरसां च सा गतिः।।

गो० ब्रा० 1/5/25।।

(ख) ब्रह्मणो महत्त्वं प्रदर्श्यते–

अथ वितानस्य ब्रह्मा कर्मणि ब्रह्मवेदविद् दक्षिणतो विधिवदुपविशति वाग्यतः।

वैतान० 1/11/1

ऋत्विजो वृणीते।अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणं सामविदम् उद्गातारम् ऋग्विदं होतारं यजुर्विदम् अध्वर्युम्।[15] वैतान 11/ 2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष ह वै विद्वान् सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गिरोविद्। गो0 ब्रा0 :.2.18।।

तैत्तिरीयसंहितायां (3/5/2/1) श्रूयमाणम्– **तस्माद् वसिष्ठो ब्रह्मा कायः–** इति वाक्यं गोपथकारेण (गो0 ब्रा0 2.2.13) परित्यज्यते। अपि च राष्ट्रसंवर्गेऽथर्वपरिशिष्ट उक्तम्–

ब्रह्मा शमयेन्नाध्वर्युर्नच्छन्दोगो न बह्वृचः।
रक्षांसि रक्षति ब्रह्मा ब्रह्मा तस्मादथर्ववित्।।

(ग) पुरोहितः संगीयते–

तत्र भूमिपतिर्विद्वांसं ब्रह्माणम् इच्छेत्। एष ह वै विद्वान् यद् भृग्वङ्गिरोविद्। एते ह वा अन्य सर्वस्य शमयितारः पालयितारो यद् भृग्वङ्गिरसः। कौशिक0 94/2–4।।

बह्वृचो हन्ति वै राष्ट्रमध्वर्युर्नाशयेत् सुतान्।
छन्दोगो धनं नाशयेत् तस्माद आथर्वणो गुरुः।।
राष्ट्रसंवर्गे, अथर्व0 परि0 2।।

अथैवंविधस्याथर्वणिकानां स्वकत्थनस्य किं प्रयोजकम् इत्यन्विष्यते। श्रौतयागेषु होत्रध्वर्यूदगातार ऋग्यजुःसामभिरनुष्ठेये स्वस्वकर्मणि प्रवीणाः सन्तोऽपि पारस्परिकसमन्वयार्थ त्रयीविद्या– तदनुष्ठेयकर्म –तदरहस्यविदम् अनूचानविशेषम् अपेक्षन्ते स्म। श्रूयते खल्वपि–

परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूंषि, अथैतस्यैवान्तो नास्ति यद् ब्रह्म। तै0 सं0 7.3.1.4।।

त्रयी विद्या, तदनुष्ठेयकर्माणि, तेषां रहस्यं चैतत् सर्वं ज्ञानं ब्रह्मपदवाच्यम्। 'ब्रह्मोद्यम्' 'ब्रह्मवादिनो वदन्ति' इत्यादिषु व्याहरणेषु श्रूयमाणो ब्रह्मशब्दस्तादृग् ज्ञानमेवाभिदधाति। इदमेव च ब्रह्म (ज्ञानम्) कालान्तर उपनिषत्सु आत्मपर्यायो बभूव। इदमेव चतुर्थी विद्या–चतुर्थो वेदः– इति व्यपदिश्यते स्म। एतादृग्ज्ञानसम्पन्नश्च विपश्चिद् 'ब्रह्मा' इत्युपाधि भेजे।[16] नास्य सम्बन्धोऽथर्ववेदेन सहासीदित्यैतरेयवचनेन प्रमाप्यते। तथा हि–

ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो वेदमयो ब्रह्ममयोऽमृतमयः सम्भूय देवता अप्येति . . .। ऐ0 ब्रा0 1/22/15।।

तथैवाथर्ववेदेऽपि क्वचित् प्रयुज्यमानस्य[17] ब्रह्मपदस्य नाथर्वणा सम्बन्धः। वस्तुतस्त्रयीं प्रति यद् ब्रह्म बभूव, स एव होत्रध्वर्यूद्गातॄन् प्रति ब्रह्मा बभूवेति शक्यते वक्तुम्। ऋत्विक्कर्मणां विनियोगम् आचक्षाणायाम्–

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः।।

ऋग् 10/71/11

इत्यस्याम् ऋचि श्रूयमाणं ब्रह्मपदं विवृण्वानो यास्कोऽपि न ब्रह्माणम् अथर्वणा सम्बध्नाति। तथा चाह–**ब्रह्मा सर्वविद्यः, सर्वं वेदितुमर्हति, ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः** (निरु0 1/8) इति। ऐतरेयब्राह्मणे यच्छ्रूयते– **यद् ऋचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोदगीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति। त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात्** (ऐ0 ब्रा0 5/33) – इति, अत्रापि ब्रह्मत्वं नाथर्वाङ्गिरोभिः सम्बध्यत इति स्पष्टम्। तथैवान्यत्र– **तद् वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति, मनसैव ब्रह्मा संस्करोति** (ऐ0 ब्रा0 5/33) इति, ब्रह्मणो विपुलज्ञानेन यज्ञस्य संस्कर्तृत्वं व्याहृतम्। वस्तुत आथर्वणव्यतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाङ्मय आथर्वणिकानां तादृशविशिष्टयोग्यता सम्पन्नत्वं नोदीर्यते। कालान्तरे तु त्रयाणाम् ऋत्विजां त्रय्या सम्बद्धत्वात्, चतुर्थ ऋत्विग् ब्रह्मापि केनचिद् वेदेन सम्बद्धः स्यात् ; स च वेदो नाथर्वाङ्गिरोभ्योऽन्य इति कृत्वाथर्वाङ्गिरोविदेव ब्रह्मा भवेद् – इत्याथर्वणिकैःप्रस्तुतः स्वप्राशत्यसंकीर्त्तन सारभूतस्तर्कः स्वीकृतो बभूव। ततश्चाथर्ववेदो ब्रह्मवेदसमाख्यां लेभ इत्यैतिह्यविदः परिकल्पयन्ति।

अथर्ववेदे श्रौतकर्मणां सवनानां श्रवणात्[18] प्रायश्चित्तकर्मनिरूपणात्[19] चाथर्वणिकानां श्रौतकर्मज्ञत्वं स्वीकर्तव्यमेव, भवतु स्वल्पमेव तज्ज्ञानम्। ततश्चोपरिष्टात् प्रस्तुता परिकल्पना नैकान्तिकीति दिक्।

आथर्वणिकश्रुतेर्वेदत्वं गोपथब्राह्मणकालात् पूर्वमेव प्रतिष्ठितम् आसीत्। **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्**.....(बृ0 उप0 2/4/10) इत्यादीनि वचनानि चात्र प्रमाणम्। मध्यकालिकाचार्याणां त्वयं विषयः सांशयिकः आसीदिति सायणीयाथर्ववेदभूमिकायां[20] प्रस्तुतेन चोद्यपरिहारेणाक्षिप्यते। तस्य त्वयं सारः–

यज्ञं व्याख्यास्यामः। स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते (सत्या0 1/1) इति स्मरणात्, **त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्।** ऐ0 ब्रा0 5/32) **ऋचः सामानि जज्ञिरे ... यजुस्तस्मादजायत** (ऋ0 10/90/9) इति त्रयाणांप्रादुर्भावश्रवणात् **वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः** (तै0 ब्रा0 3/12/9/1) **यम् ऋषयस्त्रैविदा विदुः, ऋचः सामानि यजूंषि** (तै0 ब्रा0 1/2/1/26) इति संख्यानियमात्, ब्रह्मकर्त्तव्यस्यापि त्रय्यैव सिद्धत्वात् (ऐ0 ब्रा0 5/33) चतुर्णा होत्रादीनाम् ऋत्विजाम् अपेक्षितस्य क्रियाकलापस्य त्रय्यैव सिद्धत्वाद् न चतुर्थस्य वेदस्याकाङ्क्षेति चोद्यम् उद्भाव्य परिह्रियते–त्रय्यां तत्र तत्र प्रतिपादितं यद् ब्रह्मत्वं तदथर्ववेदसिद्धमेव लेशेनोक्तम् इत्यतात्पर्यविष्यत्वाद् अकृत्स्नत्वाच्च नादरणीयम्। अकृत्स्नत्वादेव यज्ञार्द्ध त्रिभिर्वेदैर्निष्पाद्यतेऽर्द्धान्तरं त्वथर्ववेदेनेति श्रूयते। तथा हि–

प्रजापतिर्यज्ञमतनुत। स ऋचैव हौत्रमकरोद् यजुषाध्वर्यवं साम्नौद्गात्रम् अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्" " स वा एष त्रिभिर्वेदयज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते। मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति।

गो0 ब्रा0 1/3/2

'स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते' इति स्मृतिस्तूदाहृतश्रुत्यनुसारेण मुख्याथर्वविदोऽसम्भवे तत्तच्छाखासु यावदुक्तब्रह्ममात्रेणापि क्रतुशरीर– निष्पत्तिर्भवतीत्येवमभिप्राया। **'त्रय्या विद्ययेति ब्रूयाद'**–इति श्रुतिरपि प्रकृतव्याहृतित्रयापेक्षत्वाद् अविरुद्धा। **'अस्य महतो भूतस्य'** – इति वाजसनेयश्रुत्यनुरारेण त्रयाणाम् उत्पत्तिश्रुतिरुपलक्षणतया व्याख्येया। 'वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः'– इति श्रुतिःप्रकृतकालत्रयाभिप्रायेण। 'यमृषयस्त्रैविदा विदुः'–इति त्रैविध्यं तु वेदगतमन्त्राभिप्रायम्। तदेवमामुष्मिकफलेषुदर्शपूर्णमासादिष्वयनान्तेषु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयीविहितकर्मस्वपेक्षितब्रह्मत्वम् अनन्य–लभ्यत्वाद् अथर्ववेदैकसमधिगम्यम् इति स्थितम्।

सायणकृतसमाधाने यज्ञस्य तदृत्विजां चैतिहासिकविकासस्य नावलोक्यतेऽवकाशः। वस्तुतः इतिहासपरिष्कृताधुनिकपक्षः प्रत्यभादेव न हि मध्यकालिकानाम् आचार्याणाम्। अस्तु। अन्ततः श्रौतकर्मकाण्डेऽथर्ववेदश्चतुर्थवेदत्वेन, ब्रह्मा चाथर्वणि कर्त्विक्तेन प्रतिष्ठितं पदं समुपालभेताम्।

पादटिप्पण्यः

1. (क) ऋचो वेदः.......यजूंषि वेदः..... अथर्वाणो वेदः.......आङ्गिरसो वेदः.......सर्पविद्या वेदः...... देवजनविद्या वेदः ......मायावेदः ......इतिहासो वेदः...... पुराणं वेदः....। शत0 ब्रा0 13/4/3/3–13

(ख) मन्त्रश्च द्विधा वैदिकस्तान्त्रिकश्च।।

सर्वदर्शनसंग्रह– योगप्रकरणे।

(ग) श्रुतिश्च द्विधा वैदिकी तान्त्रिकी च।।

मनु0 2.1 कुल्लूकभट्टः।

2. मन्त्राणामेव शक्त्या वेदत्वं, ब्राह्मणानां तु लक्षणयेत्याचार्याः श्रीयुधिष्ठिरमीमांसकपादा वेदश्रुत्याम्नायमीमांसायां निरणैषुः।

3. प्रायिकम् एतत्, क्वचिद् व्यत्यासदर्शनात्।

4. प्रायिकम् एतत्,क्वचिद् व्यत्यासदर्शनात्

5.द्र0– मनु0 3.1 कुल्लूक- मेधातिथ्योर्भाष्ये।

6. तै0 सं 7/5/11/2 अपि द्र0 –काठ0 सं 5/2, शत0 ब्रा0 10/5/2/10, तै0 ब्रा0 3/12/8/2,तै0 आ0 2/9/2, आश्व0 श्रौ0 10/7/1 आदि, शाङ्खा0 श्रौ0 16/2/2 आदि।।

7. बृह0 उप0 2/4/10, अपि द्र0 –छा0 उप0 3/1–4, मु0 उप0 6/32

8. मु0 उप0 2/16, प्रश्न0 2/6, नृ0 ता 05/2

9. आश्व0 गृ0 3/3/1–3, शाङ्खा गृ0 1/24/8, हिरण्य गृ0 2/19/16

10. शाङ्खा0 गृ0 1/16/3 (ब्रह्मवेदः); पार0 गृ0 2/10/7(अथर्ववेदः), 2/10/21 (अथर्वणाम्); हिरण्य0 गृ0 2/3/9 (अथर्ववेदः)।

11. शाङ्खा0 गृ0 1/22/15, हिरण्य0 गृ0 1/5/13

12. विष्णु समृ0 30/37, बौ0 ध0 2/5/9/14, याज्ञ0 स्मृ0 1/44, औषनस स्मृ0 3/44

13. वा0 रा0 4/3/28

14. महा0 5/108/10 ; 3/203/15

15. अपि द्र0 – गो0 ब्रा0 1/2/16

16. वैदिकवाङ्मये ब्रह्मशब्दो द्वैधं प्रयुज्यते–आद्युदात्तोऽन्तोदात्तश्च। तत्राद्युदात्तो ब्रह्मशब्दो धात्वर्थ प्राधान्याद् ज्ञानार्थकः, अन्तोदात्तस्तु प्रत्ययार्थप्रधान्याद् अनूचानार्थक इति स्वरविदां विवेकः।

17. अथर्व0 (शौ0 सं0) 11/8/23 ; 15/3/7 ; 15/6/3

18. अथर्व0 (शौ0 सं0) 6.47,48 सक्ते।

19. अथर्व (शौनक संहिता 6/114 सूक्त)

20. अपि द्र0 – मनु 0 2.6 मेधातिथिभाष्यम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ is a half yearly peer-reviewed International Vedic Journal of Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar . Manuscripts should be submitted to the Editor both in Electronic Form and in Hard Copy (Typed in double spacing on A4 size paper). Research papers of late eminent vedic scholars recommended by reviewers can also be consider for publication.

Copyright © Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar.

The Advice and Information in this Journal are believed to be true and accurate but the person associated with the production of the journal can not accept any legal responsibility for any errors or omissions that may be made. All disputes are subject to jurisdiction of the District Court Haridwar, Uttarakhand only- ***Editor in Chief***

Contact for :-

Submission of Manuscript
Chief Editor **'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'**
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar - 249 404
Uttarakhand, INDIA
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91- 9410192541
http:/www.gkv.ac.in

For further Information Mail to :
Prof. Dinesh Chandra Shastri
Chief Editor (dineshcshastri@gmail.com)

Note:- For subscription and related enquiries feel free to contact Business Manager

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN: 2277-4351
RNI Reg:UTTMUL 2012/53882
Vol. 1, July-December 2013, No.1

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Half Yearly Refereed Research Journal on Vedic Studies

Aims & Objectives

1. *To rectify and clarify the illusionary thoughts expressed by critics on Vedas, by referring to the existing logical proof and arguments, in Shastras.*

2. *To extract the knowledge-scientific or otherwise, hidden in Vedas.*

3. *To publish the original Vedic findings.*

4. *To prepare special edition on Vedic doctrine, containing detailed arguments for notified Vedic research outcomes.*

5. *To accelerate Swāmī Dayānand Sarswatī's thoughts and opinions for clearing the illusions prevailing about Vedas.*

6. *To publish critical edition of work carried out on Vedas by citing the facts that originally existed in Vedic books, rarely available.*

मुद्रक: किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस, कनखल, हरिद्वार फोन: 9837007222

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar